अथ षष्ठं मण्डलम्

गत सूक्त का प्राणसाधक पुरुष अपने में शक्ति को भरके 'भरद्वाज' बनता है और ज्ञानवर्धन करके यह 'बार्हस्पत्य' होता है। 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्मरण करता हुआ यह कहता है कि—

प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथम सूक्तम्]

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चम** ॥

'बुद्धि व बल के दाता' प्रभु

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **प्रथमः**=सर्वप्रथम **मनोता**=(मनः उतं सम्बद्धं यज) मन को बाँधनेवाले हैं। प्रभु को छोड़कर मन कहीं भी टिक नहीं पाता। प्रत्येक वस्तु के ओर द्वारे को (सिरों को) देखकर मन आगे बढ़ने की करता है। जब कभी प्रभु में जाता है, तो उसके अनादि अनन्त होने से न यह उसके सिरों तक पहुँचता है और नांही अन्यत्र जानेवाला होता है। यह मन प्रभु में ही उलझ जाता है। (२) हे **दस्म**=हमारे सब दुःखों का उपक्षय करनेवाले प्रभो! आप **अस्याः धियः होता**=इस बुद्धि के देनेवाले **अभवः**=होते हैं। आप से दी गई इस बुद्धि के द्वारा ही हम अपने दुःखों को दूर करनेवाले होते हैं। हे **वृषन्**=हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप ही **सीम्**=निश्चय से **दुष्टरीतु सहः**=शत्रुओं से न आक्रान्त होने योग्य बल को **अकृणोः**=करते हैं। उस दुष्टरीतु=अहिंस्य बल को आप करते हैं, जो **विश्वस्मै**=सब **सहसे**=बलवान् शत्रुओं के **सहध्यै**=पराभव करने के लिये होता है।

भावार्थ—प्रभु हमें बुद्धि देते हैं और बल प्राप्त कराते हैं, जिससे कि हम सब शत्रुओं का पराभव कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चम** ॥

महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन्।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन्॥ २॥

(१) **अधा**=अब **होता**=सब कुछ देनेवाले होते हुये आप **न्यसीदः**=हमारे हृदयों में आसीन होते हैं। **यजीयान्**=अतिशयेन उत्तम पदार्थों के प्राप्त करानेवाले आप (यज्=दाने) **इडस्पदे**=इस वेदवाणी के पद में **इषयन्**=प्रेरणा को प्राप्त कराते हुए आप **ईड्यः**=पूज्य व **सन्**=श्रेष्ठ हैं। (२) **तम्**=उन **प्रथमम्**='प्रथ विस्तारे' सर्वव्यापक **त्वा**=आपको **देवयन्तः**=दिव्यगुणों की कामनावाले **चितयन्तः**=चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष **महो राये**=महान् ऐश्वर्य के लिये **अनुग्मन्**=अनुगमन करते

हैं। प्रभु का अनुगमन यही है कि प्रभु के अनुसार अपने अन्दर गुणों को धारण करना। इस मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता ही है।

भावार्थ—हमारे हृदयों में स्थित प्रभु हमें प्रेरणा देते हैं। इस प्रेरणा के अनुसार चलते हुए हम महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रुशन्-दीदिवान्

वृतेव॒ यन्तं ब॒हुभि॑र्वस॒व्यै३॑स्त्वे र॒यिं जा॑गृ॒वांसो॒ अनु॑ ग्मन्।
रुश॑न्तम॒ग्निं दर्श॒तं बृ॒हन्तं॒ व॒पाव॑न्तं वि॒श्वहा॑ दीदि॒वांस॑म्॥ ३॥

(१) **बहुभिः वसव्यैः**=अनन्त वसुओं (=धनों) के साथ **वृता इव यन्तम्**=मार्ग से ही जाते हुए आपका **अनुग्मन्**=ज्ञानी पुरुष अनुसरण करते हैं। ये **जागृवांसः**=सदा जागते हुए, सावधान पुरुष **त्वे**=आप में **रयिम्**=धन को प्राप्त करते हैं। (२) उन आपका अनुगमन करते हुए ये ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं जो आप **रुशन्तम्**=शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं, **अग्निम्**=अग्रेणी हैं, **दर्शतम्**=दर्शनीय हैं, **बृहन्तम्**=महान् है, **वपावन्तम्**=उत्तम सद्गुणों के बीजों का वपन करनेवाले हैं और **विश्वहा**=सदा **दीदिवांसम्**=दीप्यमान् हैं। आपका अनुगमन करते हुए ये भी काम-क्रोधादि का संहार करते हैं, आगे बढ़ते हैं, दर्शनीय जीवनवाले होते हैं, बड़े बनते हैं, विशाल हृदयवाले होते हैं, अपने जीवन में सद्गुणों के बीजों को बोने का प्रयत्न करते हैं और सदा स्वाध्याय से अपने जीवन को दीप्त बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु का अनुसरण हमें ऐश्वर्यशाली, काम, क्रोध आदि का विनाशक व सदा ज्ञानदीप्त बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नाम-स्मरण व पवित्रता

प॒दं दे॒वस्य॒ नम॑सा॒ व्यन्तः॑ श्रव॒स्यव॒ः श्रव॑ आप॒न्नमृ॑क्तम्।
नामा॑नि चिद्दधिरे य॒ज्ञिया॑नि भ॒द्रायां॑ ते रणयन्त॒ सन्दृ॑ष्टौ॥ ४॥

(१) **देवस्य**=उस प्रकाशमय प्रभु के **पदम्**=स्थान को **नमसा**=नमन के साथ **व्यन्तः**=जाते हुए, **श्रवस्यवः**=ज्ञान की कामनावाले ये भक्त **अमृक्तम्**=वासनाओं से अवाध्यमान **श्रवः**=ज्ञान को **आपन्**=प्राप्त होते हैं। प्रभु के चरणों में नम्रता से उपस्थित होना उस उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्ति का साधन बनता है, जो कि सब वासनाओं को विनष्ट करनेवाला होता है। (२) ये उपासक **यज्ञियानि**=यज्ञिय-पवित्र-आदरणीय **नामानि**=नामों को **चित्**=निश्चय से **दधिरे**=धारण करते हैं। (आप) के पवित्र नामों का जप करते हुए उन नामों के अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करते हैं और **ते**=आपकी **भद्रायां संदृष्टौ**=कल्याणी संदृष्टि में **रणयन्त**=रमण करते हैं। आपके सन्दर्शन में सब कार्यों को करते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रभु-स्मरणपूर्वक सब कार्यों को करना ही एकमात्र वह उपाय है जिससे कि हम मार्गभ्रष्ट नहीं होते और सदा उत्तम कर्मों में ही आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के प्रति नमन से हम उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं। प्रभु के पवित्र नामों का स्मरण करते हुए पवित्र कर्मोंवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पिता-माता-त्राता

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **क्षितयः**=सब मनुष्य **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी में **त्वां वर्धन्ति**=आपको ही बढ़ाते हैं। सब मनुष्य आपका ही स्तवन करते हैं। **जनानाम्**=मनुष्यों के **उभयासः रायः**=दोनों प्रकार के ऐश्वर्य शरीर में शक्तिरूप व मस्तिष्क में ज्ञानरूप ऐश्वर्य **त्वाम्**=आपको ही बढ़ानेवाले होते हैं। यह ज्ञानैश्वर्य व बल का ऐश्वर्य आपके ही कारण तो होता है। (२) **त्वम्**=आप ही **त्राता**=रक्षक हैं। **तरणे**=इस महासागर के तैरने में **चेत्यः भूः**=ज्ञान देनेवालों में उत्तम आप ही हैं। आपसे ही ज्ञान को प्राप्त करके हम सब संसार समुद्र को तैर पाते हैं। आप ही **सदं इत्**=सदैव **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **पिता माता**=पिता व माता हैं, आप ही उनके रक्षक हैं और निर्माण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही पिता हैं, माता हैं और त्राता हैं। भवसागर को तैरने के लिये ये ही ज्ञान को देनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नम्रतापूर्वक प्रभु का उपासन

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्रुबाधो नमसा सदेम॥ ६॥

(१) **सः**=ये प्रभु **सपर्येण्यः**=पूज्य हैं, **प्रियः**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले हैं। **विक्षु**=सब प्रजाओं में **अग्निः**=अग्रेणी होते हुए वे प्रभु **होता**=जीवन-यज्ञ को चलानेवाले हैं अथवा उन्नति के लिये सब साधनों को प्राप्त करानेवाले हैं। वे **मन्द्रः**=आनन्दस्वरूप **यजीयान्**=सर्वाधिक पूज्य प्रभु **निषसादा**=हमारे हृदयासन पर आसीन होते हैं। (२) हे प्रभो! **दमे**=इस शरीर गृह में **आदीदिवांसम्**=सर्वतो दीप्यमान **तम्**=उन **त्वा**=आपको **वयम्**=हम **ज्रुबाधः**=(जानुनं बाधयन्तः) घुटने टेककर, अवनतजानु व प्रणत होकर **नमसा**=नमन के साथ **उपसदेम**=उपासीन हों। नम्रतापूर्वक आपकी उपासना करनेवाले बनें। आपकी उपासना हमारे जीवन को दीप्त बनायेगी।

भावार्थ—वे प्रभु ही पूज्य हैं। वे सर्वदाता प्रभु ही नम्रतापूर्वक उपास्य हों। उनकी उपासना हमें दीप्त जीवनवाला बनायेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभुस्तवन के लाभ

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तं नव्यं त्वा**=उन स्तुत्य आपको **वयम्**=हम **सुध्यः**=उत्तम बुद्धियोंवाले, **सुम्नायवः**=प्रभु-स्तवन व आनन्द की कामनावाले, **देवयन्तः**=दिव्यगुणों को अपनाने की कामनावाले होते हुए **ईमहे**=याचना करते हैं, आपकी ही स्तुति करते हैं। वस्तुतः आपकी स्तुति ही हमें सुबुद्धि-प्रशस्त आनन्दवाला व दिव्यगुण-सम्पन्न बनाती है। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो!

त्वम्=आप ही **दीद्यानः**=देदीप्यमान होते हुए **बृहता रोचनेन**=महान् दीप्ति व तेजस्विता से **विशः**=सब प्रजाओं को **दिवः अनयः**=प्रकाशमय स्वर्गलोक को प्राप्त कराते हैं। आप से प्राप्त करायी गयी यह ज्ञानदीप्ति हमारे कर्मों को शुद्ध करती है और हमें स्वर्गलोक को प्राप्त कराती है।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन हमें (१) उत्तम बुद्धिवाला बनाता है, (२) हमारे जीवन को आनन्दमय करता है, (३) हमें दिव्यगुणों की ओर ले चलता है, (४) हमारे ज्ञान को बढ़ाता हुआ हमें स्वर्ग को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रक्षण-शत्रु संहार व ऐश्वर्य प्राप्ति

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्॥ ८॥

(१) हम उस प्रभु का स्तवन करते हैं जो **शश्वतीनाम्**=सनातन **विशाम्**=प्रजाओं के **विश्पतिम्**=रक्षक स्वामी हैं। 'शश्वतीनां' शब्द का अर्थ 'प्लुत गतिवाली' भी है। आलस्य शून्य प्रजाओं के प्रभु रक्षक हैं। '**कविं**'=सर्वज्ञ हैं, **नितोशनम्**=ज्ञान के द्वारा शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं। **वृषभम्**=शत्रुओं के संहार के द्वारा सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **चर्षणीनां प्रेतीषणिम्**=श्रमशील मनुष्यों को (प्राप्तगमनं) प्राप्त होनेवाले हैं। (२) **इषयन्तम्**=इन प्रेरणा को प्राप्त करानेवाले, '**पावक**'=प्रेरणा के द्वारा जीवन को पवित्र बनानेवाले, **राजन्तम्**=पवित्रता द्वारा दीप्ति को देनेवाले और दीप्ति के द्वारा **अग्निम्**=आगे ले चलनेवाले उस प्रभु का हम स्तवन करें जो **रयीणां यजतम्**=सब ऐश्वर्यों का हमारे साथ संगतिकरण करनेवाले है।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण ही हमारा रक्षक है, हमारे शत्रुओं का संहारक है, हमें पवित्र बनाकर ऐश्वर्य-सम्पन्न करनेवाला है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'यज्ञ-स्तुति-ज्ञानदीप्ति-हव्य पदार्थों का दान'

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम्।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **सः मर्तः ते**=वह मनुष्य आपका है **यः**=जो **ईजे**=यज्ञ करता है, **शशमे च**=और स्तुति करता है तथा **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के साथ **हव्यदातिं आनट्**=हव्य पदार्थों के दान का व्यापन करता है। 'यज्ञ, स्तुति, ज्ञानदीप्ति व हव्य पदार्थों का दान' ये बातें प्रभु-भक्त की पहिचान कराती हैं। (२) **यः**=जो **नमोभिः**=नमस्कारों के साथ **आहुतिं परिवेदा**=आहुति को जानता है, अर्थात् यज्ञशील बनता है, **सः**=वह **त्वा ऊतः**=आप से रक्षित हुआ-हुआ **विश्वा इत्**=सब ही **वामा**=सुन्दर वस्तुओं को **दधते**=धारण करता है। 'नमन व यज्ञशीलता' सब सुन्दर वस्तुओं की प्राप्ति का कारण बनती हैं।

भावार्थ—'यज्ञ, स्तुति, ज्ञानदीप्ति, हव्य पदार्थों का दान' ये प्रभु-भक्त के लक्षण हैं। यह प्रभु-भक्त सब सुन्दर पदार्थों को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नम्रता-ज्ञान व दान

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम॥ १०॥

(१) **अस्मै**=इस **महे**=महान् **ते**=तेरे लिये **महि विधेम**=खूब ही पूजा करें। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नमोभिः**=नमस्कारों द्वारा, **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा, **उत**=और **हव्यैः**=(हु दाने) दानों के द्वारा हम आपका पूजन करें। प्रभु का उपासक 'नम्रता-ज्ञानदीप्ति व दान की वृत्तिवाला' होता है। (२) हे **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! हम **वेदी**=इस शरीर रूप यज्ञभूमि में **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा तथा **उक्थैः**=स्तुति-वाणियों के द्वारा **ते**=आपकी **भद्रायां सुमतौ**=कल्याणी सुमति में **आयतेम**=समन्तात् यत्नशील हों। अर्थात् हमारे सब कार्य आपकी कल्याणी मति के अनुसार हों। इस कल्याणी मति को प्राप्त करने के लिये स्वाध्याय व स्तवन (गीर्भिः, उक्थैः) सहायक होते हैं।

भावार्थ—हम 'नम्रता, ज्ञानदीप्ति व दानवृत्ति' को धारण करते हुए प्रभु के उपासक हों। स्वाध्याय व स्तवन करते हुए हम सदा प्रभु की कल्याणी मति के अनुसार यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'बृहत्, स्थविर, रेवत्' वाज

आ यस्तन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि॥ ११॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यः**=जो आप हैं वे **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **विभासा**=विशिष्ट दीप्ति से **आततन्थ**=विस्तृत करते हैं। आप हमारे मस्तिष्क ज्ञान-ज्योति से तथा शरीर को तेजस्विता की दीप्ति से दीप्त करते हैं। **च**=और आप **श्रवोभिः**=ज्ञानों से **श्रवस्यः**=उत्तम ज्ञानवाले हैं। आपका निर्भ्रान्त ज्ञान हजारों सूर्यों की दीप्ति से भी अधिक दीप्तिवाला है। इन ज्ञानों के द्वारा आप **तरुत्रः**=भवसागर से तरानेवाले हैं। (२) हे अग्ने! आप **अस्मे**=हमारे लिये **वाजैः**=शक्तियों से **वितरम्**=(विशिष्टतरं) खूब ही **विभाहि**=दीप्त होइये। उन शक्तियों से हमें दीप्त जीवनवाला करिये जो **बृहद्भिः**=(महद्भिः) हमारे जीवन को महत्त्वपूर्ण बनानेवाली हों। **स्थविरेभिः**=खूब बढ़ी हुई हों (स्थूलैः) तथा **रेवद्भिः**=प्रशस्त धनोंवाली हों।

भावार्थ—प्रभु हमारे मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाते हैं तो शरीर को तेजोदीप्त। प्रभु हमें उन शक्तियों को प्राप्त कराते हैं जो हमें महत्त्वपूर्ण बढ़ा हुआ व धन-सम्पन्न बनाती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन-प्रेरणा-ज्ञान

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥ १२।

(१) हे **वसो**=सम्पूर्ण वसुओं (धनों) के स्वामिन् प्रभो! **अस्मे**=हमारे लिये **सदं इत्**=सदा ही **भूरि**=पालन-पोषण के लिये पर्याप्त धन **धेहि**=धारण करिये। हमारे **तोकाय**=पुत्रों के लिये तथा

तनयाय=पौत्रों के लिये **पश्वः**=गौ आदि मानवहित साधक पशुओं को प्राप्त कराइये। यह आपसे दिया हुआ धन **नृवत्**=प्रशस्त मनुष्योंवाला हो। इस धन के द्वारा हमारे घर में सभी का जीवन प्रशस्त बने। (२) हे प्रभो! आपकी कृपा से **अस्मे**=हमारे लिये **पूर्वीः इषः**=पालन व पूरण करनेवाली प्रेरणाएँ **सन्तु**=हों। जो प्रेरणाएँ **बृहतीः**=हमारी वृद्धि का कारण बनती हैं तथा **आरे अघाः**=पापों को हमारे से दूर रखती हैं। इन प्रेरणाओं के द्वारा **भद्रा**=कल्याणकर **सौश्रवसानि**=उत्तम ज्ञान हमारे लिये हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें उत्तम धन प्राप्त हों। हम प्रभु-प्रेरणा को सुननेवाले बनें और कल्याणकर उत्कृष्ट ज्ञानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

वसुता (अश्याम्)

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम्।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे॥ १३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाया**=आपको प्राप्त होनेवाले **वसूनि**=धन **पुरूणि**=बहुत हैं और **पुरुधा**=गौ-अश्व आदि रूप से अनेक प्रकार के हैं। प्रभु सब धनों के भण्डार हैं। हे **राजन्**=सब धनों के स्वामिन् प्रभो! **ते**=आपके इस **वसुता**=धनसमूह को (समूहे तत् प्रत्ययः) **अश्याम्**=प्राप्त करूँ। प्रभु के इन नाना प्रकार के पालक व पूरक धनों को हम प्राप्त करें। (२) हे **पुरुवार**=बहुत वरणीय धनोंवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वे**=आपके धन **हि**=निश्चय से **पुरूणि सन्ति**=बहुत हैं अथवा पालन व पूरण करनेवाले हैं। **राजनि**=देदीप्यमान **त्वे**=तुझ में **विधते**=आपकी परिचर्या करनेवाले के लिये **वसु**=सब कार्यों को प्रशस्त करनेवाले धन **सन्ति**=हैं। अर्थात् आप अपने उपासक को सब आवश्यक धन देते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु के उपासक बनें। प्रभु के वसुओं को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में भी यही ऋषि, यही देवता हैं—

अथ चतुर्थाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

'ज्ञान व शक्ति' का पोषण

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे। त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चय से **क्षैतवत्**=(क्षि निवासगत्योः) उत्तम निवास व गतिवाले **यशः**=यश को **पत्यसे**=(अभिगमयसि) प्राप्त कराते हैं। **मित्रः न**=आप सूर्य के समान हैं। सूर्य के समान देदीप्यमान होते हुये आप हमें जीवन को उत्तमता से बितानेवाला व उत्तम कर्मोंवाला बनाकर बड़ा यशस्वी बनाते हैं। यह 'क्षैतवत् यश' आपकी कृपा से ही प्राप्त होता है। (२) हे **विचर्षणे**=विशिष्ट द्रष्टा सर्वज्ञ प्रभो! हे **वसो**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले प्रभो! आप हमारे **श्रवः**=ज्ञानों को **पुष्टिं न**=पुष्टि के समान ही **पुष्यसि**=पुष्ट करते हैं। 'विचर्षणि' होते हुए आप हमारे मस्तिष्क को ज्ञान से पुष्ट करते हैं, और 'वसु' होते हुए आप हमें शरीर में उचित पोषण को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम निवास व गतिवाले यशस्वी जीवन को प्राप्त कराते हैं। वे हमें 'ज्ञान व शक्ति' के पोषण से युक्त करते हैं। इसी से वे प्रभु 'विचर्षणि' हैं, वे 'वसु' हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु को कौन प्राप्त करता है?

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते। त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **त्वां हि**=आपको ही **चर्षणयः**=श्रमशील ज्ञानी पुरुष **यज्ञेभिः**=श्रेष्ठ कर्मों से तथा **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **ईडते स्म**=उपासित करते हैं। प्रभु की उपासना यज्ञों व ज्ञान की वाणियों से होती है। इन्हें अपनानेवाले व्यक्ति ही 'चर्षणि' कहलाते हैं। 'चर्षणि' शब्द के दोनों ही अर्थ हैं—(क) श्रमशील, (ख) द्रष्टा व ज्ञानी। (२) हे प्रभो! **त्वाम्**=आपको **वाजी**=शक्तिशाली पुरुष ही **याति**=प्राप्त होता है। वह शक्तिशाली पुरुष जो **अवृकः**=हिंसा से रहित है, जो अपनी शक्ति का प्रयोग रक्षणात्मक कर्मों में ही करता है। **रजस्तूः**=राजसीभावों का (तुर्वी हिंसायाम्) विनाश करता है और **विश्वचर्षणिः**=सबको देखनेवाला होता है, अर्थात् सबके हित की बात को सोचता है, केवल अपना भला नहीं देखता।

भावार्थ—प्रभु की उपासना यज्ञों व ज्ञान की वाणियों से होती है। प्रभु को वह प्राप्त करता है जो शक्तिशाली, अहिंसक, राजसभावों को दूर करनेवाला व सब का हित चाहनेवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

छह बातें

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते। यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३ ॥

(१) हे प्रभो! **यज्ञस्य केतुम्**=यज्ञों के प्रकाशक, वेद के शब्दों में सब कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश देनेवाले **त्वा**=आपको **सजोषः**=(सजोषसः) मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्य करनेवाले, **दिवः**=ज्ञान के प्रकाशवाले **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **इन्धते**=अपने हृदय देशों में समिद्ध करते हैं, वहाँ आपके प्रकाश को देखते हैं। (२) आपके प्रकाश को यह व्यक्ति तब देखता है **यत्**=जब निश्चय से **स्यः**=वह **मानुषः जनः**=मनुष्य मात्र यज्ञहितेच्छु पुरुष **सुम्नायुः**=आपके स्तोत्रों की कामनावाला होता हुआ **अध्वरे**=यज्ञों में **जुह्वे**=आहुति को देनेवाला होता है। प्रभु प्राप्ति के लिये पात्र वही बनता है—(क) जो सबका भला चाहे, (ख) स्तुति-प्रवण हो, (ग) यज्ञशील हो।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—(क) हम मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्य करें, (ख) प्रकाशवाले हों, ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वाध्यायशील हों, (ग) उन्नति-पथ पर आगे बढ़ें, (घ) सबका भला चाहें, (ङ) प्रभु-स्तवन की ओर हमारा झुकाव हो, (च) यज्ञशील बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

धिया शशमते (कर्म द्वारा स्तवन)

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते। ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥

(१) हे प्रभो! वह **मर्तः**=मनुष्य ही **ऋधत्**=समृद्धि को प्राप्त करता है, **यः**=जो **सुदानवे ते**=उत्तम दानवाले (दा दाने) आपके लिये **धिया**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **शशमते**=स्तुति करनेवाला होता है। प्रभु ने किस प्रकाश 'शरीर, इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' को प्राप्त कराया है। इनका ठीक प्रयोग करते हुए, बुद्धिपूर्वक कार्यों को करते हुए, हम प्रभु का स्तवन करनेवाले बनते हैं। प्रभु का स्तवन यही है कि हम प्रभु से दिये गये साधनों का उचित प्रयोग करें। (२) **सः**=वह

कर्मों द्वारा स्तुति करनेवाला मनुष्य **बृहतः दिवः**=महान् ज्ञान के द्वारा **ऊती**=आपसे प्राप्त कराये गये रक्षण से **द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **तरति**=तैर जाता है। इस प्रकार तैर जाता है, **न**=जैसे कि **अंहः**=आरभनशील पापों को तैर जाता है।

भावार्थ—बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा ही प्रभु का स्तवन होता है। यह स्तोता महान् ज्ञान के द्वारा रक्षण को प्राप्त करके द्वेषों व पापों को तैर जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निदृचनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वयावन्तं शतायुषं क्षयम्

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्। वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम्॥ ५॥

(१) **यः मर्त्यः**=जो मनुष्य **समिधा**=ज्ञानदीप्ति से **निशितिम्**=तीव्र की हुई **आहुतिम्**=आहुति को, त्याग को **नशत्**=व्याप्त करता है, प्राप्त करता है, वही **ते**=आपका है। प्रभु का मनुष्य वही है जो ज्ञान को बढ़ाता हुआ त्यागवृत्ति का अपने में पोषण करता है। ज्ञान मनुष्य को त्यागवृत्तिवाला बनाता है। त्यागी बनकर यह प्रकृति से ऊपर उठता हुआ प्रभु का हो जाता है। (२) हे **अग्ने**=प्रभो! **सः**=वह **क्षयं पुष्यति**=उस घर का पोषण करता है जो **वयावन्तम्**=पुत्र-पौत्र आदि के रूप में प्रशस्त शाखाओंवाला होता है, तथा **शतायुषम्**=शतवर्ष के दीर्घ-जीवनोंवाला होता है। इस ज्ञानी त्यागी पुरुष के घर में चिरजीवी, दीर्घ सन्तान जन्म लेते हैं।

भावार्थ—प्रभु का व्यक्ति वह है जो ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करता हुआ त्यागवृत्ति को अपनाता है। इसका घर पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न व दीर्घ जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

द्युता-कृपा

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः। सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **ते**=तेरा **धूमः**=(धूञ् कम्पने) शत्रु-कम्पन सामर्थ्य **त्वेषः**=दीप्तिवाला है। यह **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में ज्ञान-सूर्य के रूप से **ऋण्वति**=हमें प्राप्त होता है। **सत्**=यह श्रेष्ठ है, **शुक्रः**=शुचिता-पवित्रता का कारण बनता है और **आततः**=सर्वत्र व्याप्त है। (२) हे **पावक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **सूरः न**=सूर्य के समान **हि**=निश्चय से **द्युता**=ज्ञानदीप्ति से तथा **कृपा**=शत्रु-विनाशक शक्ति से (कृप् सामर्थ्ये) **रोचसे**=दीप्त होते हैं। सूर्य प्रकाश देता है, रोग-कृमियों को नष्ट करता है। इसी प्रकार प्रभु हमारे जीवन में ज्ञान के प्रकाश व शक्ति को देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें ज्ञानदीप्ति व शक्ति को देनेवाली है। ये दोनों हमारे जीवनों को पवित्र बना देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

रण्वः पुरि इव जूर्यः

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः। रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रय्यायः॥ ७॥

(१) **अधा**=अब **हि**=निश्चय से, हे प्रभो! आप **विक्षु**=प्रजाओं में **ईड्यः**=स्तुति के योग्य **असि**=हैं। सब प्रजाओं के लिये आप स्तुत्य हैं। **नः**=हमारे **प्रियः**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले **अतिथिः**=अतिथि हैं। 'अत सातत्यगमने' आप हमें निरन्तर प्राप्त होनेवाले हैं। (२) **पुरि**=नगरी में **जूयः इव**=एक हितोपदेष्टा वृद्ध पुरुष की तरह आप **रण्वः**=रमणीय हैं। आप भी इस शरीररूप

पुरी में, हृदयदेश में निवास करनेवाले सनातन पुराण पुरुष हैं। वहाँ स्थित हुए-हुए आप हमें निरन्तर ज्ञानोपदेश कर रहे हैं। आप **सूनुः न**=(षू प्रेरणे) उस प्रेरक के समान हैं जो **त्रययाय्यः**=(त्रयं याति) 'विद्या, तप व कर्म' तीनों को प्राप्त करानेवाले हैं। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार चलनेवाले उपासकों का जीवन 'विद्या, तप व कर्म' से युक्त होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे पूज्य अतिथि हैं। वे हमें 'विद्या, तप व कर्म' की प्रेरणा प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

क्रतुमयता व प्रभु प्राप्ति

क्रत्वा ही द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः। परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

(१) **क्रत्वा**=यज्ञादि कर्मों से, संकल्प से व प्रज्ञान से **हि**=ही **द्रोणे**=इस शरीर रूप पात्र में **अज्यसे**=आप व्यक्त होते हैं। प्रभु का दर्शन इसी शरीर में होता है। होता तब है जब कि—(क) हमारे हाथ यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे हों, (ख) मन प्रभु प्राप्ति के प्रबल संकल्पवाला हो, (ग) और मस्तिष्क ज्ञान परिपूर्ण हो। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **वाजी न**=एक शक्तिशाली के समान **कृत्व्यः**=अपने कर्मों में कुशल व समर्थ हैं। आप अपनी सर्वशक्तिमत्ता से ही सृष्टि के निर्माण व धारण आदि कर्मों को करने में समर्थ हैं। (२) **परिज्मा इव**=इस परितः गन्ता वायु के समान **स्वधा**=सब जीवों के धारण करनेवाले हैं तथा **गयः**=उनके लिये घर के समान हैं। आप ही सबका वायुवत् धारण करते हैं। **अत्यः न**=निरन्तर गामी अश्व के समान आप **ह्वार्यः**=सब कुटिलताओं से हमें पार करनेवाले हैं और **शिशुः**=हमारी बुद्धियों को तीव्र करनेवाले हैं। वस्तुतः बुद्धि की तीव्रता के द्वारा ही आप हमें कुटिलताओं से पार करते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि हम क्रतुमय बनें। वे प्रभु सर्वशक्तिमान् जीवन के दाता व बुद्धि को तीव्र करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'वासना वन वृश्चन'

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे। धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **त्या**=उन **अच्युता चित्**=बड़े दृढ़ भी **वना**=वासना वनों को खा जाते हैं, भस्म कर देते हैं। **न**=जैसे कि **यवसे**=घास में विसृष्ट **पशुः**=गवादि पशु घास को समाप्त कर देता है, आपके हृदयस्थ होने पर हृदयक्षेत्र में वासनारूप घास समाप्त हो जाती है। (२) हे **अजर**=अजीर्ण प्रभो! **यत्**=जो **शिक्वसः**=ज्ञान-ज्योति से दीप्त व शक्तिशाली **ते धामा**=आपके तेज हैं वे **वना वृश्चन्ति**=इन वासना वनों को छिन्न कर देते हैं। हम प्रभु के स्मरण से ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करके वासनाओं को विनष्ट करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें, प्रभु हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त करायेंगे, जिससे कि हम वासनाओं को विनष्ट कर पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

यज्ञशीलता व समृद्धि

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम्। समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अध्वरीयताम्**=सदा यज्ञ की कामनावाली **विशाम्**=प्रजाओं के

दमे=गृह में **होता**=सब कुछ देनेवाले होते हुए आप **हि**=निश्चय से **वेषि**=प्राप्त होते हैं। (२) हे **विश्पते**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभो! **समृधः कृणु**=हमारे लिये आप समृद्धियों को करिये। और **अंगिरः**=हमारे अंगों में रस का संचार करनेवाले आप **हव्यं जुषस्व**=हव्य पदार्थों का सेवन करिये। आपकी प्रेरणा से हम सदा यज्ञ करके यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनें। यह यज्ञशीलता ही समृद्धि का मार्ग है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। प्रभु हमें सब आवश्यक समृद्धियों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिगतिजगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

तरेम

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषे अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम॥ ११॥

(१) हे **मित्रमहः**=प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाले तेज से युक्त **देव**=प्रकाशमय **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नः अच्छा**=हमारी ओर **देवान्**=देवों को **वीहि**=प्राप्त कराइये। **सुमतिं वोचः**=उन देवों के द्वारा कल्याणीमति को प्रतिपादित करिये इस सुमति के द्वारा **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के **स्वस्तिम्**=कल्याण को प्राप्त कराइये। **सुक्षितिम्**=उत्तम निवास व गति को प्राप्त कराइये। **दिवः नृन्**=ज्ञान के नेताओं को, ज्ञान के प्राप्त करानेवालों को हमें प्राप्त कराइये। (२) हे प्रभो! इस ज्ञान के द्वारा **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को और **दुरिता**=बुराइयों को **तरेम**=हम तैर जाएँ। **ता**=उन सब **अंहांसि**=पापों को **तरेम**=तैर जाएँ। तव **अवसा**=आपके रक्षण के द्वारा **तरेम**=इन बुराइयों को तैर जाएँ। तीन बार 'तरेम' का प्रयोग 'कामज, क्रोधज व लोभज' सब व्यसनों को तैरने का संकेत कर रहा है।

भावार्थ—हम ज्ञानियों को, ज्ञानियों के द्वारा सुमति को, सुमति द्वारा कल्याण को प्राप्त करें। सब द्वेषों, पापों व व्यसनों को तैर जाएँ।

प्रभु का स्तवन करते हुए भरद्वाज ही कहते हैं कि—

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'उरु ज्योति' की प्राप्ति

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! जो **ते**=तेरा बनता है, तेरा उपासक होता है, **सः**=वह **क्षेषत्**=उत्तम निवासवाला होता है। **ऋतपाः**=वह अपने जीवन में ऋत का, यज्ञों का व नियमितता (regularity) का रक्षण करता है। **ऋतेजाः**=ऐसा प्रतीत होता है कि ऋत के निमित्त ही उसने जन्म लिया है। यह व्यक्ति **उरु ज्योतिः**=विशाल ज्योति को **नशते**=प्राप्त होता है। और सदा **देवयुः**=दिव्यगुणों को अपने साथ जोड़ने की कामनावाला होता। (२) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **यं मर्तम्**=जिस भी उपासक को **त्वम्**=आप **मित्रेण**=स्नेह के अधिष्ठातृदेव से **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **वरुणः**=पाप का निवारण करनेवाले **त्वम्**=आप **त्यजसा**=त्याग की वृत्ति के द्वारा **अंहः**=पाप से **पासि**=बचाते हैं, वही व्यक्ति उत्तम निवासवाला होता है। पाप से बचने के लिये 'स्नेह की भावना, द्वेष का अभाव व त्याग' सहायक होते हैं।

भावार्थ—उत्तम निवास का लक्षण यह है कि—(क) हम ऋत (यज्ञ व नियमितता) का पालन करें, (ख) ज्योति को प्राप्त करें, (ग) दिव्यगुणों की कामनावाले हों, (घ) स्नेह, निर्द्वेषता व त्याग को अपनाकर पाप से परे रहें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यशस्विता-निष्पापता-निरभिमानता

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नाहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः॥ २॥

(१) गत मन्त्र का 'ऋतपाः' व्यक्ति **यज्ञेभिः ईजे**=यज्ञों के द्वारा प्रभु का उपासन करता है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' **शमीभिः**=शान्तभाव से किये जानेवाले कर्मों के द्वारा **शशमे**=प्रभु का स्तवन करता है (शशनाम अर्चति कर्मा नि० ३।१४)। यह **ऋधद्वाराय**=अतिशयेन बढ़े हुए वरणीय धनोंवाले **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **ददाश**=अपना अर्पण करता है। (२) **एवा च**=इस प्रकार प्रभु का उपासन, स्तवन व प्रभु के प्रति आत्मार्पण करने से **तम्**=उस उपासक को **यशसां अजुष्टिः**=यशों की अप्राप्ति **न नशते**=नहीं प्राप्त होती, यह अपने जीवन में बड़ा यशस्वी बनता है। इस **मर्तम्**=मनुष्य को **अंहः**=पाप **न नशते**=नहीं प्राप्त होता और **प्रदृप्तिः**=सब अविनयों का हेतुभूत दर्प भी **न**=नहीं प्राप्त होता। यज्ञ इसे यशस्वी बनाते हैं। शान्तभाव से किये जानेवाले कर्म इसे पाप-प्रवण नहीं होने देते और प्रभु के प्रति आत्मार्पण इसे दर्प से दूर रखता है।

भावार्थ—यज्ञों से प्रभु का उपासन करते हुये हम यशस्वी बनते हैं। शान्त कर्मों से प्रभु का स्तवन करते हुए हम पाप-प्रवण नहीं होते। प्रभु के प्रति आत्मार्पण करते हुये हम अभिमान से बचे रहते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भीमा धीः

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः क्वा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः॥ ३॥

(१) हे प्रभो! आप वे हैं **यस्य दृशतिः**=जिनका दर्शन **सूरः न**=सूर्य के समान है। आप 'आदित्यवर्ण' हैं, सूर्य के समान देदीप्यमान हैं, हजारों सूर्यों के समान आपकी प्रभा है। **अरेपाः**=आप पाप-शून्य हैं, अपापविद्ध हैं। **शुचतः**=अत्यन्त देदीप्यमान **ते**=आपकी **धीः**=बुद्धि **यत्**=जब **आ एति**=हमें सब प्रकार से प्राप्त होती है, तो यह शत्रुओं के लिये **भीमा**=भयंकर होती है। (२) **हेषस्वतः**=शब्दोंवाली **शुरुधः**=शोक को रोकनेवाली **अक्तोः**=प्रकाश की किरणों से **अयम्**=ये प्रभु **कुत्रचित्**=कहाँ **न रण्वः**=रमणीय नहीं है। प्रभु की प्रकाश की किरणें 'शब्दोंवाली' इसलिए कही गई हैं कि हृदयस्थ प्रभु इनका उच्चारण करते हैं। ये प्रकाश की किरणें हमें शोक से बचाती हैं। प्रभु इनके द्वारा दीप्त हो रहे हैं। इस दीप्ति के द्वारा ही वे उपासकों को मार्गदर्शन कराते हैं। **वसतिः**=सब के वे प्रभु निवास-स्थान हैं। **वनेजाः**=(वन संभक्तौ) सम्भजन करनेवाले उपासकों में प्रभु का प्रादुर्भाव होता है।

भावार्थ—सूर्य के समान देदीप्यमान वे प्रभु अपापविद्ध हैं। उपासकों को वह बुद्धि प्राप्त कराते हैं जो कि 'काम-क्रोध-लोभ' आदि सब शत्रुओं का संहार करती है। वे प्रभु दीप्ति से रमणीय हैं। इस दीप्ति को प्राप्त करके उपासक भी अशोच्य जीवनवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासना विनाशक प्रभु

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत्॥ ४॥

(१) हे अग्ने! प्रभो आपका **एम**=गमनभूत मार्ग **तिग्मं चित्**=निश्चय से तीक्ष्ण है। जैसे अग्नि जिधर से जाती है, सब तृणादि की भस्म करती जाती है, इसी प्रकार जब प्रभु हमें प्राप्त होते हैं तो सब वासना-तृणों को दग्ध कर देते हैं। **अस्य**=इन प्रभु का **महि वर्पः**=महनीय रूप **भसत्**=देदीप्यमान होता है। प्रभु ज्योतिर्मय हैं उपासक के हृदय को दीप्त कर देते हैं। **आसा यमसानः**=मुख से तृणादि का नियमन करते हुए **अश्वः न**=अश्व की तरह ये प्रभु हमारे हृदय में उत्पन्न हो जानेवाली वासनाओं का नियमन करनेवाले हैं। (२) अपनी **जिह्वाम्**=धारा को **विजेहमानः**=शत्रुओं पर प्राप्त कराते हुए **परशुः न**=कुल्हाड़े के समान ये प्रभु अपनी ज्ञान जिह्वा से वासनाओं को काटनेवाले हैं। **द्रविः न**=एक धातुओं को पिघलानेवाले स्वर्णकार की तरह ये प्रभु **दारु-धक्षत्**=हमें विदीर्ण करनेवाले (दृ विदारणे) वासनारूप काष्ठों को भस्म करते हुए **द्रावयति**=कठोर से कठोर वासनाधातु को द्रवीभूत कर देते हैं और हमारे से पृथक् करके उसे दूर भगा देते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट कर देते हैं। घोड़ा जैसे घास को खा जाता है, कुल्हाड़ा वैसे वृक्ष को काट डालता है, स्वर्णकार जैसे कठोर धातु को पिघला देता है, इसी प्रकार वे प्रभु वासनारूप घास को खा जाते हैं, वासना वृक्ष को काट डालते हैं व वासना धातु को द्रवीभूत कर देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

काम आदि का दहन

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम्।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः॥ ५॥

(१) **सः इत्**=वे प्रभु निश्चय से **अस्त इव**=शत्रुओं पर बाण फेंकनेवाले के समान **प्रतिधात्**=अपनी तेजो-ज्वाला को उपासक में धारण करता है। धनुर्धर जैसे धनुष पर बाण को, वैसे प्रभु उपासक में तेज को धारण करते हैं। इस तेजो-ज्वाला को असिष्यन् काम-क्रोध-लोभ आदि अन्तः शत्रुओं पर फेंकनेवाले प्रभु **तेजः**=इस **तेजो**=ज्वाला को **शिशीत**=तीक्ष्ण करते हैं, ताकि सब शत्रु उसमें भस्म हो जाएँ। इस प्रकार तेज करते हैं, **न**=जैसे कि **अयसः धाराम्**=लोहधारा को। (२) **चित्रध्रजतिः**=अद्भुत गतिवाले, शत्रुओं पर विस्मयकारक आक्रमणोंवाले, **यः**=जो प्रभु **अक्तोः**=अपनी ज्ञान-रश्मियों के द्वारा **अरतिः**=कहीं भी फँसनेवाले नहीं (अ-रतिः), वे **वेः** न=एक पक्षी के समान **द्रुषद्वा**=इस संसार-वृक्ष पर आसीन होते हैं 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते'। पर वे प्रभु **रघुपत्मजंहाः**=(लघुपतनसमर्थ पादः) शीघ्र उड़ जाने में समर्थ पाँववाले हैं। वे इस वृक्ष पर आसक्त नहीं। जीव आसक्त होने से उड़ नहीं पाता। 'अनश्नन्नन्यः'=प्रभु तो न खाते हुए केवल जीव की क्रियाओं को देखते ही हैं। प्रभु-भक्त भी प्रभु से प्रकाश-रश्मियों को प्राप्त करके आसक्ति से ऊपर उठ जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने भक्त में उस तेजो-ज्वाला की स्थापना करते हैं जो उसके काम-क्रोध

आदि शत्रुओं को भस्म कर देती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मार्ग-दर्शक प्रभु

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नृनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन्॥ ६॥

(१) **सः**=वे प्रभु **ईम्**=निश्चय से **रेभः न**=स्तुति के योग्य इस सूर्य की तरह **उस्राः**=ज्ञान की रश्मियों को **प्रति वस्ते**=आच्छादित करते हैं। जैसे सूर्य प्रकाश से सारे संसार को आच्छादित कर देता है, इसी प्रकार प्रभु हमारे हृदयों को ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। वे **मित्रमहः**=मृत्यु से बचानेवाली तेजस्वितावाले प्रभु (प्रमीतेः त्रायते, महः=तेज) **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति के हेतु से **रारपीति**=हमारे हृदयों में 'ऋग् यजु साम' रूप वाणियों का उच्चारण करते हैं। इन वाणियों से प्रभु हमारी ज्ञानदीप्ति का वर्धन करते हैं। (२) **यः अरुषः**=आरोचमान प्रभु **नक्तम्**=रात्रि में और **ईम्**=निश्चय से **यः**=जो प्रभु **दिवा**=दिन में भी **नॄन्**=इस मार्ग पर ले चलनेवाली रश्मियों को (नेतॄन्) प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु **अमर्त्यः**=अमरण-धर्मा हैं, **अरुषः**=आरोचमान हैं, **यः**=जो प्रभु **दिवा**=ज्ञान के प्रकाश से **नॄन्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले व्यक्तियों को मार्ग दिखाते हैं।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु दिन-रात उत्तम प्रेरणा के द्वारा मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। जो भक्त उस प्रेरणा को सुनकर मार्ग पर चलता है, वह भी 'अमर्त्य व अरुष' बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सृष्टि निर्माण' व 'वेदज्ञान प्रदान'

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद् वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी॥ ७॥

(१) **दिवः न**=सूर्य के समान दीप्त **यस्य विधतः**=जिस सृष्टि के निर्माता का **नवीनोत्**=सृष्टि के प्रारम्भ में हृदयस्थरूपेण स्तुत्य शब्द होता है 'तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्'। प्रभु सृष्टि का निर्माण करते हैं और सृष्टि के प्रारम्भ में इस वेदज्ञान को देते हैं। **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **रुक्षः**=(रुच दीप्तौ) ज्ञानदीप्त वे प्रभु **ओषधीषु**=(उषदाहे) दोषों का दहन करनेवाली प्रजाओं में **नूनोत्**=हृदयस्थरूपेण प्रेरणात्मक शब्द को करते हैं। पवित्र हृदय में प्रभु प्रेरणा सुन पड़ती है। (२) **यः**=जो **धृणा**=दीप्ति से ज्ञान के प्रकाश के साथ तथा **ध्रजसा**=गतिशील तेजस्विता के साथ **पत्मना यन्**=मार्ग से चलते हुये **दम्**=हमारे शत्रुओं का, काम-क्रोध-लोभ का दमन करते हुए (दमयन्) **सुपत्नी**=जिनका उत्तमता से पालन किया गया है ऐसे **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **वसुना आ (पूरयति)**=उत्तम वसुओं व धनों से आपूरित करते हैं। प्रभु ही मस्तिष्क में दीप्ति व शरीर में सबल गति को प्राप्त कराते हैं और इस प्रकार हमारे द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सृष्टि का निर्माण करते हैं और जीवों को वेदज्ञान देते हैं। यह वेदज्ञान मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति व शरीर में तेजस्वितापूर्ण गति को भरता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ज्ञान व शक्ति' के पुञ्ज प्रभु

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दंविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रंभसानो अद्यौत्॥ ८॥

(१) **यः**=जो प्रभु **धायोभिः**=हमारा धारण करनेवाले **वा**=और **युज्येभिः**=हमें कर्मों में प्रेरित करनेवाले **अर्कैः**=अर्चनीय वेद-मन्त्रों के ज्ञान से तथा **स्वेभिः**=अपने **शुष्मैः**=बलों से **विद्युत् न**=विद्युत् के समान **दविद्योत्**=चमकते हैं। प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् हैं। विद्युत्वत् दीप्त हैं और विद्युत् की तरह बुराई को भस्म करनेवाले हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **मरुताम्**=प्राणों के **शर्धः**=बल को **ततक्ष**=तीव्र करते हैं। तथा **ऋभुः न**=(उरु भासमानः) खूब दीप्त सूर्य के समान **त्वेषः**=दीप्त व **रभसानः**=शक्तियुक्त वेग को करते हुए सबल कार्यों को करते हुए **अद्यौत्**=चमकते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं। ये प्रभु हमारे जीवनों में भी प्राणों के बल का स्थापन करते हुए हमें दीप्त व तेजस्वी बनाते हैं।

भरद्वाज बार्हस्पत्य का ही अगला भी सूक्त है—

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देव सम्पर्क से देव बनना

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान्॥ १॥

(१) **यथा**=जैसे **होतः**=सब पदार्थों के देनेवाले, **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! आप **देवताता**=दिव्य गुणों के विस्तार के निमित्त **मनुषः**=इन विचारशील पुरुषों को **यज्ञेभिः**=यज्ञों से **यजासि**=संगत करते हैं। यज्ञों में प्रवृत्त होकर ही तो इनके सद्गुणों का वर्धन होगा। इन यज्ञों के लिये सब आवश्यक साधनों को आप प्राप्त कराते ही हैं। इन साधनों के साथ यज्ञों को करने के लिये उन्हें सशक्त भी करते हैं। (२) **एवा**=इसी प्रकार **नः**=हमें **अद्य**=आज **समना**=(क्षिप्रं) शीघ्र ही, हे **उशन् अग्ने**=हमारे हित की कामनावाले अग्रेणी प्रभो! आप **समानान्**=आप जैसे (ब्रह्म वेद ब्रह्मवै भवति) आप के साथ सदा सम्पर्कवाले **उशतः**=हमारे भले की कामनावाले **देवान्**=देव पुरुषों को **यक्षि**=प्राप्त कराइये, हमारे साथ ऐसे देवों का संग करिये। इनके द्वारा दी गई उत्तम प्रेरणाओं से हम भी देव बनकर आपके सच्चे उपासक बनें।

भावार्थ—प्रभु उपासकों को यज्ञशील बनाकर देव बनाते हैं। इन देवों के साथ सम्पर्क से हम भी दिव्यता के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ब्राह्ममुहूर्त में प्रभु-दर्शन

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात्।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषभुद्भूददतिथिर्जातवेदाः॥ २॥

(१) **सः**=वह प्रभु **वस्तो चक्षणिः न**=दिन के प्रकाशक सूर्य की तरह **विभावा**=विशिष्ट

दीप्तिवाले हैं। **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु ही **वेद्यः**=जानने योग्य हैं, हम सबको उस प्रभु के जानने का प्रयत्न करना है। वे **वन्दारु**=स्तुत्य **चनः**=अन्न को **धात्**=हमारे लिये धारण करते हैं। इस सात्त्विक अन्न के द्वारा वे हमें सात्त्विक बुद्धि प्राप्त कराते हुए हमारे जीवन को प्रशस्त करते हैं। (२) **विश्वायुः**=वे प्रभु हमें पूर्ण जीवन देनेवाले हैं। पूर्ण जीवन वही है जिस में 'शरीर स्वस्थ है, मन निर्मल है, बुद्धि तीव्र है'। **यः**=जो **अमृतः**=(न मृतं यस्मात्) हमें सब रोगों से दूर करनेवाले हैं, वे प्रभु **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **उषर्भुत् भूत्**=प्रातःकाल प्रबुद्ध होनेवाले होते हैं। अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त के शान्त समय में अन्तर्मुखी वृत्तिवाले होकर उपासक हृदय में प्रभु का दर्शन करते हैं। ये प्रभु **अतिथिः**=सदा उपासकों के हित के लिये गतिशील हैं (अत सातत्यगमने), **जातवेदाः**=सर्वज्ञ हैं।

भावार्थ—प्रभु दीप्ति के पुञ्ज हैं। सात्त्विक अन्न के द्वारा वे प्रभु हमें पूर्ण जीवन प्राप्त कराते हैं, रोगों से ऊपर उठाते हैं। उपासक ब्राह्ममुहूर्त में इस 'सर्वज्ञ अतिथि' का दर्शन करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

अश्न के दुर्गों का संहार

द्यावो॒ न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒कोऽश्नस्य॑ चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑॥ ३॥

(१) (न=संप्रति) **द्यावः**=स्तोता लोग **यस्य**=जिसकी **अभ्वम्**=महत्ता का, महान् सामर्थ्य व कर्म का **पनयन्ति**=स्तवन करते हैं, वे प्रभु **सूर्यः न**=सूर्य के समान **शुक्रः**=देदीप्यमान हैं और **भासांसि वस्ते**=दीप्तियों को धारण करते हैं। (३) **यः**=जो **अजरः**=जीर्णता से रहित **पावकः**=सब को पवित्र करनेवाले वे प्रभु **वि इनोति**=दीप्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करते हैं और **अश्नस्य**=उस महाशन काम के, कभी न तृप्त होनेवाली इस वासना के **पूर्व्याणि चित्**=सनातन भी दुर्गों को **शिश्नथत्**=हिंसित करते हैं। प्रभु की पावक ज्योति में वासनान्धकार का विनाश हो जाता है। यह ज्ञानाग्नि काम को दग्ध कर देती है।

भावार्थ—प्रभु का सामर्थ्य महान् है, सूर्यसम प्रभु दीप्त हैं। इस दीप्ति में वासनाओं का विलय हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्क्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

वद्या+अद्यसद्वा

व॒द्या हि सू॒नो॒ अस्य॑द्य॒सद्वा॑ च॒क्रे अ॒ग्निर्ज॒नुषाज्मान्न॑म्।
स त्वं न॑ ऊर्जसन॒ ऊर्जं॑ धा॒ राजे॑व जेरवृ॒के क्षे॑ष्यन्तः॥ ४॥

(१) हे **सूनो**=हृदयस्थरूपेण सदा सन्मार्ग की प्रेरणा देनेवाले (षू प्रेरणे) प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वद्या**='ऋग् यजु साम' रूप वाणियों का उच्चारण करनेवाले **असि**=हैं। **अद्यसद्वा**=आप हविरूप अन्नों में आसीन होनेवाले हैं, अर्थात् यज्ञशील पुरुषों के गृह में आपका वास होता है। **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **जनुषा**=शक्तियों के विकास के हेतु से **अज्म**=(गृहम्) गृह को तथा उस घर में **अन्नम्**=अन्न को **चक्रे**=करते हैं। अर्थात् उपासकों को घर तथा अन्न प्राप्त कराते हैं कि वे जीवन की सुविधाओं को प्राप्त करके अध्यात्म उन्नति कर सकें। (२) हे **ऊर्जसन**=बल व प्राणशक्ति के देनेवाले प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमारे लिये **ऊर्जं धाः**=बल और प्राणशक्ति को धारण करिये। **राजा इव**=राजा की तरह, शासक की तरह **जेः**=शत्रुओं का विजय करनेवाले होइये।

आप से शक्ति सम्पन्न होकर हम शत्रुओं को परास्त करें। हे प्रभो! आप **अवृके अन्तः**=लोभरहित व्यक्ति के अन्दर **क्षेषि**=निवास करते हैं (वृक आदाने)। जहाँ प्राकृतिक वस्तुओं का लोभ है, वहाँ प्रभु का निवास नहीं होता। प्रकृति की वस्तुओं के लोभ से ऊपर उठकर ही हम प्रभु को पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही वेद द्वारा हमें मार्ग की प्रेरणा देते हैं। यज्ञशील पुरुषों के घर में प्रभु का वास होता है। प्रभु ही उपासकों को उत्तम गृह व अन्न प्राप्त कराते हैं। शक्ति देते हैं, शत्रुओं को परास्त करते हैं और हमारे लोभरहित हृदय में निवास करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अन्धकार निवारक' प्रकाश

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून्।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत्॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो आप हैं वे **वारणम्**=अन्धकारों के निवारक ज्ञान के प्रकाश को **नितिक्ति**=तीक्ष्ण करते हैं। अर्थात् आप ज्ञान के प्रकाश के द्वारा हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। **अन्नं अत्ति**=आप ही 'वैश्वानर' रूप से अन्न को खाते हैं। **वायुः न**=वायु के समान **राष्ट्री**=सब राष्ट्र के राष्ट्र में स्थित प्रजा के स्वामी होते हुए आप **अक्तून्**=ज्ञानरश्मियों को **अति एति**=अतिशयेन प्राप्त कराते हैं। वायु के बिना जीवन का सम्भव नहीं, इसी प्रकार अन्ततः प्रभु के बिना कहीं भी जीवन का सम्भव नहीं। 'जीवनं सर्वभूतेषु'। (२) **यः**=जो **ते**=आपके लिये **आदिशाम्**=(आदिश्यमानानां-दीयमानानाम्) दी जानेवाली हवियों के **अरातीः**=न देनेवाला है, उसको **तुर्याम**=हम हिंसित करें। **अत्यः न**=एक सततगामी अश्व के समान आप **पततः**=हमारे पर आक्रमण करनेवाले **ह्रुतः**=कुटिल भावों को **परिह्रुत्**=उनके प्रति जाकर नष्ट करनेवाले हैं 'युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः'। घोड़ा युद्ध में शत्रुओं पर आक्रमण करता है, प्रभु हमारी वासनाओं पर।

भावार्थ—प्रभु अन्धकार-निवारक प्रकाश को तीव्र करते हैं। हमारे अन्नों का पाचन करते हैं, हमें जीवन देते हैं। कुटिलताओं से प्रभु हमें बचाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मार्ग पर गति करते हुए सूर्य के समान

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन्॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **सूर्यः न**=सूर्य के समान **भानुमद्भिः**=दीप्तिवाले **अर्कैः**=इन स्तुति साधनभूत मन्त्रों से **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, इन में निवास करनेवाले सब मनुष्यों को **विभासा**=विशिष्ट दीप्ति से **आ ततन्थ**=विस्तृत करते हैं। प्रभु से दिये गये इन वेदज्ञानों से मनुष्यों के मस्तिष्क व शरीर दोनों ही बड़े सुन्दर बनते हैं। (२) **चित्रः**=(चित्) वे ज्ञान के देनेवाले प्रभु **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति से **अक्तः**=संगत हुए-हुए **तमांसि**=अन्धकारों को **परिनयत्**=हमारे से परे करते हैं। वस्तुतः वे प्रभु **पत्मन् दीयन्**=मार्ग पर गति करते हुए **औशिजः न**=सूर्य के समान हैं। सूर्य अन्धकारों को छिन्न-भिन्न कर देता है, इसी प्रकार वे ज्ञान के सूर्य प्रभु हमारे अविद्यान्धकार को विनष्ट कर डालते हैं।

भावार्थ—प्रभु सूर्य के समान हैं वे हमारे अविद्यान्धकार को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शवसा-देवता-राधसा

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७॥

(१) **अर्कशोकैः**=पूजा की साधनभूत ज्ञानदीप्तियों से हम **त्वाम्**=आपका **हि**=निश्चय से **ववृमहे**=वरण करते हैं। जो आप **मन्द्रतमम्**=अत्यन्त आनन्दमय व स्तुति के योग्य हैं। हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **नः**=हमें **महि श्रोषि**=खूब ही ज्ञान का श्रवण कराइये। आप से ज्ञान को प्राप्त करके ही हम आपकी ओर झुकाववाले होते हैं। (२) **नृतमाः**=अपने को उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले लोग **इन्द्रं न**=ऐश्वर्यशाली के समान ही **वायुम्**=गतिशील आपको **शवसा**=शक्ति से **देवता**=दिव्यगुणों से तथा **राधसा**=संसिद्धि से, योगसाधना में प्राप्त होनेवाली सिद्धियों के द्वारा **पृणन्ति**=प्रीणित करते हैं। प्रभु सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी हैं तथा स्वाभाविक रूप से ही जीव हित के लिये क्रियाओं को करनेवाले हैं। इस प्रभु का आराधन जीव इस प्रकार कर सकता है कि वह—(क) अपने अन्दर बल का सम्पादन करे (शवसा), (ख) दिव्यगुणों को धारण करे (देवता) तथा (ग) योगमार्ग पर आगे बढ़ता हुआ सिद्धि को प्राप्त करे (राधसा)।

भावार्थ—प्रभु की उपासना पूजा की साधनभूत ज्ञानदीप्तियों से होती है, प्रभु का आराधक अपने को सबल बनाता है, दिव्यगुणों को धारण करता है और योगमार्ग पर आगे बढ़ता हुआ सिद्धियों को प्राप्त करता है (उनमें फँसता नहीं)।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अवृकेभिः पथिभिः

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **नः**=हमें **नू**=अब **अवृकेभिः**=लोभशून्य (वृक आदाने) **पथिभिः**=मार्गों से **स्वस्ति रायः**=कल्याणकर धनों को **वेषि**=प्राप्त कराते हैं तथा आप **अंहः पर्षि**=पाप से हमें पार ले जाते हैं। (२) आप **ता**=उन कल्याणकर धनों को **सूरिभ्यः**=ज्ञानियों के लिये प्राप्त कराते हैं। **गृणते**=स्तवन करनेवाले मेरे लिये भी आप **सुम्नं रासि**=सुख को देते हैं। आपकी कृपा से हम **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **शतहिमाः मदेम**=सौ वर्षों तक आनन्द से जीवन को बितानेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु कृपा से लोभशून्य मार्गों से धनों को कमानेवाले हों। इस प्रकार उत्तम सन्तानों व दीर्घ-जीवनवाले बनें। लोभ ही सन्तानों की विकृति व अल्पायुष्य का कारण हो जाता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' प्रभु का उपासन अग्नि नाम से करते हैं—

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पुरुवार अध्रुक्' प्रभु

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम्।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥ १॥

(१) मैं **सहसः सूनुम्**=बल के पुञ्ज प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। उन प्रभु को पुकारता हूँ जो कि **युवानम्**=मेरे साथ अच्छाइयों का मिश्रण करनेवाले व सब बुराइयों का अमिश्रण करनेवाले हैं। **अद्रोघवाचम्**=जिनकी वाणी द्रोहशून्य है। **मतिभिः यविष्ठम्**=बुद्धियों के द्वारा बुराइयों को अधिक से अधिक दूर करनेवाले हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **प्रचेता**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं और **विश्ववाराणि**=सब से वरने के योग्य **द्रविणानि**=धनों को **वः**=तुम्हारे लिये **इन्वति**=प्रेरित करते हैं, अर्थात् यज्ञशील पुरुषों को इन वरणीय धनों को प्रभु ही प्राप्त कराते हैं। **पुरुवारः**=(पुरुश्च, वारश्च) वे प्रभु पालन व पूरण करनेवाले हैं और हमारे सब पापों व कष्टों का वारण करनेवाले हैं। **अधुक्**=वे प्रभु द्रोहशून्य हैं। सब का भला चाहनेवाले प्रभु ही सम्भजनीय हैं।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान द्वारा हमारी सब मलिनताओं को धो देनेवाले व वरणीय धनों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भुवनों व सौभगों के धारक प्रभु

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके॥ २॥

(१) हे **पुर्वणीक**=(पुरु अनीकं) पालक व पूरक बलवाले, **होतः**=सब धनों के देनेवाले प्रभो! **दोषा वस्तोः**=दिन-रात **यज्ञियासः**=यज्ञशील लोग **त्वे**=आप में स्थित होते हुए **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक धनों को **एरिरे**=अपने में प्रेरित करते हैं। प्रभु की उपासना करते हुए वसुओं को प्राप्त करते हैं। (२) हे प्रभो! **यस्मिन्**=जिन **पावके**=पवित्र करनेवाले आप में **विश्वाभुवनानि**=सब प्राणी इस प्रकार दधिरे=धारण किये जाते हैं **इव**=जैसे कि **क्षामा**=पृथिवी में। उन आप में ही **सौभगानि सं दधिरे**=सब उत्तम ऐश्वर्य धारित होते हैं। हे प्रभो! आप ही सब प्राणियों व सौभगों (ऐश्वर्यों) के धारण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब प्राणियों व ऐश्वर्यों के धारक हैं। यज्ञिय पुरुष प्रभु की उपासना से ही ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वसुओं के प्रापक प्रभु

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम्।
अतः इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **प्रदिवः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं। **आसु विक्षु**=इन प्रजाओं में **सीद**=आप आसीन होते हैं और **क्रत्वा**=यज्ञ के हेतु से **वार्याणाम्**=वरणीय धनों के **रथीः अभवः**=(रंहयता) प्रापयिता होने हैं। आप सब प्रजाओं को यज्ञों के हेतु धनों को प्राप्त कराते हैं। (२) **अतः**=इस यज्ञ के हेतु ही, हे **चिकित्वः**=सर्वज्ञ **जातवेदः**=सब धनों (वेदः=धन) के देनेवाले प्रभो! आप **विधते**=पूजा करनेवाले के लिये यज्ञों के द्वारा आप के उपासक के लिये **व्यानुषक्**=निरन्तर **वसूनि**=धनों को **वि इनोषि**=विशेषरूप से प्रेरित करते हैं। यज्ञों के द्वारा उपासकों को यज्ञों के लिये धनों के देनेवाले आप ही हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुषों में प्रभु का वास होता है। प्रभु ही इन यज्ञों के लिये धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

तपस्वान् प्रभु से शत्रु का सन्तप्त (दहन)

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥ ४॥

(१) 'काम-वासना' को 'मनसिज' कहते हैं, यह अन्दर ही अन्दर उत्पन्न हो जाती है, छिपकर हमारे अन्दर रह रही है। **यः**=जो **सनुत्यः**=अन्तर्हितरूपेण हमारे अन्दर निवास करती हुई यह वासना **नः**=हमें **अभिदासत्**=उपक्षीण करती है, हे **अग्ने**=परमात्मन्! **यः**=जो **अन्तरः**=हमारे अन्दर होती हुई **मित्रमहः**=(प्रमीतेः त्रायते) मृत्यु से बचनेवाले तेज को **वनुष्यात्**=नष्ट करती है। **तम्**=उस वासना को, **तपिष्ठ**=हे शत्रुओं को अतिशयेन सन्तप्त करनेवाले प्रभो! **तपा**=सन्तप्त करिये। आप **तपसा**=तप से **तपस्वान्**=प्रशस्त दीप्तिवाले हैं। **तव**=आपके **स्वैः**=अपने **अजरेभिः**=न जीर्ण होनेवाले **वृषभिः**=बलों से उस 'सनुत्य-अन्तर' शत्रु को दग्ध करिये।

भावार्थ—'काम' हमारा अन्तःशत्रु है, यह हमारी प्राणशक्ति को विनष्ट करता है। प्रभु अपने तप से इसका दहन करें। हम प्रभु का स्मरण करते हैं, प्रभु हमारे इन शत्रुओं का दहन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

राया द्युम्ने शवसा

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥ ५॥

(१) हे **सहसः सूने**=बल के पुञ्ज प्रभो! **यः**=जो **यज्ञेन**=श्रेष्ठतम कर्मों द्वारा तथा **समिधा**=ज्ञानदीप्ति द्वारा **ददाशत्**=आपके प्रति अपना अर्पण करता है, वह **ते**=तेरा है। **यः**=जो **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा व **अर्केभिः**=अर्चना के साधनभूत मन्त्रों द्वारा आपके प्रति अपने को दे डालता है वह ते=आपका है। (२) **सः**=वह, हे **अमृत**=मरणधर्मरहित प्रभो! **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **प्रचेताः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाला होता है। यह आपका भक्त **राया**=दान में विनियुक्त होनेवाले धन से, **द्युम्नेन**=ज्ञान ज्योति से व **श्रवसा**=यश से **विभाति**=शोभावाला होता है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना 'यज्ञों, ज्ञानदीप्तियों, स्तोत्रों व मन्त्रों' से होती है। उपासना से हम 'धन, ज्ञान व यश' से सम्पन्न होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शत्रु-बाधन

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान्।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **इषितः सः**=गत मन्त्र के अनुसार 'यज्ञों, ज्ञानदीप्तियों, स्तोत्रों व मन्त्रों' से हृदय में प्रेरित किये गये आप **तूयम्**=शीघ्र ही **तत् कृधि**=वह करिये कि **स्पधः वाधस्व**=हमारे शत्रुओं को बाधित करिये। आपकी कृपा से हमारे पर शत्रुओं का आक्रमण न हो। आप **सहसा सहस्वान्**=शत्रुमर्षक बल के द्वारा बलवान् हैं। (२) **द्युभिः अक्तः**=ज्ञानदीप्तियों से संगत आप **यत्**=जब **वचोभिः**=स्तुति-वचनों से **शस्यसे**=प्रशंसित किये जाते हैं, तो उस समय **जरितुः**=स्तोता के **तत्**=उस **घोषि**=घोषणीय, उच्चारण किये जाने योग्य, **मन्म**=मननीय स्तोत्र को

जुषस्व=प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। स्तोता का यह स्तोत्र आपके लिये प्रिय हो। स्तोता के ज्ञान का यह वर्धक बने।

भावार्थ—हे प्रभो! स्तुति किये आप हमारे अन्तःशत्रुओं का बाधन करिये। हमारे से उच्चरित स्तोत्र हमें आपका प्रिय बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रयि-वाज-द्युम्न (धन शक्ति ज्ञान)

अश्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अश्याम॑ र॒यिं र॑यिवः सु॒वीर॑म्।
अश्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जर॑ं ते॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तव ऊती**=आपके रक्षण के द्वारा हम **तं काममम्**=उस कामना को **अश्याम**=व्याप्त करें कि—(क) हे **रयिवः**=उत्तम ऐश्वर्योंवाले प्रभो! **सुवीरम्**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले अथवा हमें वीर बनानेवाले **रयिं अश्याम**=धन को प्राप्त करें। हम धनी हों, पर उस धन के परिणामस्वरूप हमारे सन्तान न बिगड़ जाएँ और नांही हम अवीर हो जाएँ। (२) हे प्रभो! हम **वाजयन्तः**=शक्ति की कामना करते हुये **वाजम्**=शक्ति को **अभि**=आभिमुख्येन **अश्याम**=प्राप्त हों और हे **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! **ते**=आपके **अजरम्**=इस कभी जीर्ण न होनेवाले **द्युम्नम्**=ज्ञान को **अश्याम**=प्राप्त करें 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'।

भावार्थ—प्रभु के रक्षण में हम 'धन, शक्ति व ज्ञान' को प्राप्त करें।

छठे सूक्त में भी भरद्वाज बार्हस्पत्य अग्नि का स्तवन करते हैं—

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु उपासन से दिव्य जीवन की प्राप्ति

प्र नव्य॑सा सह॑सः सू॒नुमच्छा॑ य॒ज्ञेन॑ गा॒तुमव॑ इ॒च्छमा॑नः।
वृ॒श्चद्व॑नं कृ॒ष्णया॑मं॒ रुश॑न्तं वी॒ती होता॑रं दि॒व्यं जि॑गाति॥ १॥

गातुम्=मार्ग को तथा **अवः**=रक्षण को **इच्छमाना**=चाहता हुआ उपासक **नव्यसा यज्ञेन**=अतिशयेन प्रशस्य (नु स्तुतौ) यज्ञ से, श्रेष्ठतम कर्म से **सहसः सूनुं अच्छा**=उस बल के पुञ्ज प्रभु की ओर **प्रजिगाति**=प्रकर्षेण जाता है। प्रभु से ही तो वह उपासक रक्षण को प्राप्त करके मार्ग पर आगे बढ़ जायेगा। (२) उस प्रभु की ओर यह **वीती**=(वी असने) सब वासनाओं को परे फेंकने के हेतु से (प्रजिगाति=) प्रकर्षेण जाता है, जो **वृश्चद्वनम्**=वासना वन को काटनेवाले हैं। **कृष्णयामम्**=अत्यन्त आकर्षक नियमनवाले हैं, अर्थात् अपने उपासक को यम नियमों में चलानेवाले हैं। **रुशन्तम्**=देदीप्यमान हैं। **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले हैं तथा **दिव्यम्**=हम अतिशयेन स्तुत्य हैं (दिव् स्तुतौ) अथवा हमारे सब रोग व पापरूप शत्रुओं को नष्ट करके हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाले हैं।

भावार्थ—यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करते हुए हम प्रभु के रक्षण में मार्ग पर आगे बढ़ते हैं। वे प्रभु ही हमारे सब शत्रुओं को नष्ट करके हमारे जीवन को दिव्य बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ज्ञान द्वारा पवित्रता' व 'ऐश्वर्य प्राप्ति'

स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन्॥ २॥

(१) **सः अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **श्वितानः**=अत्यन्त श्वेतवर्णवाले, एकदम शुद्ध व अपापविद्ध हैं। **तन्यतुः**=हमारे हृदयों में स्थित हुए-हुए ज्ञान-वाणियों का गर्जन करनेवाले हैं। **रोचनस्थाः**=इस नक्षत्रों से देदीप्यमान अन्तरिक्षलोक में स्थित हैं। **अजरेभिः**=कभी जीर्ण न होनेवाले **नानदद्भिः**=खूब ऊँचे उच्चरित होते हुए इन वेद शब्दों से **यविष्ठः**=युवतम हैं, हमें बुराइयों से अधिक से अधिक दूर करनेवाले हैं। इन ज्ञानवाणियों से वे प्रभु हमें सब अच्छाइयों से युक्त करते हैं। (२) **यः**=जो अग्रेणी प्रभु **पावकः**=पवित्र करनेवाले हैं। पवित्रता के द्वारा **पुरुतमः**=हमारा अधिक से अधिक पालन व पूरण करनेवाले हैं। ये प्रभु **भर्वन्**=हमारे शत्रुओं का संहार करते हुए **पुरूणि**=पालन व पूरण करनेवाले **पृथूनि**=विशाल धनों को **अनुयाति**=(या प्रापणे) अनुकूलता से प्राप्त कराते हैं। प्रभु से प्राप्त कराये गये धन हमारे जीवनों में व्यसनों को उत्पन्न नहीं होने देते।

भावार्थ—ज्ञान देकर प्रभु हमारे जीवनों को पवित्र बनाते हैं। जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये उत्कृष्ट धनों को देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु की पवित्र ज्ञानदीप्तियाँ

वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः॥ ३॥

(१) हे **शुचे**=पवित्र **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ते**=आपकी **वातजूतासः**=(वा गतौ) गति की प्रेरणा देनेवाली, कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश देनेवाली, **शुचयः**=पवित्र **भामासः**=दीप्तियाँ **विष्वग्**=सब ओर **विचरन्ति**=गतिवाली होती हैं। सबके हृदयों में आप इन दीप्त ज्ञान-वाणियों की प्रेरणा देते हैं। (२) ये ज्ञानदीप्तियाँ **तुविम्रक्षासः**=खूब ही जीवनों का शोधन करनेवाली हैं, (मृजू शुद्धौ) **दिव्याः**=प्रकाशमय हैं, **नवग्वाः**=स्तुत्य गतिवाली हैं। ये दीप्तियाँ **धृषता**=अपने धर्षण सामर्थ्य से **वना**=वासनाओं के वनों को **रुजन्तः**=छिन्न-भिन्न करती हुई **वनन्ति**=हमारे लिये मोक्ष-सुख का विजय करती है (वन्=win)।

भावार्थ—प्रभु की ज्ञानदीप्तियाँ हमें कर्मों में प्रेरित करती हुई पवित्र जीवनवाला बनाती हैं। ये हमारे लिये मोक्ष-सुख का विजय करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सद्गुण बीज-वपन

ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अधं भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः॥ ४॥

(१) हे **शुचिष्मः**=शुचिता दीप्ति व पवित्रतावाले प्रभो! **ये**=जो **ते**=आपकी **शुक्रासः**=दीप्त **शुचयः**=पवित्रता की साधक ज्ञान-ज्वालाएँ हैं, वे **क्षां**=इस शरीर रूप भूमि को **वपन्ति**=उत्तम गुणों के बीजों के वपनवाला करती है। इन ज्ञान-ज्वालाओं से **अश्वाः**=इस शरीर-रथ में जुते हुए

इन्द्रियाश्व **विषितासः**=(वि+सित) विषय बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान के कारण पवित्रता का संचार होकर विषयाशक्ति विनष्ट हो जाती है। (२) **अध**=अब इन्द्रियाश्वों के निर्मल होने पर **ते भ्रमः**=हे प्रभो! आपकी गति **उर्विया**=खूब ही **विभाति**=दीप्त होती है। यह आपकी गति **पृश्नेः**=(संस्प्रष्टा भासां नि० २।१४) सब ज्ञानों का स्पर्श करनेवाली वेदवाणी रूप सूर्य को **अधि सानु**=शिखर पर **यातयमानः**=हमें व्यापारित करती है, हमें ऊँचे से ऊँचे ज्ञान में ले जाती है। जैसे-जैसे इन्द्रियाँ निर्मल होती जाती हैं, उसी प्रकार प्रभु की उपस्थिति व गति का अनुभव होने लगता है। यह प्रभु की गति हमें ज्ञान के शिखर पर ले जाती है। इसी बात को यहाँ 'पृश्नि के शिखर पर व्यापारित होना' इन शब्दों में कहा है।

भावार्थ—प्रभु की दीप्त ज्ञान ज्वालाएँ शरीर रूप पृथिवी में सद्गुणों के बीजों का वपन करती हैं। ये इन्द्रियाश्वों को विषयों से व्यापृत्त करती हैं। अब प्रभु की गति का हृदयों में अनुभव होता है और यह गति हमें ज्ञानशिखर पर ले जानेवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वासना वन-विनाश

अध॑ जि॒ह्वा पा॑पतीति॒ प्र वृष्णो॑ गोषु॒युधो॒ नाशनिः॑ सृजा॒ना।
शूर॑स्येव॒ प्रसि॑तिः क्षा॒तिर॒ग्नेर्दुर्व॑र्तुर्भी॒मो द॑यते॒ वना॑नि॥ ५॥

(१) **अध**=अब गत मन्त्र के अनुसार हृदय में प्रभु की गति का अनुभव होने पर, **वृष्णः**=उस सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु की **जिह्वा**=ज्ञान-प्रदायिनी वाणी **प्रपापतीति**=खूब ही हमारे जीवनों में गतिवाली होती है। यह प्रभु की जिह्वा **गोषुयुधः**=इन्द्रियों के विषयों में वासनाओं से युद्ध करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के **सृजाना अशनिः इव**=उत्पन्न किये जाते हुए वज्र के समान है। जैसे कि जितेन्द्रिय पुरुष क्रियाशीलता रूप वज्र के द्वारा वासनारूप शत्रुओं का विनाश करता है, उसी प्रकार प्रभु की ज्ञानवाणी भी इन वासनारूप शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाली होती है। (२) **शूरस्य**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **अग्नेः**=उस अग्रणी प्रभु की **प्रसितिः**=शत्रु-बन्धन शक्ति तथा **क्षातिः**=शत्रुक्षय सामर्थ्य **दुर्वर्तुः**=शत्रुओं से वारण के योग्य नहीं होती। यह **भीमः**=शत्रुओं के भयंकर अग्नि का सामर्थ्य **वनानि दयते**=वासना वनों का हिंसन करता है। प्रभु की उपासना से सब वासना वन भस्मीभूत हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु की ज्ञानाग्नि में सब वासनाएँ भस्म हो जाती हैं। प्रभु की उपासना से प्राप्त सामर्थ्य सब वासना वनों का हिंसन करनेवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'ज्ञान व बल' से शत्रुओं का संहार

आ भा॒नुना॒ पार्थि॑वानि॒ रजां॑सि म॒हस्तो॒दस्य॑ धृष॒ता त॑तन्थ।
स बा॑धस्वाप॑ भ॒या सहो॑भिः स्पृधो॑ वनुष्यन्वनुषो॒ नि जू॑र्व॥ ६॥

(१) उस **महः तोदस्य**=महान् प्रेरक प्रभु के **भानुना**=ज्ञान-प्रकाश के साथ तथा **धृषता**=शत्रु वर्षण सामर्थ्य के साथ **पार्थिवानि रजांसि**=इस पार्थिव शरीर सम्बन्धी गतियों को **आ ततन्थ**=तू समन्तात् विस्तृत करता है। उपासक अपनी सब क्रियाओं को प्रभु की उपासना से प्राप्त ज्ञानदीप्ति व शक्ति के साथ करता है। (२) **सः**=वह तू **भया**=सब भय के कारणभूत पापों को **अपबाधस्व**=अपने से दूर ही रोकनेवाला हो। **सहोभिः**=शत्रुमर्षक बलों से **स्पृधः**=शत्रुओं को

वनुष्यन्=हिंसित करता हुआ **वनुषः**=हिंसक शत्रुओं को **निजूर्व**=हिंसित कर।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से प्राप्त ज्ञान व बल से हम काम आदि शत्रुओं का संहार करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अद्भुत धन की प्राप्ति

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व॥ ७॥

(१) हे **चित्र**=(चित्+र) ज्ञान को देनेवाले, **चित्रक्षत्र**=अद्भुत बलवाले **चन्द्र**=आह्लादमय (आनन्दस्वरूप) **चन्द्राभिः**=आह्लादकारिणी स्तुतियों से **गृणते**=स्तवन करनेवाले **अस्मे**=हमारे लिये **रयिं युवस्व**=धन को प्राप्त कराइये (यु मिश्रणे)। (२) उस धन को प्राप्त कराइये जो **चित्रम्**=ज्ञान को देनेवाला है, **चितयन्तम्**=हमारी चेतना को बढ़ानेवाला है। **चित्रतमम्**=अतिशयेन अद्भुत है। **वयोधाम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाला है **चन्द्रम्**=आह्लाद का जनक है। **पुरुवीरम्**=पालक व पूरक होता हुआ (पृ पालनपूरणयोः) विशेषरूप से शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाला है (वि+ईर) और इस प्रकार **बृहन्तम्**=वृद्धि का कारण है।

भावार्थ—प्रभु अपने स्तोताओं को उस सात्त्विक धन की प्राप्ति कराते हैं जो उन्नति का ही साधन बनता है।

अगले सूक्त में 'भारद्वाज बार्हस्पत्य' वैश्वानर का स्मरण करते हैं—

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**वैश्वानरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मूर्धानं दिवः-अरतिं पृथिव्याः

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ १॥

(१) मुख्यरूप से वैश्वानर=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु हैं। मानव समाज में 'ब्रह्माश्रम' में पहुँचनेवाला संन्यासी भी 'वैश्वानर' है। इस वैश्वानर को देवाः='माता, पिता, आचार्य, अतिथि व प्रभु' रूप देव जनयन्त=जन्म देते हैं। ५ वर्ष तक माता इसके चरित्र निर्माण का प्रयत्न करती है, अब पिता ८ वर्ष तक इसे शिष्टाचार सम्पन्न बनाने के लिये यत्नशील होते हैं। फिर २५ वर्ष तक आचार्य इसे ज्ञान से परिपूर्ण करते हैं। फिर ५० वर्ष तक गृहस्थ में विद्वान् अतिथि इसे मोह में फँस जाने व मार्गभ्रष्ट होने से बचाते हैं। अब ७५ वर्ष तक यह प्रभु की उपासना के लिये यत्नशील होता है और ब्रह्माश्रम में पहुँचकर लोकहित में प्रवृत्त होता है। इसे देव कैसा बनाते हैं? **दिवः मूर्धानम्**=ज्ञान के शिखरभूत और अतएव **पृथिव्याः अरतिम्**=पार्थिव भोगों के प्रति न रुचिवाला और **वैश्वानरम्**=सब लोकों के हित में प्रवृत्त। (२) यह वैश्वानर **ऋते आजातम्**=ऋत के अनुभव के लिये ही मानो उत्पन्न हुआ है, अर्थात् इसके सब कार्य बड़े व्यवस्थित होते हैं, ठीक समय पर व ठीक स्थान पर। **अग्निम्**=यह अग्रेणी है, अपने को आगे ले चलता हुआ औरों की भी उन्नति का कारण बनता है। **कविम्**=क्रान्तदर्शी है, चीजों के तत्त्व को देखता है। **सम्राजम्**=यह ज्ञान से देदीप्यमान होता है। **जनानां अतिथिम्**=लोगों का अतिथि बनता है, अर्थात् उनके हित के लिये उनके समीप सदा प्राप्त होनेवाला होता है। **आसन्**=मुख के द्वारा, ज्ञानोपदेश के द्वारा **आ**

पात्रम्=सब ओर रक्षा करनेवाला होता है। इस प्रकार के इस ब्रह्माश्रमी के निर्माण में माता आदि सब देवों का हाथ होता है।

भावार्थ—आदर्श संन्यासी उत्कृष्ट ज्ञानवाला व भोगों के प्रति अरुचिवाला होकर ज्ञानोपदेश से सबका मार्गदर्शन करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वह महान् वैश्वानर

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

(१) सर्वमहान् वैश्वानर प्रभु हैं। उस प्रभु को **अभि**=लक्ष्य करके **संनवन्त**=सम्यक् स्तुत करते हैं। जो प्रभु **यज्ञानां नाभिम्**=सब यज्ञों के, उत्तम कर्मों के प्रबन्धक हैं अथवा **सब** यज्ञों केन्द्र हैं। प्रभु कृपा से ही सब उत्तम कर्म हो पाते हैं। **रयीणां सदनम्**=सब ऐश्वर्यों के वे घर हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के आधार वे प्रभु ही हैं। यज्ञों से ही ऐश्वर्य का वर्धन होता है। अतएव वे प्रभु **महाम्**=महान् हैं और **आहावम्**=समन्तात् पुकारे जाने योग्य हैं। (२) इस **वैश्वानरम्**=सब नरों के हितकर प्रभु को **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति **जनयन्त**=अपने हृदयों में प्रादुर्भूत करते हैं, देव अपने हृदयों में उस प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। जो प्रभु **अध्वराणां रथ्यम्**=यज्ञों के, हिंसारहित कर्मों के संचालक हैं तथा **यज्ञस्य केतुम्**=इन सब यज्ञों के प्रकाशक हैं, वेदवाणी द्वारा इन यज्ञों का प्रज्ञापन करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब यज्ञों को प्रबन्धक व सब ऐश्वर्यों के आधार हैं। उन यज्ञों के प्रज्ञापक प्रभु का ही प्रातः-सायं स्तवन करना चाहिए।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य' के निर्माता प्रभु

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वद्**=आप से ही, आपकी उपासना से शक्ति को पाकर **ही विप्रः**=ज्ञानी पुरुष **वाजी**=हविर्लक्षण अन्नोंवाला, अर्थात् यज्ञशील **जायते**=बनता है। प्रभु का उपासक ज्ञानी व यज्ञशील ब्राह्मण बनता है। **त्वद्**=आप से ही **वीरासः**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले (वि+ईर) क्षत्रिय लोग **अभिमातिषाहः**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले होते हैं। (२) हे **राजन्**=देदीप्यमान **वैश्वानर**=सब मनुष्यों के हितकर व आगे ले चलनेवाले (नृनये) प्रभो! **त्वम्**=आप **अस्मासु**=हमारे में **स्पृहयाय्याणि**=स्पृहणीय-चाहने योग्य **वसूनि**=धनों को **धेहि**=धारण करिये। आपकी कृपा से हम सुपथ से धनों के कमानेवाले वैश्यवर्ग में जन्म लें।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें (क) यज्ञशील ज्ञानी ब्राह्मण बनाती है। (ख) यह उपासना हमें शत्रुओं को कुचल देनेवाला वीर क्षत्रिय बनाती है। (ग) तथा इस उपासना से हम सुपथ से धनार्जन करनेवाले वैश्य बनते हैं। उपासना के अभाव में हम शूद्र के शूद्र रह जाते हैं 'जन्मना जायते शूद्रः' शूद्र तो हम उत्पन्न हुए ही थे। उपासना के अभाव में हम कोई उन्नति नहीं करते।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'मस्तिष्क व शरीर' में प्रभु की दीप्ति

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ ४ ॥

(१) हे **अमृत**=मरणधर्मरहित प्रभो! **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **जायमानं त्वाम्**=प्रादुर्भूत होते हुए आपको **अभिसंनवन्ते**=प्राप्त होते हैं। देववृत्ति के लोग प्रभु की ओर ही झुकते हैं। **शिशुं न**=जो आप शिशु के समान हैं, 'शो तनूकरणे' बुद्धि को तीव्र करनेवाले के समान हैं। 'आप ही इन देवों की बुद्धि को सूक्ष्म बनाते हैं'। (२) **तव क्रतुभिः**=आपके प्रज्ञानों व सामर्थ्यों से ही देव **अमृतत्वम्**=अमरता को **आयन्**=प्राप्त होते हैं। हे **वैश्वानर**=सब नरों के हित करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब आप **पित्रोः**=इन द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **अदीदेः**=दीप्त होते हैं। आप ही मस्तिष्क को ज्ञान की ज्योति से तथा शरीर को तेजस्विता से दीप्त करते हैं। इस प्रज्ञान व तेजस्विता से ही अमरता की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—प्रभु मस्तिष्क को प्रज्ञान से तथा शरीर को तेज से दीप्त करते हैं। इन प्रज्ञानों व तेजों को प्राप्त करके हम देव व अमर बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अनुल्लंघनीय व्यवस्था

वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५ ॥

(१) हे **वैश्वानर**=सब नरों के हित करनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तव**=आपके **तानि**=उन **महानि व्रतानि**=महान् व्रतों को **नकिः आदधर्ष**=कोई भी हिंसित नहीं कर पाता। उस विधाता के बनाये सृष्टि-नियमों को कोई भी तोड़ नहीं पाता। उसकी व्यवस्था में सब सूर्य आदि पिण्ड अपने-अपने मार्गों का आक्रमण करते हैं। (२) हे प्रभो! **पित्रोः उपस्थे**=मातृरूप व पितृरूप पृथिवीलोक व द्युलोक के उपस्थान में, इनकी गोद में (मध्य में) **वयुनेषु**=कर्मों व प्रज्ञानों के निमित्त आप **यत् जायमानः**=जब इस सृष्टि को जन्म देते हैं तो **अह्नां केतुम्**=दिनों के प्रकाशक इस सोम को **अविन्दः**=प्राप्त कराते हैं। इस सूर्य के प्रकाश में ही मनुष्यों के यज्ञ व स्वाध्ययादि सब कर्म होते हैं। प्रभु से स्थापित हुए-हुए ये सूर्य आदि पिण्ड अपने मार्ग पर आक्रमण करते हैं। कभी भी ये प्रभु की व्यवस्था का भंग नहीं करते।

भावार्थ—सूर्य, चन्द्र, तारे आदि सब पिण्ड प्रभु के नियमों के अनुसार मार्गों पर आक्रमण कर रहे हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'सर्वप्रकाशक सर्वाधार' प्रभु

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वयाइव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६ ॥

(१) **वैश्वानरस्य**=उस सब मनुष्यों का हित करनेवाले **अमृतस्य**=अविनाशी प्रभु के **चक्षसा केतुना**=सब पदार्थों का प्रकाश करनेवाले ज्ञान से **दिवः सानूनि**=ज्ञान के शिखर

विमितानि=निर्मित होते हैं। ऊँचे से ऊँचा ज्ञान हृदयस्थ प्रभु के प्रकाश से ही प्राप्त होता है। (२) **विश्वा भुवना**=सब लोक लोकान्तर **इत् उ**=निश्चय से **तस्य अधिमूर्धनि**=उस प्रभु के महत्ता पर ही आश्रित हैं। ये प्रभु ही सर्वाधार हैं। उस प्रभु से ही **वयाः इव**=शाखाओं की तरह **सप्त विस्रुहः**=सात ज्ञानस्रोत **रुरुहुः**=उत्पत्ति व वृद्धि को प्राप्त होते हैं। सारा वेदज्ञान सात छन्दों में होने के कारण 'सात स्तोत्रोंवाला' कहा गया है। इस वेदज्ञान द्वारा ही प्रभु हमारे हृदयों को प्रकाशित करते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु ही सर्वप्रकाशक हैं, सर्वाधार हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**वैश्वानरः**॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

निर्माता व रक्षिता

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता॥ ७॥

(१) **यः**=जो प्रभु **रजांसि**=सब लोकों को **वि अमिमीत**=विशेष मानपूर्वक बनाते हैं, वे **सुक्रतुः**=शोभन कर्मों व प्रज्ञानोंवाले **वैश्वानरः**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु ही **दिवः**=द्युलोक के **रोचना**=इन दीप्त पिण्डों (नक्षत्रों) की भी **वि**=विशेष ज्ञानपूर्वक रचना करते हैं। **कविः**=वे प्रभु क्रान्तप्रज्ञ हैं। (२) **यः**=जो **विश्वा भुवनानि**=सब भुवनों को **परिपप्रथे**=चारों ओर विस्तृत आकाश में फैलाते हैं, वे प्रभु **अदब्धः**=अहिंसित हैं, **गोपाः**=सब के रक्षक हैं, सब लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके उनका रक्षण कर रहे हैं। इन लोक-लोकान्तरों के रक्षण के साथ वे **अमृतस्य रक्षिता**=अमृत लोक के भी रक्षक हैं। मुक्त जीव भी प्रभु के ही रक्षण में हैं।

भावार्थ—सब रञ्जनात्मक (रजांसि) व प्रकाशमय (रोचना) लोकों का वे प्रभु ही निर्माण करते हैं, वे ही इनका रक्षण करते हैं। अमृत लोक के भी वे ही रक्षक हैं।

आठवें सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' वैश्वानर का स्तवन करते हैं—

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**वैश्वानरः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

प्रभु-स्तवन व सुन्दर जीवन

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये॥ १॥

(१) **पृक्षस्य**=सर्वत्र सम्पृक्त, अर्थात् सर्वव्यापक, **वृष्णः**=सब पर सुखों का वर्षण करनेवाले अथवा शक्तिशाली **अरुषस्य**=आरोचमान **जातवेदसः**=उस सर्वज्ञ प्रभु के **सहः**=शत्रु-मर्षक सामर्थ्य को **नु**=अब **विदथा**=इस ज्ञानयज्ञ में **नु**=निश्चय से **प्रवोचम्**=प्रकर्षेण प्रतिपादित करता हूँ। इस प्रभु का बल ही तो मेरे भी काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला है। (२) उस **वैश्वानराय**=सब नरों का हित करनेवाले **अग्नये**=अग्रेणी प्रभु के लिये, **सोमः इव**=सोम की तरह **चारुः**=सुन्दर **शुचिः**=पवित्र **नव्यसी**=अतिशयेन **प्रशस्य मतिः**=मननपूर्वक की गई स्तुति **पवते**=प्राप्त होती है। मैं उस प्रभु का स्तवन करता हूँ। यह स्तवन मेरे जीवन को सुन्दर पवित्र व प्रशस्त बनाता है। इस स्तवन से मेरे में सोम का भी रक्षण होता है।

भावार्थ—मैं सर्वव्यापक शक्तिशाली आरोचमान सर्वज्ञ प्रभु का स्तवन करता हूँ। इस स्तवन

से मेरे जीवन में सोम (वीर्य) का रक्षण होता है और मेरा जीवन सुन्दर, पवित्र व प्रशस्त बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

व्रतों (नियमों) के रक्षक प्रभु

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत्॥ २॥

(१) **सः**=वह **व्रतपाः**=सब व्रतों (नियमों) का रक्षक **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **परमे व्योमनि**=इस परम आकाश में, अनन्त विस्तृत आकाश में **जायमानः**=सब लोक-लोकान्तरों को जन्म देता हुआ ('माता प्रजाता') की तरह यह प्रयोग है। **व्रतानि अरक्षत**=इन सूर्य विद्युत् अग्नि आदि देवों के व्रतों का रक्षण करते हैं। प्रभु के भय से ही सब देव अपने-अपने व्रत का पालन कर रहे हैं। (२) वे **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा शोभन-प्रज्ञ **वैश्वानरः**=सर्वहितकर प्रभु ही **अन्तरिक्षम्**=इस अन्तरिक्षलोक को **वि अमिमीत**=विशेष निर्माणपूर्वक बनाते हैं। इस अन्तरिक्ष में सब 'रज्जनात्मक व प्रकाशात्मक' लोकों का निर्माण करते हैं। वे प्रभु ही **महिना**=अपनी महिमा से **नाकं अस्पृशत्**=मोक्ष-सुख का स्पर्श करते हैं। अर्थात् वे ही मोक्षलोक का भी धारण करते हैं।

भावार्थ—सब सूर्यादि पिण्ड प्रभु की व्यवस्था में ही गति कर रहे हैं। प्रभु ही सब लोकों का निर्माण करते हैं, मोक्षलोक का भी वे ही धारण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रकाशक प्रभु

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम्॥ ३॥

(१) **मित्रः**=वे सब के साथ स्नेह करनेवाले **अद्भुतः**=अद्भुत (अनुपम) प्रभु **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **व्यस्तभ्नात्**=विशेषरूप से थामते हैं। प्रभु ही इनका धारण करनेवाले हैं। वे प्रभु **ज्योतिषा**=अपनी ज्योति से **तमः**=अन्धकार को **अन्तर्वावत्**=अन्तर्हित तिरोहित **अकृणोत्**=कर देते हैं। (वावत्=वातेर्यङ्लुगन्तस्य रूपम्)। सारे द्यावापृथिवी को धारण करते हुए, इनको वे प्रकाशमय करते हैं। (२) **वैश्वानरः**=सबका हित करनेवाले वे प्रभु **चर्मणी इव**=दो चर्मों (चमड़ों) के समान **धिषणे**=इन द्यावापृथिवी को **वि अवर्तयत्**=विशेष रूप से बिछा-सा देते हैं। इन द्यावापृथिवी को वे प्रभु ही विस्तृत करनेवाले हैं। वे ही **विश्वम्**=सब **वृष्ण्यम्**=(वीर्यं बलम्) बल को **अधत्त**=धारण करते हैं। द्यावापृथिवी में सब पिण्डों को स्थापित करके उन्हें वे प्रभु ही उस-उस शक्ति से सम्पन्न कर रहे हैं।

भावार्थ—वे प्रभु द्युलोक व पृथिवीलोक का धारण करते हैं, वे ही अन्धकार को दूर करते हैं। प्रभु ही सर्वत्र शक्ति की स्थापना करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

क्रियाशीलता व प्रभु प्राप्ति

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः॥ ४॥

(१) **महिषाः**=(मह पूजायाम्) उपासक लोग **अपां उपस्थे**=कर्मों की गोद में अथवा कर्मों की उपासना में ही **अगृभ्णत**=उस प्रभु का ग्रहण करते हैं। **विशः**=सब प्रजाएँ **राजानम्**=उस देदीप्यमान **ऋग्मियम्**=स्तुत्य प्रभु के समीप **उपतस्थु**=उस-उस कामना की पूर्ति के लिये उपस्थित होती हैं (२) **विवस्वतः**=सूर्य का **दूतः**=संदेशवाहक, सूर्य से दी जानेवाली गतिरूप प्रेरणा का धारण करनेवाला पुरुष **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **आ अभरद्**=सब क्रियाओं को करता हुआ धारण करता है। प्रभु स्मरणपूर्वक ही यह सब क्रियाओं को करता है। **मातरिश्वा**=वायु, अर्थात् वायु की तरह निरन्तर गतिशील जीव ही **परावतः**=सुदूर देश से **वैश्वानरम्**=उस सर्वनरहितकारी प्रभु को प्राप्त करता है। प्रभु आलसियों से सदा दूर हैं। क्रियाशीलता ही हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराती है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम आलस्य को छोड़कर अपने कर्त्तव्य कर्मों की उपासना करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन प्राप्ति व शत्रु नाश

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा॥ ५॥

(१) **अग्ने**=परमात्मन्! आप **युगे युगे गृणद्भ्यः**=समय-समय पर, अर्थात् सदा स्तुति करनेवालों के लिये **रयिम्**=धन को **धेहि**=धारण करिये। जो धन **विदथ्यम्**=ज्ञान प्राप्ति के लिये सहायक होता है, **यशसम्**=हमारे जीवन को यशस्वी बनाता है तथा जो धन **नव्यसीम्**=स्तुत्य है, प्रशस्त साधनों से कमाया गया है। (३) हे **राजन्**=देदीप्यमान, **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप **इव**=जैसे **पव्या**=वज्र से **वनिनं न**=वृक्ष को काटते हैं, इसी प्रकार **अंघशंसम्**=अघ-पाप और कष्ट के शंसन करनेवाले, हमारे लिये अशुभ की कामनावाले शत्रु को **तेजसा**=तेजस्विता से **नीचा निवृश्च**=काटकर नीचे फैकनेवाले होइये।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्कृष्ट धन प्राप्त कराएँ तथा हमारे लिये अघ का शंसन करनेवाले को नष्ट करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अनमनीय बल व आनन्दमय दीर्घ जीवन

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्।
वयं जयेम शतिनं सहस्त्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अस्माकं मघवत्सु**=हमारे यज्ञशील पुरुषों में **सुवीर्यम्**=उत्तम बल को **धारय**=धारण करिये जो कि **अनामि**=शत्रुओं से नमनीय नहीं है, **क्षत्रम्**=हमें क्षतों से, घावों से बचानेवाला है तथा **अजर**=कभी जीर्ण होनेवाला नहीं है। (२) हे **वैश्वानर**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो **वयम्**=हम **तव ऊतिभिः**=आप के रक्षणों के द्वारा **वाजम्**=उस बल का **जयेम**=विजय करें जो **शतिनम्**=हमारे सौ वर्ष तक चलनेवाला है और **स-हस्त्रिणम्**=हमें सदा प्रसन्न रखनेवाला है। शक्ति से ही हम आनन्दपूर्वक सौ वर्ष तक जीनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें शत्रुओं से अनमनीय जीर्ण न होनेवाला बल प्राप्त कराते हैं। प्रभु कृपा से हम शक्ति प्राप्त करके आनन्दपूर्वक पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'रक्षक व बलदाता' प्रभु

अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन्।
रक्षा च नो ददुषां शर्धोऽग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥ ७ ॥

(१) हे **त्रिषधस्थ**=तीनों लोकों में एक साथ स्थित होनेवाले प्रभो! आप **अस्माके सूरीन्**=हमारे ज्ञानी पुरुषों को **तव**=अपने **अदब्धेभिः गोपाभिः**=अहिंसनीय रक्षणों के द्वारा **रक्षक** तेजों के द्वारा **इष्टे**=यज्ञों में **पाहि**=रक्षित करिये। आपसे रक्षित होकर ये ज्ञानी पुरुष सदा यज्ञों में प्रवृत्त रहें। (२) **नः**=हमारे **ददुषाम्**=इन दानशील पुरुषों के **शर्धः**=बल को **रक्षा**=रक्षित करिये। **च**=और हे **वैश्वानर अग्ने**=सबका हित करनेवाले अग्रेणी प्रभो! **स्तवानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **प्रतारीः**=इनको सब प्रकार से बढ़ाइये। इनका शरीर स्वस्थ हो, इनका मन निर्मल हो और इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र बने।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हम यज्ञशील बनें। त्यागवृत्तिवाले बनकर सबल बनें। स्तुति करते हुए सब दृष्टिकोणों से वृद्धि को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में भी 'वैश्वानर' का ही स्तवन है—

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दिन-रात के चक्र में प्रभु की महिमा

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ १ ॥

(१) 'अहः' शब्द दिन का वाचक है। कृष्णा विशेषण लगाने पर यह रात्रि को भी प्रतिपादित करता है। **कृष्णं अह**=अन्धकार के कारण कृष्ण वर्णवाली यह रात्रि **च**=तथा **अर्जुनं अहः**=सूर्य-किरणों से उज्ज्वल श्वेत दिन **वेद्याभिः**=अनुकूलतया ज्ञातव्य अपनी प्रवृत्तियों से **रजसी**=सब लोकों का रञ्जन करते हुए **विवर्तेत**=पर्यावृत्त हो रहे हैं। चक्राकार गति में निरन्तर चलते हुए ये लोक-रञ्जन का कारण बन रहे हैं। दिन का प्रकाश हमें प्रबुद्ध करके कार्य प्रवृत्त करता है, तो थके हुए अंगों को विश्राम देने के लिये रात्रि का आगमन होता है। इस प्रकार दिन व रात दोनों मिलकर लोक-रञ्जन का साधन बनते हैं। (२) **वैश्वानरः**=वह सब नरों का हित करनेवाला प्रभु **राजा न**=एक शासक के समान **जायमानः**=इस दिन-रात के चक्र में अपनी महिमा के द्वारा प्रकट हो रहा है। अपने चक्र में घूमते हुए दिन-रात प्रभु की महिमा को प्रकट कर रहे हैं। प्रभु के शासन में ही ये चल रहे हैं। **अग्निः**=ये अग्रेणी प्रभु **ज्योतिषा**=अपनी ज्योति से **तमांसि**=अन्धकारों को **अवातिरत्**=विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—दिन-रात के चक्र में प्रभु की महिमा व्यक्त हो रही है। प्रभु ही अपनी ज्योति से सब अन्धकारों को दूर करते हैं। सूर्य आदि में प्रभु की दीप्ति ही दीप्त हो रही है, जीवों के हृदयों को भी प्रभु ही रोशन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञ-वस्त्र के तन्तु व ओतु

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा॥ २॥

(१) **अहम्**=मैं यज्ञरूप वस्त्र के **तन्तुम्**=प्रागायत गायत्र्यादिच्छन्दरूप सूत्रों को, ताने को **न विजानामि**=नहीं जानता हूँ। **ओतुम्**=यजुः तथा आध्वर्यव कर्म रूप तिरश्चीन सूत्रों को भी, बाने को भी **न**=नहीं जानता हूँ। मैं उस यज्ञरूप वस्त्र को भी **न**=नहीं जानता हूँ, **यम्**=जिसको **समरे**=(संगमने) सबके मिलकर बैठने के स्थान देवयजन में **अतमानाः**=गति करते हुए ऋत्विज लोग **वयन्ति**=बुनते हैं। यज्ञ को मैं पूरा-पूरा समझ नहीं पाता। (२) मैं **कस्य स्वित् पुत्रः**=भला किस का पुत्र हूँ? इस बात को भी मैं ठीक से नहीं जानता। **इह**=इस जीवन में **परः**=वे पर प्रभु **वक्त्वानि**=वक्तव्य बातों को **वदाति**=उच्चारित करते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में वे प्रभु सब उपदेष्टव्य बातों का प्रतिपादन करते हैं। बाद में **अवरेण पित्रा**=इहलोक में होनेवाले प्रभु माता-पिता के द्वारा वे प्रभु ही आनेवाली सन्तानों को उपदेश देते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में 'पर पिता' प्रभु 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' आदि ऋषियों को ज्ञान देते हैं। फिर अवरकाल में होनेवाले लौकिक माता-पिता अपने सन्तानों को ज्ञान देने लगते हैं।

भावार्थ—न तो हम यज्ञरूप अपने कर्त्तव्यों को पूरा-पूरा समझते हैं और नांही परम पिता प्रभु को जानते हैं। ये प्रभु ही सृष्टि के प्रारम्भ में कर्त्तव्य कर्मों का ज्ञान देते हैं। फिर अर्वाचीनकाल में माता-पिताओं से सन्तानों को ज्ञान दिया जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु ही ज्ञानी हैं

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन्॥ ३॥

(१) **सः इत्**=वे प्रभु ही **तन्तुम्**=यज्ञ-वस्त्र के तन्तु-स्थानीय गायत्र्यादि छन्दों को **विजानाति**=जानते हैं और **सः**=वे ही **ओतुम्**=तिरश्चीन सूत्र-भूत यजुओं को जानते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **ऋजुथा**=समय के अनुसार **वक्त्वनि**=वक्तव्य कर्त्तव्य कर्मों का **वदाति**=उपदेश करते हैं। (२) **यः**=जो **ईम्**=निश्चय से **चिकेतत्**=जानता है, वह सर्वज्ञ 'वैश्वानर' प्रभु ही **अमृतस्य गोपाः**=अमृतत्व के, मोक्षलोक के रक्षक हैं। **परः**=पर होते हुए वे प्रभु **अवः चरन्**=यहाँ अवस्तात् निचले भूलोक में विचरते हैं। सर्वज्ञ उस प्रभु की सत्ता है। **अन्येन**=अपने से अन्य इस जीव के हेतु से **पश्यन्**=वे इन सब लोक-लोकान्तरों को देखते हैं, इनका ध्यान करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही पूर्ण ज्ञानी हैं, वे ही हमें कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश देते हैं। वे हमारे लिये इन लोक-लोकान्तरों का ध्यान करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रथम होता

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः॥ ४॥

(१) **अयम्**=ये प्रभु ही **प्रथमः होता**=सर्वप्रथम होता हैं, प्रभु इस सृष्टि-यज्ञ को करते हैं। **इमं पश्यत**=इन्हें ही देखने का यत्न करो। **इदम्**=यह प्रभु रूप **ज्योतिः**=ज्योति ही **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **अमृतम्**=अमृत है। मरणधर्मा शरीरों से सम्बद्ध जीवों में प्रभु ही अमृत ज्योति हैं। (२) **अयं सः**=ये वे प्रभु ही **ध्रुवः**=ध्रुव **जने**=हुए हैं और सब अस्थिर है। **आनिषत्तः**=ये प्रभु सर्वत्र निषण्ण हैं, विद्यमान हैं। **अमर्त्यः**=ये प्रभु मरणधर्मा नहीं हैं। **तन्वा वर्धमानः**=इन हमारे शरीरों से वृद्धि को प्राप्त होते से हैं। इन शरीरों का विकास प्रभु की व्यवस्था से ही होता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वप्रथम होता (याज्ञिक) है, ये अमर-ज्योति हैं। सर्वव्यापक होते हुये हमारे शरीरों के वर्धन का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**वैश्वानरः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'ध्रुव ज्योति' का दर्शन

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु॥ ५॥

(१) **पतयत्सु अन्तः**=विविध कर्मों में लगे हुए प्राणियों के अन्दर प्रभु **निहितम्**=निहित हैं, विद्यमान हैं। वे प्रभु **ध्रुवं ज्योतिः**=एक अविचल प्रकाश हैं। **मन्ते जविष्ठम्**=(मनसः) मन से भी अधिक वेगवान् हैं। **दृशये कम्**=वे प्रभु दर्शन के लिये होते हैं, तो आनन्द को देते हैं। प्रभु-दर्शन अद्भुत आनन्द का हेतु होता है। (२) सो **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **समनसः**=मनन से युक्त होते हुए **सकेताः**=ज्ञानसहित होते हुए उस **एकं क्रतुम्**=अद्वितीय सृष्टिकर्ता को **साधु**=सम्यक् **अभिवियन्ति**=प्राप्त होते हैं। ये सब कर्मों को करते हुए प्रभु का स्मरण करते हैं और प्रभु को पानेवाले होते हैं।

भावार्थ—देववृत्ति के व्यक्ति मनन व ज्ञान को अपनाते हुए अन्तःस्थित ध्रुवज्योति रूप प्रभु को देखने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**वैश्वानरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इन्द्रियों, बुद्धि व मन की अस्थिरता का परिणाम

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३ दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॥ ६॥

(१) **मे**=मेरे **कर्णा**=कान **विपतयतः**=विविध शब्दों को सुनने के लिये इधर-उधर गतिवाले होते हैं। **चक्षुः वि**=मेरी आँख विविधरूपों को देखने के लिये इधर-उधर जाती है। **यत्**=जो **हृदये**=हृदय में **आहितम्**=स्थापित **इदम्**=यह **ज्योतिः**=प्रकाश है, बुद्धि रूप विवेक का साधन है, वह भी **वि**=संसार के इन आकर्षक व पेचीदे विषयों के चिन्तन में गयी रहती है। **दूरे आधीः**=दूर-दूर के विषयों में चारों ओर ध्यानवाला **मे मनः**=मेरा मन **विचरति**=खूब ही भटकता है। (२) ऐसी स्थिति में **किं स्विद् वक्ष्यामि**=उस प्रभु के स्तुति-वचनों का क्या उच्चारण करूँगा? **उ**=और **नु**=अब **किं मनिष्ये**=क्या उस प्रभु का मनन व चिन्तन करूँगा? इन्द्रियों, बुद्धि व मन की अस्थिरता में प्रभु के स्तवन व मनन का सम्भव नहीं।

भावार्थ—हमें चाहिए कि हम इन्द्रियों, बुद्धि व मन को स्थिर करके प्रतिदिन प्रभु का स्तवन व मनन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु-स्मरण व अधनाश

विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम्।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार 'इन्द्रयों, बुद्धि व मन' के भटकने से **तमसि तस्थिवांसम्**=हमारे लिये अन्धकार में स्थित, हमारे से एकदम अज्ञात, हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाम्**=आपको **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के पुरुष **भियानाः**=पापों के दण्ड से भयभीत होते हुए **अनमस्यन्**=नमस्कार करते हैं। अदृश्य भी आपके प्रति झुकते हैं। (२) उन देववृत्ति के पुरुषों की यही आराधना होती है कि **वैश्वानरः**=वह सबका हितकारी प्रभु **ऊतये**=रक्षा के लिए, पाप प्रवृत्तियों से हमें बचाने के लिये, **अवतु**=रक्षित करे। प्रभु का स्मरण ही हमें अशुभ से बचाता है।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष प्रभु-स्मरण करते हुए पाप करने से भयभीत होते हैं। प्रभु-स्मरण उन्हें शुभ मार्ग पर चलानेवाला होता है।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' अग्नि नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु-स्मरण व यज्ञमय जीवन

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम्।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥ १ ॥

(१) **मन्द्रम्**=उस आनन्दस्वरूप **दिव्यम्**=प्रकाशमय **सुवृक्तिम्**=सम्यक् पापों के वर्जनवाले **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **प्र-यति**=प्रकर्षेण चलते हुए **अध्वरे**=राक्षसीभावों से **अहिंस्य यज्ञ**=जीवनयज्ञ में **वः पुरः**=तुम्हारे सामने **दधिध्वम्**=धारण करो। **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **पुरः**=अपने सामने धारण करो। सदा प्रभु को सामने रखने पर पाप प्रवृत्ति नहीं जगती। (२) **सः**=वे प्रभु **हि**=ही **नः विभावा**=हमारे लिये विशिष्ट दीप्ति को देनेवाले हैं। वे **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु, स्मरण किये जाने पर, हमें **स्वध्वरा करति**=उत्तम हिंसारहित कर्मोंवाला बनाते हैं। हम प्रभु को याद करते हैं और यह याद हमें पापों से बचाती है।

भावार्थ—प्रभु का सतत स्मरण हमें पापों से बचाकर यज्ञमय जीवनवाला बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युमः! पुर्वणीक!

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचिं मतयः पवन्ते ॥ २ ॥

(१) हे **द्युमः**=दीप्तिमान्, ज्ञान की ज्योतिवाले! **पुर्वणीक**=पालक व पूरक प्राणशक्तिवाले (अन प्राणने)! **होतः**=सब कुछ देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **अग्निभिः**=माता, पिता व आचार्य रूप अग्नियों के द्वारा **मनुषः**=विचारशील पुरुष के **तं उ स्तोमम्**=उस ही स्तवन को **इधानः**=दीप्त करनेवाले होइये **यम्**=जिसको **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **मतयः**=विचारशील व्यक्ति **पवन्ते**=प्राप्त कराते हैं। प्रभु कृपा से हमें ऐसे उत्तम माता, पिता व आचार्य प्राप्त हों, जो हमारे जीवन

में प्रभु-स्तवन की प्रवृत्ति को उत्पन्न करनेवाले हो। (२) उस स्तुति समूह को ये माता, पिता व आचार्य हमारे अन्दर पैदा करें जो **ममता इव शूषम्**=ममता की तरह, अपनेपन की तरह सुख को करनेवाला है। जैसे एक माता एक पुत्र में ममता को करती हुई उस पुत्र के लिये कष्टों को उठाती हुई भी आनन्द का अनुभव करती है, इसी प्रकार ये स्तोत्र हमें आनन्दित करनेवाले हैं। (३) उस स्तोम को ये हमें प्राप्त कराएँ जो **घृतं न शुचि**=घृत के समान पवित्रता को करनेवाला है। घृत शरीर के मलों को दूर करता है, यह स्तोम हमारे मानस को विनष्ट करे। इस पवित्रता को होने पर हमारे जीवनों में 'ज्ञान व बल' का स्थापन होता है।

भावार्थ—हम माता, पिता व आचार्यों के द्वारा प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें। इससे हम ज्ञान व बल-सम्पन्न बन पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु-स्तवन व प्रशस्त जीवन

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति॥ ३॥

(१) **यः विप्रः**=जो ज्ञानी पुरुष **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा **अग्नये ददाश**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये अपना अर्पण करता है, **सः**=वह **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **श्रवसा**=यश के द्वारा **पीपाय**=बढ़ता है। स्तोता का जीवन प्रभु अर्पण के द्वारा बड़ा यशस्वी बन जाता है। (२) वह **चित्रशोचिः**=अद्भुत ज्ञानदीप्तिवाले प्रभु **चित्राभिः ऊतिभिः**=अद्भुत रक्षणों के द्वारा **तम्**=उसको **गोमतः व्रजस्य**=प्रशस्त इन्द्रियों के समूह की **साता**=प्राप्ति में **दधाति**=दारण करते हैं। वस्तुतः प्रभु इस स्तोता को ज्ञान देकर इसकी इन्द्रियों को पवित्र कर देते हैं। निर्मलेन्द्रिय बनकर यह और अधिक प्रभु के समीप होने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से जीवन प्रशस्त इन्द्रियोंवाला व यशस्वी बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'कृष्णाध्वा' प्रभु

आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः॥ ४॥

(१) **यः**=जो प्रभु **जायमानः**=इस सृष्टि को उत्पन्न करते हुए (तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय) इन **उर्वी**=विशाल द्यावापृथिवी को **दूरेदृशा**=सुदूर प्रदेश तक दृश्यमान **भासा**=ज्योति से **आपप्रौ**=आपूरित करते हैं। वे प्रभु **कृष्णाध्वा**=कृष्ण मार्गवाले हैं। अर्थात् प्रभु प्राप्ति का मार्ग सामान्यतः लोगों के ज्ञान का विषय नहीं बनता। यही बात ९.७ में 'तमसि तस्थिवांसम्' शब्दों से कही गई है। वे प्रभु जो दिखते नहीं, वे सारे संसार को प्रकाश से भर देते हैं। (२) **अध**=अब वे **पावकः**=ज्ञान के प्रकाश के द्वारा पवित्र करनेवाले प्रभु **ऊर्म्यायाः**=अज्ञान रात्रि के **बहुचित्तमः**=बहुत घने भी अन्धकार को **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **तिरः**=तिरस्कृत करते हुए **ददृशे**=दिखते हैं। हम प्रभु की उपासना करते हैं, प्रभु हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं।

भावार्थ—प्रभु द्यावापृथिवी को प्रकाश से भर देते हैं, स्वयं सामान्य लोगों के लिये अन्धकार में हैं। इन सूर्य आदि से प्रभु भासित नहीं होते। स्वयं न दिखते हुए हमें सब पदार्थों को दिखाते हैं। ये ज्ञानदीप्ति से अज्ञान के अन्धकार को दूर करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राधस्-श्रवस् व सुवीर्य

नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यात्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान्॥ ५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नु**=अब **नः**=हम **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **पुरुवाजाभिः**=पालक व पूरक अन्नोंवाले **ऊती**=(ऊतिभिः) रक्षणों से **चित्रं रयिम्**=अद्भुत धन को अथवा (चित्र) ज्ञान को देनेवाले धन को **धेहि**=धारण करिये। हमें आप पालक व पूरक अन्न प्राप्त कराइये तथा उस धन को प्राप्त कराइये जो हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला हो। (२) **च**=और हमारे लिये आप उन सन्तानों को प्राप्त कराइये **ये**=जो **राधसा**=कार्यसाधक धनों से **च**=तथा **श्रवसा**=यश व ज्ञान से **च**=और **सुवीर्येभिः**=उत्तम शक्तियों से **अन्यान् जनान्**=अन्य जनों को **अभिसन्ति**=अभिभूत करनेवाले हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुषों को प्रभु कृपा करके (क) पालक व पूरक अन्नों के द्वारा रक्षित करते हैं, (ख) ज्ञानवर्धक धन को प्राप्त कराते हैं, (ग) ऐश्वर्य व यशवाला बनाते हैं, (घ) तथा उत्तम शक्ति-सम्पन्न सन्तानों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति व निष्पापता

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान्।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ॥ ६॥

(१) हे **उशन्**=हमारे हित की कामना करते हुए **अग्ने**=प्रभो! आप **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को तथा **चनः**=अन्न को **धाः**=धारण करिये, **यम्**=जिस यज्ञ को **ते आसानः**=आपकी उपासना में आसीन हुआ-हुआ **हविष्मान्**=हविवाला, यज्ञों में आहुति देनेवाला अथवा सदा दानपूर्वक अदन (भक्षण) करनेवाला (हु दानादनयोः) **जुहुते**=करता है। आप हमें यज्ञशील व यज्ञशिष्ट अन्न का सेवन करनेवाला बनाइये। (२) हे प्रभो! आप **भरद्वाजेषु**=अपने में यज्ञशिष्ट अन्नों के सेवन के द्वारा शक्ति का भरण करनेवाले पुरुषों में **सुवृक्ति**=अच्छी प्रकार पापवर्जन को **दधिषे**=धारण करते हैं और **गध्यस्य**=ग्रहणीय, अपने साथ मिलाने योग्य (गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा) **वाजस्य**=शक्ति व अन्न की **सातौ**=प्राप्ति में **अवीः**=आप हमारा रक्षण करिये। आपके रक्षण से रक्षित हुए-हुए हम उत्तम अन्नों व शक्तियों को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु की उपासना में आसीन होकर हम जिन यज्ञों को करते हैं प्रभु ही उनका धारण करते हैं। शक्ति-सम्पन्न बनाकर प्रभु हमें निष्पाप बनाते हैं। उत्तम अन्नों व शक्तियों की प्राप्ति में प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'द्वेष शून्य-ज्ञान-प्रधान' जीवन

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ७॥

(१) हे प्रभो! आप **द्वेषांसि वि इनुहि**=द्वेष की भावनाओं को हमारे से विदूर प्रेरित करिये। हमारे जीवनों को आप द्वेषशून्य बनाइये। इस द्वेषशून्यता की प्राप्ति के लिये **इडाम्**=इस वेदवाणी

को **वर्धय**=बढ़ाइये। जितना-जितना हमारा ज्ञान बढ़ेगा, उतना-उतना हम द्वेष से ऊपर उठ सकेंगे। (२) इस प्रकार द्वेष से दूर होते हुए, ज्ञान प्रधान जीवन बिताते हुए हम **शतहिमाः**=शतवर्ष के दीर्घ-जीवनवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें तथा **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले हों।

भावार्थ—हम द्वेषशून्य ज्ञान-प्रधान होते हुए दीर्घ-जीवन को प्राप्त करें और वीर सन्तानोंवाले हों।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' ही अग्नि नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'यज्ञ-साधक वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले' प्रभु

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥ १ ॥

(१) हे **होतः**=(हु दाने) सब जीवन-यज्ञ के साधक पदार्थों को देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **यजीयान्**=अतिशयेन पूज्य हैं। **इषितः**=हमारे से प्रार्थना किये गये आप (प्रेरितः-प्रार्थितः सा०) **न**=(संप्रति) अब **प्रयुक्ति**=इस प्रयुज्यमान जीवन-यज्ञ में **मरुतां बाधः**=प्राणों के शत्रुबाधक गण को **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। इस प्राणों के गण से ही हम सब अन्तःशत्रुओं पर विजय पा सकेंगे। 'प्राणायामैर्दहेद् दोषान्'। (२) **नः होत्राय**=हमारे इस जीवनयज्ञ के लिये **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को, **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानों को तथा **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्करूप द्युलोक व शरीररूप पृथिवी को **आववृत्याः**=(आवर्तय=आवह) प्राप्त कराइये। ये सब देव हमारे जीवन-यज्ञ को उत्तमता से सिद्ध करें।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करें। प्रभु हमें 'स्नेह-निर्द्वेषता-प्राणापान की शक्ति, स्वस्थ मस्तिष्क व शरीर' प्राप्त कराके हमारे जीवन-यज्ञ को सम्यक् सिद्ध करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञ-ज्ञान-शक्ति विस्तार

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥ २ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **होता**=सब पदार्थों को देनेवाले हैं, **मन्द्रतमः**=अतिशयेन आनन्दमय हैं, **नः अध्रुक्**=कभी भी हमारा द्रोह न करनेवाले मित्र हैं। आप **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **विदथा**=ज्ञानयज्ञों के निमित्त **अन्तर्देवः**=अन्दर रहनेवाले देव हैं। हृदयों में स्थित हुए-हुए आप हमें ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्रभो! आप **पावकया**=पवित्र करनेवाली **जुह्वा**=यज्ञाग्नि की ज्वाला से (जुहूः=flame, tongue of the fire) तथा **आसा**=मुख द्वारा दिये जानेवाले ज्ञानोपदेश से **वह्निः**=लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले हैं (वह प्रापणे)। आप **तव**=आपके **स्वां तन्वम्**=अपने शक्ति विस्तार को (तनु विस्तारे) **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। आपकी शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही तो हम जीवन-यात्रा को पूर्ण करके लक्ष्य-स्थान पर पहुँच सकेंगे।

भावार्थ—प्रभु ही सब पदार्थों व ज्ञानों के दाता हैं। प्रभु यज्ञों, ज्ञानों व शक्ति विस्तार के द्वारा हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन्या धिषणा!

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वे धिषणा**=आप में निविष्ट होनेवाली बुद्धि **चित् हि**=निश्चय से **धन्या**=धन्य है (मयि बुद्धिं निवेशय)। यह बुद्धि **देवान् प्रवष्टि**=दिव्यगुणों की प्रकर्षेण कामना करती है। **गृणते**=स्तोता के लिये **जन्म यजध्यै**=शक्ति के प्रादुर्भाव (जनी प्रादुर्भावे) के संगतिकरण के लिये चाहती है। प्रभु की ओर झुकाववाली बुद्धि दिव्यगुणों व शक्ति विकास के सम्पर्क की कामना करती है। प्रभु में निविष्ट बुद्धिवाले बनकर हम दिव्यगुणों की कामना करते हैं तथा शक्ति विकास को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले होते हैं। (२) इन **अंगिरसाम्**=(अगि गतौ) क्रियाशील पुरुषों में **यद् ह**=जब निश्चय से **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला ज्ञानी पुरुष **वेपिष्ठः**=शत्रुओं को अधिक से अधिक कम्पित करनेवाला होता है, तो यह **रेभः**=स्तोता **इष्टौ**=(यज्+क्तिन्) प्रभु के साथ मेल के निमित्त **मधु छन्दः**=अत्यन्त मधुर छन्दों का **भनति**=उच्चारण करता है। यह स्तवन की वस्तुतः उसे दिव्यगुणयुक्त बनाता है, उसकी शक्तियों का विकास करता है और उसे शत्रुओं को कम्पित कर दूर करने में समर्थ करता है।

भावार्थ—प्रभु की ओर झुकाववाली बुद्धि ही धन्य है। यह दिव्यगुणों व शक्तियों के विकास की कामनावाली होती है, यह प्रभु-स्तवन द्वारा ही हमें शत्रुओं को कम्पित कर दूर करने में समर्थ करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सु अपाकः-विभावा

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः॥ ४॥

(१) वह **सु अपाकः**=(अपक्तव्यप्रज्ञः-अमूर्खः) मूर्खताओं से शून्य, किसी अन्य से न ज्ञान दिया जानेवाला, स्वाभाविक ज्ञानवाला प्रभु **विभावा**=विशिष्ट ही दीप्तिवाला है। यह **अदिद्युतत्**=हम सब के हृदयों को द्योतित करते हैं। हे **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! आप **उरूची रोदसी**=इन विशाल द्यावापृथिवी को **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। आपकी कृपा से हमारे मस्तिष्क व शरीर रूप द्यावापृथिवी विशालता को लिये हुए हों, मस्तिष्क विस्तृत ज्ञान का व्यापन करे (उरु अञ्च्) तथा शरीर शक्तियों की व्याप्तियोंवाला हो। (२) आप वे हैं **यम्**=जिन **सुप्रयसम्**=उत्तम हविरूप अन्नों को देनेवाले आपको **आयुं न**=(एति इति) अतिथि के समान **रातहव्याः**=हव्यों को देनेवाले यज्ञशील **पञ्चजनाः**=पञ्च-यज्ञों से युक्त **जन नमसा अञ्जन्तिः**=नमन के साथ प्राप्त होते हैं। यज्ञशील पुरुष ही आपको प्राप्त कर पाते हैं। वे आपको अपना महान् अतिथि समझते हैं। आपका पूजन ही उनका अतिथि यज्ञ होता है।

भावार्थ—वे प्रभु दीप्तिमय हैं। उपासक को भी दीप्त करते हैं। हम यज्ञशील बनकर नमन के साथ उन प्रभु का आतिथ्य करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पवित्रता-ज्ञान-ध्यान व यज्ञशीलता

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्त्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः॥ ५॥

(१) **यत्**=जब **ह**=निश्चय से **अग्नौ**=उस प्रकाशमय प्रभु की उपासना में **नमसा**=नमन के द्वारा **बर्हिः वृञ्जे**=हृदय-स्थली में उग आनेवाली वासनारूप घास-फूस का छेदन करता हूँ तभी मेरे से **घृतवती**=ज्ञान की दीप्तिवाली **सुवृक्तिः**=शोभनतया पापवर्जनवाली **स्त्रुग्**=यह वेदवाणी **अयामि**=(नियम्यते आसाद्यते) प्राप्त की जाती है। (२) इस वेदज्ञान को प्राप्त करके **पृथिव्याः सदने**=इस पार्थिव शरीररूप गृह में स्थित होने पर **सद्म**=यज्ञगृह **अम्यक्षि**=(गम्यते म्यक्षतिर्गतिकर्मा) जाया जाता है। और इस प्रकार **यज्ञः अश्रायि**=यज्ञ का सेवन किया जाता है। उसी प्रकार **न**=जैसे कि **सूर्ये**=सूर्य की उपासना में **चक्षुः**=दृष्टि शक्ति का, अर्थात् मैं सूर्याभिमुख सन्ध्या करता हुआ दृष्ठि शक्ति को प्राप्त करता हूँ तथा यज्ञगृह में यज्ञों द्वारा प्रभु का पूजन करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु की उपासना में (क) हृदय पवित्र होता है, (ख) पवित्र हृदय में वेदवाणी का प्रकाश होता है, (ग) उस समय हम सूर्याभिमुख सन्ध्या की वृत्तिवाले व यज्ञशील बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुर्वणीक होता

दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अतिं स्त्रसेम वृजनं नांहः॥ ६॥

(१) हे **पुर्वणीक**=(पुरु अनीक=brilliance) अनन्त दीप्तिवाले! **होतः**=सब कुछ देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **देवेभिः**=देववृत्ति के **अग्निभिः**=उन्नति के मार्ग पर चलनेवाले पुरुषों से **इधानः**=हृदय देश में दीप्त किये जाते हुए आप **नः**=हमारे लिये **रायः**=धनों को **दशस्य**=दीजिए। जीवनयात्रा के लिये आवश्यक धनों को प्राप्त करते हुए हम उन्नतिपथ पर निरन्तर आगे बढ़ें। (२) हे **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! आपको **वावसानाः**=कवच के रूप में धारण करते हुये हम **वृजनं न**=वर्जनीय शत्रु की तरह **अंहः**=पाप को **अतिस्त्रसेम**=उल्लंघन कर पाएँ। पापों से पार होते हुए पवित्र जीवनवाले बनकर हम आपको प्राप्त हों।

भावार्थ—हम प्रभु के उपासक बनें। जीवनयात्रा के लिये आवश्यक धनों को प्राप्त करें तथा प्रभु रूप कवच को धारण करते हुए पापों से आक्रान्त न हों।

अगले सूक्त में भी पूर्व सूक्त के ही ऋषि देवता हैं। 'भरद्वाज' अग्नि का उपासन करते हुए कहते हैं—

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राट्-ऋतावा

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान॥ १॥

(१) वह **होता**=सर्वप्रदाता **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **तोदस्य**=शत्रुओं का संहार करनेवाले यज्ञशील

पुरुष के **दुरोणे**=गृह में **बर्हिषः मध्ये**=वासना शून्य हृदय के मध्य में **राट्**=(राजते) प्रकाशित होते हैं और **रोदसी यजध्यै**=द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का उसके साथ संगतिकरण करते हैं। हृदय में प्रभु का प्रकाश होने पर मस्तिष्क ज्ञान-ज्योति से दीप्त और शरीर शक्ति सम्पन्न बनता है। (२) **अयम्**=ये **सः**=वे प्रभु **सहसः सूनुः**=बल पुञ्ज हैं। **ऋतावा**=हमारे जीवनों में ऋत का रक्षण करनेवाले हैं अथवा ऋतवाले हैं, प्रत्येक पिण्ड को ऋत के अनुसार गतिमय कर रहे हैं। वे प्रभु **सूर्यः न**=सूर्य के समान **दूरात्**=सुदूर प्रदेश तक **शोचिषा ततान**=दीप्ति से सारे ब्रह्माण्ड को विस्तृत करते हैं। अनन्त प्रकाशवाले वे प्रभु सारे ब्रह्माण्ड को दीप्त करते हैं।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर पवित्र हृदय बनें। उस हृदय में प्रभु चमकेंगे। हमारे मस्तिष्क को दीप्त व शरीर को सशक्त बनायेंगे। ये प्रभु अपनी दीप्ति से सारे ब्रह्माण्ड को दीप्त कर रहे हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्रिषधस्थ प्रभु

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै॥ २॥

(१) हे **यजत्र**=पूजनीय **राजन्**=देदीप्यमान प्रभो! **यस्मिन्**=जिन **सु अपाके**=(अपक्तव्यप्रज्ञ) पूर्ण प्रज्ञ **त्वे**=आप में **नु**=अब **सर्वताता इव**=सर्वत्र विस्तृत-सा **द्यौः**=यह आकाश **यक्षत्**=संगत होता है, अर्थात् आप आकाश की तरह व्यापक हैं, 'खं ब्रह्म' हैं। वस्तुतः आप ही आकाश हैं, आप ही तो सर्वाधार हैं। (२) वे आप **त्रिषधस्थः**='पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' इन तीनों स्थानों में सहस्थित हैं। **ततरुषः न**=इस आकाश को तीर्ण करनेवाले सूर्य के समान, आप **मानुषा**=मानव हितकारी **हव्या**=पुकारने योग्य, प्रार्थनीय अथवा **हव्य**=यज्ञिय पवित्र **मघानि**=ऐश्वर्यों को **यजध्यै**=हमारे साथ संगत करने के लिये, **जंहः**=वेगवान् होइये। आप शीघ्रता से इन हव्य पदार्थों को हमें प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हे प्रभो! आकाशवत् सर्वव्यापक हैं, तीनों लोकों में सहस्थित हैं। आप हमें शीघ्रता से हव्य पदार्थों को प्राप्त कराने के लिये होइये। इन पदार्थों को साधन बनाकर हम 'मस्तिष्क, मन व शरीर' तीनों लोकों की समानरूप से उन्नति करते हुए 'त्रिषधस्थ' बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

उपासक में प्रभु की दीप्ति

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत्।
अद्रोघो न द्रविता चेततित्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु॥ ३॥

(१) **यस्य**=जिसकी **तेजिष्ठा**=अत्यन्त तेजस्विनी **अरतिः**=(ऋ गतौ) गति **वने**=सम्भजनशील पुरुष में **राट्**=दीप्त होती है, उपासक में उपास्य प्रभु का तेज प्रकाशित होता है। वे **वृधसानः**=सदा वर्धमान प्रभु (वर्धमानं स्वे दमे) **अध्वन्**=मार्ग में **तोदेः**=सब को कर्मों में प्रेरित करनेवाले सूर्य की **न**=तरह **अद्यौत्**=दीप्त होते हैं। जब हम उपासक बनते हैं तो अन्तःस्थित प्रभु हमें जीवन का मार्ग इस प्रकार दिखाते हैं जैसे कि सूर्य प्रकाश को देता है। (२) **अद्रोघः न**=किसी से द्रोह न करनेवाले के समान **द्रविता**=वे प्रभु गति करते हैं। **त्मन्**=हृदयाकाश में अपने अन्दर ही **चेतति**=वे चेतना को देनेवाले होते हैं। वे प्रभु **ओषधीषु**=दोषों का दहन करनेवाले आचार्यों में **अमर्त्यः**=सब मृत्युओं को दूर करनेवाले तथा **अवर्त्रः**=शत्रुओं से अवारणीय होते हैं, अर्थात्

('आत्तर्थो मृत्युः वरुणः सोम ओषधयः पयः' अथर्व०) निर्दोष जीवनवाले इन आचार्यों को प्रभु रोगों से अनाक्रान्त तथा काम-क्रोध आदि द्वारा धर्मपथ से न वरण करने योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—हम उपासक बनें, प्रभु का तेज हमारे में प्रकट होगा। वे अन्तःस्थित प्रभु हमें धर्म की चेतना देंगे। हमें मृत्यु व पाप से बचायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृपङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

जारयायि यज्ञैः

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वास्त्रः पितेव जारयायि यज्ञैः॥ ४॥

(१) **सः**=वह **एतरी न**=निरन्तर गतिशील के समान **जातवेदाः**=सर्वज्ञ **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **दमे**=इस शरीर रूप गृह में **अस्माकेभिः**=हमारे **शूषैः**=सुखकर स्तोत्रों से **आस्तवे**=स्तुति किया जाता है। इस शरीर गृह में निवास करते हुए हम उस प्रभु का स्तवन करते हैं जो निरन्तर हमारे हित के लिये क्रियाशील हैं, सर्वज्ञ हैं, अग्रेणी हैं। प्रभु के ये स्तवन रूपों के जीवन को पवित्र बनाकर उसके लिये सुख के जनक होते हैं। (२) वे प्रभु **द्रवन्नः**=इन वृक्ष वनस्पतियों को अन्न के रूप में हमें देते हैं। **वन्वन्**=हमारे लिये शत्रुओं का हिंसन करते हैं। (न=च) न=और **क्रत्वा**=अपनी क्रियाओं के द्वारा **अर्वः**=वे सतत गन्ता हैं। **पिता इव**=पिता के समान **उस्त्रः**=(a ray of light) हम पुत्रों के लिये वे प्रकाश की किरण होते हैं। पिता की तरह हम पुत्रों के लिये मार्गदर्शक होते हैं। ये प्रभु **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों के द्वारा **जारयायि**=स्तुत होते हैं। प्रभु का सच्चा स्तवन यही है कि हम यज्ञों में लगे रहें।

भावार्थ—उस प्रभु का ही हमें उत्तम कर्मों द्वारा स्तवन करना चाहिए। वे प्रभु ही हमारे लिये मार्गदर्शन होते हैं व हमारे शत्रुओं का संहार करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

तायुः न ऋणः

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम्।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट्॥ ५॥

(१) **अध**=अब **यत्**=जो **वृथा**=अनायास ही **पृथ्वीम्**=पृथ्वी को **अनुतक्षत्**=अनुक्रम से बनाता हुआ **याति**=यह प्रभु गति करता है, तो **अस्य**=इस प्रभु की **भासः**=दीप्तियों को **पनयन्ति**=स्तोता लोग स्तुत करते हैं। पृथ्वी की रचना में पूर्णता व सुन्दरता को देखते हुए उस प्रभु की ज्ञानदीप्तियों का ये स्तोता स्तवन करने लगते हैं। वे एक-एक पदार्थ की रचना में उस रचयिता के ज्ञान का महत्त्व देखते हैं। (२) **सद्यः**=शीघ्र ही **यः**=जो **स्पन्द्रः**=गतिवाले हैं, **विषितः**=सब बन्धनों से मुक्त हैं, **धवीयान्**=अत्यन्त शुद्ध हैं। वे प्रभु **तायुः न**=गुप्तरूप से **ऋणः**=हमारे हृदयों में ही गतिवाले हैं। हमें पता भी नहीं लगता और वे प्रभु हमारे हृदयों में स्थित होकर हमारे प्रत्येक भाव व विचार को जान रहे होते हैं। वे प्रभु ही **धन्वा**=इस हृदयान्तरिक्ष में **अतिराट्**=अतिशयेन देदीप्यमान हो रहे हैं। (धन्व=अन्तरिक्ष=हृदयान्तरिक्ष, धन्वत्यस्मदापः)।

भावार्थ—प्रभु अनायास इस पृथ्वी का निर्माण करते हैं। यहाँ स्तोता उस प्रभु की ज्ञानदीप्तियों का स्तवन करते हैं। वे प्रभु निरन्तर गतिशील हैं, गुप्तरूप से हमारे हृदय देश में छिपे बैठे हैं और हमारे सब भावों व विचारों को जान रहे हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वेषि रायः, विभासि दुच्छुनाः

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ६॥

(१) हे **अर्वन्**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमें **निदायाः**=सब निन्दाओं व निन्दनीय कर्मों से **वेषि**=(अवगमयसि) दूर करते हैं। इसीलिए हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **विश्वेतिः अग्निभिः**=सब उन्नतिपथ पर चलनेवाले पुरुषों से **इधानः**=हृदयदेश में दीप्त किये जाते हैं। (२) आप **रायः वेषि**=सब धनों को प्राप्त कराते हैं। **दुच्छुताः**=दुःखदायिनी वासनारूप शत्रु सेनाओं पर **वियासि**=विशिष्ट रूप से आक्रमण करते हैं। हे प्रभो! इस प्रकार ऐश्वर्यों को प्राप्त करके, वासनारूप शत्रुओं का नाश करके हम **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **शतहिमाः**=शत वर्षपर्यन्त **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु हमें निन्दनीय कर्मों से बचाते हैं। हम वासनाओं से ऊपर उठकर तथा ऐश्वर्यों को प्राप्त करके, सुवीर व सानन्द जीवनवाले हों।

अगले सूक्त में भी अग्नि का ही आराधन करते हैं कि—

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'सौभाग्य स्रोत' प्रभु

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम्॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! हे **सुभग**=उत्तम भगों (ऐश्वर्यों) के पुञ्ज प्रभो! **विश्वा सौभगानि**=सब उत्तम ऐश्वर्य **त्वत्**=आप से ही **वियन्ति**=विविध रूपों में प्राप्त होते हैं। सब सौभाग्य आप से इस प्रकार प्रादुर्भूत होते हैं **न**=जैसे कि **वनिनः**=वृक्ष से **वयाः**=शाखाएँ। (२) **श्रुष्टी**=शीघ्र ही **रयिः**=सब धन आप से प्राप्त होता है। **वृत्रतूर्ये**=वासना रूप शत्रु के संहार के निमित्त **वाजः**=शक्ति आप से प्राप्त होती है। **ईड्यः**=स्तुति के योग्य यह **दिवः वृष्टिः**=द्युलोक से होनेवाली वृष्टि आप से ही प्राप्त होती है। धर्ममेघ समाधि में आनन्द की वृष्टि को भी आप ही प्राप्त कराते हैं। **अपाम्**=इन रेतःकणों का (आपः रेतो भूत्वा) **रीतिः**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में गमन यह आप से प्राप्त कराया जाता है। यह सोमकणों का शरीर में प्रवाह ही सब सौभाग्यों का कारण बनता है।

भावार्थ—प्रभु ही 'सब सौभाग्यों, धनों, बलों, आनन्दों व शक्तियों के' स्रोत हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'दस्मवर्चाः' प्रभु

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः॥ २॥

(१) हे प्रभो! **त्वं भगः**=आप ऐश्वर्य के पुञ्ज हैं। **नः**=हमारे लिये **हि**=निश्चय से **रत्नम्**=रमणीय धन को **आ इषे**=(आगमय) प्राप्त कराइये। हे **दस्मवर्चाः**=दर्शनीय दीप्तिवाले

प्रभो! **परिज्मा इव**=परितः गन्ता वायु की तरह तू **क्षयसि**=ऐश्वर्यवाला है, वास्तविक जीवन को देनेवाला है। (२) **अग्ने**=हे अग्रेणी प्रभो! **मित्रः न**=प्रमीति से, मृत्यु से बचानेवाले की तरह तू **बृहतः ऋतस्य**=महान् ऋत का **क्षत्ता असि**=हमारे लिये देनेवाला है, हमारे जीवन को तू ऋतमय बनानेवाला है। हे **देव**=सब कुछ देनेवाले प्रभो! **वामस्य**=सुन्दर **भूरेः**=भरण-पोषण के साधनभूत धन के आप देनेवाले हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें रमणीय धनों को प्राप्त कराइये, हमारा जीवन आपकी कृपा से महान् ऋत का धारण करनेवाला हो, हमारे जीवन की सब क्रियाएँ ठीक समय व ठीक स्थान पर हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शवसा हन्ति वृत्रम्

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम्।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि॥ ३॥

(१) **सः**=वे प्रभु **सत्पतिः**=सज्जनों के रक्षक हैं। **शवसा**=शक्ति के द्वारा **वृत्रं हन्ति**=ज्ञान की आवरणभूत वासनारूप शत्रु को नष्ट करते हैं। हे **अग्ने**=प्रभो! **विप्रः**=विशेष रूप से अपना पूरण करनेवाला व्यक्ति **पणेः**=स्तुतिपूर्वक व्यवहार करनेवाले व्यक्ति के **वाजम्**=शक्ति को **विभर्ति**=विशेषरूप से धारण करता है। प्रभु स्मरणपूर्वक सब कार्यों को करता हुआ शक्तिशाली बनता है। (२) हे **प्रचेतः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले! **ऋतजात**=ऋत के द्वारा प्रादुर्भूत होनेवाले प्रभो! **यं त्वं हिनोषि**=जिस भी व्यक्ति को आप प्रेरित करते हैं, अर्थात् जो आपकी प्रेरणा के अनुसार जीवन को बनाता है वह **अपां नप्त्रा**=रेतःकणों को न नष्ट होने देनेवाले **राया**=धन के साथ **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाला होता है, अर्थात् यह धन को प्राप्त करता है, परन्तु उस धन से विलास में फँसकर शक्ति को नष्ट नहीं कर बैठता।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण से शक्ति को प्राप्त करके हम वासना को नष्ट कर पाते हैं। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार चलते हुए उस धन को प्राप्त करते हैं जो हमारे विलास व विनाश का कारण नहीं बनता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

गीर्भिः उक्थैः यज्ञैः

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितं वेद्यानट्।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः॥ ४॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुत्र, बल के पुञ्ज (पुतले) प्रभो! **यः**=जो **मर्तः**=मनुष्य **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **उक्थैः**=स्तोत्रों से **वेद्या यज्ञैः**=यज्ञभूमि में यज्ञों के द्वारा **ते**=आपकी प्राप्ति की **निशितिम्**=(excitement agitation) प्रबल कामना को, आतुरता को **आनट्**=प्राप्त करता है। हे **देव**=प्रकाशमय, सर्वप्रद प्रभो! वह **वसव्यैः**=सब वसुओं के साथ **धान्यम्**=जीवन के लिये आवश्यक धान्यों को **पत्यते**=प्राप्त होता है। प्रभु के उपासक को जीवन के लिये आवश्यक धन-धान्य की कमी नहीं रहती।

भावार्थ—प्रभु की प्राप्ति की प्रबल कामना 'ज्ञानवाणियों में स्तोत्रों में व यज्ञों में व्यक्त होती है। यह उपासक सब वरणीय वस्तुओं, वसुओं व धान्यों को प्राप्त करता है।

सूचना—पदपाठ में 'वारं' का सन्धिच्छेद वा अरं है। तब अर्थ होगा पर्याप्त धान्य का धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सौश्रवसा सुवीरा

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये॥ ५॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज, **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **नृभ्यः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों के लिये **ता**=उन **सौश्रवसा**=उत्तम ज्ञानों को तथा **सुवीरा**=उत्तम वीरता की भावनाओं को **पुष्यसे**=ठीक पोषण के लिये **आधाः**=धारण करते हैं। ज्ञानों व वीरताओं के प्राप्त करके ही जीवन का उत्कर्ष सिद्ध होता है। (२) हे प्रभो! **यत्**=जब आप **वृकाय**=टेढ़े-मेढ़े साधनों से आदान की वृत्तिवाले, **अरये**=औरों के शत्रुभूत **जसुरये**=औरों का विनाश करनेवाले के लिये **शवसा**=शक्ति के द्वारा **भूरि**=बहुत **पश्वः वयः**=पशु-सम्बन्धी जीवन को **कृणोषि**=(to kill) नष्ट करते हैं। ये 'वृक अरि व जसुरि' प्रायः पाशविक जीवन ही बिता रहे होते हैं। इनके इस पाशविक जीवन को आप नष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु मानव जीवन बितानेवालों के लिये ज्ञान व वीरता को देकर उनके उत्कृष्ट जीवन का धारण करते हैं। लोभी शत्रु व हिंसक पुरुष के पाशविक जीवन को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अभि पूर्तिम् अश्याम्

वह्या सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ६॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **विहायाः**=आप महान् हैं, आकाश की तरह व्यापक हैं। **नः**=हमारे लिये **वह्या**=हृदयस्थरूपेण हित के उपदेष्टा होइये। इस ज्ञानोपदेश के द्वारा **नः**=हमारे लिये **वाजि**=शक्तियुक्त धन को **तोकम्**=पुत्र को व **तनयम्**=पौत्र को **दाः**=दीजिये। हमें उत्कृष्ट ज्ञान धन व सन्तान प्राप्त कराइये। (२) हे प्रभो! मैं **विश्वाभिः गीर्भिः**=इन सब ज्ञान की वाणियों के द्वारा **पूर्तिं अभि अश्याम्**=पूर्ति को, न्यूनताओं के दूरीकरण को प्राप्त करूँ। इस प्रकार हम सब अपनी-अपनी कमियों को दूर करते हुए **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होकर **शतहिमाः मदेम**=शतवर्षपर्यन्त आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु से ज्ञानोपदेश प्राप्त करके हम उत्तम सन्तानों व धनों के प्राप्त करें। ज्ञान की वाणियों के द्वारा हम न्यूनताओं को दूर करें। इस प्रकार आनन्दमय दीर्घजीवनवाले हों।

अग्नि का ही आराधन अगले सूक्त में चलता है—

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

इषं कुरीत अवसे

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः। भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे॥ १॥

(१) **यः मर्त्यः**=जो मनुष्य **अग्नौ**=उस महान् अग्नि 'प्रभु' की प्राप्ति के निमित्त **धीतिभिः**=सोम

(वीर्य) शक्ति के अन्दर ही पान (व्याप्त करने) के साथ **दुवः**=प्रभु की परिचर्या (उपासना) को व **धियम्**=ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले यज्ञादि उत्तम कर्मों को **जुजोष**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता है। **सः**=वह **नु**=निश्चय से **प्रभसत्**=खूब ही भासमान होता है। प्रभु का उपासक प्रभु की दीप्ति से दीप्त क्यों न होगा। (२) **पूर्व्यः**=यह पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम होता है। यह **इषम्**=(food, affluance) अन्न व धन का **वुरीत**=वरण करता है, केवल **अवसे**=रक्षण के लिये। यह उतना ही अन्न व धन चाहता है जितना कि रक्षण के लिये पर्याप्त हो। अन्न के स्वाद व धन की आसक्ति से ऊपर उठकर ही तो वह प्रभु को पा सकेगा।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये—(क) सोम का शरीर में रक्षण करते हुए, (ख) उपासना व (ग) बुद्धिपूर्वक कर्मों में लगे रहना आवश्यक है। (घ) यह भी आवश्यक है कि हम अन्न के स्वाद व धन की आसक्ति में न पड़ जाएँ। ऐसा होने पर हम ज्ञान-ज्योति से चमकेंगे और अपने मनों का पूरण करते हुए शरीर का पालन कर पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'प्रचेता वेधस्तम ऋषि होता'

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः। अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः॥ २॥

(१) **अग्निः इत् हि**=वे प्रभु ही निश्चय से **प्रचेताः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं, सर्वज्ञ हैं। **अग्निः**=ये अग्रेणी प्रभु ही **वेधस्तमः**=विधातृतम है, सृष्टि के सर्वोत्तम निर्माता हैं। **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा हैं। (२) **मनुषः विशः**=विचारशील प्रजाएँ **होतारं अग्निम्**=उस सृष्टि यज्ञ के महान् होता व सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले प्रभु को **यज्ञेषु**=यज्ञों में **ईडते**=स्तुत करते हैं। यह प्रभु-स्तवन ही उन्हें जीवन के लक्ष्य का ध्यान कराता है कि उन्होंने भी—(क) प्रकृष्ट ज्ञानवाला बनाता है (प्रचेता), (ख) निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है (वेधस्तम), (ग) ऋषि तुल्य पवित्र जीवनवाला बनना है (ऋषिः), (घ) खूब दानशील (होता) होना है।

भावार्थ—वे प्रभु 'प्रचेता, वेधस्तम, ऋषि व होता' हैं। यज्ञों में प्रभु का स्तवन करते हुए हम भी ऐसा ही बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

दस्यु पराभव

नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः। तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम्॥ ३॥

(१) (अरि=Lord, master) गत मन्त्र के अनुसार जब हम प्रभु-स्तवन करते हैं तो **अग्ने**=हे परमात्मन्! **अर्यः**=स्वामी जो आप हैं, उनके **रायः**=ये धन **अवसे**=उपासक के रक्षण के लिये **नाना स्पर्धन्ते**=नाना प्रकार से स्पर्धावाले होते हैं। एक-दूसरे से आगे बढ़कर ये ऐश्वर्य उस उपासक का रक्षण करते हैं। (२) **आयवः**=ये उपासना में चलनेवाले मनुष्य **दस्युम्**=दास्यव वृत्तियों को, विनाशक वृत्तियों को **तूर्वन्तः**=हिंसित करते हैं और **व्रतैः**=नियमित पुण्य कर्मों के द्वारा **अव्रतम्**=व्रतशून्यता के भाव को **सीक्षन्तः**=पराभूत करने की कामनावाले होते हैं।

भावार्थ—हम व्रती बनें, दास्यव भावों को दूर करें। प्रभु के ऐश्वर्य हमारा रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

वीर सन्तान

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम्। यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के व्रतमय जीवनवाले पुरुष को **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **वीरं**=वीर सन्तान को **ददाति**=देते हैं। जो सन्तान **अप्सां (कर्मणां सनितारम्)**=कर्मों का सेवन करनेवाला, क्रियाशील होता है न कि अकर्मण्य। **ऋतीषहम्**=(ऋतीनां अरातीनां सोढारं) जो काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है और **सत्पतिम्**=उत्तम कर्मों का स्वामी बनता है। (२) प्रभु ऐसे सन्तान को देते हैं कि **यस्य**=जिसके **सञ्चक्षि**=सम्यग् दर्शन में **शवसः**=बल से **भिया**=भय के कारण **शत्रवः**=शत्रु **त्रसन्ति**=उद्विग्न व कम्पित हो उठते हैं। उसके सामने काम-क्रोध आदि शत्रु ठहर नहीं पाते।

भावार्थ—उपासक को प्रभु 'कर्मठ, शत्रुओं को पराजित करनेवाले, उत्तम भावों के रक्षक, शत्रु त्रासक' वीर सन्तान को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ज्ञान के द्वारा पापों से बचाव

अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति। सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥

(१) **अग्निः देवः**=वे अग्रेणी प्रकाशमय प्रभु **हि**=निश्चय से **विद्मना**=ज्ञान के द्वारा **मर्तम्**=मनुष्य को **निदः**=निन्दनीय कर्मों से **उरुष्याति**=बचाते हैं। प्रभु ज्ञान देकर उस हेय कर्मों में प्रवृत्त नहीं होने देते। (२) प्रभु से रक्षित हुआ-हुआ यह व्यक्ति **सहावा**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है। यह ऐसा बनता है कि **यस्य**=जिसका **रयिः**=धन **अवृतः**=वासनाओं स आच्छादित नहीं होता, अर्थात् यह धनों के कारण वासनाओं में नहीं फँस जाता और यह **वाजेषु**=शक्तियों में **अवृतः**=क्रोध व उग्रता आदि से आच्छादित नहीं हो जाता, अर्थात् धन व शक्ति को प्राप्त करके भी यह मद में नहीं हो जाता।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान देकर हमें पापों से बचाते हैं। प्रभु से रक्षित यह व्यक्ति वासनाओं का पराभव करता है और धनवान् व शक्तिमान् होता हुआ भी मदयुक्त नहीं हो जाता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगतिजगती** स्वरः—**निषादः** ॥

वीहि स्वस्तिं सुक्षितिम्

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि।
दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥

२.११ पर व्याख्या द्रष्टव्य है।

भरद्वाज ही अगले सूक्त में भी 'अग्नि' का स्तवन करते हैं—

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

उपासना से वासना विनाश

इममू षू वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्विवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १ ॥

(१) **इममू**=इस **वः अतिथिम्**=तुम्हारे लिये अतिथिवत् पूज्य, **उषर्बुधम्**=उषाकाल में बोध

करने योग्य (स्मरणीय) **विश्वासां विशां पतिम्**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभु को **उ**=ही **सु**=अच्छी प्रकार **गिरा ऋञ्जसे**=स्तुति वाणियों से प्रसाधित करता हूँ। वस्तुतः यह प्रभु-स्मरण ही उपासक को वासनाओं से बचाकर 'भरद्वाज' बनाता है। (२) ये प्रभु **इत्**=निश्चय से **दिवः**=ज्ञान से **आवेति**=समन्तात् दीप्त होते हैं (कान्ति)। ज्ञानदीप्त ये प्रभु **जनुषा**=स्वभाव से ही **कच्चिद् शुचिः**=कुछ अद्भुत ही पवित्रतावाले हैं। ये प्रभु **गर्भः**=सब के अन्दर वर्तमान होते हुए **ज्योक् चित्**=दीर्घकाल से ही **यद्**=जो **अच्युतम्**=बड़ी दृढ़ वासनाएँ हैं, उन्हें **अत्ति**=खा जाते हैं, विनष्ट कर देते हैं। इनके हृदयस्थ होने पर वहाँ वासनाएँ भस्मीभूत हो जाती हैं। वासनाओं के विनाश से यह उपासक भी उपास्य प्रभु के समान पवित्र व दीप्त हो उठता है।

भावार्थ—हम प्रभु को स्तुति-वाणियों द्वारा जीवन में प्रसाधित करने का प्रयत्न करें। ये ज्ञानदीप्त पवित्र प्रभु हृदयस्थ होते हुए हमारी वासनाओं को दग्ध कर देंगे। हम भी उपास्य प्रभु के समान हो उठेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

भृगु+वीतहव्य

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे॥ २॥

(१) वनस्पतौ (वन=a ray of light) ज्ञानरश्मियों के रक्षक पुरुष में **मित्रं न**=मित्र के समान **सुधितम्**=उत्तमता से स्थापित **यम्**=जिसको **भृगवः**=ज्ञान से अपना परिपाक करनेवाले व्यक्ति **दधुः**=धारण करते हैं। उन आपको धारण करते हैं जो आप **ईड्यम्**=स्तुति के योग्य व **ऊर्ध्वशोचिषम्**=उत्कृष्ट ज्ञानदीप्तिवाले हैं। (२) हे **अद्भुत**=अनुपम अद्वितीय प्रभो! **स त्वम्**=वे आप **वीतहव्ये**=हव्य-पवित्र सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करनेवाले पुरुष में **सुप्रीतः**=उत्तम प्रीतिवाले होते हुए **प्रशस्तिभिः**=स्तुतियों के द्वारा **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **महयसे**=पूजित होते हैं। ये वीतहव्य पुरुष आपका स्तवन करते हैं। आपका स्तवन ही वस्तुतः उन्हें वीतहव्य बनाता है।

भावार्थ—ज्ञान से अपना परिपाक करनेवाले व्यक्ति प्रभु को धारण करते हैं। उत्तम सात्त्विक पदार्थों का सेवन करनेवाले के प्रति प्रभु प्रीतिवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदतिजगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

परस्य आन्तरस्य अर्यः तरुषः

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **अवृकः**=(वर्कते आदत्ते) कुछ भी न लेनेवाले, एकदम लोभ से शून्य, **स त्वम्**=वे आप **दक्षस्य**=उन्नतिशील कार्यों को कुशलता से करनेवाले पुरुष के **वृधः भूः**=बढ़ानेवाले होते हैं। **परस्य**=बाह्य व **आन्तरस्य**=अन्दर के **अर्यः**=शत्रुओं के **तरुषः**=तरानेवाले होते हैं। द्वेष व विरोध करनेवाले लोग यदि हमारे बाह्य शत्रु हैं, तो रोग व वासनाएँ आन्तर शत्रु हैं, इन से आप उस दक्ष पुरुष को बचाते हैं। (२) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज! **सप्रथः**=अत्यन्त विस्तारवाले सर्वव्यापक प्रभो! आप **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **वीतहव्याय**=हव्य पवित्र सात्त्विक पदार्थों का ही भक्षण करनेवाले के लिये **रायः**=धनों को तथा **छर्दिः**=उत्तम गृह को **आयच्छ**=दीजिए। हे **सप्रथः**=सर्वतः

पृथु प्रभो! सर्वव्यापक प्रभो! **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले के लिए धनों व उत्तम गृहों को दीजिए।

भावार्थ—हम कुशलता से कार्यों को करनेवाले बनें। प्रभु हमारा वर्धन करेंगे और हमें सब शत्रुओं से तरायेंगे। प्रभु ही 'वीतहव्य भरद्वाज' के लिये, सात्त्विक अन्नों का सेवन करनेवाले अपने में शक्ति को भरनेवाले पुरुष के लिये, धनों को व उत्तम गृह को देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्युतानं-द्युक्षवचसम्

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम्।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे॥ ४॥

(१) हे मन्त्र के ऋषि 'वीतहव्य भरद्वाज' सात्त्विक अन्न के सेवक, शक्ति को अपने में भरनेवाले उपासक! तू **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु को **सुवृक्तिभिः**=शोभनतया पापवर्जन हेतु भूत स्तुतियों के द्वारा **ऋञ्जसे**=(प्रसाधय) अपने में साधित करने का प्रयत्न कर। उस प्रभु को जो **द्युतानम्**=ज्योति का विस्तार करनेवाले हैं। **वः अतिथिम्**=तुम्हारे लिये अतिथिवत् पूज्य हैं अथवा तुम्हारे लिये निरन्तर गतिशील हैं। तुम्हारे भले के लिये सदा कार्यों को कर रहे हैं। **स्वर्णरम्**=सुख की ओर ले चलनेवाले हैं, **अग्निम्**=अग्रेणी हैं। **मनुषः**=विचारशील पुरुष के **होतारम्**=जीवन-यज्ञ को चलानेवाले हैं और इस प्रकार **स्वध्वरम्**=हिंसित न होने देनेवाले हैं। (२) उस प्रभु को स्तुतिवचनों से तू अपने में प्रसाधित कर, जो **विप्रं न**=मेधावी के समान **द्युक्षवचसम्**=दीप्ति के निवास-स्थानभूत वचनोंवाले हैं। **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं और **अरतिम्**=इन संसार के पदार्थों में व्यापक हैं। अथवा **अरतिम्**=(अर्यं) सारे पदार्थों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम पापवर्जन हेतुभूत स्तुतियों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। ये प्रभु हमारे ज्ञान का विस्तार करते हुए हमें सुखी करते हैं। ये प्रभु ही हमारे लिये आवश्यक सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। और इस प्रकार हमारे जीवनयज्ञ को चलाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

पावकया चितयन्त्या कृपा (रुरुचे)

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्नुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः॥ ५॥

(१) **यः**=जो प्रभु **पावकया**=पवित्रता को करनेवाली **चितयन्त्या**=चेतना को देनेवाली **कृपा**=दीप्ति से **क्षामन्**=इस पृथिवीरूप शरीर में इस प्रकार **रुरुचे**=दीप्त होती हैं, **न**=जैसे कि **उषसः**=उषाएँ **भानुना**=किरणों के द्वारा दीप्त होती हैं। उषाएँ किरणों से जैसे दीप्त हो उठती हैं, इसी प्रकार उपासक का हृदय प्रभु की पवित्र करनेवाली व चेतना को देनेवाली दीप्ति से दीप्त हो जाता है। (२) प्रभु **यामन्**=इस जीवनमार्ग में **तूर्वन् न**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले के समान **नु**=निश्चय से होते हैं। **एतशस्य**=(shining) ज्ञान से दीप्त होनेवाले पुरुष के **रणे**=जीवन-संग्राम में **आघृणे**=ये प्रभु दीप्त होते हैं। वस्तुतः प्रभु ही उसे जीवन-संग्राम में विजयी बनाते हैं। **यः**=जो प्रभु **ततृषाणः न अजरः**=जितने ही तृषित-शत्रुओं का आचमन कर जानेवाले हैं, उतने ही अजीर्ण हैं। प्रभु की शक्तियाँ कभी जीर्ण नहीं होती।

भावार्थ—उपासक का जीवन प्रभु की ज्ञानदीप्ति से दीप्त हो उठता है। वे शत्रुओं का हिंसन

करनेवाले हैं। शत्रुओं को समाप्त करके हमें अजीर्ण बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदतिशक्वरी**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'प्रिय अग्नि अमृत' प्रभु

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणिं।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः॥ ६॥

(१) **वः प्रियं प्रियम्**=तुम्हारे अत्यन्त प्रिय **अग्निं अग्निम्**=सदा अग्रेणी प्रभु, उन्नतिपथ पर प्राप्त करानेवाले, **वः अतिथिम्**=तुम्हारे अतिथिवत् पूज्य **गृणीषणि**=(स्तुत्यं) स्तुति के योग्य प्रभु को **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **दुवस्यत**=उपासित करो। ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही प्रभु का ज्ञानी-भक्त बन पाता है। (२) **अमृतम्**=उस अमृतत्व को प्राप्त करानेवाले प्रभु को (न मृतं यस्मात्) **वः गीर्भिः**=अपनी स्तुतिवाणियों के द्वारा **उपविवासत**=पूजो। **देवेषु देवः**=वह देवाधिदेव प्रभु, **हि**=निश्चय से **वार्यम्**=वरणीय धनों को **वनते**=प्राप्त कराते हैं। वे **देवेषु देवः**=देवाधिदेव **हि**=निश्चय से **नः**=हमारी **दुवः वनते**=उपासना को प्रीतिपूर्वक स्वीकार करते हैं (संभजते)।

भावार्थ—हम प्रभु के ज्ञानी भक्त बनें, प्रभु का पूजन करें। प्रभु हमें सब वरणीय धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'शुचि पावक पुरुवार' प्रभु

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम्॥ ७॥

(१) **समिद्धम्**=उस ज्ञानदीप्त **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **समिधा**=ज्ञानदीप्ति से तथा **गिरा**=स्तुति-वाणियों से **गृणे**=मैं स्तुत करता हूँ। उस प्रभु को स्तुत करता हूँ जो **शुचिम्**=पूर्ण पवित्र हैं, **पावकम्**=उपासक को पवित्र करनेवाले हैं। **अध्वरे**=हमारे जीवन-यज्ञ में **ध्रुवम्**=जो निश्चल रूप से विद्यमान हैं। उन प्रभु को **पुरः**=सब से पूर्व (गृणे) स्तुत करता हूँ। हमारे जीवन-यज्ञों को प्रभु ही तो चलाते हैं। (२) **विप्रम्**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले, **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले **पुरुवारम्**=पालक व पूरक वरणीय धनोंवाले, **अद्रुहम्**=द्रोह से शून्य **कविम्**=क्रान्तदर्शी **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ व सर्वधन (वेदस्=wealth) प्रभु को **सुम्नैः**=स्तोत्रों के द्वारा **ईमहे**=प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—उस प्रभु की प्रार्थना, स्तुति व उपासना करते हैं जो पवित्र हैं, हमें पवित्र करनेवाले हैं व सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

'जागृवि-विभु-विश्पति' प्रभु

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **दूतम्**=ज्ञान का सन्देश प्राप्त करानेवाले अथवा (दु उपतापे) शत्रुओं को उपतप्त करनेवाले, **अमृतम्**=मृत्यु से ऊपर उठानेवाले, **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त

करानेवाले, **पायुम्**=रक्षक, **ईड्यम्**=स्तुत्य **त्वाम्**=आपको **देवासः च मर्तासः च**=देववृत्ति के मनुष्य व अन्य मनुष्य भी **युगेयुगे**=समय-समय पर **दधिरे**=धारण करते हैं। ज्ञानी पुरुष तो प्रभु का सदा स्मरण करते ही हैं, अन्य साधारण लोग भी कष्ट आने पर प्रभु को याद करते ही हैं। (२) **जागृविम्**=सदा जीव हित के लिये जागरित, **विभुम्**=सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान् (वि-भवति) **विश्पतिम्**=प्रजाओं के रक्षक आपको **नमसा**=नमन के साथ **निषेदिरे**=उपासित करते हैं, आपके चरणों में उपस्थित होते हैं।

भावार्थ—सब व्यक्ति, देव तथा साधारण मनुष्य समय-समय पर प्रभु का ही ध्यान करते हैं, प्रभु ही जीवहित के लिये सदा जागरित सर्वशक्तिमान् रक्षक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सोमपान व सुमति' का वरण

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **उभयान्**=गत मन्त्र में उल्लिखित दोनों देवों व साधारण मनुष्यों को **अनुव्रता**=व्रतों के अनुसार, **विभूषन्**=उस-उस शक्ति से अलंकृत करते हुए, **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों को **दूतः**=ज्ञान-सन्देश प्राप्त कराते हुए **रजसी**=इन द्यावापृथिवी **समीयसे**=संगत होते हैं। सर्वत्र आप विचरते हैं, कर्मानुसार व्यवस्था करते हुए, ज्ञान का सन्देश देते हुए आप सर्वत्र विद्यमान हो रहे हैं। (२) **यत्**=जब **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये हम **धीतिम्**=सोम शक्ति के पान को, वीर्य-संयम को व **सुमतिम्**=वीर्य संयम से उत्पन्न कल्याणी मति को **आवृणीमहे**=हम वरते हैं, **अध स्मा**=तो निश्चय से **नः**=हमारे लिये **त्रिवरूथः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को सुरक्षित करनेवाले और इस प्रकार **शिवः**=कल्याणकर **भव**=होइये, तीनों के ऐश्वर्य को हमें प्राप्त कराइये (वरूथ=wealth)।

भावार्थ—सबका कल्याण करते हुए प्रभु सर्वत्र विचरते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये हम 'सोमरक्षण व सुमति' का वरण करते हैं। प्रभु हमें 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सुप्रतीक सुदृश स्वञ्च' प्रभु

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत्॥ १०॥

(१) **अविद्वांसः**=हम अल्पज्ञ जीव **तं विदुष्टरम्**=उस सर्वज्ञ प्रभु को **सपेम**=उपासित करें, पूजें, जो कि **सुप्रतीकम्**=उत्तम तेजस्वितावाले हैं, सब शोभन अंगोंवाले हैं (सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) **सुदृशम्**=उत्तम दर्शनवाले व **स्वञ्चम्**=उत्तम गतिवाले हैं। (२) **सः विद्वान्**=वे ज्ञानी प्रभु **विश्वावयुनानि**=सब प्रज्ञानों को **यक्षत्**=हमारे साथ संगत करते हैं और **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **अमृतेषु**=अमृतत्व (नीरोगता) की प्राप्ति के निमित्त **हव्यं प्रवोचत्**=हव्यों का उपदेश देते हैं, विविध यज्ञों के करने की प्रेरणा देते हैं। इन यज्ञों से ही तो हम नीरोग बनकर प्रभु की भी वास्तविक उपासना कर रहे होंगे। (यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः)।

भावार्थ—हम अल्पज्ञ उस 'तेजस्वी ज्ञानी' प्रभु का पूजन करें। प्रभु हमें ज्ञानों को प्राप्त करायेंगे और यज्ञों के उपदेश से हमें अमृतत्व प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धीति, यज्ञ की निशिति व उदिति

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११ ॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले **अग्ने**=परमात्मन्! **तं पासि**=आप उसको रक्षित करते हैं, **उत**=और **तं पिपर्षि**=उसका पालन व पूरण करते हैं, **यः**=जो **कवये ते**=क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ आपकी प्राप्ति के लिये **धीतिं आनट्**=सोम के पान का व्यापन करता है, शरीर में सोमरक्षण के द्वारा सोम परमात्मा को पाने का यत्न करता है। (२) **वा**=अथवा जो **यज्ञस्य**=यज्ञात्मक कर्मों की **निशितिम्**=तीक्ष्णता को, प्रबल कामना को **वा**=अथवा **उदितिम्**=यज्ञों के उत्कर्ष को आनट्=व्याप्त करता है, **तं इत्**=उसको ही **शवसा**=शक्ति से **उत**=और **राया**=ऐश्वर्य से **पृणक्षि**=पूरित करते हैं। आप से शक्ति व धन को प्राप्त करके यह और अधिक यज्ञशील होता है।

भावार्थ—सोम के रक्षण, यज्ञों की प्रबल कामना व यज्ञों के उत्कर्ष से हमें प्रभु का रक्षण प्राप्त होता है। प्रभु हमें शक्ति व धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अवद्यात् वनुष्यतः निपाहि

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ १२ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **वनुष्यतः**=हिंसक शत्रुओं से **निपाहि**=हमारा नितरां रक्षण करिये। हे **सहसावन्**=शत्रुमर्षक बलवाले प्रभो! **त्वं उ**=आप ही **नः**=हमें **अवद्यात्**=पापों से बचाइये। पापों से बचकर ही हम शत्रुओं से अपना रक्षण कर पाते हैं। (२) **ध्वस्मन्वत्**=दोषों के विध्वंसवाला, ध्वस्तदोष, **पाथः**=अन्न **त्वा अभि समेतु**=अपनी ओर आनेवाला हो, अर्थात् हविष्य अन्न का सेवन करता हुआ मैं आपके समीप प्राप्त होनेवाला बनूँ। आपसे हमें **रयिः**=वह धन **सं (एतु)**=प्राप्त हो, जो **स्पृहयाय्यः**=अत्यन्त स्पृहणीय है और **सहस्री**=(स हस्) आनन्द से युक्त है अथवा सहसंख्या से युक्त पर्याप्त है।

भावार्थ—प्रभु हमें पापों व शत्रुओं से बचाएँ। सात्त्विक अन्न का सेवन हमें प्रभु की ओर ले चले। प्रभु हमें स्पृहणीय व आनन्द के कारणभूत धन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यजिष्ठः यजताम्

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ १३ ॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **होता**=इस सृष्टियज्ञ के होता हैं, सब कुछ देनेवाले हैं। **गृहपतिः**=वे सब घरों के रक्षक हैं। **सः राजा**=वे ही शासक हैं। वे **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु **विश्वा जनिमा**=सब जन्मों, विकासों को **वेद**=जानते हैं। प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सूर्य आदि को वे जानते हैं और साथ ही जीवों के भिन्न-भिन्न शरीरों के धारण करने को वे जानते हैं। (२) वे **यः**=जो अग्नि प्रभु **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों के **उत**=और **मर्त्यानाम्**=साधारण मनुष्यों के

यजिष्ठः=अतिशयेन पूज्य हैं, **सः**=वे **ऋतावा**=ऋत का रक्षण करनेवाले प्रभु **प्रयजताम्**=हमारे लिये उत्कृष्ट पदार्थों के देनेवाले हों।

भावार्थ—वे प्रभु गृहपति हैं, राजा हैं। वे पूज्यतम प्रभु हमारे लिये सब आवश्यक पदार्थों को दें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यज्ञ-हव्य पदार्थ व ऋत

अग्ने यद॒द्य वि॒शो अ॑ध्व॒रस्य॒ होत॒: पाव॑कशोचे॒ वेष्षि॒ं हि यज्वा॑।
ऋ॒ता यजा॑सि महि॒ना वि यद्भूर्हव्या व॑ह यविष्ठ॒ या ते॑ अ॒द्य॥ १४॥

(१) हे **होतः**=सब कुछ देनेवाले, **पावकशोचे**=पवित्र दीप्तिवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यत्**=क्योंकि **त्वं हि यज्वा**=आप ही यज्ञों को करनेवाले हैं, सो **अद्य**=आज **विशः**=संसार में प्रविष्ट इन प्रजाओं के **अध्वरस्य वेः**=यज्ञों की कामना करिये, आप से प्रेरणा को प्राप्त करके ये व्यक्ति यज्ञशील हों। (२) हे प्रभो! **यद्**=जब **महिना**=अपनी महिमा से आप **वि भूः**=सर्वत्र व्याप्त होते हैं, तो **ऋता यजासि**=ऋतों को ही इन प्रजाओं के साथ संगत करते हैं। अनृत से पृथक् करके ऋत से आप अपने उपासकों को जोड़ते हैं। हे **यविष्ठ**=सब अनृतों को अधिक से अधिक हमारे से पृथक् करनेवाले प्रभो! **या ते हव्या**=जो आपके हव्य, प्रार्थनीय पवित्र पदार्थ हैं, उन पदार्थों को **आवह**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु अपने उपासकों को यज्ञ की प्रवृत्ति तथा हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। अनृत से दूर करके ऋत से हमारे जीवन को युक्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**ब्राह्मीबृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

विश्वानि दुरिता तरेम

अ॒भि प्रया॑ंसि॒ सुधि॑तानि॒ हि ख्यो नि त्वा॑ दधीत॒ रोद॑सी॒ यज॑ध्यै।
अवा॑ नो मघव॒न्वाज॑सात॒ावग्ने॒ विश्वा॑नि दु॒रिता॑ त॑रेम॒ ता त॑रेम॒ तवा॑वसा तरेम॥ १५॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **सुधितानि**=उत्तमता से स्थापित **प्रयांसि**=हविरूप अन्नों को **अभिख्यः**=देखते हैं, इस शरीर को यज्ञवेदि समझें, तो आप इस यज्ञवेदि में स्थापित करने के लिये सात्त्विक पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। यह होता **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **यजध्यै**=अपने साथ संगत करने के लिये **त्वा**=आपको **निदधीत**=अपने हृदय में स्थापित करे। प्रभु के स्मरण से शरीर भी उत्तम बनता है, मस्तिष्क भी ज्ञानदीप्त होता है। (२) हे **अग्ने**=प्रभो! **वाजसातौ**=इस जीवन-संग्राम में **नः अवा**=हमें रक्षित करिये। हम आपकी कृपा से **विश्वानि दुरिता तरेम**=सब दुरितों को तैर जाएँ। **ता**=उन दुरितों को **तरेम**=तैर जाएँ। **तव**=आपके **अवसा**=रक्षण से **तरेम**=तैर जाएँ।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे इस शरीर रूप यज्ञ-स्थान में सब हविरूप पदार्थ ठीक रूप से स्थापित हों। शरीर शक्ति-सम्पन्न बने, तो मस्तिष्क ज्ञान-सम्पन्न हो। प्रभु कृपा से हम संग्राम में विजयी बनें। सब दुरितों को तैर जाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'ऊर्णावान् कुलायी घृतवान्' योनि

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु॥ १६॥

(१) हे **स्वनीक**=उत्तमरूप व बलवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **प्रथमः**=(प्रथ विस्तारे) अतिशयित विस्तारवाले सर्वव्यापक आप **विश्वेभिः देवैः**=सब देवों के साथ **योनिं सीद**=हमारे इस शरीर गृह में आसीन होइये। हमारा यह शरीर दिव्यगुणों का अधिष्ठान बने तथा आपका निवास-स्थान हो। यह शरीर जो कि **ऊर्णावन्तम्**=आच्छादनवाला है, अर्थात् सब दोषों से अपने को सुरक्षित करनेवाला है। **कुलायिनम्**=जो प्रशस्त कुलायोंवाला है। एक-एक इन्द्रिय गोलक एक-एक देव का कुलाय (घोंसला) है। जिस शरीर में सब कुलाय बड़े ठीक हैं, सब इन्द्रियों के स्थान अविकृत हैं और **घृतवन्तम्**=प्रशस्त दीप्तिवाला है तथा मलों के क्षरणवाला है। यह शरीर देवों व परमात्मा का निवास-स्थान बने। (२) हे प्रभो! आप इस शरीर में स्थित होते हुए **सवित्रे**=निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त **यजमानाय**=यज्ञशील इस उपासक के लिये **यज्ञं साधु नय**=यज्ञों को सम्यक् प्राप्त कराइये। इसका जीवन यज्ञशील बने। यज्ञों के द्वारा ही यह आपका यजन (उपासन) करनेवाला हो।

भावार्थ—हम इस शरीर को सुरक्षावाला (उर्णावान्) उत्तम इन्द्रिय गोलकोंवाला (कुलायी) दीप्तिवाला (घृतवान्) बनाएँ यह देवों के साथ परमात्मा का निवास-स्थान बने। प्रभु कृपा से हम यज्ञशील बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

अग्निमन्थन

इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः॥ १७॥

(१) **इमम्**=इस **उ**=निश्चय से **त्यम्**=उस प्रसिद्ध **अग्निम्**=अग्रि को, अग्रेणी प्रभु को **वेधसः**=यज्ञादि कर्मों को करनेवाले बुद्धिमान् पुरुष **अथर्ववत्**=(अ+थर्व) न डाँवाडोल होनेवाले स्थित-प्रज्ञ पुरुष की तरह **मन्थन्ति**=विचार द्वारा जानने का प्रयत्न करते हैं। 'अथ अर्वाङ्'=जैसे अन्दर निरीक्षण करनेवाला पुरुष प्रभु का चिन्तन करता है, इसी प्रकार हम उस प्रभु का विचार करनेवाले बनें। (२) उस प्रभु का चिन्तन करें, **यम्**=जिस **अमूरम्**=मूढ़ता से शून्य सर्वज्ञ **अंकूयन्तम्**=स्वाभाविक गतिवाले प्रभु को **श्याव्याभ्यः**=अन्धकारमयी रात्रियों के लिए, इन अज्ञानान्धकार की रात्रियों को दूर करने के लिये, ('मशकार्थो धूमः'=मशक निवृत्ति के लिये) **आनयत्**=अपने हृदयों में प्राप्त कराते हैं। प्रभु का आभास होते ही सब अज्ञानान्धकार लुप्त होता जाता है।

भावार्थ—हम यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त वेधा बनकर तथा स्थित-प्रज्ञ बनकर प्रभु का चिन्तन करें, यह प्रभु-चिन्तन सब अज्ञानान्धकारों को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**स्वराड् अनष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

देववीतये-स्वस्तये

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये। आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः॥ १८॥

(१) हे प्रभो! **जनिष्व**=हमारे में प्रादुर्भूत होइये। **देववीतये**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये

तथा **सर्वताता**=इस सब गुणों के विस्तारवाले जीवन यज्ञ में **स्वस्तये**=कल्याण के लिये। प्रभु का प्रादुर्भाव दिव्यगुणों को प्राप्त कराता है और कल्याण का साधक होता है। (२) हे प्रभो! आप **देवान्**=दिव्यगुणों को **आवक्षि**=हमें प्राप्त कराइये। **अमृतान्**=जो दिव्यगुण हमें नीरोगता को देनेवाले हैं तथा **ऋतावृधः**=हमारे में ऋत का (ठीक का) वर्धन करनेवाले हैं। इन **देवेषु**=दिव्यगुणों की वृत्तिवाले पुरुषों में आप **यज्ञं पिस्पृशः**=यज्ञ को प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम प्रभु कृपा से दिव्यगुणों व स्वस्ति (कल्याण) को प्राप्त करें। नीरोग व ऋतमय जीवन बनकर यज्ञशील हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अस्थूरि नो गार्हयत्यानि सन्तु
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि॥ १९॥

(१) हे **जनानाम्**=लोगों के **गृहपते**=घरों के रक्षक **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **समिधा**=ज्ञान दीप्ति के द्वारा **त्वा**=आपको **बृहन्तम्**=बढ़ा हुआ **अकर्म**=करें। अर्थात् ज्ञान को बढ़ाते हुए आपके प्रकाश को अधिकाधिक देखनेवाले बनें। स्वाध्याय के द्वारा आपका उपासन करें। (२) **नः**=हमारे **गार्हपत्यानि**=गृहस्थ के कर्त्तव्य **अस्थूरि सन्तु**=एक अश्व युक्त गाड़ी के समान न हो जाएँ। अर्थात् पति-पत्नी दोनों दीर्घ-जीवन को प्राप्त करके गृहस्थ के कर्त्तव्यों को सम्यक् निभा पायें। आप हमें **तिग्मेन तेजसा**=तीक्ष्ण तेज से **सं शिशाधि**=सम्यक् तीक्ष्ण करिये। हमें आप तेजस्वी बनाइये। हमारी तेजस्विता शत्रुओं को समाप्त करनेवाली हो।

भावार्थ—स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को बढ़ाते हुए हम प्रभु के प्रकाश को अधिकाधिक देखनेवाले बनें। हम पति-पत्नी दोनों गृहस्थ की गाड़ी को सम्यक् खैंचें। तीक्ष्ण तेजस्विता को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में भी भरद्वाज स्तुति करते हुए कहते हैं—

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

हितः देवेभिर्मानुषे-जने
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप ही **विश्वेषां यज्ञानां होता**=सब यज्ञों के होता है, आपकी कृपा से ही सब यज्ञों की पूर्ति होती है। (२) आप **मानुषे जने**=विचारपूर्वक कर्म करनेवाले व दयालु वृत्तिवाले मनुष्य में **देवेभिः हितः**=दिव्यगुणों के द्वारा स्थापित होते हैं। जितना-जितना एक मनुष्य दिव्य गुणों को अपनाता है, उतना-उतना प्रभु का धारण करनेवाला बनता है।

भावार्थ—सब यज्ञों के होता प्रभु हैं। दिव्य गुणों के धारण से हृदय में प्रभु की स्थापना होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'ज्ञान शक्ति दिव्यगुण'
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः। आ देवान्वक्षि यक्षि च॥ २॥

(१) हे अग्ने! **सः**=वे आप **नः**=हमें **अध्वरे**=इस हिंसारहित जीवन-यज्ञ में **मन्द्राभिः जिह्वाभिः**=आनन्द को देनेवाली वाणियों से **महः यजा**=तेजस्विता को संगत कीजिये, तेजस्विता प्रदान कीजिये। हम आपकी ज्ञानप्रद वेद-वाणियों को प्राप्त करें तथा तेजस्वी बनें। (२) ज्ञान व तेजस्विता को प्राप्त कराके आप **देवान्**=आबाधित दिव्यगुणों को प्राप्त कराइये, **च**=और **यक्षि**=हमारे साथ संगत करिये।

भावार्थ—प्रभु हमें 'ज्ञान, शक्ति व दिव्यगुणों' को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मार्गों व उपमार्गों का ज्ञान

वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा। अग्ने॑ यज्ञे॒षु॑ सुक्रतो॥ ३॥

(१) हे **वेधः**=विधातः, सब विधानों के करनेवाले प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **अध्वनः वेत्था**=मार्ग का ज्ञान रखते हैं **च**=और हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! आप **पथाः**=इन उपमार्गों को **अञ्जसा**=ठीक-ठीक जानते हैं। सब नियमोंपनियमों का आप ही ज्ञान देनेवाले हैं। 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह' ये पाँच 'यम' जीवन के 'अध्वा' हैं, तो 'शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वरप्राणिधान' ये पाँच 'नियम' जीवन के पथ हैं। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी **सुक्रतो**=शोभन-प्रज्ञ व शोभन-कर्मन् प्रभो! आप ही **यज्ञेषु**=श्रेष्ठतम कर्मों में हमें ले चलनेवाले हैं।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु ही हमारे लिये अपनी प्रेरणा के द्वारा मार्गों व उपमार्गों का ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

ज्ञान, शक्ति व यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन

त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभि॑: शु॒नम्। ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म्॥ ४॥

(१) अब **द्विता**=ज्ञान व शक्ति का विस्तार करने के द्वारा (द्वौ तनोति) **भरतः**=अपना ठीक से पोषण करनेवाला मैं **वाजिभिः**=इन इन्द्रियाश्वों से **शुनम्**=आनन्दमय **त्वां ईडे**=आपका ही स्तवन करता हूँ। उपासक वही है जो ज्ञान व शक्ति के भरण के लिये यत्नशील होता है। (२) मैं **यज्ञियम्**=पूजनीय आपको **यज्ञेषु**=यज्ञों में, श्रेष्ठतम कर्मों में **ईजे**=उपासित करता हूँ। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'।

भावार्थ—प्रभु का उपासन 'ज्ञान व शक्ति की प्राप्ति तथा यज्ञों' से होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वरणीय प्रभु

त्वमि॒मा वार्या॑ पु॒रु दि॒वो॑दासाय सुन्व॒ते। भ॒र॒द्वा॒जाय॑ दा॒शुषे॑॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **इमा**=इन **वार्या**=वरणीय धनों को **पुरु**=खूब ही प्राप्त कराते हैं। आप इन वरणीय धनों को **दिवोदासाय**=ज्ञान के उपासक के लिये, **सुन्वते**=यज्ञशील पुरुष के लिये प्राप्त कराते हैं। (२) **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले के लिये आप इन धनों को प्राप्त कराते हैं। **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये, दानशील के लिये।

भावार्थ—हम 'दिवोदास, सुन्वन्, भरद्वाज व दाश्वान्' बनें जिससे वरणीय धनों को प्राप्त कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

सत्संग व स्तुति शब्द श्रवण

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम्। शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम्॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **अमर्त्यः**=अमरणधर्मा **दूतः**=अजरामर होते हुए सदा से ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं। आप **दैव्यं जनं आवहा**=दिव्यगुणों की वृत्तिवाले लोगों को हमारे लिये प्राप्त कराइये। आपकी कृपा से सदा दैवीवृत्तिवाले लोगों से हमारा सम्पर्क हो। (२) हे प्रभो! मैं आपकी कृपा से सदा **विप्रस्य**=(वि प्रा) अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **शृण्वन्**=सुननेवाला बनूँ। सत्संग करते हुए मेरे कान इन दिव्य पुरुषों से की जाती हुई आपकी स्तुति को ही सुननेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें उत्तम संग प्राप्त हो। इस सत्संग में ज्ञानियों से की जाती हुई स्तुति के शब्दों को ही हमारे कान सुनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु ध्यान से दिव्य गुणों की प्राप्ति

त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये। यज्ञेषु देवमीळते॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाम्**=आपका **स्वाध्यः**=उत्तमता से ध्यान करनेवाले **मर्तासः**=मनुष्य **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होते हैं। वस्तुतः जिसका निरन्तर ध्यान करेंगे, वैसे ही तो बनेंगे। उस परब्रह्म का ध्यान करते हुए हम क्यों न देव बनेंगे? (२) इसलिए उत्तम स्तोता लोग **यज्ञेषु**=यज्ञात्मक कर्मों के अन्दर **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु का **ईडते**=उपासन करते हैं। उन यज्ञों को वस्तुतः वे प्रभु कृपा से ही पूर्ण होता हुआ जानते हैं। परिणामतः उन्हें इन उत्तम कर्मों का गर्व नहीं होता।

भावार्थ—उत्तम ध्याता लोग प्रभु का ध्यान करते हुए दिव्य गुणों को प्राप्त करते हैं। सब यज्ञों में उस देव का पूजन करते हुए उन यज्ञों को उस देव की शक्ति से होता हुआ जानते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सन्दृशं क्रतुम्

तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः। विश्वे जुषन्त कामिनः॥ ८॥

(१) हे अग्ने, परमात्मन्! मैं **तव**=आपके **सन्दृशम्**=सम्यग् दर्शनीय व सब के भासक (प्रकाशक) तेज को **प्रयक्षि**=पूजित करता हूँ। **उत**=और **सुदानवः**=सम्यक् शत्रुओं का (दाप् लवने) छेदन करनेवाले आपके **क्रतुम्**=शक्ति व प्रज्ञान का मैं पूजन करता हूँ। (२) **विश्वे**=सब **कामिनः**=विविध कामनाओं से प्रेरित होनेवाले पुरुष आपको ही **जुषन्त**=प्रीतिपूर्वक उपासित करते हैं। आप से ही उनकी कामनाएँ पूर्ण की जाती हैं।

भावार्थ—प्रभु के सम्यग् दर्शनीय तेज का व शक्ति और प्रज्ञान का पूजन करते हुए हम भी उस तेज शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विदुष्टरः

त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः। अग्ने यक्षि दिवो विशः॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **होता**=हमारे जीवन-यज्ञ के होता हैं। **मनुर्हितः**=ज्ञानशील पुरुष से हृदयदेश में स्थापित होते हैं। **आसा**=मुख से ज्ञानोपदेश द्वारा **वह्निः**=हमें भवसागर से पार ले जानेवाले हैं। **विदुष्टरः**=सर्वाधिक ज्ञानी हैं, पूर्ण ज्ञानवाले हैं। (२) हे **अग्ने**=परमात्मन्! हमारे साथ **दिवः विशः**=ज्ञानी पुरुषों को **यक्षि**=संगत कीजिए। उनके संग से हम भी ज्ञान को प्राप्त कर सकें।

भावार्थ—प्रभु ही होता है, वे ही हमें ज्ञान को देनेवाले हैं। ज्ञानियों के संग से हमें ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हृदयासन पर प्रभु को आसीन करना

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥

(१) **अग्ने**=हे प्रकाशमय प्रभो! **आयाहि**=आप आइये। हमें प्राप्त होइये, जिससे **वीतये**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये (वी असने) हम समर्थ हों। आपके प्राप्त होते ही प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है, अन्धकार समाप्त हो जाता है। **गृणानः**=हमारे लिये ज्ञानोपदेश को करते हुए आप **हव्यदातये**=हव्य पदार्थों के, यज्ञिय उत्तम पदार्थों के देने के लिये होइये। आपकी कृपा से हम हव्य पदार्थों को प्राप्त करके यज्ञों की वृत्तिवाले बनें। (२) **होता**=सब हव्य पदार्थों के दाता (हु दाने) होते हुए आप **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निसत्सि**=निश्चय से विराजिये। हमारा पवित्र हृदय आपका आसन बने। इस हृदयासन पर आपको बिठाकर हम आपका पूजन कर पायें।

भावार्थ—हम अपने हृदयों में प्रभु को आसीन करें। सब अज्ञानान्धकार का ध्वंस होकर प्रकाश ही प्रकाश हो जाएगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

समिद्भिः घृतेन

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११ ॥

(१) हे **अंगिरः**=गतिशील प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **समिद्भिः**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक के पदार्थों के ज्ञान की दीप्तियों से, इन तीन ज्ञानरूप समिधाओं से तथा **घृतेन**=मलों के क्षरण से, मलों के दूरीकरण से **वर्धयामसि**=अपने अन्दर बढ़ाते हैं, अपने अन्दर आपके प्रकाश को देखने का प्रयत्न करते हैं। (२) हे **यविष्ठ्य**=युवतम=हमारी बुराइयों को अधिक से अधिक दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को अधिक से अधिक हमारे साथ मिलानेवाले प्रभो! **बृहत् शोचा**=आप हमारे अन्दर खूब ही दीप्त होइये। हमें ज्ञान को बढ़ाते हुए व मलों को दूर करते हुए प्रभु के प्रकाश को अधिकाधिक देख पायें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम ज्ञान को बढ़ाने के लिये यत्नशील हों तथा मलों को मन से दूर करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

श्रवाय्यं, सुवीर्यम्

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि। बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिये **पृथु**=विशाल **श्रवाय्यम्**=श्रवणीय ज्ञान को **अच्छा विवाससि**=आभिमुख्येन प्राप्त कराते हैं (अभिगमय)। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी

प्रभो! आप हमें **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को देते हैं। वस्तुतः ज्ञान और शक्ति के बिना किसी भी उन्नति का होना सम्भव नहीं। प्रभु से ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करके ही हम भी 'देव व अग्नि' बनते हैं।

भावार्थ—वे प्रकाशमय प्रभु हमें विशाल ज्ञान प्राप्त कराते हैं, उन्नति की साधनभूत शक्ति को देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुष्कर+मूर्धा (हृदय+मस्तिष्क)

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ १३ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वाम्**=आपको **अथर्वा**=(अथ अर्वाङ्) अन्तः निरीक्षण करनेवाला योगी **पुष्करात्**=इस हृदयान्तरिक्ष से (पुष्कर=atmosphere) **निरमन्थत**=मन्थन (विचार) के द्वारा देख पाता है। केवल पुष्कर से नहीं, अपितु **मूर्ध्नः**=मस्तिष्क के द्वारा, उस मस्तिष्क के द्वारा जो **विश्वस्य वाघतः**=सम्पूर्ण ज्ञानों का वहन करनेवाला है। (२) जैसे दो अरणियों की रगड़ से अग्नि प्रकट होती है, इसी प्रकार हृदय व मस्तिष्क रूप दो अरणियों की रगड़ से प्रभुरूप अग्नि प्रकट होती है। हृदय को हम पुष्कर (कमल) की तरह अलिप्त बनाएं तथा मस्तिष्क को सब ज्ञानों का वहन करनेवाला। इन दोनों का मेल होने पर हम प्रभु के प्रकाश को देख पायेंगे।

भावार्थ—हृदय व मस्तिष्क दोनों का विकास हमें प्रभु दर्शन कराने में सहायक होगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृत्रहणं पुरन्दरम्

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥

(१) हे प्रभो! **तं त्वा उ**=उन आपको निश्चय से **अथर्वणः पुत्रः**=अथर्वा का पुत्र, अर्थात् उत्कृष्ट अथर्वा, पूर्ण रूप से चित्तवृत्ति को अन्तर्मुखी करनेवाला (अथ अर्वाङ्) **दध्यङ्**=ध्यान में प्रवृत्त होनेवाला **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा मनुष्य **ईधे**=अपने हृदयदेश में दीप्त करता है। जितना-जितना हम चित्तवृत्ति का निरोध करके अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनेंगे, उतना ही अधिक प्रभु का प्रकाश देख पायेंगे। (२) उन आपको यह हृदयदेश में दीप्त करता है, जो **वृत्रहणम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले हैं। और **पुरन्दरम्**=काम-क्रोध-लोभ रूप असुरों की पुरियों का विध्वंस करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का दर्शन चित्तवृत्ति के निरोध से ही सम्भव है। वे प्रभु वासना को विनष्ट करते हैं और आसुरभावों के दुर्गों का विध्वंस करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दस्युहन्तम धनञ्जय

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ ॥

(१) हे परमात्मन्! **तं त्वा उ**=उन आपको निश्चय से **पाथ्यः**=धर्मपथ पर आरूढ़ **वृषा**=शक्तिशाली पुरुष ही **समीधे**=समिद्ध व दीप्त कर पाता है, आपका दर्शन इस 'पाथ्य वृषा' को ही होता है। (२) उन आपको यह हृदयदेश में दीप्त करता है, जो **दस्युहन्तमम्**=दास्यव वृत्तियों को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले हैं और **रणे रणे**=प्रत्येक संग्राम में **धनञ्जयम्**=धनों का हमारे लिये विजय करनेवाले हैं।

भावार्थ—मार्ग पर चलते हुए शक्तिशाली बनकर हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। ये प्रभु दस्युओं का विनाश करके हमारे लिये धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सत्य+संयम

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥ १६॥

(१) **अग्ने**=हे परमात्मन्! **एहि**=आप मुझे प्राप्त होइये। **उ**=और मैं **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **इतराः गिरः**=सामान्य व्यवहार की वाणियों को भी **सु**=अच्छी प्रकार **इत्या ब्रवाणि**=सत्य ही बोलूँ सत्य को अपनाने से ही तो सत्य स्वरूप आपको प्राप्त कर सकूँगा। (११) हे प्रभो! आप **एभि**=इन **इन्दुभिः**=सोमकणों से **वर्धासे**=मेरे में वृद्धि को प्राप्त होइये। इन सोमकणों का रक्षण करता हुआ मैं आपको ज्ञानाग्नि की दीप्ति के द्वारा प्राप्त करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—सत्य व संयम के द्वारा हम प्रभु प्राप्ति के पात्र बन पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

उत्तरं दक्षं+सदः

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्रा सदः कृणवसे॥ १७॥

(१) हे प्रभो! **यत्र क्व च**=जहाँ कहीं भी **ते मनः**=आपका अनुग्रहात्मक मन होता है, अर्थात् जिस पर भी आपकी कृपा होती है, वहाँ आप **उत्तरम्**=उत्कृष्ट **दक्षम्**=बल को **दधसे**=धारण करते हैं। हम प्रभु कृपा के पात्र बनें, प्रभु हमें उत्कृष्ट बल प्राप्त करायेंगे। (२) **तत्र**=उसी व्यक्ति में आप **सदा कृणवसे**=अपनी स्थिति करते हैं, उसी को आप अपना निवास-स्थान बनाते हैं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' निर्बल से वे लभ्य नहीं होते। बल प्रभु कृपा से ही प्राप्त होता है। प्रभु कृपा की प्राप्ति के लिये हम अपने मन को प्रभु के प्रति दे डालें। हम प्रभु के प्रति अपने मनों को देकर ही प्रभु को अपने लिये अनुग्रहात्मक बना पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु के प्रति अपने मनों को देकर हम प्रभु के अनुग्रह को प्राप्त करते हैं। प्रभु हमें उत्कृष्ट बल प्राप्त कराते हैं और हमारे में प्रभु का निवास होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रभु का पूरक तेज

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो। अथा दुवो वनवसे॥ १८॥

(१) हे **नेमानां वसो**=हम अधूरे, अल्पज्ञ व अल्पशक्तिमान् जीवों के **वसो**=वसानेवाले, हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **ते**=आपका **पूर्तम्**=हमारा पूरण करनेवाला तेज **अक्षिपत् नहि भुवत्**=हमारी आँखों को चुँधियानेवाला न हो। अपितु आपका यह तेज हमारे दर्शन-सामर्थ्य को बढ़ानेवाला हो। (२) **अथा**=अब आपके तेज से कुछ पूर्णता को प्राप्त करने पर **दुवः**=हम से की गई परिचर्याओं व उपासनाओं को **वनवसे**=आप सेवन करनेवाले हों। अर्थात् हम आपके उपासक बन पायें।

भावार्थ—हम अल्पज्ञ जीव प्रभु के तेज से अपने दर्शन-सामर्थ्य को बढ़ाकर, ठीक मार्ग पर चलते हुए, प्रभु के उपासक बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

भारतः पुरुचेतनः

आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पतिः॥ १९॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **आ अगामि**=स्तुतियों के द्वारा हमारे से जाना जाता है। जो अग्नि **भारतः**=सबका भरण करनेवाला है, **दिवोदासस्य वृत्रहा**=ज्ञान के उपासक पुरुष के वृत्र का विनाश करनेवाला है। जब हम स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करने में प्रवृत्त होते हैं, तो प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं। **पुरुचेतनः**=अनन्त ज्ञानवाले वे प्रभु हैं। (२) ये प्रभु **सत्पतिः**=सज्जनों के रक्षक हैं। प्रभु का स्तवन ही हमारे जीवनों में सज्जनता का कारण बनता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन के होने पर प्रभु हमारे शरीरों का भरण करते हैं, मानस वासनाओं का विनाश करते हैं और हमारे ज्ञान का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

धन प्राप्ति व वासना विनाश

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना। वन्वन्नवातो अस्तृतः॥ २०॥

(१) **सः**=वे प्रभु **हि**=निश्चय से **विश्वा**=सब **पार्थिवा**=इस पृथिवी सम्बन्धी **रयिम्**=धनों को **अतिदाशत्**=अतिशयेन दें, पार्थिव धनों को वे प्रभु हमें जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये प्राप्त कराएँ। (२) ये प्रभु **महित्वना**=अपनी महिमा से **वन्वन्**=हमारे शत्रुओं का हिंसन करें। प्रभु कृपा से मैं **अवातः**=शत्रुओं से अनाक्रान्त होऊँ और **अस्तृतः**=अहिंसित होऊँ। शत्रुओं से अनाक्रान्त हुआ-हुआ ही तो मैं जीवनयात्रा में आगे बढ़ सकूँगा।

भावार्थ—प्रभु हमें जीवनयात्रा के लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराएँ और हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हिंसन करें जिससे जीवनयात्रा ठीक से पूर्ण हो सके।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुराणा, परन्तु नया (वेदज्ञान)

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता। बृहत्ततन्थ भानुना॥ २१॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **सः**=वे आप **प्रत्नवत्**=अत्यन्त प्राचीन की तरह होते हुए भी **नवीयसा**=नवीन व अतिशयेन स्तुत्य **द्युम्नेन**=द्योतमान **संयता**=(संगच्छता) हमारे जीवन में संगत होते हुए **भानुना**=ज्ञान के प्रकाश से **बृहत् ततन्थ**=खूब ही हमारी शक्तियों का विस्तार करते हैं। (२) प्रभु से दिया जानेवाला यह वेदज्ञान अत्यन्त प्रचीन है। अत्यन्त प्राचीन होता हुआ भी यह नवीन-सा है 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। यह ज्ञान खूब ही दीप्त है। हमारे जीवन में जब यह अनूदित होता है, तो खूब ही हमारी शक्तियों को बढ़ाता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये अपने अजरामर काव्य वेद द्वारा ज्ञान देते हैं। यह ज्ञान हमारी सब शक्तियों के विकास का कारण होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्तोम+यज्ञ (अर्च गाय च)

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। अर्च गायं च वेधसे॥ २२॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **वः**=अपने **स्तोमम्**=स्तुतिसमूह को **च**=और **यज्ञम्**=यज्ञों को **धृष्णुया**=शत्रुओं के घर्षण के दृष्टिकोण से **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **प्र**=(प्राप्त कराओ)। (२) **च**=और **वेधसे**=उस सृष्टि के विधाता प्रभु के लिये, **अर्च**=पूजा करो **गाय च**=और गुणों का गायन करो। यह प्रभु पूजन ही तुम्हें शत्रु धर्षण में समर्थ करेगा।

भावार्थ—हम स्तोमों व यज्ञों को अपनाएँ। प्रभु गुणगान करें और यज्ञों द्वारा प्रभु पूजन करें। इसी प्रकार हम शत्रुओं का धर्षण कर पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

दूतः-हव्यवाहनः

स हि यो मनुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः। दूतश्च हव्यवाहनः॥ २३॥

(१) **सः**=वह प्रभु **हि**=ही **मानुषा युगा**=मानव युग्यों में, पति-पत्नी में **सीदत्**=आसीन हो (सीदतु) **यः**=जो **होता**=सब जीवन-यज्ञ के साधनभूत पदार्थों का दाता है और **कविक्रतुः**=क्रान्तप्रज्ञ है। (२) वह निरतिशय ज्ञानवाला प्रभु **दूतः**=ज्ञान का संदेश देनेवाला है, **च**=और **हव्यवाहनः**=सब हव्य पदार्थों का देनेवाला है।

भावार्थ—प्रभु के तेज के अंश से युक्त हुए-हुए ही पति-पत्नी यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपने ज्ञान का वर्धन करनेवाले होते हैं। प्रभु ही हमें ज्ञान का सन्देश देते हैं और सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'मित्र, वरुण, आदित्य, मरुत् व रोदसी' से संपृक्त जीवन

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम्। वसो यक्षीह रोदसी॥ २४॥

(१) हे **वसो**=जीवन में उत्तम निवास को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **इह**=इस जीवन में **रोदसी यक्षि**=द्यावापृथिवी को, उत्तम मस्तिष्क व शरीर को हमारे साथ जोड़िये। (२) **ता**=उन **राजाना**=जीवन को दीप्त बनानेवाले **शुचिव्रता**=पवित्र व्रतोंवाले मित्रावरुणों को, स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओं को हमारे साथ संगत करिये। **आदित्यान्**=सब उत्तमताओं का आदान करनेवाले अदिति के पुत्रों को, अदीना देव माता के पुत्रों को, दिव्य गुणों को हमारे साथ जोड़िये तथा **मारुतं गणम्**=इस प्राणों के समूह को हमारे साथ जोड़नेवाले होइये। हम प्राणायाम द्वारा इन प्राणों की शक्ति को बढ़ा पायें।

भावार्थ—प्रभु हमारे जीवन में स्नेह व निर्द्वेषता के द्वारा पवित्र व्रतों को प्राप्त कराएँ। हमें दिव्य गुणों व प्राणशक्ति को देनेवाले हों, हमारे मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

वस्वी संदृष्टिः

वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय। ऊर्जो नपादमृतस्य॥ २५॥

(१) हे **ऊर्जो नपात्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **अमृतस्य**=मृत्यु से बचानेवाले (न मृतं यस्मात्) **ते**=आपकी **संदृष्टिः**=संदीप्ति **वस्वी**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाली है। आपकी इसी दीप्ति को प्राप्त करके हमारा जीवन उत्तम बनता है। (२) यह आपकी संदृष्टि **मर्त्याय**=मनुष्य के लिये **इषयते**=प्रेरणा को देने की कामनावाली होती है। इस आपकी दीप्ति से उत्तम प्रेरणा को प्राप्त करके मार्ग पर आगे बढ़ते हुए हम अपने जीवनों को उत्तम बना

पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु की संदृष्टि (संदीप्ति) हमारे निवास को उत्तम बनाती है, यह हमें जीवन में उन्नति के लिये उत्कृष्ट प्रेरणा प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

श्रेष्ठः सुरेक्णाः

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः। मर्त आनाश सुवृक्तिम्॥ २६॥

(१) हे प्रभो! **क्रत्वा**=यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के द्वारा **त्वा**=आपका **वन्वन्**=सम्भजन (उपासन) करता हुआ, **दाः**=दानशील पुरुष **अद्य**=आज **श्रेष्ठः अस्तु**=प्रशस्त (उत्तम) जीवनवाला हो। यह **सुरेक्णाः**=उत्तम धनवाला है। धन के कारण यह विलास में न फँसकर यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करनेवाला बने। (२) **मर्तः**=यह कर्मों द्वारा आपकी उपासना करनेवाला मनुष्य **सुवृक्तिं आनाश**=शोभनतया पापवर्जन को व्याप्त करता है। वस्तुतः यह कर्मों में लगे रहना उनके जीवन को शुद्ध बनाये रखता है, अकर्मण्यता ही पाप का कारण बनती है। यह कर्मशील पुरुष सदा सुमार्ग से ही धन का अर्जन करता है।

भावार्थ—यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के द्वारा प्रभु का सम्भजन करनेवाला मनुष्य दानशील होता है, यह श्रेष्ठ जीवनवाला व उत्तम मार्ग से धन को कमानेवाला होता है। यह पापों से बचा रहता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्चीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तरन्तः-वन्वन्तः

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः। तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः॥ २७॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **ते**=वे **ते**=आपके ही हैं, जो कि **त्वा ऊताः**=आपसे रक्षित हुए-हुए, **इषयन्तः**=आपकी प्रेरणा को प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए **विश्वं आयुः**=सम्पूर्ण जीवन में **अर्यः**=आक्रमण करनेवाली (अभिगंत्रीः) **अरातीः**=शत्रुसेनाओं को **तरन्तः**=तैर जाते हैं। (२) प्रभु प्रेरणा को सुनते हुए ये शक्ति **अर्यः**=आक्रमणकारी **अरातीः**=शत्रु-सेनाओं को **वन्वन्तः**=हिंसित करते हैं। सदा शत्रुओं का शातन करते हुए ये व्यक्ति आगे बढ़ते चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु भक्त वे हैं—(क) जो प्रभु के बन जाएँ, (ख) प्रभु से रक्षित हुए हुए प्रभु की प्रेरणा को सुनें, (ग) प्रभु प्रेरणा के द्वारा वासनारूप शत्रुओं का हिंसन कर दें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु विनाश व धन प्राप्ति

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्। अग्निर्नो वनते रयिम्॥ २८॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **तिग्मेन शोचिषा**=अपनी तीव्र ज्ञानदीप्ति से सब **अत्रिणम्**=हमें खा जानेवाले काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं को **नियासत्**=(निहतु) नष्ट करें। प्रभु ने ही तो काम को भस्म करना है। (२) इन काम आदि शत्रुओं को नष्ट करके अब वे **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **नः**=हमारे लिये **रयिं वनते**=धनों को देते हैं। 'काम-क्रोध-लोभ' यदि हमारे 'स्वास्थ्य, शान्ति व ज्ञानदीप्ति' रूप धन को नष्ट करते हैं, तो इनका विनाश हमें पुनः 'स्वास्थ्य, शान्ति व दीप्ति' रूप धनों को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं का नाश करते हैं और 'स्वास्थ्य, शान्ति

व दीप्ति' रूप धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जहि रक्षांसि सुक्रतो

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे। जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ व सर्वधन, **विचर्षणे**=सब के द्रष्टा, सबका ध्यान करनेवाले प्रभो! **सुवीरम्**=शोभन वीर सन्तानोंवाले **रयिम्**=धन को **आभर**=हमें सर्वथा प्राप्त कराइये। सामान्यतः धनाधिकृत ऐश्वर्य में पलने के कारण आरामपसन्दगी को प्राप्त कराके सन्तानों के जीवनों को विगाड़ देता है। हमारा धन 'सुवीर' हो, वीर सन्तानोंवाला हो। (२) हे **सुक्रतो**=शोभन कर्म, शोभन प्रज्ञान व शोभन शक्तिवाले प्रभो! आप **रक्षांसि जहि**=राक्षसीभावों को विनष्ट करिये। 'क्रतु' ही हमें इन आसुरभावों को जीवन में समर्थ करता है।

भावार्थ—हमारा धन वीर सन्तानोंवाला हो तथा हम राक्षसीभावों को विनष्ट करनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञान व पाप-निराकरण

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः। रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **अंहसः**=पाप से **पाहि**=बचाइये। आप हमें ज्ञान देकर शुद्ध जीवनवाला बनाइये। (२) हे **ब्रह्मणस्कवे**=इन ज्ञान की वाणियों के शब्दयितः प्रभो! आप **नः**=हमें **अघायतः**=हमारे अघ की कामनावाले, पाप व कष्ट की कामनावाले, सब शत्रुओं से **रक्षा**=रक्षित करिये। आपकी इन ज्ञान वाणियों को सुनते हुए हम सब पापों से ऊपर उठ जाएँ।

भावार्थ—ज्ञान देकर वे सर्वत्र प्रभु हमें पापों से बचाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'दुरेव मर्त व पाप' से रक्षण

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति। तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥ ३१ ॥

(१) हे **अग्ने**=शत्रुओं को भस्म करनेवाले प्रभो! **यः**=जो **दुरेवः**=दुष्ट अभिप्रायवाला **मर्तः**=मनुष्य **नः**=हमें **वधाय**=मारण के साधनभूत आयुधों के लिये **आदाशति**=सब प्रकार से देता है, अर्थात् जो हमें अस्त्रों द्वारा मारने की कामना करता है, **तस्मात्**=उससे **नः पाहि**=हमें बचाइये। (२) **अहंसः**=(नः पाहि) सब पापों से भी हमें बचाइये।

भावार्थ—प्रभु हमें दुष्टाभिप्रायवाले मनुष्यों से तथा पापों से बचाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दुष्कृतं जिह्वया परिबाधस्व

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम्। मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२ ॥

(१) हे **देव**=सब शत्रुओं को जीतने की कामनावाले प्रभो! **त्वम्**=आप **तम्**=उस **दुष्कृतम्**=पापाचरण करनेवाले मनुष्य को **जिह्वया**=जिह्वा से दिये जानेवाले ज्ञानोपदेश के द्वारा **परिबाधस्य**=बाधित करिये, उसे पाप करने से रोकिये। (२) उस मनुष्य को अशुभ कर्मों से रोकिये **यः मर्तः**=जो मनुष्य **नः जिघांसति**=हमें मारने की कामना करता है। ज्ञानोपदेश द्वारा

इसकी इस जिघांसा वृत्ति को दूर करिये।

भावार्थ—प्रभु दुष्कृत पुरुष को भी ज्ञानोपदेश प्राप्त कराके अशुभ कर्मों से रोकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शर्म+वसु (सप्रथः शर्म, वरेण्यं वसु)

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य। अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३ ॥

(१) हे **सहन्त्य**=शत्रुओं का अभिभव करनेवालों में उत्तम प्रभो! आप **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले के लिये **सप्रथः शर्म**=दिन प्रतिदिन विस्तारवाले सुख को **यच्छ**=दीजिये। शत्रुओं के अभिभव द्वारा ही शक्ति का रक्षण होता है। शक्तिरक्षण से ही सुख-वृद्धि होती है। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **वरेण्यं वसु**=वरने योग्य धनों को प्राप्त कराइये। जो धन विलास का कारण बनता है, वह कभी वरेण्य नहीं होता।

भावार्थ—हे प्रभो! आप शक्ति को अपने में भरनेवाले के लिये विस्मृत होते हुए सुख को तथा वरणीय वसु (धन) को दीजिये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्रविणस्युः-आहुतः

अग्निवृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु! **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जङ्घनत्**=विनष्ट करते हैं। वस्तुतः प्रभु की उपस्थिति में कामदेव का तो विध्वंस हो जाता है। वे प्रभु वृत्रों का विनाश करके हमारे लिये **द्रविणस्युः**=द्रविणों, धनों को, ज्ञानधन को चाहते हैं। (२) हमारे लिये ज्ञान को प्राप्त करानेवाले वे प्रभु **विपन्यया**=विशिष्ट स्तुति के द्वारा **समिद्धः**=हृदयदेश समिद्ध किये जाते हैं। **शुक्रः**=वे प्रभु दीप्त हैं। हमारे हृदयों में समिद्ध होने पर उन हृदयों को दीप्त करनेवाले हैं। **आहुतः**=(आ हुतं यस्या) समन्तात् प्रभु का होतृत्व व्यक्त हो रहा है। सर्वत्र जीवहित के लिये प्रभु के दान विद्यमान हैं। इन सब वस्तुओं का ठीक प्रयोग करते हुए हम जीवनयात्रा को पूर्ण करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं और हमारे लिये ज्ञानधनों को प्राप्त कराते हैं। विशिष्ट स्तुति के द्वारा हृदय में समिद्ध हुए-हुए वे प्रभु हमें दीप्त करते हैं। इन प्रभु की ही दान-क्रियाएँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'गर्भे मातुः, पितुः पिता'

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥

(१) ('द्यौः पिता, पृथिवी माता') वे प्रभु **मातुः गर्भे**=इस मातृतुल्य पृथिवी के मध्य में है। इस प्रभु की सत्ता के कारण ही इस पृथ्वी में सर्वत्र पुण्य गन्धन्दी उपस्थिति है 'पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च'। वे **पितुः पिता**=द्युलोक रूप पिता के भी पिता (पालक) हैं। आकाश में 'शब्द रूप से इन्हीं का निवास है' 'शब्दः खे'। **अक्षरे**=विनाशी वेद ज्ञान में **विदिद्युतानः**=विशिष्टरूप से दीप्त हो रहे हैं 'सर्वे वेदाः यत् पदं आमनन्ति'। सब वेद के शब्दों में इस प्रभु का ही प्रतिपादन हो रहा है। (२) ये प्रभु **ऋतस्य योनिं आसीदन्**=ऋत के मूल उत्पत्ति-स्थान में स्थित होते हैं। वस्तुतः ऋत को जन्म देनेवाले ये प्रभु ही हैं। 'ऋतञ्च सत्याञ्चाभीद्धात्तपसोध्यजायत'। इस ऋत

को अपनाते हुए हम भी अपने हृदयों को प्रभु का अधिष्ठान बना पाते हैं।

भावार्थ—यह पृथिवी माता तथा द्यौः पिता तुल्य हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रजावद् ब्रह्म

ब्रह्म॑ प्र॒जाव॒दा भ॑र॒ जात॑वेदो॒ विच॑र्षणे। अग्ने॒ यद्दी॒दय॑द्दि॒वि ॥ ३६ ॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ, **विचर्षणे**=विशेषरूप से सब प्रजाओं के द्रष्टा, सबका ध्यान करनेवाले प्रभो! **प्रजावत्**=प्रकृष्ट विकासवाले **ब्रह्म**=ज्ञान को **आभर**=हमें सर्वथा प्राप्त कराइये। उस ज्ञान को दीजिये जो हमारे सब प्रकार से विकास का कारण बने। (२) हे **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! हम आपके अनुग्रह से उस ज्ञान को प्राप्त करें, **यत्**=जो **दिवि दीदयत्**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में दीप्ति का कारण होता है। जैसे आकाशस्थ सूर्य सर्वत्र प्रकाश व प्राणशक्ति का सञ्चार करता है, इसी प्रकार ये प्रभु हमारे मस्तिष्क में ज्ञान सूर्य को उदित करके हमारे जीवनों को प्रकाशमय व विकसित शक्तियोंवाला बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें उस ज्ञान को प्राप्त कराएँ जो कि हमारे लिये सब शक्तियों के विकास का कारण बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रण्वसन्दृक्' प्रभु

उप॑ त्वा र॒ण्वसं॑दृशं॒ प्रय॑स्वन्तः सहस्कृत। अग्ने॑ ससृ॒ज्महे॒ गिर॑ः ॥ ३७ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! **रण्वसन्दृशम्**=रमणीय दर्शनवाले आपके **उप**=समीप स्थित होते हुए हम **गिरः ससृज्महे**=ज्ञान की वाणियों को उत्पन्न करते हैं। आपकी उपासना हमारे ज्ञानवर्धन का कारण बनती है। (२) हे **सहस्कृत**=हमारे में इस ज्ञान के द्वारा शत्रु-मर्षक बल को उत्पन्न करनेवाले प्रभो! हम आप से दिये गये इस ज्ञान के द्वारा ही **प्रयस्वन्तः**=प्रकृष्ट उद्योगोंवाले होते हैं। ज्ञान हमारे जीवनों व प्रयत्नों को पवित्र करता है।

भावार्थ—उस अग्नि की उपासना करते हुए हम उत्कृष्ठ ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इस ज्ञान से प्रकृष्ट प्रयत्नोंवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उपासना से शान्ति की प्राप्ति

उप॒ च्छा॒यामि॑व॒ घृणे॒रग॑न्म॒ शर्म॑ ते व॒यम्। अग्ने॑ हिर॑ण्यसंदृश ॥ ३८ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रकाशस्वरूप, सब बुराइयों को दग्ध करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **हिरण्यसंदृशः**=हितरमणीय तेजवाले अथवा हिरण्य (स्वर्ण) की तरह रोचमान तेजवाले **धृणेः**=दीप्त **ते**=आपके **शर्म**=शरण को **उप अगन्म**=समीपता से इस प्रकार प्राप्त हों, **इव**=जैसे कि गर्मी से पीड़ित मनुष्य **छायाम्**=छाया को प्राप्त होते हैं। (२) प्रभु की उपासना हमारे लिये इसी प्रकार शान्ति को देनेवाली हो, जैसे कि गर्मी से पीड़ित पुरुष को वृक्ष की छाया शान्ति को देनेवाली होती है। उपासना का सर्वमहान् लाभ यह व्याकुलता का न होना ही है।

भावार्थ—प्रभु की शरण क्लेश सन्तप्त पुरुषों के लिये शान्ति को देनेवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आसुर पुरियों का विदारण

य उग्रइव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३९ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **यः**=जो आप **शर्यहा**=(शर्य-हा) वाणों से हनन करनेवाले शिकारी की **इव**=तरह **उग्रः**=उद्गूर्ण बलवाले हैं। **वंसगः**=वननीय (सुन्दर) गतिवाले वृषभ की तरह **तिग्मशृङ्गः**=अति तीक्ष्ण शृंगोंवाले हैं। अर्थात् जैसे एक वृषभ सींगों द्वारा मार्ग में विघ्नभूत चीजों को दूर करता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार आप उपासक के मार्ग में विघ्नभूत बातों को दूर करनेवाले हैं। (२) हे अग्ने! आप **पुरः**=शत्रु पुरियों को **रुरोजिथ**=भग्न करते हो। 'काम' नामक असुर इन्द्रियों में अपनी नगरी बनता है, इससे इन्द्रियों की शक्ति क्षीण होती है। क्रोध मन में अपना दुर्ग बनाकर मानस शान्ति को विनष्ट करता है। लोभ बुद्धि में स्थित होकर बुद्धि को समाप्त कर देता है। प्रभु इन असुरों की इन तीनों पुरियों को समाप्त करते हैं। उपासना का यही लाभ है।

भावार्थ—प्रभु तेजस्वी शिकारी के समान शरों द्वारा काम, क्रोध व लोभ रूप पशुओं का संहार करते हैं। सुन्दर गतिवाले वृषभ के समान प्रभु इन सब मार्ग विघ्नों को दूर करते हैं। आसुर पुरियों का विदारण करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

खादिनं-अग्निं-स्वध्वरम्

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति। विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ४० ॥

(१) (न=संप्रति) **यम्**=जिस प्रभु को **न**=अब **जातं शिशुं न**=उत्पन्न हुए-हुए बालक की तरह **हस्ते**=हाथ में **बिभ्रति**=धारण करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार बालक को प्रेम से धारण करते हैं, इसी प्रकार प्रभु को भी आदरयुक्त प्रीति से धारण करने का प्रयत्न करते हैं। (२) उस प्रभु को धारण करते हैं जो कि **खादिनम्**=(भक्षकं) सब शत्रुओं को खा जानेवाले हैं। **विशां अग्निम्**=सब प्रजाओं को, शत्रु-विनाश द्वारा, आगे ले चलनेवाले हैं। **स्वध्वरम्**=और हमारे जीवनों में उत्तम हिंसारहित कर्मों को सिद्ध करनेवाले हैं। प्रभु कृपा से ही जीवन में सब यज्ञ चलते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को हृदयों में आदरपूर्वक इस प्रकार धारण करें, जैसे कि उत्पन्न बालक को प्रीतिपूर्वक हाथ में उठाते हैं। वे प्रभु शत्रुओं का हिंसन करनेवाले हैं। शत्रुओं के हिंसन के द्वारा हमें आगे ले चलनेवाले हैं और उत्तम हिंसा रहित यज्ञों को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वसुवित्तम' देव

प्र देवं देवतीतये भरता वसुवित्तमम्। आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥ ४१ ॥

(१) **देवम्**=उस प्रकाशमय, दिव्यगुणों के पुञ्ज, **वसुवित्तमम्**=अधिक अधिक वसुओं के प्राप्त करानेवाले प्रभु को **प्रभरत**=प्रकर्षेण हृदयों में धारण करो। **देववीतये**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये उस देव का धारण ठीक ही है। (२) हमारा हृदय प्रभु का निवास-स्थान बने। वे प्रभु **स्वे योनौ**=अपने इस उपासक हृदय रूप गृह में **आ निषीदतु**=सर्वथा आसीन हों। हमारा हृदय प्रभु का अधिष्ठान बने। प्रभु के वहाँ स्थित होने पर ही वासनाओं का दहन होकर दिव्यगुणों का जन्म होगा।

भावार्थ—प्रभु देव हैं, वसुवित्तम हैं। हम अपने हृदयों को प्रभु का आधार बनाएँ और इस

प्रकार वासनादहन करके दिव्य गुणों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु को हृदय में स्थापित करना

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम्। स्योन आ गृहपतिम्॥ ४२॥

(१) **आजातम्**=समन्तात् प्रादुर्भूत, जिसकी महिमा सब ओर प्रकट हो रही है, उस **प्रियम्**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले **अतिथिम्**=हमारे हित के लिये निरन्तर गतिशील, **गृहपतिम्**=इस शरीर रूप गृह के रक्षक प्रभु को **जातवेदसि**=उत्पन्न हुआ है ज्ञान जिसमें उस **स्योने**=आनन्दमय हृदय में **आ शिशीत**=(शी) स्थापित करो। (२) हृदय को स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानोज्ज्वल बनाएँ, ध्यान के द्वारा प्रसादयुक्त करें। तभी यह हृदय प्रभु का अधिष्ठान बनने के योग्य होता है। हृदयस्थ प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमारे इस शरीर गृह को सुरक्षित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'साधवः अश्वासः'

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे॥ ४३॥

(१) **अग्ने**=हे परमात्मन्! **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **ये**=जो **तव**=आपके **हि**=निश्चय से **साधवः**=जीवनयात्रा में सब कार्यों को सिद्ध करनेवाले **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व हैं, उन्हें **युक्ष्व**=हमारे इस शरीररथ में जोतिये। (२) आपके अनुग्रह से हमारा शरीर-रथ उन इन्द्रियाश्वों से युक्त हो जो हमें **मन्यवे**=ज्ञान प्राप्ति के लिये **अरम्**=खूब ही **वहन्ति**=ले चलते हैं। हमारी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का ग्रहण करती हुई ज्ञानवृद्धि का साधन बनें।

भावार्थ—हे प्रभो! हमें उन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराइये जो हमारी ज्ञानवृद्धि का कारण बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वीतये, सोमपीतये

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये। आ देवान्त्सोमपीतये॥ ४४॥

(१) हे प्रभो! **नः अच्छा**=हमारी ओर **आयाहि**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइये। हमें **प्रयांसि अभिः**=सात्त्विक अन्नों की ओर **आवह**=ले चलिए। हम सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करें। **वीतये**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये यह सात्त्विक अन्नों का सेवन आवश्यक ही है 'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'। (२) हमें **देवान् आ**=दिव्यगुणों को प्राप्त कराइये जिससे हम **सोमपीतये**=सोम का शरीर में पान कर सकें। शरीर में सोम का रक्षण आवश्यक ही है। और यह रक्षण तभी होता है जब हम आसुरभावों से दूर हों और दैवीवृत्तियों के समीप हों।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन करें, सात्त्विक अन्नों का सेवन करें जिससे अज्ञानान्धकार का ध्वंस हो। अपने अन्दर दिव्य गुणों का धारण करते हुये आसुरभावों से ऊपर उठें जिससे सोम का (वीर्य का) रक्षण कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीप्त प्रभु हमें भी दीप्त करें

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर॥ ४५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी **भारत**=हम सबका भरण करनेवाले प्रभो! आप **अजस्रेण**=निरन्तर

द्युमत्=खूब ज्योति के साथ **दविद्युतत्**=ज्ञान दीप्ति से द्योतमान होते हुए **उत् शोच**=खूब ही दीप्त होइये। (२) हे **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप **विभाहि**=विशिष्ट रूप से हमारे हृदयों को दीप्त करिये (अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भातिः)।

भावार्थ—प्रभु अनुपम ज्योति से दीप्त हैं। वे हमारे अन्तःकरणों को दीप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

अग्निमीडीत अध्वरे

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत्॥ ४६॥

(१) **यः मर्तः**=जो मनुष्य **वीती**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के हेतु **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु को **दुवस्येत्**=पूजित करे, उस प्रभु की पूजने की कामना करे, वह **अध्वरे**=हिंसारिहत कर्मोंवाले जीवन यज्ञ में **हविष्मान्**=प्रशस्त हविवाला होकर **अग्निं ईडीत**=उस अग्रेणी प्रभु का स्तवन करे। प्रभु का स्तवन यज्ञों द्वारा ही होता है। यज्ञ ही प्रभु को दृश्य स्तवन हैं। (२) उस **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले, **सत्ययजम्**=सत्य का हमारे साथ संगमन करनेवाले प्रभु को **रोदस्योः उत्तानहस्तः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में, ऊपर हाथवाला, अर्थात् मस्तिष्क व शरीर के दृष्टिकोण से उन्नत हुआ-हुआ व्यक्ति **नमसा**=नमन के द्वारा **विवासेत्**=पूजा करे। प्रभु का पूजन यही है कि हम शरीर को शक्तिशाली बनाएँ, मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करें और नमन की वृत्तिवाले हों।

भावार्थ—हम त्याग की वृत्तिवाले बनकर प्रभु का पूजन करते हैं। प्रभु का पुजारी वह है जो शरीर को शक्तिशाली और मस्तिष्क को ज्ञान-सम्पन्न बनाकर नम्रता का धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

उक्षणः ऋषभासः वशाः

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि। ते ते भवन्तूक्षणो ऋषभासो वशा उत॥ ४७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **ऋचा**=ऋचाओं के साथ, विज्ञानपूर्वक अथवा 'ऋच् स्तुतौ' स्तुतिपूर्वक **हृदातष्टम्**=हृदय से निर्मित, अर्थात् श्रद्धापूर्वक की गई **हविः**=हवि को त्यागपूर्वक अदन को **भरामसि**=धारण करते हैं। विज्ञान और श्रद्धा से किये गये यज्ञरूप कर्म ही प्रभु प्राप्ति का साधन बनते हैं। (२) **ते**=वे विज्ञान और श्रद्धापूर्वक हवि को अपनानेवाले लोग **ते**=वस्तुतः आपके हैं। ये लोग **उक्षणः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले बनें, **ऋषभासः**=श्रेष्ठ व गतिशील हों (ऋष गतौ) **उत**=और **वशाः**=अपनी इन्द्रियों को पूर्णरूप से वश में करनेवाले **भवन्तु**=हों। शक्ति का अपने में सेचन करके ही हम गतिशील बनते हैं। यह गतिशीलता हमें इन्द्रियों के वशीकरण में समर्थ करती है।

भावार्थ—'ज्ञान व श्रद्धापूर्वक हम यज्ञों को करें' यही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। ये प्रभु के व्यक्ति (क) अपने में शक्ति का सेचन करते हैं, (ख) ये गतिशील होते हैं और (ग) इन्द्रियों को वश में करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

वसुधारण व रक्षो विनाश

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम्। येना वसून्याभृता तूळ्हा रक्षांसि वाजिना॥ ४८॥

(१) **देवासः**=देववृत्ति के व्यक्ति **अग्रियम्**=मुख्य **वृत्रहन्तमम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **इन्धते**=अपने हृदय देश में समिद्ध करते हैं। उस देव के दर्शन के लिये देव बनना आवश्यक ही है। (२) उस प्रभु को ये समिद्ध करते हैं, **येन**=जिससे **वसूनि**=सब वसु (धन) **आभृता**=समन्तात् धारण किये जाते हैं। प्रभु के दर्शन से जीवंन सब वसुओं से सम्पन्न बनता है। जिस **वाजिना**=शक्तिशाली प्रभु से **रक्षांसि तृढा**=सब राक्षसी भाव हिंसित होते हैं। प्रभु वसुओं को धारण कराते हैं, राक्षसी भावों को विनष्ट करते हैं। राक्षसीभाव वसुओं के विरोधी तत्त्व हैं। इन राक्षसी भावों से वसुओं का विनाश होता है।

भावार्थ—देववृत्ति के बनते हुए हम प्रभु को हृदयदेश में देखने का प्रयत्न करें। प्रभु हमें वसुओं को प्राप्त कराके उत्तम निवासवाला बनायेंगे और हमारे राक्षसीभावों का विनाश करेंगे।

अगले सूक्त में भरद्वाज बार्हस्पत्य 'इन्द्र' नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

अथ चतुर्थाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रियसमूह की वासना से मुक्ति

पिबा॒ सोम॑म॒भि यमु॒ग्र तर्दः॑ ऊ॒र्वं गव्यं॒ महि॑ गृणा॒न इ॑न्द्र।
वि यो धृ॑ष्णो॒ वधि॑षो वज्रहस्त॒ विश्वा॑ वृ॒त्रम॑मि॒त्रिया॒ शवो॑भिः ॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **उग्रः**=तेजस्वी आप **महि गृणानः**=खूब स्तवन किये जाते हुए **यम्**=जिस सोम का **अभि**=लक्ष्य करके **गव्यं ऊर्वम्**=इन्द्रियों सम्बन्धी समूह को **तर्दः**=(to set free) वासनाओं से मुक्त करते हो उस **सोमम्**=सोम का **पिब**=पान करिये, शरीर में रक्षण करिये। प्रभु स्तवन से सोम वासनाओं का विनाश होता है और इन्द्रिय समूह वासनाओं के आवरण से बचा रहता है और इस प्रकार शरीर में सोम के रक्षण सम्भव होता है। (२) **यः**=जो आप हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले, **वज्रहस्त**=वज्र हाथ में लिए हुए प्रभो, **विश्वा अमित्रिया**=सब हमारे शत्रुभूत **वृत्रम्**=ज्ञान के आवरणभूत काम-क्रोध आदि को **शवोभिः**=बलों के द्वारा **विवधिषः**=विशिष्टरूप से नष्ट कर देते हैं, वे आप सोम का पान (रक्षण) कीजिए।

भावार्थ—प्रभु इन्द्रियसमूह को वासनामुक्त करके हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाते हैं, प्रभु अपनी शक्ति से इन अमित्रभूत वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋजीषी तरुत्रः

स ई॑ पाहि॒ य ऋ॑जी॒षी तरु॑त्रो॒ यः शिप्र॑वान्वृष॒भो यो म॑ती॒नाम्।
यो गो॒त्रभि॒द्व॑ज्रभृ॒द्यो ह॑रि॒ष्ठाः स इ॑न्द्र चि॒त्राँ अ॒भि तृ॑न्धि वाजा॑न्॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो आप **ऋजीषी**=(ऋतु+इष) **ऋजुता**=सरलता की प्रेरणा देनेवाले हैं और इस प्रकार **तरुत्रः**=वासनाओं से तरानेवाले हैं, **यः**=जो आप **शिप्रवान्**=शोभन हनु व नासिकावाले हैं, अर्थात् हमें उत्तम सात्त्विक भोजन को चबाकर करनेवाला बनाते हैं (हनु) तथा

प्राणायाम की साधना में प्रवृत्त (नासिका) करते हैं **यः**=जो आप **मतीनां वृषभः**=विचारशील पुरुषों पर सुखों का वर्षण करनेवाले हैं, **सः**=वे आप **ईम्**=निश्चय से **पाहि**=इस सोम का रक्षण कीजिए। वस्तुतः सोमरक्षण के लिए आवश्यक है कि—(क) हम ऋजुता से चलें, छलछिद्र को छोड़कर चलें (ऋजीषी), (ख) वासनाओं को तरें (नरुत्रः), (ग) सात्त्विक भोजन चबाकर खाएँ तथा (घ) प्राणायाम करें (शिप्रवान्) (ङ) बुद्धि के सम्पादन में प्रवृत्त हों। (२) **सः**=जो आप **गोत्रभिद्**=अविद्या-पर्वत का विदारण करनेवाले हैं, **वज्रभृत्**=शत्रु-विनाश के लिए वज्र को धारण किये हुए हैं। **यः**=जो आप **हरिष्ठाः**=सब इन्द्रियाश्वों के अधिष्ठाता हैं। **सः**=वे आप, हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमान् प्रभो! **चित्रान्**=अद्भुत **वाजान्**=शक्तियों को **अभितृन्धि**=हमारे लिये प्रकाशित करिए। हम आपके अनुग्रह से खूब शक्ति-सम्पन्न बनें।

भावार्थ—प्रभु ऋजु मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए हमारे सोम का रक्षण करते हैं। ये प्रभु अविद्या का नाश करते हुए हमारे लिये अद्भुत शक्तियों का प्रकाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

आविः सूर्यं कृणुहि

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा शुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि॥ ३॥

(१) प्रभु जीव को प्रेरणा देते हैं—**एवा**=गतिशीलता के द्वारा (इ गतौ) **पाहि**=तू सोम का रक्षण कर। क्रियाओं में लगे रहने से तू वासनाओं से बचेगा और सोम का रक्षण कर पाएगा। यह सुरक्षित सोम **त्वा प्रत्नथा मन्दतु**=तुझे सदा की तरह आनन्दित करे। सोमरक्षण से आनन्द का अनुभव तो होता ही है। **ब्रह्म श्रुधि**=तू सदा ज्ञान का श्रवण कर। **उत**=और **गीर्भिः**=इन ज्ञान की वाणियों से **वावृधस्व**=वृद्धि को प्राप्त हो। (२) इन ज्ञान की वाणियों के श्रवण से ज्ञान वृद्धि के द्वारा तू **सूर्यं आविः कृणुहि**=अपने जीवन ज्ञान के सूर्य प्रभु को प्रकट कर और **इषः**=प्रेरणाओं की तू **पीपिहि**=बढ़ानेवाला हो, अर्थात् प्रभु प्रेरणा को अधिकाधिक सुननेवाला हो। इस प्रेरणा से प्रेरित हुआ-हुआ तू **शत्रून् जहि**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट कर और **गाः**=इन इन्द्रियों को **अभितृन्धि**=सब वासनाओं से मुक्त करके प्रकाशित कर।

भावार्थ—सोमरक्षण ही वास्तविक आनन्द की प्राप्ति का साधन है। इसी से प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है और प्रभु प्रेरणा में चलते हुए हम विजयी बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुरक्षित सोम हमें कैसा बनाएगा?

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम्॥ ४॥

(१) हे **स्वधावः**=आत्मधारण शक्तिवाले **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **इमे**=ये **मदाः**=उल्लास के जनक **पीतः**=शरीर में पान किये गये हुए **ते**=वे सोम **त्वा**=तुझे **बृहत्**=खूब ही **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय रूपवाले को **उक्षयन्त**=सिक्त करें। सोमकणों से तेरा अंग-प्रत्यंग प्राप्त हो जाए। (२) **मत्सरासः**=आनन्द का संचार करनेवाले ये सोम **जर्हृषन्त**=तुझे आनन्दित करें। जो तू **महाम्**=महान् बना है। **अनूनम्**=न्यूताओं से रहित हुआ है। **तवसम्**=बलवान् बना है। **विभूतिम्**=विशिष्ट ऐश्वर्यवाला हुआ है (वि-भूति) और **प्रसाहम्**=शत्रुओं का विशेषरूप से कुचलनेवाला हुआ है।

भावार्थ—सोम, शरीर में पिया जाकर, हमें ज्योतिर्मय जीवनवाला आनन्दयुक्त, बढ़ा हुआ व विजयी बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सूर्यं उषसं अवासयः

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽपं दृळ्हानि दर्दृत्।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात्॥ ५॥

(१) **येभिः**=जिन सोमकणों के द्वारा **मन्दसानः**=आनन्द का अनुभव करता हुआ तू **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को तथा **उषसम्**=दोषदहन को **अवासयः**=अपने में बसाता है। **दृढानि**=दृढ़ शत्रु के दुर्गों का **अपदर्द्रत्**=विदारण करता है। (२) **गाः परिसन्तम्**=इन्द्रियों के चारों ओर होते हुए, अर्थात् इन्द्रियों को घेर लेनेवाले **महाम्**=महान् **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **नुत्थाः**=तू परे ढकेलता है। उस अविद्या पर्वत को तू परे ढकेलता है, जो कि **स्वात् सदसः परि अच्युतम्**=अपने स्थान से बड़ी कठिनता से हिलाया जाता है, अर्थात् बड़ा दृढ़ है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) आनन्द की प्राप्ति होती है, (ख) ज्ञानसूर्य का उदय होता है, (ग) दोषों का दहन होता है, (घ) अविद्या पर्वत हिल जाते हैं, (ङ) शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों का विदारण हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वासनाओं से इन्द्रियों का मोचन

तव क्रत्वा तव दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः।
और्णोर्दुरः उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान्॥ ६॥

(१) हे प्रभो! आप **तव क्रत्वा**=अपने प्रज्ञान के द्वारा, **तव**=अपने **दंसनाभिः**=कर्मों के द्वारा तथा **शच्या**=सामर्थ्य से **आमासु**=हमारी अपरिपक्व बुद्धियों में **तत्**=उस **पक्वम्**=परिपक्व ज्ञान को **निदीधः**=स्थापित करते हो। इस ज्ञान के द्वारा ही आप हमारी बुद्धियों को परिपक्व करते हैं। (२) **उस्रियाभ्यः**=इन इन्द्रियरूप गौओं के लिये **दृढा**=बड़े दृढ़ भी **दुरः**=द्वारों को **और्णोः**=खोल देते हैं और **ऊर्वात्**=इस वासना समूह के बाड़े से **गाः**=इन्द्रियरूप गौओं को **वि असृजः**=बाहर करते हैं और इस प्रकार **अंगिरस्वान्**=हमें उत्कृष्ट ज्ञानवाला बनाते हैं (अगि गतौ)-अंगारों की तरह हमारा ज्ञान दीप्त होता है और उसमें सब अशुभ कर्म भस्म हो जाते हैं। वासनाओं का एक दुर्ग है, प्रभु उसके दृढ़ द्वारों को खोलकर हमारी इन्द्रियरूप गौवों को उस दुर्ग से मुक्त करते हैं और इस प्रकार हम उन गौवों के द्वारा ज्ञानदुग्ध को पीकर 'अंगिरस्' बन पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने प्रज्ञान कर्म व सामर्थ्य से हमारी अपरिपक्व बुद्धियों में परिपक्व ज्ञान की स्थापना करते हैं। इन्द्रियों को वासनाओं से मुक्त करके ज्ञान-ग्रहणक्षम करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उर्वीक्षा, बृहत् द्यौः

पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **उर्वीं क्षाम्**=विशाल पृथिवी को, इस पृथिवीरूप

शरीर को **पप्राथ**=विस्तृत करते हो। इस शरीर के द्वारा **महि दंसः (पप्राथ)**=महत्त्वपूर्ण कार्यों को भी आप ही करते हो। **ऋष्वः**=महान् आप ही **बृहत् द्याम्**=इस विशाल द्युलोक को, मस्तिष्करूपी द्युलोक को **उपस्तभायः**=थामते हैं। मस्तिष्क का धारण भी आप ही करते हैं। (२) हे प्रभो! इस प्रकार **रोदसी**=इन द्यावापृथिवी को आप ही **अधारयः**=धारण करते हैं, हमारे शरीरों व मस्तिष्कों का धारण करनेवाले आप ही हैं। उन द्यावापृथिवी को, जो **देवपुत्रे**=दिव्य गुणों के जन्म देनेवाले हैं, देव जिनके पुत्र हैं। **प्रत्ने**=जो पुराण हैं, चिरकाल तक रहनेवाले हैं। **यह्वी**=महान् हैं, महत्त्वपूर्ण कार्यों को करनेवाले हैं और **ऋतस्य मातरः**=हमारे जीवन में यज्ञों का निर्माण करनेवाले हैं, अर्थात् उत्तम कर्मों को सिद्ध करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे मस्तिष्क रूप द्युलोक शरीररूप पृथिवी को इस प्रकार धारण करते हैं कि ये दिव्य गुणों व यज्ञों को सिद्ध करते हुए दीर्घकाल तक सुरक्षित रहते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु द्वारा संग्राम विजय

अध॑ त्वा॒ विश्वे॑ पु॒र इ॑न्द्र दे॒वा एक॑ं तव॑सं दधिरे॒ भरा॑य।
अदे॑वो॒ यद॒भ्यौहि॑ष्ट दे॒वान्त्स्व॑र्षाता वृणत॒ इन्द्र॒मत्र॑ ॥ ८ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अध**=अब **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **एकम्**=अद्वितीय **तवसम्**=बढ़े हुए, अर्थात् शक्तिशाली **त्वा**=आपको **भराय**=संग्राम के लिए **पुरः दधिरे**=सामने स्थापित करते हैं। आपने ही तो वस्तुतः शत्रुओं को जीतना है। (२) **यद्**=जब **अदेवः**=आसुरभाव **देवान्**=देववृत्ति के व्यक्तियों को **अभ्यौहिष्ट**=आक्रान्त करता है तो वे देव **अत्र**=यहाँ **स्वर्षाता**=संग्राम में **इन्द्रम्**=उस शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु का **वृणते**=वरण करते हैं। इस प्रभु के द्वारा वे अपने शत्रुओं को पराजित करते हैं।

भावार्थ—असुरों का आक्रमण होते ही देव प्रभु को संग्राम में आगे करते हैं और इस प्रकार असुरों के आक्रमण को विफल कर देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अहि-हनन

अध॒ द्यौश्चि॑त्ते॒ अप॒ सा नु व॒ज्राद् द्वि॒तान॑मद्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः।
अहिं॒ यदिन्द्रो॒ अ॒भ्योह॑सा॒नं नि चि॑द्वि॒श्वायुः॒ श॒यथे॑ ज॒घान॑ ॥ ९ ॥

(१) **अध**=अब **सा द्यौः चित्**=द्युलोक भी, **नु**=निश्चय से **ते वज्रात्**=तेरे वज्र से **द्विता अनमत्**=(द्वौ तनोति) इहलोक व परलोक के कल्याण के हेतु से **अप अनमत्**=झुकता है। 'द्युलोक भी' यहाँ 'भी' शब्द इस बात का द्योतक है कि पृथिवीलोक तो झुकता ही है, द्युलोक भी झुकता है। सारा द्युलोक व पृथिवीलोक प्रभु के वज्र के सामने झुकता है। एक तो **भियसा**=भय के कारण झुकता है और दूसरे **स्वस्य मन्योः**=अपने ज्ञान के कारण झुकते हैं। अज्ञानी तो आपत्ति से भयभीत होकर झुकते हैं, पर ज्ञानी प्रभु की महत्ता को समझते हुए नतमस्तक हो उठते हैं। (२) **यद्**=जब झुकते हैं तो **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु, **विश्वायुः**=हमारे लिये पूर्ण जीवन को देता हुआ **अभि ओहसानम्**=हमारी ओर आते हुए **अहिम्**=इस वासनारूप शत्रु को (अहन्ति) **चित्**=निश्चय से **शयथे निजधान**=भूमि पर सुला देने के लिये आहत करते हैं। वासना को विनष्ट करके हमें विनाश से बचाते हैं।

भावार्थ—अज्ञानी भय से तथा ज्ञानी समझदारी से उस प्रभु के सामने झुकते हैं। प्रभु इनके वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सहस्रभृष्टि-शताश्रि' वज्र

अध॒ त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र॒ वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृतच्छ॒ताश्रि॑म्।
निका॑ममर॒मण॑सं॒ येन॒ नव॑न्त॒महिं॒ सं पि॑णगृजीषिन्॥ १०॥

(१) हे **उग्र**=तेजस्विन् उपासक! **अध**=अब **त्वष्टा**=वह निर्माता प्रभु **ते**=तेरे लिये **वज्रम्**=वज्र को **ववृतत्**=बनाता है। उस वज्र को जो **महः**=महान् है, **सहस्रभृष्टिम्**=(भृष्टि=roasting) हजारों शत्रुओं को भून डालनेवाला है और **शताश्रिम्**=सैंकड़ो तेज धारोंवाला है (अश्रिः=the sharp side) (२) **ऋजीषिन्**=ऋजुमार्ग से गति करनेवाले जीव! उस वज्र को प्रभु तेरे लिये बनाते हैं, **येन**=जिससे कि तू **अहिं संपिणक्**=आहन्ता वृत्र को, कामवासना रूप शत्रु को पीस डालता है, नष्ट कर देता है। उस अहि को नष्ट कर देता है जो कि **निकामम्**=निकृष्ट कामनाओंवाला है, सदा हमारा अशुभ चाहनेवाला है। **अरमणसम्**=(अरं अभिगन्तृ मनो यस्य) आक्रमण करने की कामनावाला है तथा **नवन्तम्**=(नु शब्दे) गर्जना करनेवाला है अथवा रुलानेवाला है।

भावार्थ—प्रभु उपासक को वह वज्र प्राप्त कराते हैं, जो सब शत्रुओं को भून डालता है। वस्तुतः क्रियाशीलता ही यह वज्र है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शतं महिषान् पचत्

वर्धा॒न्यं विश्वे॑ म॒रुतः॒ स॒जोषा॒ः पच॑च्छ॒तं म॑हि॒षाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्य॑म्।
पू॒षा विष्णु॒स्त्रीणि॒ सरां॑सि धावन्वृ॒त्रह॑णं॒ मदि॒रमं॒शुम॑स्मै॥ ११॥

(१) **यम्**=जिस परमात्मा को **सजोषाः**=परस्पर प्रीतिवाले होते हुए **मरुतः**=मनुष्य **वर्धान्**=स्तोत्रों के द्वारा बढ़ाते हैं। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तुभ्यम्**=तेरी प्राप्ति के लिये ही उपासक **शतम्**=शतवर्ष पर्यन्त, अर्थात् आजीवन **महिषान्**=(प्राणा वै महिषाः श० ७।४।५) प्राणों को **अपचत्**=परिपक्व करता है, प्राणायाम के द्वारा प्राणों का परिपाक करता है। (२) **पूषा**=अपना उचित रूप में पोषण करनेवाला व्यक्ति, **विष्णुः**=व्यापक मनोवृत्तिवाला होता हुआ **त्रीणि सरांसि**=तीनों ज्ञान-सरोवरों को, प्रकृति का ज्ञान, जीव का ज्ञान तथा परमात्मा का ज्ञान इन तीनों को **धावन्**=(धावु गतिशुद्धयोः) शुद्ध करता हुआ **अस्मै**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए **अंशुम्**=सोम को धावन्=प्राप्त करता है, जो सोम **वृत्रहणम्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाला है तथा **मदिरम्**=उल्लास का जनक है। प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—पूषा व विष्णु बनें, (ख) प्रकृति, जीव व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करें, (ग) सोम का रक्षण करें। पूर्वार्ध में कहा था कि उस प्रभु की प्राप्ति के लिए हम, (घ) प्रभु-स्तवन करें, (ङ) प्राणसाधना को सदा करें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए 'स्तवन, प्राणसाधना, ज्ञान व सोमरक्षण' साधन बनते हैं। हम पुष्ट व उदार बनकर प्रभु को पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऊर्मि-समुद्र (प्रकाश व उल्लास)

आ क्षोदो॒ महि॑ वृ॒तं न॒दीना॑ं॒ परि॑ष्ठितमसृज ऊ॒र्मिम॒पाम्।
ता॒सा॒मनु॒ प्र॒वत॑ इन्द्र॒ पन्था॑ं॒ प्रार्द॑यो॒ नीची॒॑रप॑सः॒ समु॒द्रम्॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **नदीनाम्**=स्तोताओं के **महि क्षोदः**=इस महनीय रेतःकणरूप जल को **वृतम्**=शरीर में ही घिरा हुआ तथा **परिष्ठितम्**=शरीर में चारों ओर स्थित **आ असृजः**=सर्वथा करते हैं। इसे आप **अपाम्**=प्रजाओं का (आपो प्रा इति प्रोक्ताः) **ऊर्मिम्**=(light) प्रकाश (असृजः) बनाते हैं। ये रेतःकण ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर उनके जीवन को उज्ज्वल करते हैं। (२) **तासाम्**=उन रेतःकणरूप जलों का **प्रवतः अनु**=(height, elevation) उन्नति के अनुसार **पन्थाम्**=मार्ग को करते हैं, अर्थात् हे प्रभो! आप ही इन रेतःकणों को शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला करते हैं। इन **नीचीः अपसः**=(अपः=अपसः) निम्न मार्ग की ओर जानेवाले रेतःकणों को **समुद्रं प्रार्दयः**=(स-मुद्) आनन्दयुक्त हृदय के प्रति प्रेरित करते हैं, अर्थात् शरीर में इनकी ऊर्ध्वगति करके, इनके द्वारा ही वस्तुतः हृदयों को उल्लासयुक्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से उपासक के शरीर में रेतःकणरूप जलों की शरीर में ही स्थिति व ऊर्ध्वगति होती है। इस प्रकार ये रेतःकण प्रकाश (ऊर्मि) व आनन्द (समुद्रम्) का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्तवन के द्वारा रक्षण

ए॒वा ता विश्वा॑ चकृ॒वांस॒मिन्द्रं॑ म॒हामु॒ग्रम॑जु॒र्यं स॑हो॒दाम्।
सु॒वीर॑ं त्वा स्वायु॒धं सु॒वज्र॒मा ब्रह्म॒ नव्य॒मव॑से ववृत्यात्॥ १३॥

(१) हे प्रभो! **एवा**=इस प्रकार **ता विश्वा**=ऊपर के मन्त्रों में वर्णित उन प्रसिद्ध सब कर्मों को **चकृवांसम्**=करनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली आपको, हमारे से अपनाया गया यह **नव्यं ब्रह्म**=स्तुत्य ज्ञानपूर्वक किया गया स्तोत्र (स्तवन) **आववृत्यात्**=हमारे अभिमुख करे। हम इन स्तोत्रों के द्वारा आपको प्राप्त करनेवाले हों, और इस प्रकार **अवसे**=रक्षण के लिए हों, आपके द्वारा हम इन वासनारूप शत्रुओं के आक्रमण से बचे रहें। (२) उन आपको हम अपने अभिमुख कर पाएँ, जो आप **महाम्**=महान् हैं, **उग्रम्**=तेजस्वी हैं, **अजुर्यम्**=कभी न जीर्ण होनेवाले हैं और **सहोदाम्**=बल को देनेवाले हैं। जो आप **सुवीरम्**=उत्तम वीर हैं उन **त्वा**=आपको हम अपने अभिमुख करें जो **स्वायुधम्**=उत्तम 'इन्द्रिय प्रनव बुद्धि' रूप आयुधों को देनेवाले हैं तथा **सुवज्रम्**=उत्तम क्रियाशीलतारूप वज्र को प्राप्त कराते हैं (शोभनम् वज्रं यस्मात्)।

भावार्थ—स्तवन द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करें। ये प्रभु हमें बल, उत्तम इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि को प्राप्त कराएँगे। इनके द्वारा वे हमें रक्षण के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पार्ये दिवि

स नो॒ वाजा॑य॒ श्रव॑स इ॒षे च॑ रा॒ये धे॑हि द्यु॒मत॑ इन्द्र॒ विप्रा॑न्।
भ॒रद्वा॑जे नृ॒वत॑ इन्द्र सू॒रीन्दि॒वि च॑ स्मै॒धि॒ पार्ये॑ न इन्द्र॥ १४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **वाजाय**=बल के लिए, **श्रवसे**=ज्ञान के लिए, **इषे**=प्रेरणा के लिए **च**=और **राये**=धन के लिए **धेहि**=धारण कीजिए। हे प्रभो! आप हमें **द्युमतः**=ज्योतिर्मय **विप्रान्**=अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी ब्राह्मणों को प्राप्त कराइए। इनके सम्पर्क में हमारा जीवन भी ज्योतिर्मय बने। (२) **भरद्वाजे**=अपने में शक्ति को भरनेवाले मेरे में, हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नृवतः**=प्रशस्त मनुष्योंवाले **सूरीन्**=ज्ञानी स्तोताओं को (धेहि=) प्राप्त कराइये। इनके सम्पर्क में मैं भी ज्ञानी व स्तोता बनूँ। **च**=और हे **इन्द्र**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभो! **नः**=हमारे **पार्ये दिवि**=पारणीय-वैषयिक समुद्र से पार करने में समर्थ-ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त **स्म एधि**=होइये।

भावार्थ—ज्ञानी ब्राह्मणों के द्वारा प्रभु हमारे लिए 'पारणीय ज्ञान' को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

देवहित वाजं

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ १५॥

(१) **अया**=इस स्तवन के द्वारा अथवा गत मन्त्र में वर्णित 'पारणीय ज्ञान' के द्वारा हम **देवहितम्**=देववृत्ति के पुरुषों में स्थापित **वाजम्**=बल को **सनेम**=प्राप्त करें। दानवी बल को नहीं, अपितु देवहित बल को हम प्राप्त करनेवाले हों। (२) इस बल को प्राप्त करके हम **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले **शतहिमाः**=सौ वर्ष के दीर्घ-जीवनवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—देवों के बल को प्राप्त करते हुए हम सुवीर व शतहिम (सौ वर्ष के जीवनवाले) बनें और इस प्रकार आनन्दित हों।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'वन्वन् अवातः' इन्द्रः

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम्॥ १॥

(१) **तं उ स्तुहि**=उस प्रभु का ही स्तवन करो **यः**=जो **अभिभूत्योजाः**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाला बलवाला है, **वन्वन्**=शत्रुओं का हिंसन करता हुआ **अवातः**=स्वयं शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता। **पुरुहूतः**=पालक व पूरक है आह्वान जिसका (पुरु हूतं यस्य) ऐसे वे प्रभु **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवाले हैं। (२) **अषाढम्**=शत्रुओं से अनभिभूत, **उग्रम्**=तेजस्वी, **सहमानम्**=शत्रुओं को कुचलते हुए उस प्रभु को **आभिः गीर्भिः**=इन ज्ञानमयी स्तुति-वाणियों से **वर्ध**=बढ़ाइये। वे प्रभु **चर्षणीनां वृषभम्**=श्रमशील मनुष्यों के लिए सुखों का वर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन हमें शत्रुओं को कुचलने में समर्थ करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

खजकृत् समद्वा

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा॥ २॥

(१) **सः**=वे प्रभु **युध्मः**=युद्ध कुशल हैं। **सत्वा**=वासनाओं के साथ संग्राम के लिए 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप अस्त्रों के दाता हैं (सत्वा=दाता)। **खजकृत्**=हमारे लिए इन वासनाओं के साथ संग्राम करनेवाले हैं। **समद्वा**=अपने यजमान जीवरूप मित्रों के साथ आनन्दित होनेवाले हैं। **तुविम्रक्षः**=शत्रुओं पर महान् आघात करनेवाले हैं। **नदनुमान्**=हृदयस्थरूपेण शब्द करनेवाले हैं, कर्त्तव्यों की प्रेरणा देनेवाले हैं और **ऋजीषी**=हमें ऋजु मार्ग से ले चलनेवाले हैं। (२) **बृहद्रेणुः**=वे प्रभु महान् गतिवाले हैं (रीङ्गतौ) **च्यवनः**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले हैं। **एकः**=वे अद्वितीय प्रभु **मानुषीणां कृष्टीनाम्**=मानव प्रजाओं के **सहावा**=(सह अवति) साथ रहकर रक्षा करनेवाले **अभवत्**=होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये हमारे वासनारूप शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

न स्वित् अस्ति

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥ ३॥

(१) **त्यत् त्वं ह**=हे प्रभो! वे आप ही **एकः**=अकेले **दस्यून्**=इन काम-क्रोध-लोभ आदि दास्यवभावों का **अदमायः**=दमन करते हैं। आप ही **आर्याय**=श्रेष्ठ पुरुष के लिए **कृष्टीः अवनोः**=कृषियों को प्राप्त कराते हैं। वस्तुतः आपके द्वारा ही ये आर्य पुरुष श्रमसाध्य कर्मों को करने में समर्थ होते हैं। (२) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **नु स्वित्**=निश्चय से **तत् ते वीर्यं अस्ति**=वह सब आपका ही पराक्रम है। आपकी शक्ति से ही सब कार्य होते हैं। इसमें उस-उस कर्म के करनेवाले व्यक्ति का तो **स्वित्**=निश्चय से **न अस्ति**=कुछ भी नहीं है। आपकी शक्ति से ही सब कार्य होते हैं। हे प्रभो! आप **तद्**=उस बात को **ऋतुथा**=समयानुसार **विवोचः**=हमें विशेषरूप से बतलाते रहिये, जिससे हम उन कर्मों का गर्व न करने लगें। इसी प्रकार हमें भी आपके द्वारा इस बात का ज्ञान होता रहे कि 'न स्वित् अस्ति' निश्चय से हमारा कुछ नहीं है, सब उस प्रभु का है।

भावार्थ—प्रभु दास्यव वृत्तियों का दमन करते हैं। हमें श्रमसाध्य कृषि आदि कर्मों को प्राप्त कराके आर्य बनाते हैं। सब कर्म प्रभु द्वारा ही होते हैं, मनुष्य का इसमें कुछ नहीं है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु ही बल के स्त्रोत हैं

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव॥ ४॥

(१) हे **सहिष्ठ**=शत्रुओं का अधिक से अधिक मर्षण करनेवाले प्रभो! **तुविजातस्य**=महान् प्रादुर्भाववाले **ते**=आपका **सहः**=बल **सत् इत् हि**=श्रेष्ठ ही है, ऐसा **मन्ये**=मैं मानता हूँ। (२) **उग्रस्य**=तेजस्वी आपका यह बल **उग्रम्**=उग्र है, शत्रुओं के लिए भयंकर है। **तवसः**=अत्यन्त प्रवृद्ध आपका बल **तवीयः**=अतिशयेन बढ़ा हुआ है। **अरध्रस्य**=शत्रुओं से वश में न करने योग्य आपका यह बल **रध्रतुरः**=वशीकरणीय शत्रुओं का संहार करनेवाला **बभूव**=है।

भावार्थ—सम्पूर्ण बल प्रभु का ही है। यह बल उग्र, बढ़ा हुआ व शत्रु-विनाशक है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रत्नं सख्यम्

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः॥ ५॥

(१) 'जीव और प्रभु' की मित्रता अनादिकाल से चली आ रही है। जीव अपने मित्र से कहता है कि '**नः**=हमारी **युष्मे**=आपके साथ **तत्**=वह **प्रत्नम्**=सनातन **सख्यम्**=मित्रता **अस्तु**=हो, बनी रहे। हम आपकी मित्रता से दूर न हों।' **इत्था**=इस प्रकार **वदद्भिः**=कहते हुए **अंगिरोभिः**=इन गतिशील पुरुषों के साथ आप **वलम्**=(veil) ज्ञान पर आवरणभूत इस वासना को **हन्**=विनष्ट करते हैं। (२) हे **अच्युतच्युत्**=अविचलित-दृढ़ भी शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, **दस्म**=दर्शनीय व दुःख विनाशक प्रभो! **इषयन्तम्**=हमारे पर आक्रमण करनेवाले, अस्त्रों का प्रहार करनेवाले, इस बल को **ऋणोः**=आप दूर करते हैं। **अस्य**=इस बल के **विश्वाः**=सब **पुरः**=पुरियों को तथा **दुरः**=द्वारों को **वि (ऋणोः)**=हमारे से वियुक्त करते हैं। प्रभु ही इस बल का विनाश करते हैं।

भावार्थ—जीव अपने सनातन सखा का स्मरण करता है तो वे प्रभु अपने इन उपासकों के साथ ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'वितन्तसाय्य' प्रभु

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु॥ ६॥

(१) **सः**=वे प्रभु ही **धीभिः**=ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतियों से **हव्यः**=पुकारने योग्य **अस्ति**=हैं। **उग्रः**=तेजस्वी हैं और इस **महति वृत्रतूर्ये**=महान् संग्राम में **ईशानकृत्**=स्तोताओं को समर्थ करनेवाले हैं। प्रभु कृपा से ही उपासक संग्राम में विजयी होता है। 'वृत्रतूर्य' यह संग्राम का नाम ही हो गया है, इस महान् अध्यात्म संग्राम में वृत्र का, वासना का विनाश करना होता है। (२) **सः**=वे प्रभु ही **तोकसाता**=उत्तम पुत्रों की प्राप्ति के निमित्त (हव्यः) आह्वातव्य होते हैं। **तनये**=उत्तम पौत्रों की प्राप्ति के निमित्त भी वे प्रभु ही प्रार्थनीय हैं। **सः वज्री**=वे वज्रहस्त प्रभु **समत्सु**=संग्रामों में **वितन्तसाय्यः**=शत्रुओं के विहिंसक **अभवत्**=होते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण ही हमें संग्राम-विजयी बनाता है। यह स्मरण ही उत्तम पुत्र-पौत्रों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युम्न-शवस्-धन व वीर्य

स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्त्सत्।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः॥ ७॥

(१) **सः**=वे प्रभु **अमर्त्येन**=अविनाशी **नाम्ना**=शत्रुओं के नामक **मज्मना**=बल से **मानुषाणां जनिम**=मानव संघ को **अति सर्त्सत्**=अतिशयेन प्राप्त होते हैं। जब मनुष्य प्रभु की उपासना करता है, तो प्रभु उसे शत्रुनाशक बल प्राप्त कराते हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **द्युम्नेन**=ज्ञान-ज्योति के साथ **सं ओकाः**=निवासवाले हैं। **सः**=वे **शवसा**=बल के साथ समान निवासवाले हैं। **उत**=और

राया=ऐश्वर्य के साथ निवास करते हैं। **सः**=वे **नृतमः**=सर्वोत्तम नेतृत्व करनेवाले प्रभु **वीर्येण**=पराक्रम के साथ (समोकाः) निवासवाले हैं। प्रभु का उपासक भी 'ज्ञान, बल, धन व सामर्थ्य' के साथ समान निवासवाला होता है।

भावार्थ—उपासक को शत्रुओं को झुकानेवाला बल प्राप्त होता है। ज्ञान, बल, धन व वीर्य प्राप्त होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्र' का लक्षण

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्॥ ८॥

(१) **सः इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष वह है—(क) **यः जनः मुहे न**=जो मनुष्य मूढ़ नहीं बनता, संसार के इन विषयों के प्रति आकृष्ट होकर अपनी चेतना नहीं खो बैठता। (ख) और जो अपने व्यवहार में **मिथू न भूत्**=मिथ्यावादी व मिथ्याचारी नहीं होता। सदा सत्य व्यवहार से ही धनार्जन करता है। (ग) **सुमन्तुनामा**=प्रभु के नाम का उत्तमता से मनन करता है। यह नाम-स्मरण ही तो वस्तुतः उसे 'मोह व मिथ्यात्व' से बचाता है, (घ) यह **चुमुरिम्**=आचमन कर जानेवाले, शक्ति को चूस लेनेवाले कामासुर को **च**=और **धुनिम्**=कम्पित करनेवाले क्रोध को, **पिप्रुम्**=अपने ही को भरते चलनेवाले (प्रा पूरणे) लोभ को, **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले मद को तथा **शुष्णम्**=सब रस का शोषण कर लेनेवाले द्वेष को **वृणक्**=हिंसित करता है। नाम-स्मरण ही इस कार्य में इसे समर्थ करता है। (ङ) यह इन्द्र **पुराम्**=असुरों की पुरियों के **च्यौत्नाय**=च्युत (नष्ट) करने के लिये तथा **शयथाय**=असुरभावों को भूमिशायी कर देने के लिए **नू चित्**=शीघ्र ही समर्थ होता है।

भावार्थ—इन्द्र के जीवन का केन्द्रीभूत बिन्दु नाम-स्मरण होता है। यही इसे विषयमूढ होने से व मिथ्याचार से बचाता है। इसी के द्वारा यह 'चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर व शुष्ण' को मारता है और असुरों की पुरियों का विध्वंस करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्र कौन?

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः॥ ९॥

(१) **उदावता**=उत्कृष्ट रक्षण करनेवाले, **त्वक्षसा**=शत्रुओं को छील देनेवाले, नष्ट कर देनेवाले, **पन्यसा**=स्तुत्य बल से युक्त हुआ-हुआ हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **वृत्रहत्याय**=वासना के विनाश के लिए **रथम्**=इस शरीर-रथ पर **तिष्ठ**=स्थित हो। (२) इस शरीर-रथ पर अधिष्ठित होकर **दक्षिणत्रा हस्ते**=दाहिने हाथ में **वज्रं आधिष्व**=क्रियाशीलतारूप वज्र को धारण कर। कुशलतापूर्वक कर्मों से तेरा जीवन व्याप्त हो। और हे **पुरुदत्र**=खूब दान देने योग्य धन से युक्त हुआ-हुआ तू **मायाः अभि**=प्रज्ञानों का लक्ष्य करके **प्रमन्द**=प्रकृष्ट दीप्तिवाला हो (मन्दतिः ज्वलतिकर्मसु)।

भावार्थ—इन्द्र वह है, (क) जो उत्कृष्ट बल से युक्त हुआ-हुआ वासना का विनाश करता है, (ख) कुशलता से कर्मों में प्रवृत्त रहता है और (ग) धनयुक्त होता हुआ प्रज्ञान दीप्त बनने का

यत्न करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'गम्भीर ऋष' हेति

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा।
गम्भीरया ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥ १० ॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **न**=जैसे **शुष्कं वनम्**=सूखे वन को **अग्निः**=आग जला देती है, उसी प्रकार तू **हेती**=अपने वज्र के द्वारा, क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा (हि गतौ) **रक्षः निधक्षि**=राक्षसी भावों को भस्म कर देता है। तू इनके लिये **भीमा अशनिः न**=भयङ्कर विद्युत् के समान होता है। विद्युत्पतन से वृक्षों का नामोनिशान नहीं रहता, इसी प्रकार तू क्रियाशीलता से इन राक्षसीभावों का अन्त करता है। (२) **यः**=जो तू **गम्भीरया ऋष्वया**=गम्भीर व महान् हेति से, क्रियाशीलतारूप वज्र से **रुरोज**=इन आसुरभावों का भंग करता है, इन **दुरिता**=पापों को **अध्वानयत्**=रुला देता है, आधार विनाश से ये रो उठते हैं, **च**=और **दम्भयत्**=तू इनका विनाश करता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता रूप वज्र को धारण करके आसुरीभावों का विनाश करता है। हमारी क्रियाएँ गम्भीर व महान् हों हम इन क्रियाओं में तत्पर होकर शत्रुओं का अन्त कर दें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऐश्वर्य-शक्ति

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सहस्रं पथिभिः**=हजारों मार्गों से **राया**=ऐश्वर्य के साथ **आयाहि**=हमें प्राप्त होइये। हम आपकी कृपा से विविध मार्गों से धनों के कमानेवाले हों। हे **तुविद्युम्न**=महान् ज्योतिवाले प्रभो! आप **तुविवाजेभिः**=महान् शक्तियों के साथ **अर्वाक् आयाहि**=हमारे अभिमुख प्राप्त होइये। ज्ञान के द्वारा ही शक्ति पवित्र व सुरक्षित बनी रहती है। (२) हे **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! हमें उस ऐश्वर्य और शक्ति को दीजिए, **यस्य**=जिसके **योतोः**=पृथक् करने के लिये **अदेवः**=कोई भी आसुरभाव व आसुरीवृत्तिवाला पुरुष **नू चित्**=नहीं ही **ईशे**=समर्थ होता है। ('नू चित्' इति निषेधार्थे)।

भावार्थ—प्रभु हमें ऐश्वर्य व शक्ति को प्राप्त कराएँ। कोई भी आसुरभाव हमारे इस ऐश्वर्य व शक्ति के विनाश का कारण न बन जाए।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

निराधार व सर्वाधार

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्द्दिवो ररपे महिमा पृथिव्याः।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२ ॥

(१) **तुविद्युम्नस्य**=उस महान् ज्ञान की ज्योतिवाले, **स्थविरस्य**=प्रवृद्ध, **घृष्वेः**=शत्रुओं का घर्षण करनेवाले प्रभु की **महिमा**=महत्त्व **दिवः**=द्युलोक के द्वारा तथा **पृथिव्याः**=पृथिवी से **ररपे**=प्रकर्षेण गायी जा रही है। 'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः'। पृथिवी

से उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियों में तथा पृथिवीस्थ पर्वतों, नदियों व वनों में तथा आकाश के तारों व उमड़ते हुए बादलों में प्रभु की महिमा किसे नहीं दिखती? (२) **यस्य**=इस महान् प्रभु का **शत्रुः न अस्ति**=शातयिता (=नष्ट करनेवाला) कोई नहीं है, **न प्रतिमानं अस्ति**=इसका कोई प्रतिनिधि भी नहीं हो सकता। इस **पुरुमायस्य**=अनन्त प्रज्ञानवाले, **सह्योः**=शत्रुओं के अभिभावक का **न प्रतिष्ठिः**=कोई और आधार देनेवाला नहीं है, ये प्रभु ही सर्वाधार हैं।

भावार्थ—वे प्रभु महान् ज्ञान की ज्योतिवाले प्रवृद्ध, शत्रुओं के कुचलनेवाले, अनन्त महिमावाले व अनुपम व स्वयं निराधार होते हुए सर्वाधार हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'कुत्स आयु अतिथिग्व तूर्वयाण'

प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वाणं धृषता निनेथ॥ १३॥

(१) हे प्रभो! **अद्या**=आज भी **ते**=आपका **तत्**=वह **कृतं करणम्**=किया गया काम **प्रभूत्**=प्रकाशित हो रहा है **यत्**=कि आप **कुत्सम्**=(कुथ हिंसायाम्) वासनाओं का संहार करनेवाले को, **आयुम्**=(इ गतौ) गतिशील पुरुष को तथा **अतिथिग्वम्**=उस महान् अतिथि प्रभु की ओर चलनेवाले को अथवा अतिथियों का स्वागत करनेवाले को रक्षित करते हो ('ररक्षिथ' क्रियापद अध्याहृत है) और **अस्मै**=इसके लिए **पुरु सहस्रा**=बहुत हजारों धन **निशिशाः (अदराः)**=देते हैं। आप इन धनों को **क्षां अभि**=पृथिवी का, इस पार्थिव शरीर का लक्ष्य करके देते हैं। पार्थिव शरीर का रक्षण इन पार्थिव धनों से ही तो हो पायेगा। (२) आप **तूर्वयाणम्**=अपने कर्त्तव्य कर्मों में त्वरित गतिवाले इस ज्ञान-भक्त (=दिवोदास) पुरुष को **धृषता**=शत्रु धर्षक बल के द्वारा **उनिनेथ**=इन धनों में आसक्ति से ऊपर उठाते हो। प्रभु आवश्यक धन देते हैं और साथ ही इन धनों में न फँसने की शक्ति भी प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम 'वासनाओं का संहार करनेवाले (कुत्स), गतिशील (आयु), अतिथि-सेवक (अतिथिग्व)' बनकर प्रभु से रक्षणीय बनें। प्रभु से धनों को प्राप्त करें और शीघ्रता से कर्त्तव्य कर्मों में तत्पर रहते हुए उन धनों में आसक्त न हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अहि-हन्ता' प्रभु

अनु त्वाहिं ध्रे अधं देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम्।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः॥ १४॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के पुरुष **अहिध्ने**=ज्ञान को विनष्ट करनेवाली वासना के विनाश के निमित्त **त्वा अनुमदन्**=आपका स्तवन करते हैं। आपका स्तवन वासना-विनाश के द्वारा उनके ज्ञान का कारण बनता है। आप ही तो **कवीनां कवितमम्**=ज्ञानियों के भी ज्ञानी हैं, देवों के देव हैं, गुरुओं के गुरु हैं 'स पूर्वेषामपि गुरुः०'। (२) **यत्र**=जिस स्तुति के होने पर **गृणानः**=ज्ञानोपदेश करते हुए आप **बाधिताय जनाय**=भौतिक आवश्यकताओं से बाधित इस पुरुष के लिए **दिवे**=ज्ञान-प्रकाश के वर्धन के लिए व **तन्वे**=शरीर-रक्षण के लिए **वरिवः**=धन को **करः**=करते हैं। धन के दो ही मुख्य उद्देश्य हैं—(क) शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा (ख) ज्ञानवृद्धि के साधनों को जुटाना।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु ही इनकी वासना का विनाश करते हैं। प्रभु ही शरीर रक्षा व ज्ञानवृद्धि के साधनों को जुटाने के लिए आवश्यक धन देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

खाली समय का उपयोग

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः॥ १५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **अमर्त्याः देवाः**=विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले देववृत्ति के पुरुष **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्करूप द्युलोक में तथा शरीररूप पृथिवी में **ते**=आपके **तत् ओजः**=उस प्रसिद्ध बल को **अनुजिहते**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। आपकी उपासना से ही उनका मस्तिष्क ज्ञानदीप्त व शरीर सशक्त बनता है। (२) आप इन अपने प्रिय पुत्रों को यही उपदेश देते हैं कि हे **कृत्नो**=कर्त्तव्य-कर्म-परायण जीव! **यत् ते अकृतं अस्ति**=जो तेरा कर्त्तव्य-कर्म अवशिष्ट है उसे **कृष्व**=कर। और इन कर्त्तव्य कर्मों को करके अवशिष्ट सारे समय में **यज्ञैः**=लोकहित के लिए किये जानेवाले श्रेष्ठ कर्मों के साथ **नवीयः**=अत्यन्त स्तुत्य **उक्थम्**=प्रशंसनीय वेदज्ञान व स्तोत्रों को **जनयस्व**=उत्पन्न कर। तेरा अपने कर्त्तव्यों से अवशिष्ट समय इन यज्ञों स्तोत्रों व ज्ञान प्राप्ति में ही बीते।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना से दीप्त मस्तिष्क व सशक्त शरीर को प्राप्त करें। कर्त्तव्य कर्मों को करके यज्ञों व स्तोत्रों में अवशिष्ट समय को बिताएँ।

अगले सूक्त में भी भरद्वाज बार्हस्पत्य इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

द्विबर्हाः

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥ १॥

(१) **महान्**=पूजनीय (मह पूजायाम्) **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **नृवत्**=नेता की तरह, जैसे एक नेता अपने अनुयायियों में उत्साह का संचार करता है, उसी प्रकार **आ चर्षणि प्राः**=समन्तात् श्रमशील मनुष्यों का पूरण करनेवाले हैं। **उत**=और वे प्रभु **द्विबर्हाः**=शरीर व मस्तिष्क दोनों का वर्धन करनेवाले हैं। **सहोभिः अमिनः**=अपने बलों के कारण हिंसित होनेवाले नहीं। (२) **अस्मद्र्यग्**=हमारी ओर आनेवाले होते हुए **वीर्याय**=हमारे पराक्रम के लिए **वावृधे**=बढ़ते हैं। **उरुः**=वे विशाल व **पृथुः**=गुणों से प्रथित प्रभु **कर्तृभिः**=स्तोताओं के द्वारा **सुकृतः भूत्**=उत्तमता से स्तुति किये जाते हैं व परिवरित (उपासित) होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का पूजन करें, प्रभु हमारा पूरण करेंगे। हमारी मस्तिष्क व शरीर की उन्नति का कारण होते हुए हमसे वीर्यवत् कर्मों को करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ऋष्वं अजरं युवानम्

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
अषाळहेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि॥ २॥

(१) **धिषणा**=हमारी बुद्धि **सातये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए **इन्द्रं एव**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **धात्**=धारण करे। हम अपनी बुद्धि को प्रभु के विचार के लिए ही उपयुक्त करें। यह प्रभु चिन्तन हमें वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला होगा। उस प्रभु का हम चिन्तन करें जो **बृहन्तम्**=अत्यन्त प्रवृद्ध हैं, **ऋष्वम्**=दर्शनीय हैं, **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले व **युवानम्**=हमारे से बुराइयों को पृथक् करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं। (२) उस प्रभु को हमारी बुद्धि धारण करे जो **अषाढेन**=शत्रुओं से न सहने योग्य **शवसा**=बल से **शूशुवांसम्**=बढ़े हुये हैं और **यः**=जो **सद्यः चित्**=शीघ्र ही **असामि**=पूर्णताय **ववृधे**=वृद्धि को प्राप्त होते हैं, अर्थात् जिनमें कहीं भी अधूरापन नहीं। अपने उपासकों को भी वे पूर्ण बनाते हैं।

भावार्थ—हम अपनी बुद्धियों को प्रभु चिन्तन में व्यापृत करें। ये प्रभु हमें शत्रुओं से असह्य बल को प्राप्त करायेंगे और हमें पूर्णता की ओर बढ़ायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'पृथू-करस्ना-बहुला' गभस्ती

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यग्वक्सं मिमीहि श्रवांसि।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **पृथू करस्ना**=विशाल कर्मों को करनेवाली **बहुला**=खूब दान देनेवाली **गभस्ती**=बाहुओं को **अस्मद्र्यक्**=हमारे अभिमुख **संमिमीहि**=बनाइये। तथा **श्रवांसि**=ज्ञानों को करिये। आपकी कृपा से हम खूब क्रियाशील दान देनेवाली भुजाओं को तथा ज्ञानों को प्राप्त करें। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का दमन करनेवाले आप **दमूनाः**=दान्तमनवाले होते हुए **आजौ**=संग्राम में **अस्मान् अभ्याववृत्स्व**=हमें प्राप्त होइये, **इव**=जैसे **पशुपाः**=पशुओं का रक्षक **पश्वः यूथा**=पशुओं के झुण्डों को रक्षा के लिए प्राप्त होता है। प्रभु को प्राप्त करके हम संग्राम में विजयी हों।

भावार्थ—प्रभु हमें विशाल कर्म करनेवाली दानशील भुजाएँ प्राप्त कराएँ तथा संग्राम में हमें प्राप्त हों जिनसे हम विजयी बनें और शत्रुओं से अपना रक्षण कर पाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अनेद्याः अनवद्याः अरिष्टाः

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः॥ ४॥

(१) **अस्य शाकैः**=इसके सामर्थ्यों से **चतिनम्**=शत्रुओं का नाश करनेवाले **तं वः (त्वां)**=उस तुझ **इन्द्रम्**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **इह**=इस जीवन में **नूनम्**=निश्चय से **वाजयन्तः**=शक्ति प्राप्ति की कामना करते हुए **हुवेम**=पुकारते हैं। प्रभु की उपासना से ही वह शक्ति मिलती है, जो हमें शत्रुओं का वध करने में समर्थ करती है। (२) इस शक्ति को प्राप्त करके शत्रुओं का वध करते हुए हम ऐसे बनें **यथा चित्**=जैसे निश्चय से **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **जरितार**=स्तोता लोग **आसुः**=होते हैं। हम भी उनकी तरह ही **अनेद्या**=अनिन्दनीय, **अनवद्याः**=पापरहित व **अरिष्टाः**=अहिंसित हों।

भावार्थ—प्रभु के आराधन से हम शत्रु-नाशक शक्ति को प्राप्त करके अनिन्दनीय, पापरहित, अहिंसित जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धृतव्रतः-धनदाः

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः॥ ५॥

(१) वे प्रभु **धृतव्रतः**=सूर्य आदि सब देवों के व्रतों का धारण करनेवाले हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे व अन्य लोक-लोकान्तर प्रभु के नियमों में ही चलते हैं। वे प्रभु हम सब जीवों के लिये **धनदाः**=धनों को देनेवाले हैं। **सोमवृद्धः**=वे प्रभु सोमरक्षण के द्वारा हमारे अन्दर अधिक प्रादुर्भूत् होते हैं, सोमरक्षण के द्वारा ही हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। **सः हि**=वे ही **वामस्य**=वननीय, चाहने योग्य **वसुनः**=निवास के लिए आवश्यक धन के स्वामी हैं और **पुरुक्षुः**=पालक व पूरक अन्नोंवाले हैं। वननीय वसुओं के द्वारा हमें इन अन्नों को प्राप्त कराते हैं। (२) **अस्मिन्**=इस प्रभु में **पथ्याः**=हमारे लिये हितकर **रायः**=ऐश्वर्य **सं जग्मिरे**=इस प्रकार संगत होते हैं, **न**=जैसे कि **यादमानाः**=(अतिगच्छन्त्यः) बहती हुई **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रे**=समुद्र में संगत हो जाती हैं। प्रभु सब पथ्य ऐश्वर्यों के निधान हैं। प्रभु की प्राप्ति से ये सब ऐश्वर्य हमें प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा हम सूर्यादि के व्रतों का धारण करनेवाले प्रभु के अधिकाधिक समीप होते हैं। सब ऐश्वर्यों के अधिष्ठान ये प्रभु ही हैं। प्रभु की प्राप्ति में सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शविष्ठं शवः, ओजिष्ठं ओजः

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम्।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै॥ ६॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारे लिये **शविष्ठं शवः**=अधिक से अधिक शक्ति को देनेवाले बल को **आभर**=भरिये। इस बल से युक्त होकर हम शत्रुओं को शीर्ण कर सकें। हे **अभिभूते**=शत्रुओं को पराभूत करनेवाले प्रभो! **उग्रम्**=शत्रुओं के लिए भयंकर **ओजिष्ठम्**=ओजस्वितम **ओजः**=ओज को हमें प्राप्त कराइये। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले प्रभो! **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **विश्वा**=सब **वृष्ण्या**=शक्ति का सेचन करनेवाली **द्युम्ना**=ज्ञान-ज्योतियों को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **दाः**=दीजिए, जिससे **मादयध्यै**=हम जीवन में वास्तविक आनन्द का अनुभव कर सकें। 'शविष्ठ शव' हमें रोगों को जीतने में समर्थ करता है, ओजिष्ठ ओज के द्वारा हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को अभिभूत कर पाते हैं। 'वृष्ण्य द्युम्नों' के द्वारा सब आवरणों व अन्धकारों को दूर करके हम प्रभु का दर्शन करते हैं और वास्तविक आनन्द को पाते हैं।

भावार्थ—हम बल सम्पन्न होकर रोगों से न दबें। ओजस्विता हमें काम-क्रोध को अभिभूत करने में समर्थ करे। शक्तियुक्त ज्ञान-ज्योति हमें वास्तविक आनन्द को प्राप्त करानेवाली हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पृतनाषाट्-अमृधः' मदः

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपका **मदः**=मद-शक्ति-जनित उल्लास **पृतनाषाट्**=शत्रु-सैन्य का मर्षण करनेवाला व **अमृधः**=अहिंसित है, **तम्**=उसे **नः**=हमारे लिए **आभर**=सर्वथा प्राप्त कराइये। उस मद को, जो **शूशुवांसम्**=बढ़ने ही वाला है, न्यून होनेवाला नहीं। (२) **येन**=जिस मद के द्वारा **तोकस्य तनयस्य सातौ**=पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति में **मंसीमहि**=हम सदा आपका स्तवन करें। और **त्वा ऊताः**=आपसे रक्षित हुए-हुए **जिगीवांसः**=सदा विजयी हों।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम उस शक्ति-जनित उल्लास को प्राप्त करें जो—(क) शत्रुसंहार द्वारा हमारी वृद्धि का कारण बने, (ख) उत्तम पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करानेवाला हो, (ग) सदा हमें विजयी बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वृषणं 'शुष्मम्'

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतां शूशुवांसं सुदक्षम्।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामींरजामीन्॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए **वृषणम्**=सुखों का सेचन करनरेवाले **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **आभर**=प्राप्त कराइये। जो बल **धनस्पृताम्**=हमारे धनों का पालक हो, **शूशुवांसम्**=वृद्धि का कारण बने। **सुदक्षम्**=उत्तम उन्नति का साधन हो। (२) **येन**=जिस बल के द्वारा **तव ऊतिभिः**=आपके रक्षणों से **जामीन् उत अजामीन्**=बन्धुरूप व अबन्धुरूप (अथवा जन्म के साथ उत्पन्न 'सहज' व इससे भिन्न 'कृत्रिम') सभी **शत्रून्**=शत्रुओं को **पृतनासु**=संग्रामों में **वंसाम**=(हनाम) नष्ट कर सकें।

भावार्थ—प्रभु हमें वह बल दें जिससे कि हम उत्तम धनों को प्राप्त करके उन्नत हों तथा सब शत्रुओं का पराभव कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

शुष्मः द्युम्नम्

आ ते शुष्मा वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ते**=आपका **वृषभः**=सुखों का सेचन करनेवाला **शुष्मः**=शत्रु-शोषक बल **पश्चात्**=पीछे की ओर से **आ एतु**=हमें सर्वथा प्राप्त हो। इसी प्रकार **उत्तरात् आ (एतु)**=उत्तर की ओर से प्राप्त हो **अधरात्**=नीचे की ओर से और **पुरस्तात्**=सामने की ओर से भी **आ (एतु)**=हमारी ओर आये। (२) यह बल **विश्वतः**=सब ओर से **अर्वाङ्**=हमारे अभिमुख होता हुआ हमें **अभि आ समेतु**=आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्त हो। हे प्रभो! इस बल के साथ **स्वः वत्**=प्रकाशवाले व सुख के कारणभूत **द्युम्नम्**=ज्ञान प्रकाश को **अस्मे धेहि**=हमारे लिये धारण करिये।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमारे में सब दिशाओं से बल का धारण करिये। बल के साथ हमारे लिये ज्ञान के प्रकाश को भी प्राप्त कराइये। यह ज्ञान का प्रकाश हमारे सुखों का कारण बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उभय वसु-प्राप्ति

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **ते**=आपकी **नृतमाभिः ऊती**=नेतृतम-अधिक से अधिक उन्नतिपथ पर ले चलनेवाली रक्षाओं के द्वारा **श्रोमतेभिः**=श्रोतव्य ज्ञानों व यशों के साथ **नृवत्**=उत्तम नरोंवाले **वामम्**=वननीय (सुन्दर) धन को **वंसीमहि**=प्राप्त करें। प्रभु से रक्षित हुए-हुए हम पुरुषार्थ से धनों को प्राप्त करें। ये धन ज्ञान, यश व उत्तम वीर सन्तानों से युक्त हों। इन धनों के कारण हमारे जीवनों में विलास, अपयश व रोग न आ जाएँ। (२) हे **राजन्**=दीप्त प्रभो! आप **उभयस्य**=पार्थिव व दिव्य दोनों **वस्वः ईक्षे**=धनों के ईश हैं। भौतिक धनों को भी तथा अध्यात्म धनों को भी आप ही धारण करते हैं। सो आप **महि**=महान्, **स्थूरम्**=विपुल तथा **बृहन्तम्**=गुणों से परिवृद्ध **रत्नम्**=रमणीय धन को **धाः**=हमारे में धारण करिये।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हम श्रोतव्य ज्ञानों के साथ वननीय धनों को प्राप्त हों। प्रभु भौतिक व अध्यात्म दोनों धनों को हमारे में धारण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विश्वासाहं उग्रं सहोदाम्

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥ ११॥

(१) हम **नूतनाय**=सदा नवीन व प्रशंसनीय **अवसे**=रक्षण के लिए **इह**=इस जीवन में **तम्**=उस प्रभु को **हुवेम**=पुकारते हैं, जो **मरुत्वन्तम्**=प्रशस्त प्राणोंवाले हैं। वस्तुतः प्रभु इन प्राणों के द्वारा ही हमारा रक्षण करते हैं। इन प्राणों की साधना से हम सदा नीरोग व सशक्त बन पाते हैं। **वृषभम्**=वे प्रभु हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाले हैं। प्राणायाम के द्वारा शक्ति का अंग-प्रत्यंग में सेचन होता है। **वावृधानम्**=वे प्रभु खूब ही वृद्धि का कारण हैं। **अकवारिम्**=सब कुत्सित शत्रुओं के अभाववाले हैं। (२) हम उस प्रभु को पुकारते हैं जो **दिव्यम्**=प्रकाशमय **शासम्**=सबके शासक **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यवान् हैं। **विश्वासाहम्**=सब शत्रुओं का मर्षण करनेवाले हैं, **उग्रम्**=तेजस्वी हैं, **सहोदाम्**=बल को देनेवाले हैं। इस बल के द्वारा वे हमें आत्मरक्षण के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु प्रशस्त प्राणशक्ति व बल को देकर हमारा रक्षण करते हैं। हम सदा उस दिव्य परमैश्वर्यशाली तेजः-पुञ्ज शासक का आराधन करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उत्तम 'सन्तान, इन्द्रियाँ व कर्म'

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु॥ १२॥

(१) एक व्यक्ति अपने सारे परिवार व समाज के कल्याण की कामना करता हुआ प्रार्थना करता है कि हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **येषु अस्मि**=जिन लोगों में मैं भी एक सदस्य हूँ, **एभ्यः**

नृभ्यः=इन लोगों के लिए, इनके रक्षण के लिए उस **जनम्**=मनुष्य को **रन्धया**=वशीभूत करिए जो कि **चित्**=निश्चय से **महि मन्यमानम्**=बहुत ही अभिमान करता है। अभिमान के कारण जो औरों की परेशानी का कारण बनता है, उसको वशीभूत करके आप सबका कल्याण करिये। (२) **अधा**=अब **हि**=निश्चय से **त्वा**=आपको **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी पर, इस शरीर में निवास करते हुए **शूरसातौ**=शूरों से सम्भजनीय संग्राम में **हवामहे**=पुकारते हैं जिससे **तनये**=उत्तम सन्तानों को हम प्राप्त कर सकें (=उत्तम तनयों के निमित्त) **गोषु**=उत्तम इन्द्रियों के निमित तथा **अप्सु**=उत्तम कर्मों के निमित्त हम आपको पुकारते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! इस जीवन में हम किसी अभिमानी पुरुष से दब न जायें। जीवन-संग्राम में आपका स्मरण करते हुए उत्तम सन्तानों, इन्द्रियों व कर्मों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

सर्वशत्रु विजय

व॒यं त॑ एभिः पुरुहूत स॒ख्यैः शत्रोः॑शत्रो॒रुत्त॑र॒ इत्स्या॑म।
घ्नन्तो॑ वृ॒त्राण्युभया॑नि शूर रा॒या म॑देम बृह॒ता त्वोता॑ः॥ १३॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपकी **एभिः**=इन **सख्यैः**=मित्रताओं के द्वारा **शत्रोःशत्रो**=प्रत्येक शत्रु से, रोग व वासनारूप सभी शत्रुओं से अथवा 'जामि व अजामि' रूप सब शत्रुओं से (८म मन्त्र) **उत्तरे इत् स्याम**=अधिक ही हों, विजयी ही हों। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **त्वा ऊताः**=आपके द्वारा रक्षित हुए-हुए हम **उभयानि वृत्राणि**=रोग व वासनारूप दोनों वृत्रों को **घ्नन्तः**=नष्ट करते हुए **बृहता राया मदेम**=वृद्धि के कारणभूत ऐश्वर्य से आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता में शत्रुओं को पराजित करके उत्कृष्ट ऐश्वर्य से हम आनन्दित हों।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**आर्ष्यनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

कैसा धन?

द्यौर्न य इ॑न्द्रा॒भि भूमा॒र्यस्त॒स्थौ र॒यिः शव॑सा पृ॒त्सु जना॑न्।
तं नः॑ स॒हस्र॑भरमुर्व॒रा॒सां द॒द्धि सू॑नो सहसो वृत्र॒तुर॑म्॥ १॥

(१) **यः रयिः**=जो धन **पृत्सु**=संग्रामों में **अर्यः जनान्**=शत्रुभूत पुरुषों को **शवसा**=बल के द्वारा **अभितस्थौ**=इस प्रकार आक्रान्त करता है, **न**=जैसे कि **द्यौः**=देदीप्यमान सूर्य **भूम**=इस पृथिवी पर अधिष्ठित होता है। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए **तं दद्धि**=उस धन को दीजिए। हम धन को प्राप्त करके शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले हों, न कि शत्रुओं से शीर्ण हो जानेवाले। (२) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! हमें उस धन को दीजिये जो **सहस्रभरम्**=हजारों का भरण करनेवाला हो। केवल अपना ही पेट भरने के लिए न हो। **उर्वरासां**=(उर्वरा+सन् संभक्तौ) सर्वसस्याढ्य (=उपजाऊ) भूमियों का सम्भजन करनेवाला हो। धन का विनियोग हम भूमि को उपजाऊ बनाने में करें। **वृत्रतुरम्**=जो धन ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाला हो। ज्ञान प्राप्ति का साधन बनते हुए यह धन वासनाओं को हमारे से दूर करे।

भावार्थ—हमें वह धन दीजिये जो कि—(क) शत्रुओं को पराजित करे, (ख) हजारों का भरण करे, (ग) भूमि को उपजाऊ बनाने में विनियुक्त हो तथा (घ) वासना संहार करनेवाला हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

ज्ञान-दिव्यागुण-बल

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **तुभ्यम्**=तेरे लिए **दिवः न**=ज्ञान की तरह **सत्रा**=सचमुच **देवेभिः**=दिव्य गुणों के साथ **विश्वं असुर्यम्**=सब बल **अनुधायि**=ज्ञान धारण किया जाता है। प्रभु के उपासन के होने पर 'ज्ञान, बल व दिव्यगुणों' की प्राप्ति होती है। उत्तरोत्तर इनकी वृद्धि होती चलती है। (२) **यत्**=जब कि हे **ऋजीषिन्**=ऋजु (सरल) मार्ग से गति करनेवाले जीव! **विष्णुना सचानः**=उस व्यापक परमात्मा से मेलवाला होता हुआ तू **अपः वव्रिवांसम्**=सब कर्मों पर परदा डाल देनेवाले, कर्त्तव्य मार्ग से भ्रष्ट कर देनेवाले, **अहिम्**=(आहन्तारं) सब दृष्टिकोणों से विनाशक **वृत्रम्**=वासनारूप शत्रु को **हन्**=तू विनष्ट करता है। इस वासनारूप शत्रु के विनाश से वह बल प्राप्त होता है, वह ज्ञान व दिव्यगुण प्राप्त होते हैं जिनसे कि हम उत्तरोत्तर आगे बढ़ते चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से 'ज्ञान, दिव्यगुणों व बल' की प्राप्ति होती है, प्रभु से मिलकर हम वासनारूप विनाशक शत्रु का विनाश कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

तवसः तवीयान्

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्तुमावत्॥ ३॥

(१) **तूर्वन्**=शत्रुओं का हिंसन करता हुआ, **ओजीयान्**=ओजस्वी, **तवसः तवीयान्**=बलवान् से भी बलवत्तर, **कृतब्रह्मा**=(कृतं ब्रह्म येन) सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान को देनेवाला **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **वृद्धमहाः**=अत्यन्त प्रवृद्ध तेजवाले हैं। (२) ये प्रभु **यत्**=जब **विश्वासां पुराम्**=सब आसुर-पुरियों के **दर्तुम्**=विदारक वज्र को **आवत्**=उपासक के जीवन में प्राप्त कराते हैं, तो यह उपासक **सोम्यस्य**=सोम सम्बन्धी **मधुनः**=मधु का (वीर्यशक्ति का) राजा **अभवत्**=राजा होता है। शक्ति को अपने अन्दर सुरक्षित कर पाता है। यह आसुर-पुरियों का विदारक वज्र 'क्रियाशीलता' ही है। क्रियाशील पुरुष वासनाओं से सताया नहीं जाता, और सोम शक्ति का रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं का हिंसन करते हैं। तेजस्वी हैं, हमें ज्ञान देते हैं। ये प्रभु ही हमें क्रियाशील बनाकर हमारी वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

दशोणि कवि

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अत्र अर्कसातौ**=यहाँ जीवनयुद्ध में **दशोणये**=(दश

ओणृ अपनयने) दसों इन्द्रियों को विषयों से अपनीत करनेवाले **कवये**=ज्ञानी पुरुष के लिये **पणयः**=(miser, impious man) कृपणता व अपवित्रता की भावनाएँ **शतैः**=सैंकड़ों की संख्या में **अपद्रन्**=दूर भागती हैं। इसके जीवन में कृपणता व अपवित्रता नहीं रहती। (२) **अशुषस्य**=जिसका शोषण बड़ा कठिन है उस **शुष्णस्य**=सुखा देनेवाले इस वासनारूप असुर के **वधैः**=वधों से यह अपने जीवन में **पित्वः मायाः**=पालक पुरुष के प्रज्ञानों को **किंचन**=कुछ भी, जरा भी न **नारिरेचीत्**=पृथक् नहीं होने देता। वासना ही तो ज्ञान पर परदा डालती है, वासना के विनाश से प्रज्ञान का प्रेरेचन नहीं होता।

भावार्थ—इन्द्रियों को विषयों से पृथक् करते हुए ज्ञानी पुरुष के लिए कृपणता व अपवित्रता के भाव प्रबल नहीं हो पाते। यह वासना-विनाश के द्वारा पालक प्रज्ञा का विनाश नहीं होने देता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

द्रोह से दूर

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ॥ ५॥

(१) **यत्**=जब **वज्रस्य**=क्रियाशीलतारूप वज्र के **पतने**=गतिमय होने पर **शुष्णः**=यह सुखा देनेवाला कामासुर **पादि**=(अभ्रियत) मृत्यु को प्राप्त होता है, अर्थात् क्रियाशीलता के द्वारा जब वासना का विनाश होता है तो यह जितेन्द्रिय पुरुष **विश्वायु**=सम्पूर्ण जीवन में **महः द्रुहः**=महान् द्रोह की भावना से **अपधायि**=दूर स्थापित होता है। वासना ही विद्रोह की जननी है। वासना-विनाश में वास्तविक प्रेम उपजता है। (२) **सः**=वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **सूर्यस्य सातौ**=उस ज्ञान-सूर्य प्रभु की प्राप्ति के निमित्त **कुत्साय**=वासनाओं का संहार करनेवाले **सारथये**=प्रभु रूप सारथि के लिए **उरु**=विशाल **सरथम्**=समान-रथ को **करः**=करता है। जीव प्रभु के साथ जब समान-रथ में स्थित होता है तो वह वासनाओं से अनाक्रान्त हुआ-हुआ ज्ञान-सूर्य को अपने में उत्पन्न कर पाता है।

भावार्थ—हम वासनाओं से ऊपर उठकर द्रोह की भावनाओं से दूर रहें। प्रभु को अपने रथ का सारथि बनाएँ, इसी से वासनाओं से अतिक्रान्त होकर हम ज्ञान-सूर्य के उदय को कर पाएँगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'नमी साप्य व ससत्' बनना

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति॥ ६॥

(१) **श्येनः**=शंसनीय गतिवाले वे प्रभु **अस्मै**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **मदिरम्**=उल्लास के जनक **अंशुम्**=सोम को **प्र (अहरत्)**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं। **न**=(च) और **दासस्य**=विनाश के कारणभूत **नमुचे**=पीछा न छोड़नेवाले इस वृत्र के **शिरः मथायन्**=सिर को प्रभु कुचल देते हैं। नमुचि के विनाश से ही सोम का रक्षण होता है। (२) वे प्रभु **नमीम्**=इस नम्रतावाले **साप्यम्**=उपासनामय जीवनवाले **ससन्तम्**=सांसारिक विषयों के प्रति सोये हुए पुरुष का **प्रावत्**=रक्षण करते हैं। इस नमी को वे **राया**=उत्तम ऐश्वर्य से **संपृणक्**=संयुक्त करते हैं। इस साप्य को वे **इषा**=प्रेरणा से **सम्**=संपृक्त करते हैं, उपासक हृदयस्थ प्रभु से प्रेरणा को प्राप्त करता है। इस 'ससत्' को, सांसारिक विषयों के प्रति सोये हुए पुरुष को **स्वस्ति सं (पृणक्)**=कल्याण से युक्त करते

हैं। सांसारिक भोग-विलासों के प्रति जागृति ही सब दु:खों का कारण बनती है।

भावार्थ—प्रभु हमें उल्लासजनक सोम को प्राप्त करते हैं। हमारे लिये नमुचि (वृत्र) के सिर को कुचलते हैं। नम्र उपासक व सांसारिक विषयों के प्रति सोये हुए का प्रभु रक्षण करते हैं और इन्हें ऐश्वर्य, प्रेरणा व कल्याण से युक्त करते हैं।

ऋषि:—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

पिप्रु-पुरी का प्रलय

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न ददः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः॥ ७॥

(१) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **न**=(संप्रति) अब आप **अहिमायस्य**=आहन्त्री मायावाले, विनाश ही विनाश की कारणभूत मायावाले **पिप्रोः**=अपना ही पूरण करनेवाले लोभरूप आसुरभाव की **दृढाः**=बड़ी मजबूत **पुरः**=नगरियों को **शवसा**=बल के द्वारा **विदर्दः**=विदारित करते हैं। (२) इस लोभ को नष्ट करके हे **सुदामन्**=शोभन दानवाले प्रभो! **दात्रं दाशुषे**=दान को देनेवाले, हविरूप में धन का त्याग करनेवाले, **ऋजिश्वने**=सरल मार्ग से गति करनेवाले, छल-कपट से रहित पुरुष के लिए **तत्**=उस **अप्रमृष्यम्**=शत्रुओं से बाधित न होनेवाले **रेक्णः**=धन को **दाः**=देते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लोभ को नष्ट करते हैं। दानशील पुरुष के लिए उस धन को प्राप्त कराते हैं जो वासनारूप शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता, अर्थात् हमें विषय-वासनाओं में नहीं फँसाता।

ऋषि:—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दशमाय दशोणि

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै॥ ८॥

(१) **सः**=वे प्रभु **स्वभिष्टिसुम्नः**=उत्तम अभ्येषणीय (=चाहने योग्य) स्तोत्रोंवाले हैं। ये स्तोत्र ही उपासक के लिए भवसागर को तरानेवाली नौका बनते हैं। **इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु **वेतसु**=वेतस की तरह नम्र **दशमायम्**=दसों की दसों इन्द्रियों की शक्तिवाले (माया extraordinary power) **दशोणिम्**=दसों इन्द्रियों को विषयों से अवनीत करनेवाले **तूतुजिम्**=शत्रुओं को नष्ट करनेवाले **तुग्रम्**=बलवान् **शश्वत्**=सदा **इभम्**=(अयगत भयं) निर्भयता को धारण करनेवाले पुरुष को **आद्योतनाय**=समन्तात् द्योतित करने के लिए **सीम्**=निश्चय से **मातुः न**=माता के समान इस वेद माता के **उप**=समीप **इयध्यै**=आने के लिए **सृजा**=विसृष्ट करते हैं, निर्मित करते हैं। (२) इस वेद माता के समीप रहता हुआ यह व्यक्ति अपने ज्ञान को दीप्त करके वस्तुत: अपने को श्रेष्ठ बना पाता है। इसके अन्दर यह वेद माता ही 'वेतसुत्व' आदि गुणों का सञ्चार करती है।

भावार्थ—हम वेद माता की गोद में 'नम्र-दसों इन्द्रियों को सशक्त व विषयव्यावृत्त बनानेवाले, शत्रु संहारक, सबल व निर्भय' बन पायें। वेद माता से दी गयी ज्ञान ज्योति हमें ऐसा बनाये।

ऋषि:—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शत्रु विजय व प्रभु प्राप्ति

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम्॥ ९॥

(१) **सः**=वह प्रभु-भक्त **ईम्**=निश्चय से **गभस्तौ**=हाथ में **वृत्रहणम्**=वृत्र (वासना) के विनाशक **वज्रम्**=वज्र को **बिभ्रत्**=धारण करता हुआ, **अप्रतीतः**=शत्रुओं से आक्रान्त न होता हुआ **स्पृधः**=इन स्पर्धा करते हुए शत्रुओं को **वनते**=जीतता है, इन शत्रुओं का हिंसन करके विजय को प्राप्त करता है। (२) काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को जीतकर **हरी तिष्ठत्**=अपने ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों का अधिष्ठाता बनता है। यह **गर्ते अधि**=इस शरीर-रथ पर **अस्ता इव**=शत्रुओं पर बाण फेंकनेवाले के समान स्थित होता है। शत्रुओं को ज्ञान के बाणों से आहत करता हुआ यह अपने से दूर रखता है। कामदेव यदि 'मन्मथ' का रूप धारण करके अपने पञ्चबाणों से इसके ज्ञान को नष्ट करने का यत्न करता है, तो यह ज्ञान के बाणों से काम को विनष्ट करने के लिए यत्नशील होता है। अब ये **वचोयुजा**=इन्द्र के आदेश के अनुसार शरीर-रथ में जुतनेवाले ये इन्द्रियाश्व **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **ऋष्वं वहतः**=उस महान् प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। वशीभूत इन्द्रियाँ प्रभु प्राप्ति का साधन बनती हैं।

भावार्थ—हम क्रियाशीलता रूप वज्र को धारण करते हुए वासना को विनष्ट करें। इन्द्रियों को वशीभूत करके प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

स्तोत्रों व यज्ञों से प्रभु का उपासन

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अवसा**=रक्षण के हेतु से **ते**=आपके **नव्यः**=(नु स्तुतौ) उत्कृष्ट स्तोत्र का **सनेम**=सेवन करें। आपका यह स्तवन हमें वासनाओं के आक्रमण से बचानेवाला होगा **पूरवः**=अपना पालन व पूरण करनेवाले लोग **एना**=इस स्तोत्र के साथ **यज्ञैः**=यज्ञों से **प्रस्तवन्त**=शीर्ण करनेवाले 'शरद्' नामक आसुरभाव, कामवासनारूप वृत्र की पुरियों को **शर्म**=(शृ हिंसायाम्) (शर्मणा) वज्र के द्वारा **दर्त्**=विदीर्ण करते हैं तो इन **दासीः**=कर्मों का उपक्षय करनेवाली सभी वासनाओं को **हन्**=विनष्ट करते हैं और **पुरुकुत्साय**=इस पुरुकुत्स के लिए **शिक्षन्**=धनों को (ऐश्वर्यों को) प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम स्तोत्र व यज्ञों से प्रभु का उपासन करें। प्रभु ही हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हम वास्तविक ऐश्वर्य प्राप्त करायेंगे।

सूचना—'कर्णाविमौ नासिके अक्षणी मुखम्' ये सात शरीरस्थ ऋषि हैं। इनके आश्रमों को आक्रान्त करके वासनाएँ अपने 'पुर्' बना लेती हैं, ये ही तब 'सात पुर' (सप्त शारदीः पुरः) कहलाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु-दत्त धन को प्रभु का ही जानें

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **उशने काव्याय**=आपकी प्राप्ति की कामनावाले ज्ञानी पुरुष के लिए **वृधः**=(वर्धकः) वृद्धि को करनेवाले व **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करनेवाले **भूः**=होते हैं। **वरिवस्यन्**=इसके लिए उत्तम धनों को चाहते हैं (वरिवः इच्छति)।

(२)हे उपासक! तू इस **नववास्त्वम्**=(नु स्तुतौ) स्तुत्य निवास के साधनभूत **अनुदेयम्**=अनुदातव्य धन को **महे पित्रे**=उस महान् पिता के लिए **परादद्दाथ**=वापिस लौटा देता है। इस प्रकार इस धन को **'स्वं नपातम्'**=अपने को न गिरने देनेवाला बनाता है। वस्तुतः प्रभु से दत्त ऐश्वर्य को प्रभु का ही समझें और इस प्रकार उसका विलास में व्यय न कर, लोकहित में ही विनियोग करें तो यह धन हमारे पतन का कारण नहीं बनता। हम अपने को धन का केवल ट्रस्टी (रक्षक) समझें, धन को प्रभु का ही जानें।

भावार्थ—प्रभु हमें धनों को देकर बढ़ाते व पालते हैं। हम इस प्रभु से अनुदातव्य धन को प्रभु का ही जानें। अपने को केवल उसका रक्षक समझें, इस प्रकार यह धन हमारे पतन का कारण न होगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सीराः न स्रवन्तीः

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं धुनिः**=आप शत्रुओं को कम्पित करनेवाले हैं। **धुनिमतीः**=शत्रु-कम्पन शक्तिवाली, **सीराः न स्रवन्तीः**=नदियों की तरह बहती हुई, अर्थात् शान्त व नम्रभाव से अपने क्रियाकलाप को करती हुई **अपः**=प्रजाओं को आप **ऋणोः**=प्राप्त होते हैं। वस्तुतः प्रभु हमारे कर्मों से ही पूजित होते हैं, कर्मों द्वारा पूजन करनेवाले व्यक्ति को प्रभु प्राप्त होते हैं। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब **समुद्रं अतिपर्षि (कामो हि समुद्रः)**=आप इस कामरूप समुद्र के पार ले जाते हो तो **तुर्वशम्**=इस त्वरा से वश में करनेवाले **यदुम्**=यत्नशील मनुष्य को **स्वस्ति पारया**=कल्याण के लिए भवसागर के पार प्राप्त कराते हो। काम-समुद्र को पार करना ही भवसागर को पार करना है।

भावार्थ—प्रभु उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो नम्र व शान्तभाव से अपने कर्त्तव्य कर्मों में लगे रहें। इन्हीं में शत्रु-कम्पन शक्ति उत्पन्न होती है। ये ही काम-समुद्र को पार करके भवसागर को तैरते हैं और कल्याण को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कौन चमकता है?

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्द्रभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यैर्कैः॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विनाशक प्रभो! **ह**=निश्चय से **त्यत् विश्वम्**=वह सब **तव**=आपका ही कार्य है कि **आजौ**=संग्राम में **धुनी**=कम्पित कर देनेवाला क्रोधासुर तथा **चुमुरी**=आचमन कर जानेवाला, शक्ति को चूस लेनेवाला कामासुर **सस्तः**=सोये पड़े हैं, **या**=जिनको **ह**=निश्चय से **सिष्वप्**=आपने ही सुलाया, मारकर इन्हें आपने ही धराशायी किया। (२) **तुभ्यम्**=हे प्रभो! आपकी प्राप्ति के लिए **सोमेभिः**=सोमरक्षणों के द्वारा **सुन्वन्ति**=आपका अभिषव करता हुआ, हृदय में आपका दर्शन करता हुआ, **दभीतिः**=वासनाओं का हिंसन करनेवाला **इध्मभृतिः**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक के पदार्थों के ज्ञानरूप तीन समिधाओं का भरण करता हुआ **अर्कैः पक्थी**=स्तुति-साधन मन्त्रों के द्वारा ज्ञान का परिपाक करनेवाला व्यक्ति **दीदयत् इत्**=निश्चय से ही होता है।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे क्रोध व काम का संहार करते हैं। 'सोमरक्षक-वासनारूप शत्रुओं का नाशक-ज्ञान-समिधाओं का धारक, मन्त्रों द्वारा ज्ञान का परिपाक करनेवाला' व्यक्ति ही संसार में चमकता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पुरुतम कारु'

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या॥ १॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्रभो! **पुरुतमस्य**=(तमु अभिकांक्षायाम्) आपकी प्राप्ति की प्रबल कामनावाले **कारोः**=कुशलता से कर्मों को करनेवाले स्तोता की **इमाः**=ये **हव्याः**=आपको पुकारनेवाली **धियः**=स्तुतियाँ, ज्ञानपूर्वक किये गये स्तोत्र **उ**=निश्चय से **हव्यम्**=स्तुत्य **त्वा**=आपको **हवन्ते**=पुकारती हैं। यह 'पुरुतम कारु' आपको ही स्तुतियों के द्वारा पुकारता है। (२) हे प्रभो! आप ही **रथेष्ठाम्**=इस शरीर रथ के सारथि हैं, **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **नवीयः**=अतिशयेन स्तुत्य हैं। हे प्रभो! आपको ही **रयिः**=सम्पूर्ण धन **विभूतिः**=विभव के हेतुभूत सब ऐश्वर्य तथा **वचस्या**=स्तुति **ईयते**=प्राप्त होती है। सब धनों व ऐश्वर्यों के स्वामी आप हैं तथा सब स्तुति अन्ततः आपकी ही है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाला स्तोता प्रभु को ही पुकारता है। सब धन, ऐश्वर्य व स्तुति अन्ततः प्रभु की ही है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञवृद्धं गिर्वाहसम्

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।
यस्य दिवमति महा पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम्॥ २॥

(१) **तं इन्द्रं उ**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **स्तुषे**=मैं स्तुत करता हूँ **यः**=जो **विदानः**=सर्वज्ञ हैं। **गिर्वाहसम्**=ज्ञान की वाणियाँ का वहन (धारण) करनेवाले हैं। **गीर्भिः**=स्तुति वाणियों से **यज्ञवृद्धम्**=यज्ञों में वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अर्थात् स्तुतियों व यज्ञों द्वारा प्रभु के प्रकाश का अन्तःकरण में वर्धन होता है। (२) **यस्य पुरुमायस्य**=जिस अनन्त प्रज्ञानवाले प्रभु की **महित्वम्**=महिमा **दिवं अति रिरिचे**=सूर्य को व द्युलोक को लांघ जाती है। जो प्रभु सूर्य से अधिक दीप्त हैं और द्युलोक से अधिक विशाल हैं। वे प्रभु **महा**=अपनी महिमा से **पृथिव्याः अतिरिरिचे**=पृथिवी से बहुत अधिक बढ़े हुये हैं। द्युलोक व पृथिवीलोक प्रभु की महिमा को सीमित नहीं कर पाते।

भावार्थ—मैं प्रभु का स्तवन करता हूँ जो सर्वज्ञ हैं, स्तुतियों व यज्ञों द्वारा प्राप्त होते हैं और जो अपनी महिमा से द्युलोक व पृथिवीलोक से भी महान् हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अहिंसा व स्वर्ग प्राप्ति

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥

(१) **सः**=वें प्रभु **इत्**=ही **ततन्वत्**=वृत्र से, वासना से विस्तीर्यमाण **अवयुनम्**=प्रज्ञान-नाशक **तमः**=अन्धकार को **सूर्येण**=मस्तिष्करूप द्युलोक में उदित किये गये ज्ञानसूर्य से **वयुनवत् चकार**=प्रकाशवाला कर देते हैं। ज्ञान सूर्योदय से अज्ञान्धकार को नष्ट करके प्रभु हमारी वासनाओं को विलीन कर देते हैं। (२) हे **स्वधावः**=(स्व+धाव्=शुद्धि) अज्ञानान्धकार के विनाश के द्वारा आत्मा को शुद्ध कर देनेवाले प्रभो! **मर्ताः**=मनुष्य **अमृतस्य ते**=अमरणधर्मा तेरे **धाम**=मोक्षरूप स्थान को, अमृत लोक को **इयक्षन्तः**=अपने साथ संगत करने की कामनावाले होते हुए **कदा (कदाचित्)**=कभी भी **न मिनन्ति**=हिंसा को नहीं करते हैं। हिंसा से ऊपर उठकर ही वे मोक्ष को प्राप्त करने के पात्र बनते हैं।

भावार्थ—वासना जनित अन्धकार को प्रभु ज्ञानसूर्योदय से विनष्ट करते हैं। ज्ञान प्राप्त मनुष्य मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से सर्व प्राणि विहिंसा का वर्जन करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'यज्ञ-अर्क-होतृत्व'

यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४ ॥

(१) **यः**=जो **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **ता**=उन वृत्रवध (वासना-विनाश) व अज्ञान नाश आदि कार्यों को **चकार**=करते हैं, **सः कुहस्वित्**=वे कहाँ हैं? **कं जनं आचरति**=किस मनुष्य को ये प्रभु प्राप्त होते हैं? **कासु विक्षु**=किन प्रजाओं में प्रभु का वास है? (२) हे प्रभो! **कः**=कौन-सा **ते यज्ञः**=आपका यज्ञ मनसे **शम्**=मन के लिए शान्ति को देनेवाला है? **कः अर्कः**=कौन-सा स्तुति साधन मन्त्र **वराय**=आपके वरण के लिए होता है? **कतमः**=कौन-सा **सः**=वह **होता**=यज्ञशेष का सेवन करनेवाला, दानपूर्वक अदन करनेवाला, व्यक्ति है जो आपका वरण कर पाता है? (३) यहाँ मन्त्र के पूर्वार्ध में तीन प्रश्न हैं—(क) वे प्रभु कहाँ हैं, (ख) किस मनुष्य को प्राप्त होते हैं? (ग) किन प्रजाओं में वसते हैं? उत्तरार्ध में प्रश्नों की ही शैली पर उत्तर दिये गये हैं—(क) जहाँ यज्ञ मानस शान्ति का कारण बनते हैं वहाँ प्रभु हैं, (ख) जो स्तुति साधन मन्त्रों का स्वीकार करता है उसे प्रभु प्राप्त होते हैं, (ग) होताओं में, यज्ञशील प्रजाओं में प्रभु का वास है।

भावार्थ—हम 'यज्ञों को, स्तुति-साधन मन्त्रों को तथा होतृत्व दानपूर्वक अदन को' अपनाकर प्रभु को पाते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

क्रियाशीलता व प्रभु मित्रता

इदा हि ते वेविषतः पुराजा प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥

(१) **इदा हि (इदानीम् इव)**=अब की तरह **ते**=वे **वेविषतः**=कर्मों में व्याप्त होनेवाले **पुराजाः**=पूर्वकाल में उत्पन्न हुए-हुए **प्रत्नासः**=पुराणे 'अग्नि, वायु, आदित्य व आंगिरा' आदि ऋषि हे **पुरुकृत्**=पालक व पूरक कर्मों को करनेवाले प्रभो! **सखायः आसुः**=आपके मित्र थे। कर्मशील पुरुष ही प्रभु का मित्र होता है, अकर्मण्य नहीं। (२) ये **मध्यमासः**=जो मध्यम काल में होनेवाले कर्मशील पुरुष थे **उत**=और **नूतनासः**=इस नवयुग में होनेवाले क्रियाशील पुरुष हुए वे सब आपके मित्र हैं, आपकी मित्रता उन्हें सदा प्राप्त रही है। हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **उत**=और **अवमस्य**=इस सब से अवम काल में स्थित व सब से अवम (lowest) स्थिति में स्थित मुझ उपासक का भी **बोधि**=आप ध्यान करें, मैं आपकी कृपादृष्टि से वञ्चित न होऊँ।

भावार्थ—प्रभु सब कालों में क्रियाशील उपासकों के मित्र हैं। मैं भी प्रभु की मित्रता का पात्र बनूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

महान् और अति महान्

तं पृच्छन्तोऽवरासः परांणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **अवरासः**=अवर काल में होनेवाले स्तोता लोग सृष्टि के निर्माण के बाद शरीरों को प्राप्त करनेवाले स्तोता **तम्**=उन आपको **मृच्छन्तः**=जानने की कामना करते हुए **ते**=आपके **पराणि**=उत्कृष्ट **प्रत्ना**=सनातन **श्रुत्या**=श्रोतव्य कर्मों को **अनुयेमुः**=स्तुतिरूप वाणियों में निबद्ध करते हैं, आपके कर्मों का स्तोत्रों द्वारा कीर्तन करते हैं। (२) हे **ब्रह्मवाहः**=ज्ञान की वाणियों को, वेद को वहन करनेवाले **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्रभो! **यात् एव विद्म**=जितना-जितना आपको जानते हैं **तात्**=उतना ही **महान्तम्**=महान् **त्वा**=आपकी **अर्चामसि**=अर्चना करते हैं। जितना-जितना आपका ज्ञान प्राप्त होता है, आप उतने-उतने ही महान् प्रतीत होते हो। आपकी महत्ता का कीर्तन करते हुए हम भी महान् बनने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के सनातन श्रोतव्य कर्मों का स्तोत्रों द्वारा हम कीर्तन करते हैं। जितना-जितना प्रभु के जान पाते हैं, उतना-उतना ही वे बड़े दिखते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रत्न सखा 'वज्र'

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व॥ ७॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **त्वा अभि**=तेरी ओर तेरे सामने **रक्षसः पाजः**=यह राक्षसीभावों का सेनारूप बल **वितस्थे**=विशेषरूप से स्थित हुआ है, तेरे पर आक्रमण के लिए यह तैयार है **महि जज्ञानम्**=महान् प्रादुर्भूत होते हुए **तत्**=उस सैन्य को **अभि सुतिष्ठः**=लक्ष्य करके सम्यक् स्थित हो, उस पर आक्रमण के लिए सावधान होकर स्थित हो। (२) हे **धृष्णो**=धर्षणशील शत्रुओं का पराभव करनेवाले जीव! **तव**=तेरे **प्रत्नेन**=सनातन, सदा के **युज्येन सख्या**=साथ रहनेवाले मित्र **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र से **ता**=उनको **अपनुदस्व**=परे धकेल दे। क्रियाशीलतारूप वज्र द्वारा इनका तू निराकरण करनेवाला हो।

भावार्थ—क्रियाशीलता रूप वज्र से हम निरन्तर आक्रमण करनेवाले राक्षसी भावों को अपने से दूर करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

अनुग्रह-याचना

प्रभु प्रेरणा को सुनकर जीव प्रार्थना करता है—

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ॥ ८॥

(१) हे **कारुधायः वीर**=स्तोताओं का धारण करनेवाले, शत्रु कम्पक **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः**=वे आप **तु**=निश्चय से **नूतनस्य**=मुझे नये **ब्रह्मण्यतः**=स्तोत्रों को अपनाने की कामनावाले की प्रार्थना को **श्रुधि**=सुनिये। मैं भी आपकी कृपा से वीर बनूँ, शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाला होऊँ। (२) **त्वं हि**=आप ही **प्रदिवि**=पुराण काल में **पितॄणाम्**=पितरों के, रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त पुरुषों के **अपिः**=बन्धु हुए हैं। आप ही **शश्वत्**=सदा **इष्टौ**=यज्ञों में उस-उस कामना को समय पर **सुहवः**=सुगमता से पुकारने योग्य **आबभूथ**=होते हैं। सब कोई आपको ही पुकारता है। वस्तुतः इस राक्षस सैन्य के आक्रमण के समय आपने ही तो मेरी सहायता करनी है।

भावार्थ—हे प्रभो! आप सदा पालनात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों के रक्षक होते हैं। मुझ नये स्तोता के आह्वान को सुनिये। आपके अनुग्रह से मैं भी 'वीर' बनूँ। शत्रुओं को कम्पित करके दूर कर सकूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उत्तम जीवन

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **अद्य**=आज **नः**=हमारे **ऊतये**=रक्षण के लिए **वरुणम्**=द्वेष निवारण की देवता को **मित्रम्**=स्नेह की देवता को **इन्द्रम्**=जितेन्द्रियता के दिव्यभाव को **मरुतः**=प्राणों को **प्रकृष्व**=करिये। ये सब **अवसे**=हमारे जीवन की दीप्ति के लिए हों। हम 'निर्द्वेष, स्नेही, जितेन्द्रिय व प्राणसाधक' बनकर अपने जीवन को दीप्त बना सकें। (२) हे प्रभो! आप **पूषणम्**=पोषण की देवता को, **विष्णुम्**=व्यापकता व उदारता के दिव्यभाव को, **अग्निम्**=आगे बढ़ना व उन्नति के भाव को, **पुरन्धिम्**=पालक बुद्धि को, **सवितारम्**=निर्माण की देवता को **प्र (कृष्व)**=हमारे लिये करिये। **ओषधीः**=ओषधियों को **च**=और **पर्वतान्**=पर्वतों को भी हमारे रक्षण का साधन बनाइये। 'ओषधि' शब्द आचार्य के लिए भी प्रयुक्त होता है (आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः) 'पर्वत' वे व्यक्ति हैं जो समाज की न्यूनताओं को दूर कर उनके पूरण में प्रवृत्त हैं। ये ओषधि पर्वत भी हमारे रक्षण व दीपन के लिए हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से स्नेह व निर्द्वेषता के भाव, जितेन्द्रियता व प्राणसाधना की शक्ति हमें प्राप्त हो। हम शरीर का उचित पोषण करनेवाले, उदार वृत्तिवाले प्रगतिशील व पालक बुद्धि से युक्त हों। सदा निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों। उत्तम आचार्यों व समाज-सुधारकों के सम्पर्क में आएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति व अमृतत्व

इ॒म उ॑ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरि॒तारो॑ अ॒भ्य॑र्चन्त्य॒र्कैः।
श्रु॒धी ह॒वमा हु॑व॒तो हु॑वा॒नो न त्वावाँ॑ अ॒न्यो अ॑मृत॒ त्वद॑स्ति॥ १०॥

(१) हे **पुरुशाक**=अनन्त शक्तिवाले, **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण पूजनीय प्रभो! **इमे**=ये **जरितारः**=स्तोता लोग **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **अर्कैः**=स्तुतिसाधन मन्त्रों से **अभ्यर्चन्ति**=पूजते हैं। आपकी उपासना से ही तो वस्तुतः शक्ति प्राप्त होती है। (२) हे प्रभो! **हुवानः**=पुकारे जाते हुए आप **आहुवतः**=पुकारते हुए मेरी **हवम्**=पुकार को **श्रुधि**=सुनिये। हे **अमृत**=अविनाशी प्रभो! **त्वावान्**=आप जैसा **त्वद् अन्यः**=आप से भिन्न **न अस्ति**=नहीं है। आप ही हमारी सब कमियों को दूर कर सकते हैं। आपने ही हमें अमरता प्रदान करनी है।

भावार्थ—प्रभु का ही स्तवन करना योग्य है। प्रभु ने ही हमें शक्ति व अमृतत्व प्राप्त कराना है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अग्निजिह्वा ऋतसापः' देव

नू म॒ आ वाच॒मुप॑ याहि वि॒द्वान्विश्वे॑भिः सूनो सहसो॒ यज॑त्रैः।
ये अ॑ग्निजि॒ह्वा ऋ॒त॒साप॑ आ॒सुर्ये मनु॑ं च॒क्रुरुप॑रं॒ दसा॑य॥ ११॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! **विद्वान्**=सर्वज्ञ होते हुए आप **विश्वेभिः यजत्रैः**=सब यजनीय देवों के साथ **मे वाचम्**=मेरे से की जाती हुई इस स्तुतिवाणी को **नू**=निश्चय से **उप आयाहि**=समीपता से प्राप्त होइये। मैं आपका स्तवन करूँ और सब दिव्य गुणों को प्राप्त करनेवाला बनूँ। (२) मैं उन देवों (=विद्वानों) के सम्पर्क में आऊँ, **ये**=जो **अग्निजिह्वाः**=अग्नि के समान जिह्वावाले हैं, अर्थात् ज्ञानोपदेश द्वारा सब बुराइयों को दग्ध करनेवाले हैं और **ऋतसापः आसुः**=यज्ञों का सेवन करनेवाले हैं। सदा उत्तम कर्मों में लगे रहते हैं। **ये**=जो हमें **मनुम्**=ज्ञानवाला **उपरम्**=वासनाओं से ऊपर उठनेवाला तथा **दसाय चक्रुः**=वासनाओं के उपक्षय के लिए करते हैं। जो हमें अपने ज्ञानोपदेश तथा जीवन से प्रभावित करके वासनाओं के संहार में समर्थ करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारी प्रार्थना को सुनें, हमें दिव्यभावों को प्राप्त कराएँ। प्रभु कृपा से हमें उन ज्ञानियों का सम्पर्क प्राप्त हो जो हमें ज्ञान देकर वासनाओं के पराभव के लिए समर्थ करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अश्रमासः उरवः वहिष्ठाः' इन्द्रियाश्व

स नो॑ बोधि पुरए॒ता सु॒गने॑षूत दु॒र्गेषु॑ प॒थिकृ॒द्विदा॑नः।
ये अश्रमास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठा॒स्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म्॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **पुरः एता**=आगे चलनेवाले, अर्थात् मार्गदर्शक **बोधि**=होइये (भव)। **सुगेषु**=सुगमता से जाने योग्य मार्गों में **उत**=और **दुर्गेषु**=दुःखेन गन्तव्य स्थानों में **पथिकृत्**=आप हमारे लिए मार्ग को करनेवाले हों। **विदानः**=आप ही सर्वज्ञ हैं। आप ही हमारे लिए ठीक मार्ग का ज्ञान देने में समर्थ हैं। (२)

ये=जो आपके **अश्रमासः**=न जल्दी थक जानेवाले, **उरवः**=विशाल, **वहिष्ठाः**=सर्वोत्तम शरीर-रथ का वहन करनेवाले इन्द्रियाश्व हैं, **तेभिः**=उन इन्द्रियाश्वों के द्वारा **नः**=हमें **वाजं अभिवक्षि**=शक्ति की ओर ले चलिए।

भावार्थ—प्रभु (क) हमारे लिये मार्ग-दर्शन करें, (ख) उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराएँ, (ग) शक्ति को दें।

अग्ले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

एक मात्र पूज्य प्रभु

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥ १॥

(१) **यः**=जो **एकः इत्**=एक ही **चर्षणीनाम्**=सब मनुष्यों का **हव्यः**=आह्वातव्य होता है, **तं इन्द्रम्**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु को **आभिः गीभिः**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियों से **अभ्यर्च**=पूजनेवाला हो। स्तुत हुए-हुए प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर तू शत्रुओं का पराभव कर सकेगा। (२) **यः**=जो प्रभु **पत्यते**=सब ऐश्वर्यों के मालिक हैं, **वृषभः**=(कामानां वर्षिता) सब इष्ट पदार्थों का वर्षण करनेवाले, **वृष्ण्यावान्**=बलवान् हैं **सः**=वे **सत्वा**=शत्रुओं के विनाशक (सद्) व सब धनों के प्रापक (सज्), **पुरुमायः**=अनन्त प्रज्ञानवाले व **सहस्वान्**=शत्रुमर्षक शक्तिवाले हैं।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि एक मात्र प्रभु का ही पूजन करे। ये प्रभु शक्ति देंगे, प्रज्ञान को प्राप्त करायेंगे और इस प्रकार सब कामनाओं को पूर्ण करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पूर्व-पिता-नवग्व-सप्त विप्र'

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्तः विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥ २॥

(१) **नः**=हमारे **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले, **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में व्यापृत **नवग्वाः**=स्तुत्य गतिवाले **सप्त विप्रासः**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सातों का पूरण करनेवाले लोग **उ**=निश्चय से **तं अभि वाजयन्तः**=उस प्रभु की ओर अपने को ले जा रहे होते हैं (गमयन्तः)। प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम 'पूर्व बनें, पिता बनें, नवग्व व सप्त-विप्र' बनें। (२) उस प्रभु की ओर अपने को ले जाते हैं जो कि **नक्षद्दाभम्**=अभिगन्ता शत्रुओं का हिंसन करते हैं, **ततुरिं**=भवसागर से तराते हैं, **पर्वतेष्ठाम्**=(पर्व पूरणे) अपना पूरण करनेवाले व्यक्तियों में स्थित होते हैं, **अद्रोघवाचम्**=द्रोह शून्य वाणीवाले हैं और **मतिभिः शविष्ठम्**=प्रज्ञानों के साथ बलवत्तम हैं। अपनी ओर आनेवालों को भी प्रभु ऐसा ही बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यह है कि हम (क) अपनी न्यूनताओं को दूर करें (पूर्व), (ख) रक्षणात्मक कामों में व्यापृत हों (पिता), (ग) स्तुत्य गतिवाले बनें, प्रशस्त कर्मोंवाले (नवग्व), (घ) दोनों कानों, नासिकाछिद्रों, आँखों व मुख को सब कमियों से रहित करने का प्रयत्न करें (सप्त विप्र)। प्रभु की उपासना शत्रु संहार द्वारा हमें भवसागर से तरायेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कैसा धन!

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्ववान्तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३॥

(१) **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **अस्य**=इस **पुरुवीरस्य**=बहुत वीर सन्तानोंवाले, **नृवतः**=प्रशस्त पुरुषोंवाले, **पुरुक्षोः**=पालक व पूरक अन्नवाले **रायः**=धन की **ईमहे**=याचना करते हैं। उस धन को चाहते हैं, जो कि हमारे सन्तानों की वीरता का साधन बने, हमारे गृह के सब पुरुषों को प्रशस्त जीवनवाला बनाए, हमें उस अन्न को प्राप्त कराये जो हमारा पालन व पूरण करे। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले प्रभो! **तम्**=उस धन को **मादयध्यै**=आनन्द प्राप्ति के लिए **आभर**=प्राप्त कराइये **यः**=जो **अस्कृधोयुः**=(कृधु=अल्प) अनल्प है, अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होनेवाला है। **अजरः**=शक्तियों की जीर्णता का कारण नहीं होता। और **स्ववान्**=प्रकाश व सुखवाला है, ज्ञान प्राप्ति का साधन बनता हुआ वास्तविक आनन्द को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभु हमें वह धन दें जो (क) हमारे सन्तानों को वीर बनाये, (ख) हम गृहवासियों के जीवन को प्रशस्त करे, (ग) पालक व पूरक अन्न को प्राप्त कराये, (घ) अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होता रहे, (ङ) शक्तियों को जीर्ण न करे, (च) प्रकाश व सुख प्राप्ति का साधन बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

कस्ते भागः किं वयः?

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यदि**=यदि **पुरा**=पहले **चित्**=निश्चय से **जरितारः**=स्तोता लोग **ते**=आपसे **सुम्नं आनशुः**=सुख व रक्षण को (joy, protection) प्राप्त हुए, तो **नः**=हमारे लिए भी आप **तत् विवोचः**=उन स्तोताओं का ज्ञान दीजिए। हम भी उन स्तोत्रों को करते हुए सुख व रक्षण के पात्र बन पाएँ। (२) हे **दुध्र**=शत्रुओं से **दुर्धर**=बलवाले, **खिद्वः**=शत्रुओं को खदेड़नेवाले, **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे गये, **पुरूवसो**=पालक व पूरक वसुओंवाले प्रभो! **असुरघ्नः**=आसुरभावों को विनष्ट करनेवाले **ते**=आपका **कः भागः**=(भज सेवायाम्) उपासना का साधनभूत स्तोत्र कौन-सा है **किं वयः**=और आपके पूजन के लिए कौन-सा हविर्लक्षण अन्न है। अर्थात् किस प्रकार स्तवन व यज्ञों को करते हुए हम आपको प्रीणित करनेवाले हों।

भावार्थ—हम स्तवन व यज्ञों द्वारा प्रभु का आराधन करते हुए प्रभु से सुख व रक्षण को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वेपी वक्वरी' गीः

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥ ५॥

(१) **तम्**=उस **वज्रहस्तम्**=हाथ में वज्र लिए हुए **रथेष्ठाम्**=शरीर-रथ में स्थित **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु को **पृच्छन्ती**=जानने की कामना करती हुई **यस्य**=जिस उपासक की **गीः**=वाणी

नु=निश्चय से **वेपी**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाला व **वक्करी**=प्रभु के स्तुति-वचनों का उच्चारण करनेवाली होती है, वह **गातुं इषे**=मार्ग पर चलता है और **तुम्रम्**=उस शत्रुओं के संहारक प्रभु की **अच्छ**=और **नक्षते**=गति करता है। (२) यह 'वेपी वक्करी' गिरावाला स्तोता उस प्रभु की ओर गति करता है जो **तुविग्राभम्**=महान् ग्रहीता हैं, सारे ही ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर लिए हुए हैं, **तुविकूर्मिम्**=महान् कर्मों के करनेवाले हैं, अनन्त विस्तृत से लोकों के बनाने व धारण करनेवाले हैं, **रभोदाम्**=बल को देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन करनेवाला मार्ग पर चलता हुआ प्रभु की ओर बढ़ता है। प्रभु इसके लिए बल को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निवराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

असुर-पुर विदारण

अया हु त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन्॥ ६॥

(१) हे **स्वतवः**=स्वभूत बल स्वयं बलशालिन् प्रभो! आप **त्यम्**=उस **अया मायया**=निश्चय से इस माया के द्वारा, संसार जाल के द्वारा, **वावृधानम्**=खूब वृद्धि को प्राप्त होते हुए वासनारूप वृत्र को **मनोजुवा**=मनोवद् वेगवाले **पर्वतेन**=बहुत पर्वोंवाले वज्र से **विरुजः**=भग्न करिये, नष्ट करिये। (२) हे **स्वोजः**=उत्तम ओजवाले **विरप्शिन्**=महान् प्रभो! आप **अच्युता चित्**=जिन्हें स्थान विचलित करना बड़ा कठिन है ऐसे **वीडिता**=अशिथिल **दृढा**=दृढ़ आसुर-पुरियों को **धृषता**=धर्षक वज्र के द्वारा (विरुजः=) नष्ट करते हो।

भावार्थ—इस मायामय संसार में निरन्तर बढ़ती हुई प्रबल वासना को उपासक प्रभु कृपा से ही क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा विनष्ट कर पाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अनिमानः सुवह्या

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्येन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ ७॥

(१) **तम्**=उस **शविष्ठम्**=बलवत्तम **वः प्रत्नम्**=तुझ सनातन पुरुष को **प्रत्नवत्**=अपने से पहले ज्ञानियों की तरह **नव्यस्या धिया**=स्तुत्य ज्ञानपूर्वक कर्मों के द्वारा **परितंसयध्यै**=(तंस to decorate) अपने जीवन में अलंकृत करने का प्रयत्न करता हूँ। प्रभु-स्मरण के द्वारा प्रभु को हृदय में स्थापित करता हुआ मैं अपने जीवन को सुशोभित करता हूँ। (२) **सः**=वह **अनिमानः**=परिमाणरहित, देशकाल से असीमित, **सुवह्या**=उत्तमता से सारे संसार का वहन करनेवाला **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **नः**=हमें **विश्वानि**=सब **दुर्गहाणि**=दुःखों के **अतिवक्षत्**=पार ले जानेवाले हों। वे प्रभु हमारे जीवनों में पैदा हो जानेवाली पेचीदी समस्याओं को सुलझा दें।

भावार्थ—स्तुत्य कर्मों द्वारा हम प्रभु को अपने जीवन में सुशोभित करें। प्रभु हमें दुर्गों व संकटों के पार ले जानेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्रोह व संताप

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

(१) हे **वृषन्**=शक्तिशालिन् प्रभो! आप **द्रुह्वणे जनाय**=द्रोह-जिघांसा की भावना से युक्त पुरुष के लिए **पार्थिवानि**=पृथिवी सम्बन्धी, **दिव्यानि**=द्युलोक सम्बन्धी व **अन्तरिक्षा**=अन्तरिक्ष सम्बन्धी सब पदार्थों को **आदीपयः**=संतापवाला करिये। ये सब त्रिलोकी के पदार्थ द्रोग्धा पुरुष को संताप देनेवाले हों। (२) हे **वृषन्**=शक्तिशालिन्! तू **तान्**=उन द्रोही जनों को **शोचिषा**=अपनी दीप्ति से, **विश्वतः**=सब ओर से **तपा**=संतप्त कर। **ब्रह्मद्विषे**=इस ज्ञान के साथ अप्रीतिवाले पुरुष के लिए **क्षाम्**=इस पृथिवी को **च अपः**=और जलों को भी **शोचय**=दीप्त (संतप्त) कर। इनकी अग्नि में वे द्रोही दग्ध हो जाएँ।

भावार्थ—द्रोह की भावनावाले के लिए सारा संसार संतापक हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

माया-विनाश

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **दिव्यस्य जनस्य**=दिव्य वृत्तिवाले लोगों के **राजा भुवः**=राजा होते हैं, इनके जीवनों को ज्ञानदीप्त व व्यवस्थित करते हैं। **त्वेषसंदृक्**=दीप्त ज्ञानवाले प्रभो! **पार्थिवस्य जगतः**=इस पार्थिव जगत् के भी, अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारे आदि के भी **राजा**=शासक व नियामक हैं। आपके भय से ही ये सब अपनी-अपनी मर्यादा में घूम रहे हैं (२) **इन्द्र**=हे परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **दक्षिणे हस्ते**=दाहिने हाथ में **वज्रं धिष्व**=वज्र को धारण कीजिए, और उससे हे **अजुर्य**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप **विश्वाः मायाः**=सब असुर मायाओं को **विदयसे**=बाधित करते हैं। प्रभु कृपा से ही उपासक आसुरभावों पर विजय पा सकता है।

भावार्थ—प्रभु ही दिव्य जनों के जीवन को दीप्त करते हैं। वे ही सूर्यादि को भी मर्यादाओं में चला रहे हैं। प्रभु ही अपने वज्र से सब आसुर मायाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

संयतं स्वस्तिम् (संयम का शुभ मार्ग)

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कार्यों को करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **वृत्र तूर्याय**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं के विनाश के लिए **बृहतीम्**=वृद्धि की कारणभूत **अमृध्राम्**=हिंसारहित **संयतं स्वस्तिम्**=संयमरूप कल्याण के मार्ग को **आ करः**=सर्वथा करिये। हम संयत शुभ जीवनवाले होकर वासनाओं से दूर रहें। (२) आप उस संयमवृत्ति को हमारे लिये करिये कि **यथा**=जिससे **दासानि**=कर्मरहित लोगों को **आर्याणि**=कर्मयुक्त (ऋ गतौ) **करः**=कर

दीजिये और हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **नाहुषाणि**=मनुष्य-सम्बन्धी **वृत्रा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **सुतुका**=अच्छी प्रकार (पूर्णतया) हिंसायुक्त करिये, अर्थात् वासनाओं का सम्यक् विनाश करके ज्ञान को दीप्त करिये।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम संयम के शुभ मार्ग पर चलते हुए वासनाओं से दूर रहें। कर्महीनता को परे फेंक कर्मशील बनें। वृत्र का पूर्ण विनाश करने में समर्थ हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वरणीय इन्द्रियाश्व

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक्॥ ११॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **वेधः**=विधातः प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **विश्ववाराभिः**=सब से वरणीय **नियुद्भिः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **आगहि**=प्राप्त होइये। आपकी कृपा से हमें वे इन्द्रियाश्व प्राप्त हों जो सब से वरणीय, चाहने योग्य हों। (२) हे **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण पूजनीय प्रभो! **याः**=जिन इन्द्रियाश्वों को **अदेवः**=कोई भी अ-देव, अर्थात् आसुरभाव **न वरते**=रोक नहीं पाता और **न**=नांही कोई **देव**=(वरते) क्रीडा, मद् व स्वप्न (दिव्=क्रीड मद स्वप्नेषु) आदि का भाव घेर पाता है। **आभिः**=इन इन्द्रियाश्वों के साथ **तूयम्**=शीघ्र **मद्र्यद्रिक्**=मदभिमुख **आयाहि**=आइये, शीघ्र मुझे आभिमुखेन प्राप्त होइये। अर्थात् मैं आपकी कृपा से शोभन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कर सकूँ, जो इन्द्रियाश्व, राजस व तामस संसार में विचरनेवाले न होकर सात्त्विक गतिवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमें सब से वरणीय इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराएँ, उन इन्द्रियाश्वों को जो राजस्वी व तामसी मार्गों से न गति करते हुए सात्त्विक गतिवाले ही हों।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु कब मिलते हैं?

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **सोमे सुते**=शरीर में सोम के उत्पादन के होने पर **इत्**=ही **निमिश्लः**=(निमिश्लः) निश्चय से हमारे साथ मेलवाले होते हैं, अर्थात् आपको वही उपासक प्राप्त कर पाता है, जो सोम को शरीर में सुरक्षित करनेवाला हो। **स्तोमे**=स्तुति समूहों के होने पर आप प्राप्त होते हैं तथा **उक्थे**=उच्चैः गेयं **ब्रह्मणि शस्यमाने**=इन ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करने पर आप प्राप्त होते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि—(क) सोम का रक्षण करें, (ख) स्तुति को अपनाएँ, (ग) ज्ञान की वाणियों का ही उच्चारण करें। (२) **यद्वा**=अथवा हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! आप **बाह्वोः**=बाहुवों में **वज्रं बिभ्रत्**=वज्र को धारण करते हुए **युक्ताभ्यां हरिभ्याम्**=शरीर-रथ में जुते इन्द्रियाश्वों के साथ **यासि**=आप गति करते हैं। अर्थात् आपकी प्राप्ति तब होती है जब कि हाथों में क्रियाशीलता रूप वज्र हो और इन्द्रियाश्व चर ही न रहे हों, अपितु शरीर-रथ में जुते हुए यात्रा के मार्ग पर आगे

बढ़ रहे हों।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि—(क) सोम का शरीर में रक्षण हो, (ख) प्रभु-स्तवन निरन्तर चले, (ग) ज्ञान की वाणियाँ का उच्चारण हो, (घ) सतत क्रियाशील जीवन हो, यह क्रियाशीलता ही हमारा वह वज्र बन जाए जो राक्षसीभावों का विनाशक बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'सुष्वि' बनना

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून्॥ २॥

(१) **पार्ये दिवि**=भवसागर से पार करने में उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त, हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **यद्वा**=अथवा **वृत्रहत्ये**=इस ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करने के निमित्त अथवा **शूरसातौ**=शूरों से संभजनीय संग्राम में आप **सुष्विम्**=सोम का सम्पादन करनेवाले, शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष को **अवसि**=रक्षित करते हैं। आप से रक्षित होकर ही वह उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करता है, वासना को विनष्ट कर पाता है और अध्यात्म संग्राम में विजयी होता है। (३) **यद्वा**=अथवा हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! आप ही **दक्षस्य**=इस यज्ञादि उत्तम कर्मों में कुशल **बिभ्युषः**=सदा आपके भय में चलनेवाले उपासक के **शर्धतः**=आक्रमण करके हिंसन करनेवाले **दस्यून्**=दास्यभावों को **अबिभ्यत्**=भीति रहित हुए-हुए **अरन्धयः**=वशीभूत करते हैं। आपकी शक्ति से शक्ति सम्पन्न उपासक ही इन आसुरभावों पर विजय पा सकता है।

भावार्थ—प्रभु ही उपासक को (क) तारक ज्ञान प्राप्त करते हैं, (ख) वासना का विजेता बनाते हैं, (ग) संग्राम में जिताते हैं, (घ) और इन दास्यव भावों को वशीभूत करने में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमं पाता, लोकं कर्ता, वसु दाता, प्रणेनीः

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुष्वये उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित्॥ ३॥

(१) **इन्द्रः**=सब वासनारूप शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **सुतं सोमम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **पाता अस्तु**=हमारे शरीरों के अन्दर ही पीनेवाला हो। प्रभु कृपा से हम सोम को शरीरों में सुरक्षित कर पायें। **उग्रः**=तेजस्वी प्रभु **जरितारम्**=स्तोता को **ऊती**=रक्षण के द्वारा **प्रणेनीः**=निरन्तर उत्कृष्ट मार्ग पर ले चलनेवाला हो। (२) इस **वीराय**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले **सुष्वये**=सोम का सम्पादन करनेवाले अथवा यज्ञशील पुरुष के लिए **उ**=निश्चय से **लोकं कर्ता**=उत्तम लोक को करनेवाले होते हैं, इसे उत्तम लोक व प्रकाश की प्राप्ति कराते हैं और **स्तुवते**=इस स्तवन करनेवाले **कीरये**=स्तोता के लिए **चित्**=निश्चय से **वसुदाता**=उत्कृष्ट वसुओं (धनों) को देते हैं। यह स्तोता कभी भी जीवन के निवास को उत्तम बनाने के लिए आवश्यक धनों की कमी को अनुभव नहीं करता।

भावार्थ—उपासित प्रभु (क) हमारे सोम का रक्षण करते हैं, (ख) हमें उत्कृष्ट मार्ग से ले चलते हैं, (ग) उत्तम लोक व प्रकाश को प्राप्त कराते हैं, (घ) जीवनयात्रा के लिए आवश्यक धनों को देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बभ्रिर्वज्रं, पपिः सोमं, ददिर्गाः

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः॥ ४॥

(१) वे प्रभु **इयान्ति सवना**=जीवन के इतने वर्षों तक चलनेवाले यज्ञों को **हरिभ्याम्**=उत्तम इन्द्रियाश्वों से **गन्ता**=प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रभु हमें उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं, ताकि हम जीवन के तीनों सवनों को 'प्रातः, मध्याह्न व तृतीय' इन तीनों सवनों को ठीक प्रकार से पूर्ण कर सकें। हे प्रभो! इन सवनों के रक्षण के लिए **वज्रं बभ्रिः**=आप वज्र को धारण करते हैं, **सोमं पपिः**=सोम का पान व रक्षण करते हैं, **गाः ददिः**=उत्कृष्ट इन्द्रियों व ज्ञान-वाणियों को देते हैं। (२) आप इस स्तोता को **वीरम्**=शत्रुओं का कम्पक, **नर्यम्**=नरहितकारी कर्मों को करनेवाला व **सर्ववीरम्**=सब वीर पुत्रोंवाला **कर्ता**=करते हैं। **गृणतः हवं श्रोता**=स्तोता की आराधना को सुनते हैं। स्तोता की पुकार को आप सुनते हैं। **स्तोमवाहाः**=स्तोत्रों से आप वहनीय होते हैं। अर्थात् स्तोत्रों के द्वारा आप प्राप्त करने योग्य होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्कृष्ट इन्द्रियाँ प्राप्त कराके जीवन के सब सवनों को पूर्ण कर सकने के योग्य बनाते हैं। हमारे सोम का (वीर्य) रक्षण करते हैं, ज्ञान-वाणियों को हमें प्राप्त कराते हैं। ये प्रभु हमें वीर 'नर्य व सर्ववीर' बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तवन के द्वारा ज्ञान व उत्कृष्ट कर्मों की प्राप्ति

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत्॥ ५॥

(१) **यः**=जो परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः**=हमारे लिए **प्रदिवः**=प्रकृष्ट ज्ञान प्रकाशों को तथा **अपः**=कर्मों को **कः**=करते हैं **अस्मै**=इस प्रभु के लिए **वयम्**=हम **तद्विविष्मः**=उस स्तोत्र का व्यापन करते हैं **यद्वावान**=जिस स्तोत्र को प्रभु चाहते हैं। अर्थात् हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु को प्रीणित करनेवाले बनते हैं और प्रभु हमें ज्ञान व उत्कृष्ट कर्मों को करते हैं। (२) **सुते सोमे**=सोम के उत्पन्न होने पर **स्तुमसि**=हम प्रभु का स्तवन करते हैं। हम **उक्था शंसत्**=स्तोत्रों का शंसन करते हुए (शंसंतः) ऐसा प्रयत्न करते हैं **यथा**=जिससे **ब्रह्म**=ज्ञानपूर्वक किया गया स्तवन **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **वर्धनं असत्**=वृद्धि का करनेवाला हो, अर्थात् स्तवन के द्वारा हम प्रभु के प्रकाश को अधिकाधिक देखनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें प्रकृष्ट ज्ञान व कर्मों को प्राप्त कराते हैं। सोम का अपने अन्दर रक्षण करते हुए हम प्रभु-स्तवन करें जिससे अधिकाधिक प्रभु के प्रकाश को देखनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वर्धनानि ब्रह्माणि

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्ध्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप हि निश्चय से **ब्रह्माणि**=इन ज्ञान को देनेवाली वेदवाणियों को **वर्धनानि**=हमारी वृद्धि का कारण **चकृषे**=करते हैं। **तावत्**=तो हम सर्वप्रथम **मतिभिः**=बुद्धियों के द्वारा **ते**=आपके इन वचनों को **विविष्मः**=व्याप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इनको सम्यक् समझकर, इनसे प्रेरणा को लेकर ही तो हम उन्नत हो पायेंगे। (२) हे प्रभो! आप ही **सुतपाः**=उत्पन्न सोम का रक्षण करनेवाले हैं। सो हम **सोमे सुते**=शरीर में सोम के उत्पन्न होने पर **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों के साथ **शन्तमानि**=शान्ति को देनेवाले **रान्द्र्या**=रमणीय **वक्षणानि**=(वाहकानि स्तोत्राणि) आपके समीप प्राप्त करानेवाले स्तोत्रों को **क्रियास्म**=करें। ये यज्ञ और स्तोम ही सोम का रक्षण करनेवाले होंगे सोम रक्षण का सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम प्रभु-स्मरणपूर्वक सतत कार्यों में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ—प्रभु से दिये गये ज्ञानवर्धक वेद-वचनों को हम बुद्धियों से ग्रहण करनेवाले बनें। यज्ञों व स्तोत्रों में प्रवृत्त रहकर उत्पन्न सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यज्ञशेष का सेवन व दृष्टिकोण की विशालता

स नो॑ बोधि पुरो॒ळाशं॑ ररा॒णः पिबा॒ तु सोम॑ं गोऋ॑जीकमिन्द्र।
एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदो॒रुं कृ॑धि त्वाय॒त उ॑ लो॒कम्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **राणः**=(रममाणः) हमारे से किये जाते हुए सब यज्ञों में रमण करते हुए आप **नः**=हमारे इस **पुरोडाशम्**=(पुरः दाश्यते) भोजन से पूर्व दिये जानेवाले हविर्लक्षण अन्न को आप **बोधि**=जानिये। अर्थात् हम आपकी कृपा से सदा यज्ञों में हवि को देकर यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले बनें। इस प्रकार यज्ञशेषरूप अमृत का सेवन होने पर आप **गो ऋजीकम्**=ज्ञान की वाणियों द्वारा शरीर में दृढ़ किये गये (ऋज=be firm) **सोमम्**=सोम को (वीर्य को) तु **पिब**=अवश्य शरीर में ही पीने की व्यवस्था करिये। ज्ञान प्राप्ति में लगने से वासनाओं का आक्रमम नहीं होता और उससे सोम शरीर में सुरक्षित होता है। (२) इस सोमरक्षण के हेतु से ही **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **इदं बर्हिः**=इस वासना शून्य हृदय में **आसीद**=आप आसीन होइये। हे प्रभो! **त्वायतः**=आपकी प्राप्ति की कामनावाले इस पुरुष के **लोकं उरुं कृधि**=लोक को विशाल बनाइये, इसके आलोक (प्रकाश) को अत्यन्त विस्तारवाला करिये अथवा इसे विशाल दृष्टिकोणवाला बनाइये।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से (क) हम सदा हवि को देकर यज्ञशेष का ही सेवन करें, (ख) ज्ञान की वाणियों में प्रवृत्त रहकर सोम को शरीर में सुरक्षित करें, (ग) अपने हृदय को प्रभु का आसन बना पायें, (घ) और अपने दृष्टिकोण को विशाल बना सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'स्तवन व यज्ञों' द्वारा प्रभु का आराधन

स मं॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु।
प्रेमे हवा॑सः पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वे॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः॥ ८॥

(१) हे **उग्र**=उद्गूर्ण बल, तेजस्विन् प्रभो! **सः**=वे आप **जोषं अनु**=प्रीतिपूर्वक उपासन के अनुसार **हि**=ही **मन्दस्व**=प्रसन्न होइये। अर्थात् हम प्रीतिपूर्वक उपासना करते हुए आपको प्रीणित करनेवाले हों। **इमे**=ये **यज्ञासः**=सब यज्ञ **त्वा**=आपको ही **प्र अश्नुवन्तु**=प्रकर्षेण व्याप्त करनेवाले

हों। इन यज्ञों के द्वारा हम आपका पूजन करें और आपको प्राप्त करनेवाले हों। (२) **अस्मे**=हमारी **इमे हवासः**=ये पुकारें **पुरुहूतम्**=पालक व पूरक है आह्वान जिसका उस प्रभु को प्राप्त करें। अर्थात् हम सदा प्रभु से ही याचना करनेवाले बनें। हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **इयं धीः**=यह ज्ञानपूर्वक की गई स्तुति **अवसे**=रक्षण के लिए **त्वा प्र आयम्याः**=आपको हमारे साथ बद्ध करनेवाली हो (नियच्छतु)। हम इस स्तुति द्वारा आपको अपने अभिमुख करने में समर्थ हों, और इस प्रकार अपना रक्षण कर पायें।

भावार्थ—हम स्तुति द्वारा प्रभु को आराधित करें। यज्ञों द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करें। सदा प्रभु को पुकारें और ज्ञानपूर्वक स्तुति से प्रभु को अपने साथ बाँधनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोमरक्षण द्वारा प्रभु प्राप्ति

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति॥ ९॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **तम्**=उस **वः भोजम्**=तुम्हारा पालन करनेवाले **इन्द्रम्**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभु को **यथा सुतेषु**=ठीक-ठीक सोमों के उत्पन्न होने पर **सोमेभिः**=इन सोमों के द्वारा **ईम्**=निश्चय से **संपृणता**=सम्यक् अपने अन्दर पूरित करो। सोमरक्षण से ही मानस नैर्मल्य व बुद्धि की तीव्रता होकर हम अपने हृदयों में प्रभु-दर्शन कर पाते हैं। (२) **नः भराय**=हमारे पालन-पोषण के लिए **तस्मा कुवित् असति**=उस प्रभु के पास बहुत है। हमारे पालन के लिए आवश्यक किसी धन की वहाँ कमी नहीं है। **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **सुष्विम्**=उत्तम यज्ञशील पुरुष को **न मृधाति**=हिंसित नहीं करते। **अवसे**=उसके रक्षण के लिए होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा ही हम अपने जीवनों में प्रभु को पूरित करते हैं। ये प्रभु ही यज्ञशील पुरुष को हिंसित नहीं होने देते।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'प्रेरणा व धन' की प्राप्ति

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता॥ १०॥

(१) **सोमे सुते**=सोम के शरीर में उत्पन्न होने पर **एव**=ही **इत्**=निश्चय से **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावक प्रभु **अस्तावि**=स्तुत होता है। सोम का सम्पादन करनेवाला ही प्रभु का सच्चा स्तोता बनता है। **भरद्वाजेषु**=अपने में शक्ति का भरण करनेवालों में **इत्**=ही **मघोनः**=उस ऐश्वर्यवान् प्रभु का **क्षयत्**=निवास होता है। प्रभु का प्रीणन इसी प्रकार होता है कि हम सोमरक्षण द्वारा अपने में शक्ति का भरण करनेवाले बनें। (२) **उत**=और **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **यथा**=जैसे **जरित्रे**=स्तोता के लिए **सूरिः असत्**=उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाला होता है, उसी प्रकार वह **विश्ववारस्य**=सबसे वरणीय अथवा सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले **रायः**=धन का **दाता**=देनेवाला होता है। प्रभु स्तोता को उत्कृष्ट प्रेरणा व धन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का उपाय यही है कि सोमरक्षण द्वारा हम अपने में शक्ति को भरें। प्रभु स्तोता को प्रेरणा व धन प्राप्त कराते हैं। प्रेरणा से हम मार्ग को जान पाते हैं, धन से मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त होती है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

तृतीयोऽनुवाकः

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुतपाः ऋजीषी

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी।
अर्चन्त्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः॥ १॥

(१) **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **श्लोकः**=यशोगान, प्रभु कीर्ति का कीर्तन **वृषा**=सब कामनाओं का वर्षण करनेवाला व **मदः**=उल्लास का जनक है। **उक्था**=स्तोत्रों के द्वारा **सचा**=समवेत, हमारे साथ स्थापित सम्बन्धवाला प्रभु **सोमेषु**=सोमों के उत्पन्न होने पर **सुतपाः**=उन उत्पन्न सोमों का रक्षक होता है और **ऋजीषी**=(ऋजु इष) सरल मार्ग से प्रेरणा देनेवाला होता है। (२) इसलिए वह **मघवा**=ऐश्वर्यशाली प्रभु **नृभ्यः**=मनुष्यों से **उक्थैः अर्चन्त्यः**=स्तोत्रों के द्वारा पूजनीय होता है। **द्युक्षाः**=वह ज्ञान-ज्योति में निवास करनेवाला है। **राजा**=सारे संसार का व्यवस्थापक है। **गिरां अक्षितोतिः**=ये प्रभु सब ज्ञान की वाणियों के अक्षीण रक्षक हैं। इन ज्ञान-वाणियों के अक्षीण (भण्डार) हैं। सब वेद वाणियों के सदा से धारण करनेवाले ये प्रभु इन ज्ञान की वाणियों को सृष्टि के प्रारम्भ में हमारे लिए देते हैं और सृष्टि समाप्ति पर ये वाणियाँ उस प्रभु में ही निवास करती हैं। इस प्रकार यह वेद प्रभु का अजरामर काव्य सदा अक्षीण रहता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन सब कामनाओं को पूर्ण करता है, उल्लास को देता है, सोम का रक्षण करता है। सो प्रभु ही स्तोत्रों द्वारा पूज्य हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

नर्यो विचेताः

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेता श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम्॥ २॥

(१) वे प्रभु **ततुरिः**=शत्रुओं के हिंसक हैं, **वीरः**=वीर हैं, शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले हैं। **नर्यः**=नरहितकारी **विचेताः**=विशिष्ट ज्ञानवाले हैं। **गृणतः**=स्तोता की **हवं श्रोता**=पुकार को सुननेवाले हैं। **उर्व्यूतिः**=विशाल रक्षणवाले हैं। (२) अपनी रक्षण व्यवस्था के द्वारा **वसुः**=हमें बसानेवाले, **शंसः**=हमारे लिए ज्ञान का उपदेश करनेवाले हैं। **कारुधायाः**=कुशलता से कार्यों को करनेवालों का धारण करनेवाले हैं। **वाजी**=शक्तिशाली हैं। **विदथे**=ज्ञानयज्ञों में **स्तुतः**=स्तुति किये गए ये प्रभु **नराम्**=मनुष्यों के लिए **वाजं दाति**=शक्ति को देते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु शत्रुओं के हिंसक हैं। स्तोताओं को ज्ञान व शक्ति को देनेवाले हैं। इस प्रकार नरों के हित के साधक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अपरिच्छिन्न महिम' प्रभु

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः॥ ३॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **ते बृहन् महा**=तेरी महान् महिमा **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी से इस प्रकार बढ़ी हुई है, **न**=जैसे कि **चक्र्योः**=(चक्र्योः) चक्रों में **अक्षः**=अक्ष (axle) बढ़ा हुआ होता है। अक्ष चक्रों से बाहिर निकला हुआ होता है, इसी प्रकार तेरी महिमा द्यावापृथिवी को लांघकर विद्यमान होती है, द्यावापृथिवी तेरी महिमा को सीमित नहीं कर पाते। (२) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते ऊतयः**=आपके रक्षण **विरुरुहुः**=(रुह प्रादुर्भावे) विशिष्टरूप से प्रादुर्भूत होते हैं। ये रक्षण **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। ये रक्षण इस प्रकार प्रादुर्भूत होते हैं **नु**=जैसे कि **वृक्षस्य वयाः**=वृक्ष की शाखाएँ। वृक्ष से शाखाओं के प्रादुर्भाव की तरह आप से विविध रक्षणों का प्रादुर्भाव होता है, सब रक्षणों का मूल आप ही हैं।

भावार्थ—प्रभु की महिमा द्यावापृथिवी से सीमित नहीं होती। सब रक्षणों के मूल प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पुरुशाक-सुदामा

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन्॥ ४॥

(१) हे **पुरुशाक**=अनन्त शक्तिशाली कर्मोंवाले प्रभो! **शचीवतः ते**=प्रज्ञावान् आपके **शाकाः**=शक्तिशाली कर्म, **गवाम्**=गौवों के **स्रुतयः इव**=मार्गों की तरह **सञ्चरणीः**=सर्वत्र सञ्चारी हैं। गौवों के मार्ग जिधर देखो उधर ही दिख पड़ते हैं, इसी प्रकार प्रभु के शक्तिशाली कर्म भी चारों ओर दिखते हैं। (२) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले **सुदामन्**=उत्तमता से बाँधनेवाले, सब लोकों को नियम में बद्ध करनेवाले प्रभो! आपकी **तन्तयः**=दीर्घ प्रसारित व्यवस्था रूप रज्जुएँ **दामन्वन्तः**=सब को नियमों में बाँधनेवाली हैं। उसी प्रकार **न**=जैसे कि **वत्सानाम्**=रज्जुएँ बछड़ों को बाँधनेवाली होती हैं। ये आपकी व्यवस्था रूप रज्जुएँ **अदामानः**=स्वयं किसी से बद्ध नहीं होती। प्रभु की व्यवस्थाओं का प्रतिबन्ध किसी और से नहीं किया जा सकता।

भावार्थ—प्रभु के शक्तिशाली कर्म चारों ओर दृष्टिगोचर होते हैं। प्रभु की व्यवस्थाएँ, किसी से प्रतिबद्ध न होती हुई, सभी को नियमों में बाँधनेवाली हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

सत् व असत् के कर्ता प्रभु (सृष्टि प्रलय कर्ता)

अन्यद्द्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति॥ ५॥

(१) हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवान् प्रभु! **अद्य**=आज **अन्यत् कर्वरम्**=और कर्म करते हैं, तो **श्वः**=कल **उ**=निश्चय से **अन्यत्**=दूसरा ही काम करते हैं। वे इन्द्र **मुहुः**=फिर-फिर **सत् च**=इस संसार को सत् रूप में **आचक्रिः**=करते हैं, **च**=और फिर **असत्**=इसे कारणरूप में प्राप्त कराते हुए अदृश्य कर देते हैं। यह सृष्टि प्रलय रूप परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाला कार्यक्रम चक्राकार गति में ही होता ही रहता है। 'सृष्टि' विलक्षण है, तो 'प्रलय' कम विलक्षण नहीं है। (२) **अत्र**=इस जीवन में **मित्रः**=वह स्नेह करनेवाले **वरुणः च**=और हमें पापों से निवारित करनेवाले **पूषा**=पोषक, **अर्यः**=प्रेरक प्रभु **वशस्य**=हमारी इष्ट वस्तुओं के, काम्य पदार्थों के **पर्येता**=परिगमयिता

प्राप्त करानेवाले **अस्ति**=हैं।

भावार्थ—प्रभु के सृष्टि प्रलय रूप सब कार्य विलक्षण हैं। वे 'मित्र, वरुण, पूषा व अर्य' प्रभु हमारी कामनाओं को पूर्ण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**ब्राह्मीबृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

उक्थेभिः+यज्ञेः

वि त्वदापो॒ न पर्व॑तस्य पृ॒ष्ठादु॒क्थेभि॑रिन्द्रानयन्त य॒ज्ञैः।
तं त्वा॒भिः सु॑ष्टु॒तिभि॑र्वा॒जय॑न्त आ॒जिं न ज॑ग्मुर्गि॒र्वाहो॒ अश्वाः॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वात्**=आपसे **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा तथा **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा ये उपासक लोग **वि अनयन्त**=सब काम्य पदार्थों को इस प्रकार अपने लिये प्राप्त कराते हैं, **न**=जैसे कि **पर्वतस्य पृष्ठात्**=पर्वत के पृष्ठ से **आपः**=जलों को। पर्वत पृष्ठ से जल स्वभावतः निम्न मार्ग की ओर आते हैं, इसी प्रकार स्तोस्त्रों व यज्ञों के होने पर सब वाञ्छनीय पदार्थों का प्रवाह प्रभु की ओर से उपासकों के प्रति होता है। (२) हे **गिर्वाहः**=(गीर्भिर्वहनीय) स्तुतियों से प्राप्त होने योग्य प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **आभिः सुष्टुतिभिः**=इन उत्तम स्तुतियों के द्वारा **वाजयन्तः**=(वज गतौ, गमयन्ता) अपने को प्राप्त कराते हुए ये उपासक लोग, **अश्वाः न**=अश्वों की तरह **आजिं जग्मुः**=जीवन संग्राम में गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। स्तुतियों के द्वारा प्रभु को प्राप्त करते हुए हम जीवन संग्राम में चलें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

काल से अनवच्छिन्न प्रभु

न यं ज॑रन्ति श॒रदो॒ न मासा॒ न द्याव॒ इन्द्र॑मवक॒र्शय॑न्ति।
वृ॒द्धस्य॑ चिद्वर्धतामस्य त॒नूः स्तोमे॑भिरु॒क्थैश्च॑ शस्यमा॑ना॥ ७॥

(१) **यम्**=जिस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **न द्यावः**=न दिन, **न मासाः**=न महीने और **न शरदः**=न ही संवत्सर (वर्ष) **जरन्ति**=जीर्ण करते हैं। ये दिन, महीने व वर्ष उसे **न अवकर्शयन्ति**=उसे क्षीण नहीं कर पाते। प्रभु काल से अनवच्छिन्न है। (२) **वृद्धस्य अस्य तनूः**=बढ़े हुए इस प्रभु की व्यापक शक्ति (तन् विस्तारे) **चित्**=निश्चय से **वर्धताम्**=बढ़ी रहे। यह इस प्रभु का तनू **स्तोमेभिः**=स्तोमों से **च**=और **उक्थैः**=ऊँचे-ऊँचे गाये गये गुण-कीर्तनों से **शस्यमाना**=सदा प्रशंसित हो। इसका शंसन ही हमारे अन्दर प्रभु के स्वरूप का वर्धन करता है। प्रभु के गुणों का शंसन करते हुए हम भी उन गुणों को अपनाने का यत्न करते हैं।

भावार्थ—उस काल से असीमित अजरामर प्रभु का शंसन करते हुए हम प्रभु जैसा बनने का यत्न करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

स्तुति से महान् बल की प्राप्ति

न वी॒ळवे॒ नम॑ते॒ न स्थि॒राय॒ न शर्धा॑ते॒ दस्यु॑जूताय स्त॒वान्।
अ॒ज्रा इन्द्र॑स्य गि॒रय॑श्चिदृ॒ष्वा ग॑म्भी॒रे चि॑द्रवति गा॒धम॑स्मै॥ ८॥

(१) **स्तवान्**=स्तुति किये जाते हुए-हुए वे प्रभु **दस्युजूताय**=दास्यवभावों से प्रेरित **वीडवे**=बड़े

दृढ़ भी शत्रु के लिए **न नमते**=झुकते नहीं। **स्थिराय**=युद्ध में अविचलित के लिये भी **न**=नहीं झुकते तथा **शर्धते**=युद्ध के लिए अत्यन्त उत्साहित के लिये भी **न**=नहीं झुकते। वस्तुतः स्तुति करनेवाला व्यक्ति हृदय में प्रभु को स्थापित करता हुआ इन दृढ़ अविचलित प्रबलता से युद्ध करनेवाले शत्रुओं से पराजित नहीं होता। (२) इस **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **ऋष्वाः**=महान् **गिरयः चित्**=पर्वत भी **अज्राः**=क्षेपणीय होते हैं—मार्ग में विघ्नरूप में आये हुए पहाड़ों को भी यह परे फेंकनेवाला होता है और **गम्भीरे**=अत्यन्त गहिरे **चित्**=भी समुद्रों में **अस्मै**=इसके लिये **गाधम्**=न गहिरापन ही **भवति**=होता है। गहिरे से गहिरे समुद्रों को यह आसानी से पार कर जाता है।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे कि यह स्तोता—(क) प्रबलतम शत्रुओं के सामने भी झुकता नहीं, (ख) पर्वतों को भी परे फेंकनेवाला होता है और (ग) समुद्रों को भी कुछ नहीं गिनता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

गम्भीरता व विशाल हृदयता

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान्।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम्॥ ९॥

(१) हे **सुतपावन्**=उत्पन्न सोम के रक्षक व **अमत्रिन्**=(अमत्रं बलम्) अतिशयेन बलवन् प्रभो! **नः**=हमारे लिये **गम्भीरेण उरुणा**=गम्भीर व विशाल मन के हेतु से **इषः**=प्रकृष्ट प्रेरणाओं को व **वाजान्**=बलों को **प्रयन्धि**=प्रकर्षेण प्राप्त कराइये। हम उत्कृष्ट प्रेरणाओं को व बलों को प्राप्त करके गम्भीर व विशाल हृदयवाले बन पायें। (२) हे प्रभो! आप **परितक्म्यायाम्**=रात्रि में तथा **अक्तो व्युष्टौ**=इस रात्रि के विवास (समाप्ति) अर्थात् दिन में भी **नः**=हमारी **ऊती**=रक्षा के लिये सदा **उ**=निश्चय से **षु**=अच्छी प्रकार **ऊर्ध्वः स्थाः**=ऊपर खड़े हुए होइये—सदा जागरित होइये। हमें दिन-रात आपका रक्षण प्राप्त हो। **अरिषण्यन्**=आप हमें किन्हीं भी शत्रुओं से हिंसित न होने दीजिये।

भावार्थ—हम दिन-रात प्रभु के रक्षण में, प्रभु से प्रेरणाओं व शक्तियों को प्राप्त करके गम्भीर व विशाल हृदयवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सर्वत्र प्रभु रक्षण की प्राप्ति

सचस्व नायमवसे अभीके इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! आप **नायम्**=आपके समीप अपने को प्राप्त करानेवाले को **अवसे**=रक्षण के लिये **अभीके**=संग्राम में **सचस्व**=प्राप्त हों। आपके द्वारा ही तो यह संग्राम में विजय को प्राप्त होगा, उपासक को प्रभु ही जिताते हैं। हे प्रभो! **तम्**=उस उपासक को **इतः**=इधर के, समीपस्थ **वा**=अथवा (अमुतः=) उधर के, अर्थात् दूरस्थ अथवा अन्दर के व बाहिर के **रिषः**=शत्रुओं से **पाहि**=बचाइये। **एन**=इसको **अमा**=घर में **अरण्ये च**=और वन में सर्वत्र शत्रुओं से **पाहि**=बचाइये। (२) आप के द्वारा सब शत्रुओं से सुरक्षित हुए-हुए हम **शतहिमाः**=शतवर्ष पर्यन्त **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—हम इस संसार संग्राम में प्रभु से रक्षित हुए-हुए विजयी हों और दीर्घजीवन व उत्तम सन्तानोंवाले होते हुए आनन्दित हों।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अवम परम मध्यम' रक्षण

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र॥ १॥

(१) हे **शुष्मिन्**=शत्रुशोषक बलवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यवान् प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी **ऊतिः**=रक्षण व्यवस्था **अवमा**=सब से प्रथम स्थान में है, जिसके द्वारा आप हमारे शरीरों को रोगों से आक्रान्त नहीं होने देते। **या परमा**=जो आपकी रक्षण व्यवस्था सर्वान्तिम है, जिससे आप हमारे मस्तिष्कों को ज्ञानोज्ज्वल बनाते हैं। और **या**=जो **मध्यमा अस्ति**=रक्षण व्यवस्था मध्यम स्थान में है, जिसके द्वारा आप हमारे हृदयों को वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। **ताभिः**=उन रक्षण व्यवस्थाओं के द्वारा **उ**=निश्चय से, **सु**=अच्छी प्रकार **नः अवीः**=हमारा रक्षण करिये। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन् प्रभो! **महान्**=पूज्य हैं। आप **वृत्रहत्ये**=वृत्र (वासना) के साथ होनेवाले संग्राम में **नः**=हमें **एभिः वाजैः**=इन बलों के द्वारा (अबीः=) रक्षित करिये। हम वासनाओं से पराभूत न हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभु से 'शरीर, मस्तिष्क व हृदय' सम्बन्धी रक्षणों को प्राप्त करके तथा संग्राम विजय के लिये शक्तियों को प्राप्त करके हम वासनाओं से पराभूत न हों। अपितु वासनाओं को पराभूत करनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तुति व शक्ति प्राप्ति

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽवतारीर्दासीः॥ २॥

(१) **आभिः**=इन स्तुतियों के द्वारा **मिथतीः**=शत्रु-सेनाओं का संहार करती हुई **स्पृधः**=हमारी सेनाओं को **अरिषण्यन्**=अहिंसित करते हुए, हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **अमित्रस्य**=शत्रु के **मन्युम्**=क्रोध को **व्यथया**=नष्ट करिये। हम प्रभु-स्तवन द्वारा शक्ति-लाभ करते हुए शत्रुसैन्य को जीतनेवाले बनें। (२) **आभिः**=इन स्तुतियों के द्वारा **विश्वाः**=सब **अभियुजः**=चारों ओर से आक्रमण करनेवाली **विषूचीः**=सब दिशाओं में गति करनेवाली **दासीः विशः**=यज्ञादि कर्मों का उपक्षय करनेवाली प्रजाओं को **आर्याय**=(ऋ गतौ) नियमपूर्वक यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त पुरुष के लिये **अवतारीः**=विनष्ट कर। स्तुतियों के द्वारा हम यज्ञों में विघ्न करनेवाले लोगों से किये जानेवाले विघ्नों को दूर कर सकें। स्तुति से इन विघ्न करनेवालों के हृदयों को ही परिवर्तित कर पायें।

भावार्थ—स्तुति हमें बल दे कि हम शत्रुओं को पराजित कर सकें यज्ञों में विघ्नकर्ताओं के हृदयों को परिवर्तित कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'जामि व अजामि' रूप शत्रु

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **ये**=जो **जामयः**=बन्धुत्ववाले होते हुए हमारे शत्रु हुए हैं, **उत**=और जो **अजामयः**=पराये हमारे शत्रु बने हैं, **अर्वाचीनासः**=हमारी ओर आते हुए **वनुषः**=हिंसक बने हुए **युयुज्रे**=युद्ध के लिये प्रयुक्त होते हैं, **त्वम्**=आप **एषाम्**=इन जामि व अजामि रूप शत्रुओं के **शवांसि**=(शवतिर्गतिकर्मा) आक्रमण रूप गमनों को **विथुरा**=शिथिल **कृणुहि**=कर दीजिये। इनमें हमारे पर आक्रमण के लिये उत्साह न बना रहे। (२) हे प्रभो! आप इनके **वृष्ण्यानि**=वीर्यों को **जहि**=विनष्ट करिये और इन्हें **पराचः**=पराङ्मुख करिये रणाङ्गण से ये भाग खड़े हों।

भावार्थ—हम प्रभु को अपने हृदयों में आसीन करके 'जामि व अजामि' रूप दोनों प्रकार के शत्रुओं को नष्ट करनेवाले हों।

सूचना—यहाँ अध्यात्म में जामिरूप शत्रु वे हैं जो अशुभ वृत्तियाँ जन्म से ही गत संस्कारों के रूप में हमें प्राप्त होती हैं। 'अजामि' रूप वे अशुभ वृत्तियाँ हैं जिन्हें हम इस जीवन में किसी समय सीख लेते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

संसार गति

शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते॥ ४॥

(१) **तनूरुचा**=शरीर से शोभायमान होते हुए परस्पर विरोधी दो पुरुष **यत्**=जब **तरुषि**=युद्ध में **कृण्वैते**=संग्राम को करते हैं तब **शूरः**=शूर **वा**=निश्चय से **अशूरं वनते**=अशूर को पराजित (नष्ट) करता है। (२) **तोके वा**=पुत्रों के निमित्त, **गोषु**=गौवों के निमित्त **तनये**=पौत्रों के निमित्त, **यद्**=जब **अप्सु**=जलों के विषय में अथवा **उर्वरासु**=सर्वसस्याढ्य भूमियों के निमित्त **क्रन्दसी**=एक दूसरे का आह्वान करते हुए **वि ब्रवैते**=विवाद करते हैं। तो ऐसे प्रसंगों में शूर अशूर को पराजित करता है। सो प्रभु की उपासना से हम शूरता को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। प्रभु की उपासना ही हमें शूर बनाती है।

भावार्थ—पुत्र-पौत्रों, खेत के जलों व भूमियों के विषय में युद्ध तभी हो उठते हैं जब कि हम प्रभु की उपासना से दूर हो जाते हैं। युद्ध आ भी जाए, तो प्रभु की उपासना से शूर बने हुए हम शत्रुओं का पराजय कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

प्रभु अजय्य हैं

नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले प्रभो! **त्वा शूरः नहि युयोध**=कोई भी

शूरवीर आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता। **तुरः**=कोई भी शत्रुओं का हिंसन करनेवाला **न**=आपका हिंसन नहीं कर पाता। **धृष्णुर्न**=शत्रुओं का धर्मण करनेवाला व्यक्ति **न**=आपका धर्षण करने में समर्थ नहीं। और **त्वा**=आपको कोई भी **मन्यमानः योधः**=अपने को वीर माननेवाला योद्धा **न युयोध**=युद्ध में सामने नहीं आ पाता। (२) हे इन्द्र! **एषाम्**=इनमें **नकिः त्वा प्रत्यस्ति**=कोई भी आपका मुकाबिला नहीं कर सकता। **तानि**=उन **विश्वा**=सब **जातानि**=शत्रुभूत हुए-हुए शत्रुओं को **अभ्यासि**=आप अभिभूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु को कोई भी जीत नहीं सकता। प्रभु अजय्य हैं। सब को ये अभिभूत करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'शक्ति के स्वामी' प्रभु

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदीं वेधसः समिथे हवन्ते।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते॥ ६॥

(१) **यत्**=जब **ईं**=निश्चय से **वेधसः**=कर्मों को करनेवाले समझदार लोग **समिथे**=युद्ध में **हवन्ते**=प्रभु को पुकारते हैं, तो वस्तुतः **सः**=वह प्रभु ही **अयोः उभयोः**=इन दोनों के, युद्ध में सम्मिलित होनेवाले दोनों पक्षों के **नृम्णम्**=बल का **पत्यते**=ईश होता है। बाह्य संग्रामों में परस्पर युद्ध करती हुई दोनों सेनाओं के सामर्थ्य के स्वामी प्रभु ही होते हैं—प्रभु ही न्याय्य पक्ष को विजयी करते हैं। (२) **वृत्रे वा**=जीवन यात्रा में मार्ग के निरोधक वासनारूप वृत्र के विनाश के निमित्त **वा**=अथवा **महः नृवति क्षये**=महान् उत्कृष्ट मनुष्योंवाले घर को बनाने के निमित्त जब **व्यचस्वन्ता**=शक्तियों का विस्तार करनेवाले पति-पत्नी **वितन्तसैते**=इन वासनाओं के साथ संग्राम करते हैं तो इन दोनों पति-पत्नी की शक्तियों के स्वामी वे प्रभु ही होते हैं। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही ये वासनाओं को विनष्ट कर पाते हैं और घर को उत्कृष्ट मनुष्योंवाला बनाने में समर्थ होते हैं।

भावार्थ—क्या बाह्य व क्या आन्तर, दोनों संग्रामों में विजय के लिये शक्ति प्रभु ही देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'त्राता उत वरूता' इन्द्र

अधा स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **अध**=अब **ते चर्षणयः**=तेरे ये श्रमशील उपासक मनुष्य **यत्**=जब भी कभी **एजान्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से कम्पित हो उठें, तो आप **त्राता**=रक्षक **उत**=और **वरूता**=उन शत्रुओं के निवारक **भवा स्म**=होते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ये**=जो **अस्माकासः**=हमारे **नृतमासः**=उत्तम नेतृत्व करनेवाले, **अर्यः (त्वाम् अरयः)**=आपको प्राप्त करानेवाले **सूरयः**=ज्ञानी पुरुष **नः**=हमें **पुरः**=आगे **दधिरे**=स्थापित करते हैं उनके भी आप रक्षक होइये।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे रक्षक व शत्रु-निवारक होते हैं। हमारी उन्नति के कारणभूत नेताओं का भी रक्षण प्रभु ही करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रिय-क्षत्र-सहस्

अनु॑ ते दायि म॒ह इ॑न्द्रि॒याय॑ स॒त्रा ते॒ विश्व॒मनु॑ वृत्र॒हत्ये॑।
अनु॒ क्षत्र॒मनु॒ सहो॑ यजत्रेन्द्र दे॒वेभि॒रनु॒ ते नृ॒षह्ये॑॥ ८॥

(१) हे **यजत्र**=पूजनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=तेरे द्वारा **महे इन्द्रियाय**=महान् वीर्य के लिये **अनुदायि**=(अनुदीयते) यह उपासक दिया जाता है, अर्थात् इस उपासक को आप महान् वीर्य की प्राप्ति कराते हैं। **सत्रा**=सचमुच **ते**=तेरे द्वारा **वृत्रहत्ये**=वासना-विनाश रूप संग्राम के निमित्त **विश्वम्**=सब कुछ, सब आवश्यक साधन **अनु (दायि)**=दिये जाते हैं। (२) **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाला बल **अनु (दायि)**=दिया जाता है। **सहः**=शत्रुमर्षक बल **अनु (दायि)**=दिया जाता है। **ते**=तेरे से **देवेभिः**=देवों के द्वारा **नृषह्ये**=संग्राम के निमित्त **अनु (दायि)**=यह सब दिया जाता है।

भावार्थ—माता, पिता, आचार्य आदि के द्वारा प्रभु हमारे में इन 'इन्द्रिय, क्षत्रस, सहस्' आदि के स्थापन की व्यवस्था करते हैं जिससे हम वासनाओं का विनाश करते हुए जीवन-संग्राम में विजयी हो सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रक्षण व उत्तम निवास

एवा॒ नः॒ स्पृधः॒ सम॑जा स॒मत्स्विन्द्र॑ रा॒रन्धि मि॑थ॒तीर॑दे॒वीः।
वि॒द्याम॒ वस्तो॒रव॑सा गृ॒णन्तो॑ भ॒रद्वा॑जा उ॒त त॑ इन्द्र नू॒नम्॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एवा**=इस प्रकार **समत्सु**=संग्रामों में **नः स्पृधः**=हमारी शत्रु-सेनाओं को **समज**=सम्यक् क्षिप्त करिये—हमारे से दूर करिये। इन **मिथतीः**=हिंसन करती हुई **अदेवीः**=राक्षसी सेनाओं को, आसुरी भावों के समूह को **रारन्धि**=वशीभूत करिये। (२) **उत**=और हे **इन्द्र**=सर्वशत्रुविद्रावक प्रभो! **नूनम्**=निश्चय से **ते गृणन्तः**=आपका स्तवन करते हुए हम **भरद्वाजाः**=अपने में शक्ति को भरनेवाले होते हुए **अवसा**=रक्षण के साथ **वस्तोः विद्याम**=उत्तम निवास की प्राप्ति करें। 'अवस्' का अर्थ अन्न भी है। उत्तम अन्न के साथ उत्तम निवास-स्थान को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु उपासित होने पर हमारे अदिव्य भाव रूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं और हमारे लिये रक्षण व उत्तम निवास को प्राप्त कराते हैं। प्रभु से रक्षित उपासकों का जीवन उत्तम व्यतीत होता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उग्रं अवः

श्रु॒धी न॑ इन्द्र ह्व॒यामसि त्वा म॒हो वाज॑स्य सा॒तौ वा॑वृषा॒णाः।
सं यद्विशोऽय॑न्त॒ शूर॑साता उ॒ग्रं नोऽव॒: पार्ये॒ अह॑न्दाः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वावृषाणाः**=अपने अन्दर सोम का सेचन करते हुए

हम **महः**=महान् **वाजस्य सातौ**=शक्ति की प्राप्ति के निमित्त **त्वा ह्वयामसि**=आपको पुकारते हैं। **नः श्रुधि**=हमारी पुकार को आप सुनिये। (२) **यद्**=जब **विशः**=प्रजाएँ **शूरसाता**=संग्राम में **सं अयन्त**=संगत हों, तो **पार्ये अहन्**=अन्तिम दिन, विजय व पराजय के निर्णय वाले दिन (final) **नः**=हमारे लिये **उग्रम्**=बहुत तीव्र, तेजस्विता सम्पन्न, **अवः**=रक्षण को **दाः**=दीजिये। आप से रक्षित हुए-हुए हम अवश्य विजयी हों।

भावार्थ—स्वयं सोम का शरीर में सेचन करते हुए हम प्रभु से शक्ति की याचना करें। प्रभु हमें युद्ध के इस विजय पराजय के निर्णय के दिन तीव्र रक्षण प्राप्त करायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गध्य वाज की प्राप्ति

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन्॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वाजिनेयः**=वाजिनी का पुत्र, शक्तिशालिनी माता का पुत्र **वाजी**=शक्तिशाली **गध्यस्य**=ग्रहण के योग्य **वाजस्य**=बल की **सातौ**=प्राप्ति के निमित्त **त्वां हवते**=आपको पुकारता है। आप से बल के लिये याचना करता है। (२) हे इन्द्र! **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक **त्वाम्**=तुझको ही **वृत्रेषु**=मार्ग निरोधक वासनाओं को दूर करने के निमित्त **चष्टे**=देखता है। यह **मुष्टिहा**=मुष्टि (मुक्कों) के द्वारा हनन करनेवाला उपासक **गोषु युध्यन्**=इन्द्रियों को वासनाओं के आक्रमण से सुरक्षित करने के निमित्त युद्ध करता हुआ उपासक **तरुत्रम्**=शत्रुओं से तरानेवाले **त्वां चष्टे**=आपको ही देखता है। आप ने ही तो इस उपासक को तराया है।

भावार्थ—शक्ति की प्राप्ति के निमित्त यह उपासक प्रभु को पुकारता है। अध्यात्म संग्राम में विजय प्राप्ति के लिये प्रभु की ओर ही देखता है। प्रभु ही इसे विजयी बनायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'शुष्ण व शंवर' का विनाश

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **अर्कसातौ**=सूर्यमण्डल की प्राप्ति के निमित्त **कविम्**=इस क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुष को **चोदयः**=प्रेरित करते हैं। यह कवि संसार के विषयों से ऊपर उठता हुआ सूर्यमण्डल का भेदन करता हुआ आपको प्राप्त होता है। (२) **त्वम्**=आप **दाशुषे**=अपने को आपके प्रति अर्पण करनेवाले **कुत्साय**=वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष के लिये **शुष्णम्**=शक्ति का शोषण करनेवाले काम को **वर्क्**=छिन्न करते हैं। आपकी कृपा से ही यह कुत्स शुष्ण का विनाश करके शक्ति-सम्पन्न होता हुआ आपको प्राप्त होता है। (३) **त्वम्**=आप ही **अतिथिग्वाय**=अतिथियों का सत्कार करनेवाले इस साधक के लिये **शंस्य करिष्यन्**=प्रशंसनीय सुख को करने के हेतु से **अमर्मणः**=अपने को मर्महीन मानते हुए ईर्ष्यारूपी असुर के **शिरः**=सिर को **पराहन्**=नष्ट करते हैं। ईर्ष्या मनुष्य की शान्ति का विनाश करती है, सो यह 'शंवर' कहलाती है। अतिथियज्ञ करनेवाला पुरुष इस ईर्ष्यासे ऊपर उठता है।

भावार्थ—प्रभु (ख) हमें ज्ञानी बनाकर सूर्यमण्डल का भेदन करनेवाला बनाते हैं, (ख) कामवासना रूप 'शुष्णासुर' को समाप्त करते हैं, (ग) ईर्ष्यारूप असुर को दूर करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'योध-ऋष्व' रथ की प्राप्ति

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **योधम्**=युद्ध के लिये साधनभूत **ऋष्वम्**=दर्शनीय व महान् **रथम्**=रथ को, शरीर-रथ को **प्रभरः**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं। और **युध्यन्तम्**=युद्ध करते हुए **दशद्युम्**=दसों इन्द्रियों के दृष्टिकोण से दीप्त **वृषभम्**=शत्रुओं पर शरवर्षण करनेवाले इस उपासक को आप **आवः**=रक्षित करते हैं। (२) **त्वम्**=आप **वेतसवे**='वेतस्' की तरह नम्र इस उपासक के लिये **सचा**=सहायभूत होते हुए **तुग्रम्**=क्रोधरूप हिंसक शत्रु को **अहन्**=नष्ट करते हैं। और **त्वम्**=आप **गृणन्तम्**=स्तुति करनेवाले **तुजिम्**=वासनाओं के संहारक पुरुष को **तूतोः**=सब दृष्टिकोण से बढ़ाते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप उत्कृष्ट शरीर-रथ को प्राप्त कराते हैं। इस युद्ध करनेवाले की रक्षा करते हैं। क्रोध को दूर करते हैं और उपासक का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शम्बर हनन

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अवो गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **बर्हणा**=शत्रुओं के उद्बर्हण के हेतु से **तद् उक्थं कः**=वह अति प्रशंसनीय कार्य करते हो **यत्**=कि हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **शता सहस्रा**=इन आसुरभावों के सैंकड़ों व हजारों दुर्गों को **प्रदर्षि**=विदीर्ण कर देते हो। (२) **गिरेः**=इस अविद्यापर्वत से निर्गत, अर्थात् अविद्या के कारण उत्पन्न **दासम्**=हमारा उपक्षय करनेवाले **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्यारूप आसुरभाव को आप **अवहन्**=सुदूर विनष्ट करते हैं। और **दिवोदासम्**=ज्ञान के भक्त इस उपासक को **चित्राभिः ऊती**=अद्भुत रक्षणों के द्वारा **प्रावः**=रक्षित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान के उपासक भक्त का रक्षण करते हैं। वे सब आसुरभावों को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

श्रद्धा-सोमरक्षण व प्राणसाधना

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप्।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **श्रद्धाभिः**=उपासक की श्रद्धा की भावनाओं से तथा **सोमैः**=सोमों के (वीर्य के) रक्षण से **मन्दसानः**=(मोदमानः) प्रसन्न होते हुए **दभीतये**=दभीति-वासनाओं का संहार करनेवाले के लिये **चुमुरिम्**=इस शक्ति का आचमन कर जानेवाले, शक्ति को खा जानेवाले 'काम' रूप शत्रु को **सिष्वप्**=सुला देते हैं। इस उपासक के अन्दर 'काम' वासना को जागरित नहीं होने देते। (२) **पिठीनसे**=पिठी है नासिका जिसकी, जो

प्राणसाधना द्वारा सब शत्रुओं का संहार करता है, उस पिठीनस् के लिये **रजिम्**=उचित रजोगुण की मात्रा को, क्रियाशीलता को **दशस्यन्**=देते हुए **त्वम्**=आप **शच्या**=प्रज्ञान के द्वारा **षष्टिं सहस्रा**=वासनाओं के साठ हजार को भी **सचा**=साथ **आहन्**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—हम श्रद्धायुक्त व सोम का रक्षण करनेवाले बनें। प्रभु हमें शक्ति देंगे कि हम वासनाओं का विनाश कर पायें। प्राणसाधना करते हुए हम उचित रजोगुण की मात्रा से क्रियाशील बने रहें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुम्नम्-ओजः

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्यायं इन्द्र सुम्नमोजः।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमात्मन्! **अहं चन**=मैं भी **सूरिभिः**=ज्ञानी स्तोताओं के साथ **तव**=आपके **तत्**=उस **ज्यायः**=उत्कृष्ट **सुम्नम्**=स्तोत्र व **ओजः**=बल को **आनश्याम्**=प्राप्त करूँ। ज्ञानी स्तोताओं के सम्पर्क में रहता हुआ मैं भी आपका स्तवन करनेवाला बनूँ और यह स्तवन मुझे ओजस्विता प्रदान करे। (२) हे **सधवीर**=सदा वीरों के साथ निवास करनेवाले (नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः) **शविष्ठ**=बलवत्तम प्रभो! **यत्**=क्योंकि **वीराः**=वीर पुरुष **त्रिवरूथेन**=शरीर, मन व मस्तिष्क इन तीनों की सम्पत्ति को देनेवाले **नहुषा**=(णह बन्धने) उपासकों को परस्पर स्नेह बन्धन में बाँधनेवाले **त्वया**=आपके द्वारा ही दिये हुए ओज का **स्तवन्ते**=स्तवन-प्रशंसन करते हैं। आप से दिये गये ओज से ही वस्तुतः ओजस्विता व वीरता प्राप्त होती है।

भावार्थ—स्तोता पुरुषों के सम्पर्क में हम भी स्तवन की वृत्तिवाले बनते हुए प्रभु से 'सुम्न व ओज' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रातर्दनि क्षत्रश्री

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम्॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपकी **अस्याम्**=इस **द्युम्नहूतौ**=ज्ञानयुक्त पुकार में, ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतियों के होने पर **सखायः**=सखा **स्याम**=हों। हे **महिन**=पूज्य प्रभो! आपके ज्ञानी भक्त बनते हुए हम **प्रेष्ठाः**=आपके प्रियतम हों। (२) यह आपका उपासक **प्रातर्दनिः**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाला **क्षत्रश्रीः**=बल की शोभावाला **अस्तु**=हो। **वृत्राणां घने**=वासनाओं के विनाश के लिये और **धनानां सनये**=धनों की प्राप्ति के लिये होता हुआ यह उपासक **श्रेष्ठो**=प्रशस्यतम जीवनवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु के ज्ञानी-भक्त बन पायें। इस प्रकार प्रभु के मित्र व प्रियतम हों। शत्रुओं का हिंसन करनेवाले, बल की शोभावाले होते हुए वासनाओं को विनष्ट करने व धनों को प्राप्त करने में समर्थ हों, हमारा जीवन सम्पन्न व श्रेष्ठ हो।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमपान का क्या लाभ है?

किमस्य मदे किमु अस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ १ ॥

(१) **अस्य**=इस सोमपान (वीर्यरक्षण) से **जनित मदे**=उल्लास में **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **किं चकार**=क्या करता है? **उ**=और **अस्य पीतौ**=इसके शरीर के अन्दर पीने पर **किम्**=क्या करता है? **अस्य सख्ये**=इसकी मित्रता में **किम्**=क्या करनेवाला होता है? (२) **वा**=या **ये**=जो **अस्य निषदि**=इसकी उपासना में, इसके रक्षण से युक्त इस शरीर गृह में **रणाः**=रमण करते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं **ते**=वे **पुरा**=पहले **किम्**=क्या **विविद्रे**=प्राप्त करते हैं, **उ**=और उन्हें **नूतनासः किम्**=क्या नवीन लाभ होते हैं?

भावार्थ—यह मन्त्र सोमपान से होनेवाले लाभ का संकेत करने के लिये प्रश्न के रूप में करता है कि सोमपान से क्या होता है? अगले मन्त्र में उत्तर देते हैं—

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमपान से 'सत्' की प्राप्ति

सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २ ॥

(१) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **अस्य मदे**=इस सोमपान से जनित उल्लास में **सत्**=शुभ कर्म को ही **चकार**=करता है। **उ**=और **अस्य पीतौ**=इसके शरीर में पीने पर **सत्**=शुभ को ही करता है। **अस्य सख्ये**=इस सोम की पवित्रता में वह **सत् चकार**=शुभ को ही करनेवाला होता है। (२) **ये**=जो **अस्य निषदि**=इस सोम की उपासना में, सोमपान के रक्षण से युक्त इस शरीर-गृह में **रणाः**=आनन्द अनुभव करते हैं, **ते**=वे **पुरा**=पहले भी **सत्**=शुभ को **विविद्रे**=प्राप्त करते हैं, **उ**=और **नूतनासः**=इस सोमपान के नवीन लाभ भी यही होते हैं कि **सत्**=शुभ की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सोम के रक्षण से जीवन 'सत्' वाला बनता है। सोमरक्षण जीवन को असत् (अशुभ) से दूर करके सत् से युक्त करता है 'असतो मा सद्गमय'।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अनन्त 'महिमा-ऐश्वर्य-साफल्य व बल' वाले प्रभु

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **ते**=आपकी **समस्य महिमनः**=सम्पूर्ण महिमा को **नु**=निश्चय से **नहि विद्म**=नहीं जानते हैं। आपके **मघवत्त्वस्य**=ऐश्वर्यशालिनता का भी **नः**=हमें पूर्ण ज्ञान नहीं। आपकी महमिा व ऐश्वर्य असीम है। हमारा ज्ञान उसे सीमित नहीं कर पाता। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आपके अत्यन्त **नूतनस्य**=स्तुत्य व अद्भुत **राधसः राधसः**=प्रत्येक (ऐश्वर्य) को **नः**=हम नहीं जान पाते। **ते**=आपका **इन्द्रियम्**=बल **नकिः ददृशे**=हमारे से देखा

नहीं जा पाता। आपके बल के अन्त को हम नहीं पा पाते।

भावार्थ—प्रभु की 'महिमा, ऐश्वर्य, साफल्य व बल' सब अपरिमेय हैं। मनुष्य की बुद्धि से ये अपरिमेय ही हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरशिख के सन्तान का उच्छेद

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **एतत्**=यह **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **ते**=आपका **इन्द्रियम्**=वीर्य (बल) **अचेति**=जाना जाता है **येन**=जिससे आप **वरशिखस्य**=(वर्=to enclose, शिखा=a ray of light) प्रकाश की किरणों के ढक लेनेवाले, उनपर परदा डाल देनेवाले कामासुर के **शेषः**=सन्तान को (इस कामासुर के बच्चे को) **अवधीः**=नष्ट कर देते हैं। (२) **यत्**=जब **निहतस्य**=शत्रु के प्रति प्रेरित (हन् गतौ) **ते**=आपके **वज्रस्य**=वज्र के **शुष्मात् स्वनात्**=शत्रु शोषक शब्द से ही, हे **इन्द्र**=शत्रुविदारक प्रभो! **परमः**=यह (सर्वोत्कृष्ट) शत्रु भी **ददार**=विदीर्ण हो जाता है। 'वज्र का शुष्म स्वन' यही है कि हम कर्म में लगे रहें (वज् गतौ) और प्रभु का समरण करें। प्रभु स्मरणपूर्वक कर्म व्यापृति ही कामवासना के उच्छेद व अनाक्रमण के लिये आवश्यक है।

भावार्थ—प्रभु ही प्रकाश को आवृत करनेवाले वृत्र (काम) को विनष्ट करते हैं। प्रभु स्मरणपूर्वक कर्म में लगे रहने से वासना का आक्रमण ही नहीं होता, यह वासना रूप दैत्य विदीर्ण हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अभ्यावर्ती चायमान'

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त्॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु **वरशिखस्य**=प्रकाश की किरणों को आवृत कर लेनेवाले कामासुर (वृत्र) के **शेषः**=सन्तान को (कामासुर के बच्चे को) **वधीत्**=नष्ट कर देते हैं। इसके विनाश से ये **अभ्यावर्तिने**=निरन्तर कर्त्तव्य कर्मों को आवृत्त करनेवाले, दिनभर कर्त्तव्य-चक्र के पालन में लगे रहनेवाले, **चायमानाय**=पूजा करनेवाले उपासक के लिये **शिक्षन्**=ईप्सित बलों को देते हुए होते हैं। (२) **यत्**=जब वे प्रभु **हरियूपीयायाम्**=दुःखों का हरण करनेवाले यज्ञ-स्तम्भोंवाली इस यज्ञभूमि शरीर में (पुरुषो वाव यज्ञः) **पूर्वे अर्धे**=जीवन के पूर्व भाग में, अर्थात् यौवन दशा में ही **वृचीवतः**=इन उच्छेदक वासनारूप शत्रुओं को **हन्**=नष्ट करते हैं तो **भियसा**=भय से ही **अपरः**=हमारा शत्रु **दर्त्**=विदीर्ण हो जाता है। 'वरशिख का शेष' ही अपर है। इस अपर का हमारे जीवन में स्थान नहीं रहता।

भावार्थ—हम कर्त्तव्य-चक्र में लगे रहकर प्रभु का पूजन करनेवाले बनें। प्रभु हमारे लिये उच्छेदक वासनारूप शत्रु को जीवन के पूर्वार्ध में ही विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

वृचीवान् का विनाश

त्रिंशच्छतं वर्मिणं इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन्॥ ६॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यव्यावत्याम्**=इस बुराइयों के अमिश्रण व अच्छाइयों के मिश्रणवाली यव्यावती (हरियूपीया, ५) में **साकम्**=साथ-साथ इकट्ठे ही, **त्रिंशत् शतम्**=संख्या में तीसों हजार, अर्थात् बहुत **वर्मिणः**=कवचधारी **वृचीवन्तः**=हमारा उच्छेद करनेवाले वासनारूप शत्रु **श्रवस्या**=ज्ञान प्राप्ति की प्रबल कामना से **नि अर्थानि आयन्**=अर्थशून्यता को प्राप्त होते हैं। अर्थात् अपना प्रयोजन नहीं सिद्ध कर पाते। ज्ञान प्राप्ति की कामना इन सब अन्य शत्रुभूत कामनाओं को नष्ट कर देती है। (२) ये वृचीवान् **शरवे पत्यमानाः**=हिंसा के लिये हमारे पर आक्रमण करते हैं। **पात्रा भिन्दानाः**=इस हरियूयीया नामक शरीर रूप यज्ञवेदि में अंग रूप यज्ञ पात्रों को ये विदीर्ण करते हैं। अंगों की शक्ति को क्षीण करनेवाले होते हैं। वे पराभूत होते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान प्राप्ति की प्रबल कामना के द्वारा अन्य शत्रुभूत कामनाओं को विनष्ट करें। जो कामनाएँ हमारा विनाश करती हैं और अंगों की शक्ति को क्षीण करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अरुषौ गावौ

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृज्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन्॥ ७॥

(१) **यस्य**=जिस प्रभु दी हुई **अरुषा**=आरोचमान, तेज व ज्ञान से चमकती हुई, **सूयवस्यू**=अच्छी प्रकार बुराइयों को दूर करनेवाली व अच्छाइयों को ग्रहण करनेवाली, **रेरिहाणा**=यज्ञों व ज्ञानों का आस्वाद लेती हुई **गावो**=कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ रूप गौयें **उ**=निश्चय से **अन्तः**= द्यावापृथिवी के अन्दर **सुचरतः**=सम्यक् विचरण करती हैं। कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों को करती हुई शरीर रूप पृथिवी को दृढ व तेजस्वी बनाती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को प्राप्त करती हुई मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानोज्ज्वल करती हैं। **सः**=वे प्रभु **सृज्जयाय**=(सृ गतौ) गतिशीलता के द्वारा विजय को प्राप्त करनेवाले के लिये **तुर्वशम्**=त्वरा से वश में कर लेनेवाले इस क्रोध को **परादात्**=दूर करते हैं। (२) ये प्रभु ही **दैववाताय**='माता, पिता, आचार्य व अतिथि' आदि देवों से प्रेरित होनेवाले इस 'अभ्यावर्ती चायमान' (२७।५) के लिये **शिक्षन्**= शक्ति को देते हुए **वृचीवतः**=उच्छेद करनेवाले वासनारूप शत्रुओं को (परादात्)=सुदूर विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके शरीररूप पृथिवी को तेज से दीप्त तथा मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानदीप्त बनाते हैं। क्रियाशीलता द्वारा विजयी पुरुष के लिये क्रोध को नष्ट करते हैं तथा दैववात पुरुष के लिये वासनाओं का उच्छेद करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दूणाशा दक्षिणा

द्व्याँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम्॥ ८॥

(१) इन्द्रियाँ 'गौ' कहलाती हैं। ये 'ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय' रूप से दो भागों में बँटी हैं। हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **मघवा**=ऐश्वर्यशाली हैं व यज्ञशील हैं (मघ=मख), **सम्राट्**=सम्यक् शासन करनेवाले हैं व दीप्त हैं। आप **मह्यम्**=मेरे लिये **द्व्यान्**=इन दो भागों में बटी हुई, **रथिनः**=उत्तम शरीर रूप रथवाली **वधूमतः**=वेदवाणी रूप वधूवाली **विंशतिम्**=दस इन्द्रियाँ व दस प्राणशक्तियाँ इस प्रकार मिलकर बीस **गाः**=इन्द्रिय रूप गौवों को प्राप्त कराते हैं। (२) **अभ्यावर्ती**=कर्त्तव्य कर्म रूप चक्र में चलनेवाला **चायमानः**=प्रभु का पूजन करनेवाला इन इन्द्रियों को प्रभु के लिये **ददाति**=देता है, अर्थात् इन्हें विषयों में न फँसने देकर प्रभु की ओर प्रेरित करता है। इन **पार्थवानाम्**=(प्रथ विस्तारे) विषयों में न फँसने देकर इन्द्रिय शक्तियों का विस्तार करनेवाले इन पुरुषों की **इयं दक्षिणा**=यह प्रभु के प्रति इन्द्रियों को देने का कार्य **दूणाशा**=नष्ट होनेवाला नहीं। यह दक्षिणा जब तक चलती है यह इन पार्थवों को नष्ट नहीं होने देती।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप गौवों को प्राप्त कराती हैं। कार्यक्रम में चलनेवाला प्रभु का पूजक इन इन्द्रियों को प्रभु के प्रति देता है। इनकी यह दक्षिणा नष्ट नहीं होती, यह दक्षिणा इन्हें भी नाश से बचाती है।

भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि अगले सूक्त में गौवों का शंसन करते हैं—

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गौवें और भद्र

आ गावो अग्नमन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः॥ १॥

(१) **गावः**=गौवें **सर्वत**=सब ओर से **आ अग्मन्**=हमें प्राप्त हों, **उत**=और **भद्रं अक्रन्द**=हमारा कल्याण करें। ये गौवें **गोष्ठे सीदन्तु**=गोष्ठ में स्थित हों और **अस्मे**=हमारे लिये **रणयन्तु**=रमणीयता व आनन्द को करनेवाली हैं। वस्तुतः इन गौवों के दूध से ही इन्द्रिय रूप गौवों को शक्ति व ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। यह दूध ही कर्मेन्द्रियों को सात्त्विक यज्ञादि कर्मों में व्यापृत करके सशक्त बनाता है तथा ज्ञानेन्द्रियों को यही ज्ञानदीप्त करता है। (२) ये गौवें **इह**=हमारे घरों में **प्रजावतीः**=प्रकृष्ट प्रजाओंवाली, उत्तम बछड़े-बछियोंवाली व **पुरुरूपाः**=भिन्न-भिन्न रूपोंवाली 'गौर, कपिला व कृष्ण' **स्युः**=हों। यह गौवें **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पूर्वीः**=बहुत **उषसः**=उषाकालों में **दुहानाः**=दोहमान हों, दूध को देनेवाली हों।

भावार्थ—गौवें घरों में प्राप्त हों और हमारे घरों को मगंलमय बनायें। उत्तम बछड़ोंवाली, अनेक रूपोंवाली ये गौवें सदा उषाकालों में दूध को प्राप्त करानेवाली हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**गाव इन्द्रो वा** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'यज्वा पृणन्' की अभिन्न खिल्य में स्थिति

इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने॒ख॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम्॥ २॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **यज्वने**=यज्ञशील पुरुष के लिये, **च**=और **पृणते**=स्तुतियों के द्वारा प्रीणित करनेवाले पुरुष के लिये **शिक्षति**=आवश्यक धन को देता है। **उप इत् ददाति**=समीप प्राप्त होकर देता ही है। इस यज्ञशील पुरुष के **स्वं न मुषायति**=धन की अपहृत नहीं करता। (२) **अस्य**=इस यज्ञशील वस्तुतियों के द्वारा प्रीणित करनेवाले मनुष्य के **रयिम्**=ऐश्वर्य को **इत्**=निश्चय से **भूयः भूयः**=अधिक और अधिक **वर्धयन्**=बढ़ाता हुआ, इस **देवयुम्**=दिव्य गुणों को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले पुरुष को **अभिन्ने**=शत्रुओं से न विदीर्ण किये जानेवाले **खिल्ये**=अप्रतिहत स्थान में **निदधाति**=स्थापित करते हैं। तमोगुण व रजोगुण से ऊपर उठाकर सत्त्वगुण में स्थापित करते हैं। इस सत्त्वगुण में स्थित हुआ-हुआ यह पुरुष वासनारूप शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील स्तोता के धन को बढ़ाते हैं और इसे सत्त्वगुण में स्थापित करके वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देते।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

गौवें व यज्ञसिद्धि

न ता न॑शन्ति॒ न द॑भाति॒ तस्क॑रो॒ नासा॑मामि॒त्रो व्यथि॒रा द॑धर्षति।
दे॒वाँश्च॒ याभि॒र्यज॑ते॒ ददा॑ति॒ च॒ ज्योगित्ताभिः॒ सच॒ते गोप॑तिः॒ स॒ह॥ ३॥

(१) **ताः**=वे गौवें **न नशन्ति**=अदृष्ट नहीं होतीं। **तस्करः**=चोर **न दभाति**=इन्हें हिंसित नहीं करता। कोई **व्यथिः**=पीड़ित करनेवाला **अमित्रः**=शत्रु **आसां न आदधर्षति**=इनका धर्षण नहीं करता है। (२) **च**=और यह **गोपतिः**=गौओं का रक्षक पुरुष **याभिः**=जिनके द्वारा, जिनसे प्राप्त दुग्ध-घृत आदि से **देवान् यजते**=देवयज्ञ करता है, अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करता है **च**=और **ददाति**=दान को कर पाता है, **ताभिः सह**=उन गौवों के साथ **ज्योग् इत्**=चिरकाल तक ही **सचते**=समवेत होता है। इन गौवों के द्वारा उसके सब यज्ञ ठीक प्रकार चलते हैं।

भावार्थ—हमारी गौवें सुरक्षित रहती हैं। इनके द्वारा हम देवयज्ञ आदि यज्ञों को कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

न अपहरण, न विशसन (गौवों का)

न ता अर्वा॑ रे॒णुक॑काटो अश्नुते॒ न सं॑स्कृत॒त्रमुप॑ यन्ति॒ ता अ॒भि।
उ॒रु॒गा॒यमभ॑यं॒ तस्य॒ ता अनु॒ गावो॒ मर्त॑स्य॒ वि च॑रन्ति॒ यज्व॑नः॥ ४॥

(१) **ताः**=इन गौवों को **रेणुककाटः**=युद्ध में पार्थिव धूलि का उद्भेदक **अर्वा**=युद्ध के लिये आया हुआ घोड़ा **न अश्नुते**=नहीं प्राप्त करता। अर्थात् युद्ध के द्वारा कोई हमारी इन गौवों का अपहरण नहीं कर पाता। तथा **ताः**=वे गौएँ **संस्कृतत्रम्**=विशसन आदि संस्कार को **न अभि उपयन्ति**=नहीं प्राप्त होती हैं। अर्थात् ये गौवें वध्यस्थल में हिंसित होकर भोजन का अंग नहीं

बन जाती। (२) और **ताः गावः**=वे गौवें **यज्वनः**=यज्ञशील **तस्य-मर्तस्य**=उस मनुष्य के **उरुगायम्**=विस्तीर्णगमनवाले **अभयम्**=भयवर्जित प्रदेश का **अनु**=लक्ष्य करके **विचरन्ति**=विचरण करती है। यज्ञों में ही इनके दूध-घृत आदि का प्रयोग होता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से न हमारी गौवों का युद्ध द्वारा अपहरण होता है, ना ये वधशाला में पहुँचती हैं। यज्ञशील पुरुषों की यज्ञभूमियों में ही ये विचरती हैं और यज्ञार्थ घृत-दुग्ध आदि को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**गावः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'गावः' भगः (गौ)

गावो॒ भगो॒ गाव॒ इन्द्रो॑ मे अच्छा॑न् गाव॒ः सोम॑स्य प्रथ॒मस्य॑ भ॒क्षः।
इ॒मा या गाव॒ः स ज॑नास॒ इन्द्र॑ इ॒च्छामी॑द्धृ॒दा मन॑सा चि॒दिन्द्र॑म्॥ ५॥

(१) **गावः भगः**=गौएँ ही ऐश्वर्य हैं। **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **मे**=मेरे लिये **गावः अच्छान्**=गौवों को प्राप्त कराये (यक्षतु सा०)। ये **गावः**=गो-दुग्ध **प्रथमस्य सोमस्य**=सर्वश्रेष्ठ सोम के **भक्षः**=भोजन हैं, अर्थात् गो-दुग्ध के सेवन सर्वोत्तम वीर्य प्राप्त होता है। (२) **इमाः**=ये **याः**=जो **गावः**=गौवें हैं, हे **जनासः**=लोगो! **या स इन्द्रः**=वे ही इन्द्र हैं। इन्द्र की प्राप्ति का ये गौएँ ही साधन बनती हैं। मैं वस्तुतः **हृदा**=श्रद्धायुक्त हृदय से तथा **मनसा**=प्रबल प्राप्ति की कामनावाले मनसे **इन्द्रं चित्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **इच्छामि**=चाहता हूँ। उस प्रभु प्राप्ति की कामना से ही इन गौवों की भी सेवा करता हूँ। इनके दुग्ध से ही सात्त्विक बुद्धिवाला होकर मैं प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता हूँ।

भावार्थ—गौवें ही सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट सोम को अपने दुग्ध द्वारा प्राप्त कराती हैं। ये ही अपने दूध से हमारी बुद्धि को सात्त्विक बनाकर हमें प्रभु की प्राप्ति के योग्य करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**गावः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्'

यू॒यं गावो मेदयथा कृ॒शं चि॑दश्री॒रं चि॑त्कृणुथा सुप्रती॒कम्।
भ॒द्रं गृ॒हं कृ॑णुथ भद्रवाचो बृ॒हद्वो॑ वय॑ उच्यते स॒भासु॑॥ ६॥

(१) हे **गावः**=गौओ! **यूयम्**=आप अपने दूध से **कृशंचित्**=क्षीण हुए-हुए को **मेदयथा**=उचित मेदस्वाला व आप्यायित करती हो। **अश्रीरं चित्**=शोभारहित को, शोभाशून्य अंगोंवाले को **चित्**=भी **सुप्रतीकम्**=उत्तम अंग-प्रत्यंगवाला **कृणुथा**=करती हो। उसका भी हीन शरीर फिर से श्रीसम्पन्न हो उठता है। (२) **भद्रवाचः**=शुभ वाणीवाली आप **गृहं भद्रं कृणुथ**=सारे घर को मंगलमय कर देती हो। इसी से **सभासु**=सभाओं में **बृहत्**=खूब ही **वः**=आपका **वयः उच्यते**=(energy, strength, soundness of constitution) शक्ति व स्वास्थ्य का प्रतिपादन होता है। अर्थात् आपके दूध से प्राप्त होनेवाली शक्ति व स्वास्थ्य का खूब प्रशंसन होता है।

भावार्थ—गौवें अपने दूध से कृश को आप्यायित करती हैं। श्रीविहीन को श्रीसम्पन्न बनाती हैं। घर को मंगलमय बनाती हैं। उत्कृष्ट शक्ति व स्वास्थ्य को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

शुद्ध चारा-शुद्ध जल

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥

(१) हे गौवे ! जो आप **प्रजावतीः**=उत्कृष्ट बछड़ों व बछियोंवाली हों, **सूयवसं रिशन्तीः**=उत्तम घास को चरती हो, तथा **सुप्रपाणे**=उत्तम जलपान-स्थान में **शुद्धाः अपः**=शुद्ध जलों को **पिबन्तीः**=पीती हो। उन **वः**=आपको **स्तेनः मा ईशत**=चोर स्वामित्व करनेवाला न हो। **अपशंसः**=पाप का शंसन करनेवाला तुम्हारा ईश न बने। (२) **वः**=आपको **रुद्रस्य**=उस मृत्यु द्वारा रुलानेवाले कालात्मक प्रभु का **हेतिः**=वज्र **परिवृज्याः**=छोड़ दे। आप पर प्रभु का वज्र न गिरे। अर्थात् इन गौवों पर कोई आधिदैविक आपत्ति न आ जाये।

भावार्थ—शुद्ध घास व शुद्ध जल का सेवन करती हुई गौवें उत्कृष्ट दूध देती हैं। इन गौवों पर स्तेन व अधशंस (पापी) पुरुष का शासन न हो जाए। ये प्रभु के वज्र से भी आहत न हों। कोई पातक बीमारी न आक्रान्त कर ले।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः; गाव इन्द्रो वा ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अपपर्चन (Impregnation)

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् । उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

(१) **इदम्**=यह **उपपर्चनम्** (Impregnation)=गर्भ का आधान **आसु गोषु**=इन गौवों में **उपपृच्यताम्**=सम्यक् समीपता से प्राप्त हो। **ऋषभस्य**=खूब शक्तिशाली सांड के **रेतसि**=रेतःकणों में यह गर्भाधान की क्रिया **उप**=संपृक्त हो। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **तववीर्ये**=तेरी शक्ति के निमित्त यह **उप**=उपपर्चन समीपता से प्राप्त हो। जितना ही यह ऋषभ उत्तम नस्ल का होगा, उतना ही यह गौ के उत्तम दूध का कारण बनेगा। और वह उत्तम दूध हमारे शरीर में शक्ति की उत्पत्ति का साधन बनेगा।

भावार्थ—गौवों का उपपर्चन उत्तम ऋषभों द्वारा हो। इन गौवों से प्राप्त दुग्ध हमारी उत्तम शक्ति का साधन बने।

अगले सूक्त में पुन 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

अथ चतुर्थाष्टके सप्तमोऽध्यायः

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रभु की मित्रता व महान् रमणीय जीवन

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १ ॥

(१) **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **वः**=तुम्हारे **इन्द्रम्**=परमैश्वर्य के कारणभूत प्रभु को **सख्याय**=मित्रता के लिये **सेपुः**=पूजते हैं। ये नर **महः यन्तः**=महनीय (उत्कृष्ट) कर्मों को करते हुए तथा **सुमतये चकानाः**=शोभन स्तुति के लिये कामना करते हुए, अर्थात् उत्कृष्ट कर्मों द्वारा प्रभु का स्तवन करते हुए प्रभु को मित्रता के लिये पूजते हैं। प्रभु का सच्चा स्तवन तो सदा

उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहता ही है। (२) **वज्रहस्तः**=सब आसुरभावों के विनाश के लिये वज्र को हाथ में लिये हुए वे प्रभु **हि**=निश्चय से **महः दाता अस्ति**=महान् धन के देनेवाले हैं। **उ**=निश्चय से उस **महाम्**=महान् **रण्यम्**=रमणीय प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिये **यजध्वम्**=पूजो। प्रभु की मित्रता में ही कल्याण है। वे प्रभु महान् हैं, रमणीय हैं। उनकी मित्रता में हमारा जीवन भी महान् व रमणीय बनता है।

भावार्थ—उत्तम कर्मों के द्वारा प्रभु का स्तवन करते हुए हम प्रभु की मित्रता को प्राप्त करें। यह मित्रता ही हमें महान् रमणीय जीवनवाला बनायेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'हिरण्यय रथ का सारथि' प्रभु

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः॥ २॥

(१) **हस्ते**=(हस्तः हन्तेः) शत्रुओं का हनन करनेवाले **यस्मिन्**=जिस इन्द्र में **नर्याः**=नरहितकारी धन **आमिमिक्षुः**=आपूरित होते हैं, अर्थात् जो प्रभु वासनाओं के संहार के द्वारा उपासक को उत्कृष्ट धन प्राप्त कराते हैं, वे प्रभु **हिरण्यये रथेः**=इस प्रभु कृपा से ही ज्योतिर्मय बने शरीर-रथ में **रथेष्ठाः**=सारथि होते हैं। अपने उपासक के शरीर-रथ का सञ्चालन प्रभु करते हैं। (२) उस समय **रश्मयः**=इस शरीरथ के घोड़ों (इन्द्रियाश्वों) की लगामें **स्थूरयोः गभस्त्योः**=उस सारथि के स्थूल, मज़बूत व दृढ़ हाथों में **आ (यम्यन्ते)**=होती हैं। **अध्वन्**=इस जीवनयात्रा के मार्ग में **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व **वृषणः**=शक्तिशाली होते हैं और **युजानाः**=शरीर-रथ में जुते होते हैं। अर्थात् उपासक का जीवन सतत क्रियाशीलता का होता है, वहाँ अकर्मण्यता नहीं होती।

भावार्थ—प्रभु के हाथों में सब नरहितकारी धन विद्यमान हैं। ये प्रभु ही इस शरीर-रथ के सारथि बनते हैं। उस समय इन्द्रियाश्व भटकते नहीं और शरीर-रथ को मार्ग पर ले चलनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वह महान् नृत्यकार

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ॥ ३॥

(१) हे इन्द्र! **श्रिये**=शोभा की प्राप्ति के लिये, जीवन को शुभ बनाने के लिये **ते पादा**=तेरे चरणों में **दुवः**=पूजा को **आमिमिक्षुः**=अर्पित करते हैं। तेरे चरणों की पूजा ही हमारे जीवन की श्रीसम्पन्नता का साधन बनती है। आप **शवसा**=बल के द्वारा **धृष्णुः**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले, **वज्री**=वज्रहस्ता व **दक्षिणावान्**=सब दानों को देनेवाले हैं। (२) हे **नृतो**=इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नृत्य को करानेवाले प्रभो! आप **सुरभिम्**=उत्तमता से कार्यों को करने में समर्थ-सुदृढ **अत्कम्**=ज्ञान कवच को **वसानः**=आच्छादित करते हुए (ब्रह्म वर्म ममान्तरम्) **दृशे कम्**=दर्शनीय व आनन्द रूप होते हैं। हे प्रभो! **स्वः न**=इस ज्योतिर्मय सूर्य के समान **इषिरः बभूथ**=हमें मार्ग पर प्रेरित करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु का परिचरण ही जीवन को प्रशस्त बनाता है। प्रभु हमारे दृढ़ कवच हैं। सूर्य के समान मार्ग के दर्शक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोम का महत्त्व

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार जब प्रभु हमारे कवच होते हैं, तो **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **सः सोमः**=वह सोम (वीर्यशक्ति) **आमिश्लतमः**=सर्वत्र शरीर के अंग-प्रत्यंग में युक्त **भूत्**=होती है। **यस्मिन्**=जिस सोम के ऐसा होने पर **पक्तिः पच्यते**=ज्ञान का ठीक परिपाक होता है। और **धानाः सन्ति**=ईश्वर का प्रणिधान की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। (२) इस सोम के शरीर में मिश्लतम होने पर **नरः**=ये उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोग **इन्द्रं स्तुवन्तः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का स्तवन करते हुए **ब्रह्मकाराः**=इस वेद को अपने अन्दर करनेवाले होते हैं (ब्रह्म कुर्वन्ति इति)। **उक्था**=सदा स्तुति-वचनों का **शंसन्तः**=शंसन करते हुए ये लोग **देववाततमाः**=अधिक से अधिक दिव्यगुणों को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सोम-रक्षण से (क) ज्ञान का परिपाक होता है, (ख) ईश्वर प्रणिधान की पूर्ति होती है, (ग) प्रभु-स्तवन चलता है, (घ) वेदज्ञान उत्पन्न होता है, (ङ) स्तुत्यवचनों का उच्चारण व दिव्यगुणों की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के अनन्त बल का अपने में धारण

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बबाधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **ते अस्य शवसः**=आपके इस बल का **अन्तः**=अन्त **न धायि**=नहीं जाना जाता (अव धायि)। अनन्त आपका बल है। इस बल के **महित्वा**=महत्त्व से **तु**=तो आप **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **विबाबधे**=विशेषरूप से बद्ध करते हैं। आप अपने बल के द्वारा सारे ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए हैं। (२) **सूरिः**=स्तोता पुरुष **ऊती**=सोम के रक्षण के द्वारा तू **तूतुजानः**=सब अशुभों का संहार करता हुआ, **समीजमानः**=सम्यक् यजन व पूजन करता हुआ **ता आपृणति**=उन बलों को अपने अन्दर आपूरित करता है। उसी प्रकार उन बलों को आपूरित करता है **इव**=जैसे कि **यूथा**=इन्द्रिय समूहों को **अप्सु**=कर्मों में आपूरित करता है। वस्तुतः इन्द्रियों को कर्मों में लगाये रखने पर ही जीवन वासना शून्य बनता है और इन कर्मों द्वारा, प्रभु-पूजन होकर, प्रभु के बलों को अपने में धारण करने का सम्भव होता है।

भावार्थ—प्रभु का अनन्त बल है जिसके द्वारा वे सारे ब्रह्माण्ड को बद्ध किये हुए हैं। एक स्तोता कर्मों द्वारा प्रभु-पूजन करता हुआ इन बलों से अपने को आपूरित करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

असमात्मोजाः

एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून्॥ ६॥

(१) **एवा**=इस प्रकार **इत्**=निश्चय से **ऋष्वः**=वह महान् **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **सुहवः**

अस्तु=हमारे से शोभनतया पुकारने योग्य हो। वे **हिरिशिप्रः**=मनोहर हनुओं व नासिकाओं को देनेवाले प्रभु (हिरिशिप्रे यस्मात्) **ऊती**=रक्षण साधनों के द्वारा अथवा **अनूती**=बिना रक्षण साधनों के भी **सत्वा**=शत्रुओं का विनाश करनेवाले हैं (सादयिता) तथा धनों के देनेवाले हैं (सन्) प्रभु हमें रक्षण साधन प्राप्त कराके जब हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं तो 'ऊती' और स्वयं प्रभु हाथ पैर आदि साधनों से रहित होते हुए ही हमारा रक्षण करते हैं, सो 'अनूती'। (२) **एवा**=इस प्रकार **हि**=निश्चय से वे प्रभु **असमाति ओजः**=असमान अनुपम तेजवाले **जातः**=हुए हैं। **च**=और वे प्रभु **उत**=इन बहुत **वृत्रा**=वासनाओं को **हनति**=नष्ट करते हैं और **दस्यून्**=दास्यवभावों को **नि**=(हनति) हमारे से दूर करते हैं। यह सब प्रभु हमें उत्तम हनुओं व नासिका को प्राप्त कराके ही करते हैं। उत्तम हनु (जबड़ों) का भाव 'भोजन को खूब चबाकर खाने से' है तथा उत्तम नासिका का भाव प्राणसाधना से है।

भावार्थ—प्रभु का हम स्तवन करें। प्रभु से दिये गये इन जबड़ों से खूब चबाकर खायें। नासिका छिद्रों से प्राणसाधना करें। वे अनुपम शक्तिवाले प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करेंगे और हमें दास्यव भावों से दूर करेंगे।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु के एकदेश में ब्रह्माण्ड की स्थिति

भूय इद्वावृधे वीर्यायैक अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे॥ १॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **वीर्याय**=शक्तिशाली कर्मों के लिये **भूयः इत्**=खूब ही **वावृधे**=वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। **एकः**=वे प्रभु अद्वितीय हैं। **अजुर्यः**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं। **वसूनिदयते**=ये प्रभु हमारे लिये सब वसुओं को देते हैं। (२) ये **इन्द्रः**=प्रभु **दिवः पृथिव्याः**=द्युलोक व पृथिवीलोक से **प्ररिरिचे**=बहुत अधिक बढ़े हुए हैं। **उभे रोदसी**=ये दोनों द्यावापृथिवी **इत्**=निश्चय से **अस्य**=इस प्रभु के **अर्धं प्रति**=आधे भाग के ही प्रतिनिधि होते हैं। अर्थात् ये द्यावापृथिवी प्रभु के एकदेश में ही हैं। 'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोस्येहाभवत् पुनः'।

भावार्थ—प्रभु के कर्म अतिशयेन शक्तिशाली हैं। प्रभु ही सब धनों को देते हैं। ये सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एकदेश में है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'महान् लोकों के निर्माता' प्रभु

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात्॥ २॥

(१) **अधा**=अब **अस्य**=इस प्रभु के **बृहत् असुर्यम्**=महान् असुर वध के कर्म का **मन्ये**=स्तवन करता हूँ। **यानि दाधार**=प्रभु जिनका धारण करते हैं **नकिः आमिनाति**=इन्हें कोई हिंसित नहीं करता। (२) प्रभु का यह सर्वप्रथम महान् कर्म है कि **दिवेदिवे**=प्रतिदिन **सूर्यः**=सूर्य **दर्शतः भूत्**=दर्शनीय होता है। साथ ही प्रभु **सुक्रतु**=उत्तम प्रज्ञान व कर्मोंवाले हैं और **उर्विया**=(उरूणि) विशाल **सद्मानि**=लोकों को **विधात्**=बनाता है। एक-एक लोक कितना

विशाल है, प्रभु इन सब विशाल लोकों का वे प्रभु निर्माण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु का असुरहनन रूप कर्म प्रशंसनीय है। प्रभु ही सूर्योदय को करते हैं, प्रभु ही इन विशाल लोकों का निर्माण करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

नदियों व पर्वतों का निर्माण

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले प्रभो! **अद्या चित्**=आज भी **नू चित्**=निश्चय से आपका **तत्**=वह **नदीनां अपः**=नदियों सम्बन्धी कर्म अनुपक्षीण रूप से चल रहा है **यत्**=कि **आभ्यः**=इनके लिए आपने **गातुं अरदः**=जाने के मार्ग को बनाया है। 'नदियाँ सदा से चल रही हैं' यह आपका अद्भुत ही कर्म है। (२) **पर्वताः**=पर्वत **निसेदुः**=अपने स्थान पर ऐसे निषण्ण हैं कि **न**=जैसे **अद्मसदः**=भोजन खाने के लिये बैठनेवाले निश्चलभाव से स्थित होते हैं। हे **सुक्रतो**=उत्तम प्रज्ञान व कर्मोंवाले प्रभो! **त्वया**=आपके द्वारा **रजांसि**=सब लोक **दृढानि**=दृढ़ व स्थिर किये गये हैं।

भावार्थ—प्रभु ही नदियों के मार्ग को बनाते हैं। वे ही पर्वतों व लोकों को दृढ़ करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

मेघविदारण व जलवर्षण

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान्।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम्॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् सत्यं इत्**=वह बात सत्य ही है कि **त्वावान् अन्यः न अस्ति**=आप जैसा और कोई नहीं है। हे प्रभो! **न देवः**=न कोई देव, **न मर्त्यः**=नां ही कोई मनुष्य **ज्यायान्**=आपसे बड़ा नहीं है। (२) आप ही **परिशयानम्**=अन्तरिक्ष में चारों ओर शयन करते हुए **अहिम्**=मेघ को **अहन्**=नष्ट करते हैं, विदीर्ण करते हैं। **अर्णः**=जल को **अव असृजः**=नीचे पृथ्वी पर भेजते हैं। और **अपः**=इन जलों को **समुद्रं अच्छा**=समुद्र की ओर प्रवाहित करते हैं। समुद्र से सूर्य-किरणों द्वारा ये वाष्पीभूत होकर फिर अन्तरिक्ष में मेघ का रूप धारण करते हैं। इस प्रकार फिर वही चक्र चल पड़ता है।

भावार्थ—प्रभु के समान व अधिक कोई और नहीं है। प्रभु ही बादलों को विदीर्ण करके जलों को बरसाते हैं और समुद्र की ओर प्रवाहित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

सूर्य, द्युलोक व उषा का प्रादुर्भाव

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम्॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमात्मन्! **त्वम्**=आपने **पर्वतस्य**=इस पर्वोंवाले मेघ के **दुरः**=द्वारों को **दृढम्**=दृढ़ता से **अरुजः**=नष्ट किया और **अपः**=जलों को **विषूचीः वि (असृजः)**=चारों ओर गतिवाला किया है। इस प्रकार जलवर्षण की व्यवस्था से आपने सारे संसार का पोषण किया

है। (२) **जगतः**=इस सारे जगत् के, ब्रह्माण्ड के पिण्डों के तथा **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **राजा अभवः**=आप शासक हैं। आप **साकम्**=साथ-साथ ही **सूर्यम्**=सूर्य को **द्याम्**=प्रकाशमय अन्तरिक्षलोक को तथा **उषासम्**=उषाकाल को **जनयन्**=प्रादुर्भूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु मेघों के द्वारों को खोलकर सर्वत्र वर्षण करते हुए सारे जगत् मनुष्यों के जीवनों को दीप्त करते हैं। सूर्य को द्युलोक को व उषाकाल को प्रादुर्भूत करते हुए मनुष्यों के जीवन में दीप्ति प्राप्त कराते हैं। सूर्य आदि के अभाव में जीवन की कल्पना ही नहीं होती।

इस लोक में सुहोत्र=उत्तम वाणीवाले व उत्तम यज्ञशील पुरुष (इन्द्र) का आराधन करते हैं—

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**सुहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रयिपते रयीणाम्

अभूरेको॑ रयिपते रयी॒णामा हस्त॑योरधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः।
वि तो॒के अ॒प्सु तन॑ये च॒ सूरेऽवो॑चन्त चर्ष॒णयो॒ विवा॑चः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! हे **रयीणां रयिपते**=धनों के स्वामिन् प्रभो! आप ही **एकः**=अद्वितीय शासक **अभूः**=हैं। आप **कृष्टीः**=सब प्रजाओं को **हस्तयोः आ अधिथाः**=अपने हाथों में सर्वतः धारण करते हैं। आप ही सबके आधार हैं। (२) **चर्षणयः**=मनुष्य **तोके**=पुत्रों के निमित्त **अप्सु**=उत्कृष्ट कर्मों के निमित्त **च**=और **तनये**=पौत्रों के निमित्त **च**=और **सूरे**=उत्कृष्ट (शत्रूणां प्रेरणा) शत्रुओं के कम्पित करने के कार्य के निमित्त **विवाचः**=विविध स्तुतिवाणियों को **वि अवोचन्त**=विशेष रूप से आचरण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही शासक हैं, धनों के स्वामी हैं। सब मनुष्य 'उत्तम पुत्रों, कर्मों, पौत्रों व शत्रुकम्पन आदि कार्यों' के निमित्त प्रभु का ही विविध वाणियों से स्तवन करते हैं। प्रभु ही उचित धनों को प्राप्त कराके हमें उत्तम सन्तानादि को प्राप्त करने में क्षम करते हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

प्रभु के शासन में

तवद्भि॒येन्द्र॒ पार्थि॑वानि॒ विश्वाच्यु॑ता चिच्च्यावयन्ते॒ रजां॑सि।
द्यावा॒क्षामा॒ पर्व॑तासो॒ वना॑नि॒ विश्वं॑ दृ॒ळ्हं भ॑यते॒ अज्म॒न्ना ते॑॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वद्भिया**=आपके भय से **पार्थिवानि**=(पृथिवी=अन्तरिक्षम्) इस अन्तरिक्ष में होनेवाले **विश्वा**=सब **अच्युता चित्**=बड़े दृढ़ जिनका स्वस्थान से हिलाना बड़ा कठिन है ऐसे अच्युत भी, **रजांसि**=लोक **च्यावयन्ते**=स्थानच्युत कराये जाते हैं। (२) **द्यावाक्षामा**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक, **पर्वतासः**=पर्वत, **वनानि**=वन, अन्य भी **विश्वम्**=सब **दृळहम्**=यह दृढ़ लोक **ते अज्मन्**=आपके आगमन में **आभयते**=समन्तात् भयभीत हो उठता है।

भावार्थ—प्रभु के भय से यह संसार भयभीत हो उठता है। सब संसार प्रभु के शासन में चलता है।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

काम, लोभ व क्रोध का विनाश

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ।
दशं प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **कुत्सेन**=इन वासनाओं का हिंसन करनेवाले उपासक के साथ **अशुषम्** शोषपितुमशक्य=जिसका शोषण करना बड़ा कठिन है उस **शुष्णम्**=शक्तियों का शोषण करनेवाले कामासुर (को) **अभियुध्य**=आभिमुख्येन युद्ध करते हैं। **गविष्टौ**=संग्राम में **कुयवम्**=सब बुराइयों से मिश्रण करानेवाले लोभ को **दश**=(अदशः) आप हिंसित करते हैं। (२) **अध**=अब **प्रपित्वे**=(प्रपतने) प्रकृष्ट आक्रमणवाले युद्ध में **सूर्यस्य** (सूर् to hurt, kill)=नष्ट करनेवालों में प्रमुख क्रोध के **चक्रम्**=चक्र को, दौर को **मुषायः**=आप अपहृत करते हैं। अर्थात् आप क्रोध को विनष्ट करते हो। इस प्रकार **रथांसि**=सब दोषों को आप **अविवेः**=(अपणमयः) हमारे जीवन से दूर करते हैं।

भावार्थ—काम-क्रोध-लोभ को दूर करके प्रभु हमारे जीवनों को निर्दोष बनाते हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदतिशक्वरी** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शंवर' (ईर्ष्या) का विनाश

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **दस्योः**=उपक्षय के कारणभूत **शम्बरस्य**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्या रूप असुर के **शतानि**=सैंकड़ों **अप्रतीनि**=जिनपर आक्रमण करना कठिन है, उन **पुरः**=नगरों को **अव जघन्थ**=नष्ट करते हैं। (२) **यत्र**=जिस ईर्ष्या के नष्ट होने पर हे **शचीवः**=प्रज्ञावन् प्रभो! आप **शच्या अशिक्षः**=प्रज्ञा के साथ सब धनों को देते हैं। हे **सुतक्रे**=उत्पन्न सोम के द्वारा क्रीत प्रभो! आप **दिवोदासाय**=ज्ञान के सेवक, ज्ञानोपार्जन में प्रवृत्त, **सुन्वते**=यज्ञशील **भरद्वाजाय**= अपने में शक्ति का भरण करनेवाले **गृणते**=स्तोता उपासक के लिये **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को देते हैं।

भावार्थ—प्रभु ईर्ष्या को विनष्ट करते हैं। शक्ति के साथ सब आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सत्यसत्या तुविनृम्ण' प्रभु

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम्।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः॥ ५॥

(१) हे **सत्यसत्वन्**=सत्य बलवाले **तुविनृम्ण**=महान् धनवाले प्रभो! **सः**=वे आप **महते रणाय**=इस महान् अध्यात्म संग्राम के लिये, काम-क्रोध-लोभ आदि से युद्ध के लिये, **भीमम्**=इस शत्रुभयंकर **रथं अतिष्ठ**=शरीर-रथ पर स्थित होइये। आपकी शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर मैं इन शत्रुओं को जीतनेवाला बनूँ। (२) **प्रपथिन्**=हे प्रकृष्ट मार्गवाले प्रभो! आप **अवसा**=रक्षण के हेतु से **मद्रिक् उपयाहि**=मुझे आभिमुख्येन प्राप्त होइये। आपको प्राप्त करके मैं इन शत्रुओं के

आक्रमण से अपने को बचा सकूँ। **च**=और **हे श्रुत**=ज्ञान-सम्पन्न प्रभो! आप **चर्षणिभ्यः**=हम श्रमशील मनुष्यों के लिये **प्रश्रावय**=प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीर-रथ में स्थित हों। इसी से हमें शक्ति व धन की प्राप्ति होगी और हम जीवन-संग्राम में सफल होंगे। प्रभु हमें रक्षा प्राप्त करायें, ज्ञान दें जिससे हम रक्षित हो सकें।

'सुहोत्र' ऋषि ही इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पुरुतमानि शन्तमानि (वचांसि)

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम्॥ १॥

(१) **अस्मै**=इस प्रभु के स्तवन के लिये **आसा**=मुख से **वचांसि**=स्तुति-वचनों को **तक्षम्**=करता हूँ। जो स्तुति-वचन **अपूर्व्या**=अद्भुत हैं, सृष्टि के प्रारम्भ में प्राप्त कराये गये हैं। **पुरुतमानि**=जीवन का आदर्श दिखलाने के द्वारा जो हमारा अधिक से अधिक पालन व पूरण करनेवाले हैं। **शन्तमानि**=मन में शान्ति को उत्पन्न करनेवाले हैं। (२) उस प्रभु के लिये हम इन स्तुति-वचनों का उच्चारण करते हैं जो **महे**=महान् हैं, **वीराय**=हमारे शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले हैं। **तवसे**=बलवान् हैं। **तुराय**=हमारे अन्दर आ जानेवाली सब बुराइयों का संहार करनेवाले हैं। **विरप्शिने**=महान् हैं अथवा विशिष्ट ज्ञान को हृदयस्थरूपेण उच्चारित करनेवाले हैं। **वज्रिणे**=वज्रहस्त हैं तथा **स्थविराय**=अत्यन्त पुराण सनातन पुरुष हैं इनके लिये स्तुतिवचनों का उच्चारण करता हुआ मैं उन बातों को अपने जीवन में लाने के लिये यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—मैं प्रभु के नामों का उच्चारण करता हूँ और अपना पालन व पूरण करता हुआ शान्ति का अनुभव करता हूँ।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गो-निदान का उत्सर्जन (स्तुति के दो लाभ)

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम्॥ २॥

(१) **सः**=वे प्रभु **कवीनाम्**=इन क्रान्तदर्शी तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के **मातरा**=मस्तिष्क व शरीर रूप द्यावापृथिवी को **सूर्येण**=ज्ञानसूर्य के उदय से **ओवासयत्**=प्रकाशित करते हैं। **गृणानः**=हृदयस्थरूपेण ज्ञानोपदेश करते हुए वे प्रभु **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **रुजत्**=नष्ट करते हैं। (२) **स्वाधीभिः**=उत्तम ध्यानवाले **ऋक्वभिः**=स्तोताओं से **वावशानः**=प्राप्ति के लिये काम्यमान होते हुए वे प्रभु **उस्रियाणाम्**=ज्ञानेन्द्रियरूप गौवों के **निदानम्**=विषयरूप बन्धनों को **उदसृजत्**=मुक्त करते हैं। प्रभु-स्तवन से इन्द्रिय विषयों के बन्धन से बद्ध नहीं होतीं।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से अविद्या पर्वत का विनाश होता है। मस्तिष्क व शरीर ज्ञानसूर्य से प्रकाशित हो जाते हैं। इन्द्रियाँ विषय-बन्धन से मुक्त हो जाती हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'वह्नि, ऋक्व, मितज्ञु'

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन्॥ ३॥

(१) **सः**=वे **पुरुकृत्वा**=सब पालक व पूरक कर्मों को करनेवाले प्रभु **वह्निभिः**=यज्ञ आदि कर्मों का वहन करनेवाले **ऋक्वभिः**=(ऋच स्तुतौ) स्तुति को करनेवाले **गोषु**=ज्ञान की वाणियों के निमित्त **मितज्ञुभिः**=संकुचित जानु होकर आचार्यों के समीप बैठनेवाले इन पुरुषों से **शश्वत्**=सदा **जिगाय**=काम-क्रोध-लोभ आदि आसुर भावनाओं को जीतते हैं। विजय सब प्रभु ही करते हैं, इन 'वह्नि, ऋक्व व मितज्ञु' पुरुषों को वे अपना निमित्त बनाते हैं। (२) वे **पुरोहा**=आसुर पुरियों का विध्वंस करनेवाले प्रभु **दृढाः पुरः**=दृढ़ भी असुर नगरियों को **रुरोज**=भग्न कर देते हैं। इस प्रकार वे प्रभु **सखिभिः**=सखा भूत जीवों के साथ **सखीयन्**=सखित्व का आचरण करते हैं और **कविभिः कविः सन्**=इन तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के साथ तत्त्वदर्शी होते हैं। वस्तुतः प्रभु ही इन सखाओं को तत्त्वद्रष्टा बनाते हैं।

भावार्थ—अध्यात्म संग्राम में विजयी बनने के लिये हम 'यज्ञादि कर्मों का वहन करनेवाले, स्तोता व ज्ञान की वाणियों के निमित्त आचार्यों के समीप संकुचित जानु होकर बैठनेवाले' बनें। प्रभु हमारे सब आसुरभावों को विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—**सुहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

नीव्याभिः-पुरुवीराभिः

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **स**=वे आप **नीव्याभिः**=नीवि में उत्तम, मूलधन को प्राप्त कराने में उत्तम, वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त कराने में उत्तम, स्तुतियों से **जरितारम्**=स्तवन करनेवाले की **अच्छा**=ओर **प्रयाहि**=प्राप्त होइये। इस स्तोता की ओर **महो वाजेभिः**=महत्त्वपूर्ण शक्तियों के साथ **च**=तथा **महद्भिः शुष्मैः**=महान् शत्रुशोषक बलों के साथ प्राप्त होइये। (२) हे **वृषभ**=सब कल्याणों का वर्षण करनेवाले प्रभो! **गिर्वणः**=स्तुति-वाणियाँ से सम्भजनीय प्रभो! **पुरुवीराभिः**=खूब ही शत्रुओं को कम्पित करनेवाली (वि+ईर) इन स्तुतियों के द्वारा **क्षितीनाम्**=इन मनुष्यों के **सुविताय**=शुभ मार्ग पर चलने के लिये (प्रयाहि=) प्राप्त होइये।

भावार्थ—स्तुति से 'महान् बल, शत्रुशोषक शक्ति व शुभ मार्ग पर चलने की वृत्ति' प्राप्त होती है। स्तुति नीव्या है, वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त कराने में उत्तम है तथा पुरुवीरा है, खूब ही शत्रुओं को कम्पित करनेवाली है।

ऋषिः—**सुहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्याग व बल से मोक्ष प्राप्ति

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम्॥ ५॥

(१) **सः**=वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **सर्गेण**=(relenquishment) त्याग से व **शवसा**=बल

से **तक्ता**=संगत हुआ-हुआ **अत्यैः**=सततगमन कुशल इन्द्रियाश्वों से **अपः**=कर्मों को **दक्षिणतः**=सरलता व उदारता से करता हुआ **तुराषाट्**=हिंसक शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है। (२) **इत्था**=इस प्रकार **सृजानाः**=(सृज to give up) त्याग करते हुए ये जितेन्द्रिय पुरुष **अनपावृत् अर्थम्**=जिससे इस मानव आवर्त में लौटना नहीं होता उस मोक्षरूप अर्थ को **दिवे-दिवे**=दिन प्रतिदिन **विविषुः**=प्रविष्ट होते जाते हैं। उस अर्थ को प्राप्त होते हैं जो **अप्रमृष्यम्**=किन्हीं भी लौकिक कामनाओं से क्षोम्य नहीं। अर्थात् जो पद 'शान्त प्रिय व सुन्दर ही सुन्दर' है।

भावार्थ—त्याग व बल से युक्त होकर, सतत क्रियाशील इन्द्रियाश्वों से उदारता व सरलता से कार्यों को करते हुए हम शत्रुओं का संहार करें। इस प्रकार त्यागवृत्ति से हम उस मोक्षलोक को प्राप्त करेंगे, जिससे इस मानव आवर्त में फिर लौटना नहीं होता।

इस प्रकार त्याग की भावनावाला यह व्यक्ति 'शुनहोत्र' है, 'शुनं सुखं जुहोति'=लोकहित के लिये अपने सुख को त्याग देता है। यह इन्द्र का आराधन करता हुआ कहता है कि—

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'ओजिष्ठ-मद-स्वभिष्टि-दास्वान्' सन्तान

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान्॥ १॥

(१) हे **वृषन्**=सब कामनाओं का वर्षण करनेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो सन्तान **ओजिष्ठः**=खूब ओजस्विता व बलवत्तम है, **मदः**=मादयिता—आनन्दित करनेवाला है, **स्वभिष्टिः**=शोभनाभ्येषण है—अच्छी प्रकार शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला है तथा **दास्वान्**=हवियों को देनेवाला है, **तम्**=उस पुत्र को **तः**=हमारे लिये **सु**=(सुष्ठु) अच्छी प्रकार **दाः**=दीजिये। (२) उस पुत्र को दीजिये जो **स्वश्वः**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला होता हुआ **सौवश्व्यम्**=उत्तम इन्द्रियाश्व समूह को **वनवत्**=जीतता है (वन्=win) तथा **समत्सु**=संग्रामों में **अमित्रान्**=शत्रुभूत **वृत्रा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **सासहत्**=अतिशयेन अभिभूत करता है।

भावार्थ—हमारे सन्तान बलवान्, अपनी क्रियाओं से आनन्दित करनेवाले, शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले व दानशील हों। ये वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हों।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'विजय व शक्ति के प्रापक' प्रभु

त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्यो॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वां हि**=आपको ही **विवाचः चर्षणयः**=विविध स्तुति-वाणियोंवाले श्रमशील मनुष्य **अवसे**=रक्षण के लिये **शूरसातौ**=शूरों से सभजनीय संग्रामों में **हवन्ते**=पुकारते हैं। वस्तुतः संग्राम में आपने ही तो शत्रुओं का विद्रावण करना है। (२) **त्वम्**=आप **विप्रेभिः**=इन ज्ञानी पुरुषों के द्वारा **पणीन्**=वणिक् वृत्तिवाले कार्पण्य के भावों को **वि आशायः**=विशेषेण भूमि पर सुलानेवाले होते हैं, अर्थात् इन्हें नष्ट करते हैं। **त्वा ऊतः**=आप से रक्षित हुआ-हुआ **इत्**=ही यह **अर्या**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला स्तोता **वाजं सनिता**=शक्ति को प्राप्त करता है। इस शक्ति के द्वारा ही वह शत्रुओं का शातन कर पाता है।

भावार्थ—संग्राम में विजय के लिये स्तोता लोग प्रभु को ही पुकारते हैं। प्रभु ही ज्ञानी पुरुषों से शत्रुओं का शातन कराता है और उन्हें शक्ति देता है।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

उभयविध शत्रु संहार

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **तान्**=उन **उभयान्**=दोनों **अमित्रान्**=शत्रुओं को **वधीः**=नष्ट करते हैं। एक तो **दासा**=कर्मों का उपक्षय करनेवाले, यज्ञादि कर्मों में विघ्न डालनेवाले असुरों को **च**=तथा दूसरे **आर्या**=(ऋ गतौ) हमारे पर समन्तात् आक्रमण करनेवाले **वृत्राणि**=ज्ञान के आवरणभूत वासनारूप शत्रुओं को। (२) **इव**=जैसे **सुधितेभिः**=(शुधिति=an axe) कुल्हाड़ों से **वना**=वनों को काट डालते हैं इसी प्रकार, हे **नृणां नृतम्**=नेताओं में सर्वोत्तम नेतः प्रभो! आप **पृत्सु**=संग्रामों में **अत्कैः**=(अत्क=water आपः रेतो भूत्वा) रेतःकणों के द्वारा वृत्रों को **आदर्षि**=समन्तात् विदीर्ण करते हैं। शरीर में शक्तिकणों का रक्षण रोगों व वासनाओं को विनष्ट करके शारीरिक व मानस स्वास्थ्य का हेतु बनता है।

भावार्थ—प्रभु यज्ञों में विघ्नकारी बाह्य शत्रुओं को विनष्ट करते हैं और ज्ञान के आवरणभूत वासनारूप आन्तर शत्रुओं को भी शीर्ण करते हैं। कुल्हाड़े से जैसे वृक्षों को काटा जाता है, उसी प्रकार रेतःकणों के द्वारा प्रभु रोगों व वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

विश्वायुः अविता

स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **अकवाभिः ऊती**=(ऊतिभिः) अकुत्सित रक्षणों के द्वारा **अविता**=रक्षण करनेवाले **सखा**=मित्र हैं। आप **विश्वायुः**=सर्वतः गमनशील होते हुए हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **भूः**=होइये। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **पृत्सु**=संग्रामों में **युध्यन्तः**=युद्ध करते हुए हम, **यत्**=क्योंकि **नेमधिता**=(जस्=आहं नेम इति अर्धे) अधूरेपन में ही स्थापित हैं, अधूरी शक्ति व ज्ञानवाले हैं, सो **स्वर्षाता**=प्रकाश की प्राप्ति के निमित्त **त्वा ह्वयामसि**=आपको पुकारते हैं। आप से ज्ञान को प्राप्त करके हम इन युद्धों में विजयी बन पायें।

भावार्थ—प्रभु ही उत्तम रक्षणों के द्वारा हमारे मित्र होते हैं। युद्ध करते हुए हम अपने अधूरेपन के कारण प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु ही हमें विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'दिवि पार्ये शर्मन्' (स्याम)

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नूनम्**=निश्चय से आज आप **नः**=हमारे **स्याः**=होइये, **च**=और **अपराय**=अगले समय के लिये भी आप हमारे होइये। **उत**=और **नः**=हमारे **अभिष्टौ**=शत्रुओं पर आक्रमण के निमित्त **मृळीकः भव**=सुख को देनेवाले होइये। हम सदा आपके हों, और शत्रुओं को शीर्ण करके सुखी हो सकें। (२) **इत्था**=इस प्रकार **गृणन्तः**=स्तुति करते हुए हम **गोषतमाः**=अधिक से अधिक ज्ञान की वाणियों का सेवन करनेवाले होते हुए **महिनस्य**=महान् पूजनीय आपके **दिवि**=देदीप्यमान पाये दुःखों से पार ले जानेवाले **शर्मन्**=सुख में व शरण में **स्याम**=हों। (शर्मन्=protection house)।

भावार्थ—हम सदा प्रभु के हों। प्रभु से सुख को प्राप्त करें। प्रभु की शरण देदीप्यमान व दुःखों से पार करनेवाली है।

अगले सूक्त में भी शुनहोत्र इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सं च॒ त्वे ज॒ग्मुर्गिर॑ इन्द्र पू॒र्वीर्वि च॒ त्वद्या॑न्ति वि॒भ्वो॑ मनी॒षाः।
पु॒रा नू॒नं च॑ स्तु॒तय॒ ऋषी॑णां पस्पृ॒ध्र इन्द्रे॒ अध्यु॑क्थ॒र्का॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **पूर्वीः गिरः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली ये ज्ञान की वाणियाँ सदा **त्वे च**=आप में ही **संजग्मुः**=संगत होती हैं। **च**=और **विभ्वः**=ये विस्तृत-व्यापक सब विषयों का व्यापन करनेवाली **मनीषाः**=मतियाँ-ज्ञान **त्वद् वियन्ति**=आप से ही बाहिर आते हैं। आप ही इनके स्रोत हैं। (२) **पुरा**=पहले **नूनं च**=और अब भी अर्थात् सदा **ऋषीणां स्तुतयः**=तत्त्वद्रष्टाओं से की जानेवाली स्तुतियाँ तथा **उक्थार्का**=(उक्थ अर्का) स्तुति के साधनभूत मन्त्र **इन्द्रे अधि**=उस प्रभु में ही **पस्पृधे**=स्पर्धावाले होते हैं। अर्थात् एक से एक आगे बढ़कर ये ऋषि उस प्रभु का स्तवन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सब वेदवाणियाँ प्रभु में ही निहित हैं। प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु से ही ये व्यापक ज्ञान की वाणियाँ उद्गत होते हैं। सब तत्त्वद्रष्टा लोग एक दूसरे से बढ़कर प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

महे शवसे

पु॒रु॒हू॒तो यः पु॑रुगू॒र्त ऋ॒भ्वाँ एक॑ः पुरुप्र॒शस्तो॑ अस्ति॑ य॒ज्ञैः।
रथो॒ न म॒हे शव॑से युजा॒नो॒३॒॑ऽस्माभि॒रिन्द्रो॑ अनुमाद्यो॑ भूत्॥ २॥

(१) **पुरुहूतः**=(पुरु हूतं यस्य) पालक व पूरक है पुकार जिसकी, **यः**=जो **पुरुगूर्तः**=पालक व पूरक उद्यमोंवाला है, जिसका बनाया एक-एक पदार्थ पालन व पूरण का साधन बनता है, **ऋभ्वा**=जो खूब ही दीप्त व महान् है, **एकः**=वह अद्वितीय प्रभु **यज्ञैः**=यज्ञों से **पुरु प्रशस्तः**=खूब स्तुत होता है, वस्तुतः यज्ञों के द्वारा ही प्रभु का पूजन होता है। (२) **रथः न**=वे प्रभु इस जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये रथ के समान हैं। **युजानः**=योग द्वारा मेल किये जाते हुए वे प्रभु **महे शवसे**=महान् बल के लिये होते हैं। जो जितना प्रभु से अपना मेल कर पाता है, उतना ही शक्ति-सम्पन्न बनता है। सो वे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अस्माभिः**=हमारे से **अनुमाद्यः भूत्**=स्तुति के योग्य हों।

भावार्थ—प्रभु का उपासन यज्ञों द्वारा होता है। उपासित प्रभु हमारे महान् बल के लिये होते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अनन्त धनवाला-महान् दाता' प्रभु

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै॥ ३॥

(१) **यम्**=जिस प्रभु को **धीतयः न हिंसन्ति**=परिचरणात्मक कर्म पीड़ित नहीं करते, **वाणीः न**=स्तुति-वाणियाँ जिसे हिंसित (परेशान) नहीं करती। अपितु **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को **वर्धयन्तीः इत्**=बढ़ाती हुई ही **अभिनक्षन्ति**=सर्वतः प्राप्त होती हैं, अर्थात् प्रभु उपासकों से उनकी याचनाओं के कारण परेशान नहीं हो जाते। वे प्रभु तो अनन्त धनवाले व महान् दाता हैं। 'उनके धन में कभी कमी आ जायेगी' ऐसी बात नहीं है। (२) **यदि**=यदि **स्तोतारः**=स्तोता लोग **शतम्**=सैंकड़ों **यत् सहस्रम्**=यदि वा हजारों भी **गिर्वणसम्**=स्तुति-वाणियों द्वारा संभजनीय उस प्रभु को **गृणन्ति**=स्तुत करते हैं, तो **तद् अस्मै शम्**=वह इस इन्द्र के लिये शान्ति का ही कारण होता है। प्रभु को सैंकड़ों व हजारों इन याचकों से अच्छा ही लगता है, वे कभी इनकी अधिकता से खीज नहीं उठते।

भावार्थ—प्रभु अनन्त धनवाले व महान् दाता है। जितने ही अधिक लोग प्रभु का परिचरण करते हैं प्रभु को उतना ही अच्छा लगता है और वे सबकी सत्य कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

चन्द्रमा सूर्य में, मैं प्रभु में

अस्मा एतद्दिव्याचेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः॥ ४॥

(१) **इव**=जैसे **सोमः**=चन्द्रमा **मासा**=एक मास में **दिवि इन्द्रे**=इस चमकते हुए सूर्य में मिल जाता है, इसी प्रकार **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **मिमिक्षः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाला मैं **एतत्**=इस स्तोत्र को उच्चारित करता हूँ और **अर्चा**=उपासना के द्वारा **नि अयामि**=नम्रता से प्रभु के समीप प्राप्त होता हूँ। चन्द्रमा सूर्य में, मैं प्रभु में। (२) **न**=जैसे **धन्वन्**=मरुस्थल में **अभि संयत्**=अभिमुख प्राप्त होते हुए **आपः**=जल **जनम्**=मनुष्य को बढ़ाते हैं, इसी प्रकार **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों के साथ **हवनानि**=ये प्रभु की पुकारें, आराधनाएँ इस उपासक को **सत्रा वावृधुः**=सदा बढ़ानेवाली होती हैं।

भावार्थ—मैं पूजा के द्वारा प्रभु को इस प्रकार प्राप्त होऊँ जैसे कि चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त होता है। मुझे यज्ञ व प्रभु की प्रार्थनाएँ इस प्रकार प्रीणित करें जैसे कि मरुस्थल में व्यासे को पानी।

ऋषिः—**शुनहोत्रः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'संग्राम में रक्षक व वर्धक' प्रभु

अस्मा एतन्महाङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
अस्मद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च॥ ५॥

(१) **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **एतत्**=यह **महि**=महनीय **अंगूषम्**=(आघोषा नि० ५।११)

उच्चैः=आह्वान किया जाता है। **अस्मै इन्द्राय**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **स्तोत्रम्**=स्तोत्र **मतिभिः**=मननपूर्वक स्तुति करनेवालों से **अवाचि**=उच्चारित होता है। (२) **यथा**=जिससे **महति वृत्रतूर्ये**=इस महान् संग्राम में **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु! **विश्वायुः**=सर्वत्रगन्ता होता हुआ **अविता**=हमारा रक्षण करनेवाला **च**=और **वृधः**=वृद्धि को करनेवाला **असत्**=हो।

भावार्थ—प्रभु के लिये हम ऊँचे से आह्वान व स्तोत्र को करनेवाले हों जिससे वे प्रभु संग्राम में हमारे रक्षक व वृद्धि करनेवाले हों।

प्रभु से रक्षित होनेवाला यह मनुष्य 'नर' बनता है, उन्नति-पथ पर अपने को प्राप्त करानेवाला। यह 'इन्द्र' का स्तवन करता है—

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वाजरत्नाः धियः

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्मा कदा स्तोत्रे सहस्त्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः॥ १॥

(१) हे प्रभो! **कदा**=कब ब्रह्म (ब्रह्माणि)=मेरे से किये जानेवाले स्तोत्र **रथक्षयाणि**=शरीर-रथ में आपके निवास को करानेवाले **भुवन्**=होते हैं? (भू=निवासे)। **कदा**=कब **स्तोत्रे**=मुझ स्तोता के लिये **सहस्त्रपोष्यम्**=हजारों का पोषण करने के योग्य धन को **दाः**=आप देते हैं। (२) **कदा**=कब **अस्य**=इस उपासक के **स्तोमम्**=स्तवन को **राया**=धन से **वासयः**=आप बसाते हैं? कब मेरे स्तोत्र धनों से व्याप्त किये जाते हैं? **कदा**=कब आप **वाज रत्नाः**=शक्तियों के द्वारा रमणीय **धियः**=बुद्धियों को, ज्ञानों को आप **करसि**=करते हैं। कब आपकी कृपा से हम शक्तियों व बुद्धियों को प्राप्त कर पायेंगे।

भावार्थ—हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु को अपने शरीर-रथ पर आसीन करें। सहस्रापोष्य धन को प्राप्त हों। हमारा स्तवन आवश्यक धन से युक्त हो। हमें शक्ति के द्वारा रमणीय बनी हुई बुद्धि प्राप्त हो।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

वीरता व ज्ञान

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नृन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् कर्हि स्वित्**=वह कब होगा कि **यत्**=जब **नृभिः नृन्**=उन्नति-पथ पर चलनेवालों के साथ उन्नति-पथ पर चलनेवालों को तथा **वीरैः वीरान्**=शत्रु कम्पकों के साथ शत्रु कम्पकों को **नीडयासे**=आप हमारे घरों में स्थापित करते हो, आश्रय देते हो। अर्थात् वह समय कब होगा जब कि हमारे घरों में निरन्तर 'नर व वीर' ही पुरुषों का निवास होगा। और इन 'नर व वीर' पुरुषों के द्वारा आप हमारे लिये **आजीन् जय**=युद्धों को जीतिये। हम आपकी कृपा से संग्रामों में सदा विजयी बनें। (२) **त्रिधातु गाः अधिजयासि**=हमारे लिये आप 'ज्ञान, कर्म, उपासना' इन तीनों का धारण करनेवाली ज्ञान की वाणियों का विजय करें। हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **अस्मे**=हमारे लिये **गोषु**=इन ज्ञान की वाणियों में **स्वर्वत्**=सुखों के देनेवाले **द्युम्नम्**=ज्ञान धन को **धेहि**=धारण करिये।

भावार्थ—हे प्रभो! हमारे घरों में वीर पुरुष हों, वे सब ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाले हों। काम, क्रोध, लोभ के साथ होनेवाले संग्राम में विजयी हों।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

बुद्धि व कर्मशील इन्द्रियाँ (धियः-नियुतः)

कर्हि स्वित्तद्रिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् कर्हिस्वित्**=वह कब होगा **यत्**=जब कि **जरित्रे**=स्तोता के लिये आप **विश्वप्सु**=अनेक रूपोंवाले (बहुविधरूपं) **ब्रह्म**=ज्ञान को **कृणवः**=करेंगे, अर्थात् आप कब मुझ स्तोता को यह वेद के द्वारा व्यापक ज्ञान प्राप्त करायेंगे? (२) हे **शविष्ठ**=अतिशयित शक्तिवाले प्रभो! **कदा**=कब आप हमारे साथ **धियः न**=बुद्धियों की तरह **नियुतः**=निश्चितरूप से कर्मों में प्रेरित होनेवाले इन्द्रियाश्वों को **युवासे**=जोड़ते हैं। कब आपकी कृपा से मुझे बुद्धियाँ व कर्मशील इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं? **कदा**=कब **गोमघा**=ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करानेवाली **हवनानि**=हमारी इन पुकारों को **गच्छाः**=आप प्राप्त होंगे। अर्थात् कब मैं आपकी आराधना करनेवाला बनकर उत्कृष्ट ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करूँगा?

भावार्थ—हम स्तोता बनकर इस व्यापक ज्ञान को देनेवाले वेद को प्राप्त करें। हमारी बुद्धियाँ व इन्द्रियाँ उत्तम हों। हमारी आराधनाएँ हमें ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करानेवाली हों।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुरुचः

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **सः**=वे आप **जरित्रे**=स्तोता के लिये **पृक्षः**=उन अन्नों को **अधि धेहि**=आधिक्येन धारण करिये जो **गोमघाः**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों को देनेवाले हों (गावः ज्ञानेन्द्रिया, महतेर्दानकर्मणः) **अश्वश्चन्द्राः**=आह्लादमय कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करानेवाले हों (अश्नुवते कर्मसु) उन इन्द्रियों को जो कर्मों में आह्लाद का अनुभव करती हैं। तथा उन अन्नों को प्राप्त कराइये जो कि **वाजश्रवसः**=शक्ति वे ज्ञान का साधन बनते हैं। (२) हे प्रभो! **इषः पीपिहि**=हमारे हृदयों को अपनी प्रेरणाओं से आप्यायित करिये। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सुदुघां धेनुम्**=सुख सन्दोह्य इस वेद धेनु को प्राप्त करिये। और **भरद्वाजेषु**=इन शक्ति का भरण करनेवाले पुरुषों में **सुरुचः रुरुच्याः**=उत्तम रुचियों को दीप्त करिये। शक्ति-सम्पन्न बनकर ये उत्तम रुचिवाले हों।

भावार्थ—हम सात्त्विक अन्नों के सेवन से उत्कृष्ट ज्ञानैश्वर्य व शक्ति को प्राप्त करें। हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनें। वेद धेनु हमारे लिए सुख सन्दोह्य हो। हमारी रुचियाँ उत्तम हों।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शक्ति-सम्पन्न व ज्ञानी

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निरं शुक्रदुघस्य धेनोरांङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व॥ ५॥

(१) हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **विदुरः**=शत्रुओं का विशेषरूप से विदारण करनेवाले,

शूरः=शूर आप **यद् गृणीषे**=जब हमारे से स्तुत किये जाते हैं तो **तं वृजनम्**=उस बाधक शत्रु को **नूनम्**=निश्चय से अन्यथा **चित्**=और ही प्रकार से युक्त करिये, अर्थात् जीवित अवस्था के विपरीत मरणावस्था को प्राप्त कराइये। (२) मैं **शुक्रदुघस्य**=दीप्त ज्ञान का दोहन करनेवाली **धेनोः**=इस वेद धेनु से **मा निररम्**=बाहर न निकल जाऊँ। सदा वेद धेनु का दोहन करनेवाला बनूँ। हे **विप्र**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाले प्रभो! **आंगिरसान्**=अंग-प्रत्यंग में रसमय शक्तिवाले हम लोगों को **ब्रह्मणा**=ज्ञान से **जिन्व**=प्रीणित करिये। हमें शक्ति-सम्पन्न व ज्ञानी बनाइये।

अगले सूक्त में भी 'नर' ऋषि इन्द्र का आराधन करता है—

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'आनन्द-धन-बल-तेज'

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम्॥ १॥

(१) हे प्रभो! **तव**=आपके **मदासः**=सोम-रक्षण द्वारा प्राप्त कराये गये आनन्द **सत्रा**=सचमुच **विश्वजन्याः**=सब मनुष्यों के लिये हितकर होते हैं। **अध**=अब **ये**=जो आप से दिये गये **पार्थिवासः रायः**=पार्थिव धन है वे भी सब मनुष्यों के लिये हितकर होते हैं। (२) आप **सत्रा**=सचमुच **वाजानाम्**=शक्तियों के **विभक्ता**=हमारे लिये देनेवाले होते हैं। **यद्**=जो **देवेषु**=सब देवों में **असुर्यम्**=बल है, उसे **धारयथाः**=आप ही धारण करते हैं। सूर्यादि में आपका ही तेज हैं, तेजस्वी पुरुषों में भी आपका ही तेज है।

भावार्थ—प्रभु ही 'आनन्दों-धनों-शक्तियों व तेजों' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्यूमगृभे-दुधि-अर्वः'

अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये॥ २॥

(१) **जनः**=अपनी शक्तियों का विकास करनेवाला मनुष्य **अस्य**=इस प्रभु के ही **ओजः**=शक्ति के **अनु**=अनुसार **प्रयेजे**=प्रकृष्ट यज्ञों को करनेवाला होता है। ये मनुष्य **वीर्याय**=वीरतापूर्ण कार्यों को करने के लिये **सत्रा**=सदा **अनुदधिरे**=आपका ही धारण करते हैं। (२) **अपि च**=और ये उपासक **स्यूमगृभे**=(स्यूमान् अविच्छेदेन वर्तमानान् गृह्णाति) अविच्छेदेन वर्तमान-निरन्तर आक्रमण करनेवाले, इन शत्रुओं का निग्रह करनेवाले, **दुधये**=इन शत्रुओं का हिंसन करनेवाले **च**=और **अर्वते**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले उस प्रभु के लिये **क्रतुम्**=परिचरणात्मक यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को **वृञ्जन्ति**=निष्पादित करते हैं। जिससे **वृत्रहत्ये**=ज्ञान की आवरणभूत इस वासना का विनाश कर सकें।

भावार्थ—प्रभु से ओज प्राप्त होता है, प्रभु हमें वीरता के कर्मों के लिये समर्थ करते हैं। वे प्रभु ही इन निरन्तर आक्रमण करनेवाले शत्रुओं का निग्रह करते हैं, इन्हें कम्पित करते हैं और इनको आक्रान्त करके समाप्त करते हैं।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'रक्षण, बल व इन्द्रियाश्वों' की प्राप्ति

तं सधीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम्।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति॥ ३॥

(१) **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सधीचीः ऊतयः**=साथ-साथ गति करती हुई रक्षाएँ **सश्चुः**=सेवित करती हैं। अर्थात् प्रभु अपने उपासक को निरन्तर रक्षण प्राप्त कराते हैं। **वृष्ण्यानि पौंस्यानि**=शक्तिशाली बल उसका सेवन करते हैं और **नियुतः**=निश्चय से शरीर-रथ में युज्यमान इन्द्रियाश्व उसका सेवन करते हैं। अर्थात् प्रभु अपने उपासक को इन शक्तिशाली बलों व इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। (२) उस **उरुव्यचसम्**=महान् विस्तारवाले, सर्वव्यापक प्रभु को **उक्थशुष्माः**=स्तोत्रों के बलवाले **गिरः**=ज्ञान वाणियों के द्वारा स्तवन करनेवाले लोग इस प्रकार **आविशन्ति**=प्रविष्ट होते हैं **न**=जैसे कि **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रम्**=समुद्र में प्रविष्ट होती हैं।

भावार्थ—स्तोत्रों के बलवाले ज्ञानी उपासक को प्रभु को प्राप्त करते हैं। प्रभु उन्हें 'रक्षण, बल व उत्तम इन्द्रियाश्व' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'यज्ञों में विनियुक्त होनेवाले वसु के दाता' प्रभु

स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए **रायः खाम्**=धन की नदी को नदीधारा के समान प्रवाहित होनेवाले धन को **उपसृजा**=हमारे साथ संयुक्त करिये। उस धन की धारा को जो **पुरुश्चन्द्रस्य**=बहुतों का आह्लादक है, अर्थात् केवल अपने लिये विनियुक्त न होकर बहुतों के लिये प्रयुक्त होता है तथा **वस्वः**=उत्तम निवास का कारण बनता है। (२) हे प्रभो! आप **जनानाम्**=सब लोगों के **असमः पतिः**=अनुपम रक्षक **बभूथ**=हैं। **एकः**=आप अद्वितीय हैं। **विश्वस्य भुवनस्य राजा**=सम्पूर्ण संसार के शासक हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सम्पूर्ण संसार के शासक हैं। वे प्रभु हमें बहुतों के आह्लादक तथा निवास को उत्तम बनानेवाले धन को देते हैं।

ऋषिः—**नरः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

शवस्-वयस्

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः॥ ५॥

(१) **यः दुवोयुः**=जो हमें उपासनामय जीवनवाला बनाना चाहते हैं, **सः**=वे आप **तु**=निश्चय से **श्रुत्य**=श्रोतव्य स्तोत्रों को **श्रुधि**=सुनिये। **द्यौः न**=सूर्य के समान तेजस्वी आप **भूम**=बहुत **रायः अभि**=ऐश्वर्यों की ओर हमें ले चलनेवाले होइये। **अर्यः**=आप ही स्वामी हैं। **चकानः**=सूर्य के समान दीप्तिवाले व **चेकितानः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले आप **युगे युगे**=समय-समय पर अर्थात् सदा **यथा**=जैसे **शवसा**=बल के साथ उसी प्रकार (तथा) **वयसा**=उत्कृष्ट जीवन के साथ **नः असः**=हमारे पर कृपादृष्टिवाले होइये। हम आपकी कृपा से बल को व उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त

करें।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें। प्रभु हमें ऐश्वर्य को, बल को व उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त कराएँ।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वर्वान् कीरि

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥

(१) हे **उग्र**=तेजस्विन् **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **युक्तासः**=शरीर-रथ में जुते हुए, अर्थात् अपना-अपना कार्य करनेवाले **हरयः**=इन्द्रियाश्व **ते**=आपके इस **विश्ववारम्**=सब वरणीय व श्रेष्ठ अंग-प्रत्यंगोंवाले **रथम्**=शरीर-रथ को **अर्वाक्** वहन्तु=अन्तर्मुख यात्रावाला करें। हमारा यह रथ बाहिर विषयों में ही न भटकता रहे। (२) **कीरिः**=यह विषयों को अपने से दूर विकीर्ण करनेवाला स्तोता **चित् हि**=निश्चय से **त्वा**=हे प्रभो! आपको **हवते**=पुकारता है। अतएव वह **स्वर्वान्**=प्रशस्त ज्ञान के प्रकाशवाला होता है। हे प्रभो! हम **अद्य**=आज **ते सधमादः**=आपके साथ आनन्दित होनेवाले, आपकी उपासना में आनन्द का अनुभव करनेवाले **ऋधीमहि**=समृद्धि को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम विषयों में न भटककर अन्तर्मुख यात्रावाले हों। प्रभु का आह्वान करें। प्रभु की उपासना में आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमरक्षण से कर्मशक्ति व उल्लास की प्राप्ति

प्रो द्रोणे हरयः कर्मीग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥

(१) **द्रोणे**=शरीररूप इस पात्र में **हरयः**=सोमकण **कर्म प्र अग्मन्**=कर्मों को प्रकर्षेण करनेवाले होते हैं। जितना-जितना सोम का रक्षण होता है, उतना-उतना यह सोम हमें क्रियाशील बनाता है। **पुनानासः**=पवित्र किये जाते हुए ये सोम **ऋज्यन्तः**=ऋजु, गमनवाले **अभूवन्**=होते हैं। शरीर में सरल गति से ऊर्ध्वगमनवाले होते हैं। (२) **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का संहार करनेवाला प्रभु **नः**=हमारे **अस्य**=इस सोम का **पपीयात्**=पान करे। **पूर्व्यः**=सोम-रक्षण के द्वारा ये प्रभु हमारा पालन व पूरण उत्तमता से करते हैं। **द्युक्षः**=ज्ञान के प्रकाश में निवास करनेवाले वे प्रभु **सोम्यस्य मदस्य**=सोम सम्बन्धी इस उल्लास के **राजा**=स्वामी हैं। हमारे जीवन में सोमरक्षण के द्वारा वे उल्लास को दीप्त करते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम कर्म व उल्लास को पैदा करता है। ज्ञानदीप्त प्रभु के स्मरण से सोम का रक्षण होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणसाधना द्वारा सोम का रक्षण

आसस्त्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्॥ ३॥

(१) **सुचक्रे**=शोभन चक्रोंवाले इस शरीर-रथ में **आसस्त्राणासः**=समन्तात् गति करते हुए **रथ्यासः अश्वाः**=रथवहन में उत्तम ये इन्द्रियाश्व **शवसानम्**=बल की तह आचरण करते हुए, अर्थात् शक्ति के पुञ्ज **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु की **अच्छ**=ओर **वहेयुः**=हमें ले जाते हैं। (२) **ऋज्यन्तः**=ऋजुगमनवाले इन्द्रियाश्व **श्रवः अभि (वहेयुः)**=ज्ञान की ओर हमें ले चलें। ऐसा होने पर **नु**=अब **वायोः**=वायु के द्वारा, अर्थात् प्राणसाधना के द्वारा **अमृतम्**=मृत्यु से बचानेवाला यह सोम **नू चित्**=नहीं **विदस्येत्**=नष्ट हो।

भावार्थ—हम कर्मों में लगे रहकर कर्मों द्वारा प्रभु की उपासना करें। हमारी इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में लगी रहें। ऐसा होने पर प्राणसाधना में प्रवृत्त हुए-हुए हम सोम का रक्षण कर पायेंगे। यह सोम अमृत है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दानवृत्ति से 'पापनाश व ऐश्वर्य प्राप्ति'

वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन्॥ ४॥

(१) **वरिष्ठः**=यह उरुतम-अत्यन्त विशाल **तुविकूर्मितमः**=महान् कर्मों को करनेवाला **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु! **अस्य**=इस उपासक के जीवन में **मघोनाम्**=यज्ञशील पुरुषों की **दक्षिणाम्**=दानवृत्ति को **इयर्ति**=प्रेरित करता है। प्रभु कृपा से हम यज्ञशील व दान की वृत्तिवाले बनते हैं। (२) हे **वज्रिवः**=वज्रवाले प्रभो! **यया**=जिस दानवृत्ति के द्वारा आप **अंहः परियासि**=पापों से हमें पार पहुँचाते हो। **च**=और **धृष्णो**=शत्रुओं के धर्षक प्रभो! इस दानवृत्ति के द्वारा ही **सूरीन्**=ज्ञानी पुरुषों को **मघा विदयसे**=सब ऐश्वर्यों को देते हैं। दानवृत्ति से पाप नष्ट होते हैं और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे में दानवृत्ति को प्रेरित करते हैं। दानवृत्ति हमें पापों से बचाती है और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वाजस्य स्थविरस्य दाता

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=वह शत्रु-विद्रावक प्रभु **स्थविरस्य**=अत्यन्त वृद्ध (=बढ़े हुए) **वाजस्य दाता**=शक्ति के देनेवाले हैं **वृद्धमहाः**=वे प्रवृद्ध तेजवाले **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **गीर्भिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चारित इन स्तुतिवाणियों से **वर्धताम्**=वृद्धि को प्राप्त हों। हमारे में प्रभु की भावना उत्तरोत्तर बढ़े। (२) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली, शत्रुविद्रावक प्रभु **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत कामवासना को **हनिष्ठः अस्तु**=अधिक-से-अधिक समाप्त करनेवाले हों। **सत्वा**=शत्रुओं का विनाश करनेवाले

तूतुजानः=आसुरभावों को निरन्तर नष्ट करते हुए **सूरिः**=प्रेरक प्रभु **ता पृणति**=उन यज्ञों व ज्ञानों को हमारे लिये प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु शक्ति को देते हैं। वासना को विनष्ट करते हैं और हमारे अन्दर उत्तम कर्मों व ज्ञानों का पूरण करते हैं।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ध्यानशील व दानशील

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम्।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

(१) **चित्रतमः**=वह चायमीयतम-सर्वाधिक पूज्य अथवा आश्चर्यभूत प्रभु **नः**=हमें **इत्**=इधर से, अर्थात् इन काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं से **उत् उ**=निश्चयपूर्वक ही **अपात्**=रक्षित करें। वे प्रभु हमारे अन्दर **महीम्**=पूजा की भावना से युक्त **द्युमती**=ज्योतिर्मयी **इन्द्रहूतिम्**=प्रभु की पुकार को, प्रभु की आराधना को **भर्षद्**=धारण करें। वस्तुतः यह प्रभु की आराधना ही हमें काम-क्रोध आदि शत्रुओं से रक्षित करेगी। (२) **सुदानुः**=वे शोभन दानवाले व अच्छी प्रकार शत्रुओं को नष्ट करनेवाले प्रभु (दाप् लवने) **दैव्यस्य**=देववृत्तिवाले **जनस्य**=पुरुष के **यामन्**=जीवनमार्ग में **पन्यसीं धीतिम्**=स्तुत्य (प्रशंसनीय) ध्यान की वृत्ति को व **रातिम्**=दानशीलता को **वनते**=सम्भक्त करते हैं। अर्थात् इस दैव्यजन को प्रभु ध्यानशील व दानशील बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारा रक्षण करते हैं। वे हमारे में आराधना की वृत्ति को जगाते हैं। हमें ध्यानशील व दानशील बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तुति व प्रभु प्रियता

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यङिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

(१) **अस्य**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **कर्णा**=कान **दूरात् चित्**=दूर से दूर देश में भी **आवसतः**=सर्वत्र निवास करते हैं। प्रभु की श्रवणशक्ति सर्वत्र विद्यमान है। **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **घोषात्**=घोषणीय स्तोत्र के हेतु से **ब्रुवाणः**=स्तोत्रों का उच्चारण करता हुआ यह स्तोता **तन्यति**=स्तुति शब्दों का विस्तार करता है। 'प्रभु इसके इन स्तुति शब्दों को न सुनें' ऐसी बात नहीं है। (२) **इयम्**=यह **देवहूतिः**=उस देव की पुकार **एनम्**=इस प्रभु को **आववृत्यात्**=आवृत्त करे। हमारी ओर अभिमुख करनेवाली हो। **इयम्**=यह स्तुति **ऋच्यमाना**=स्वयं प्रेरित होती हुई **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **मद् द्र्यक्**=मदभिमुख करनेवाली हो।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। स्तवन से पवित्र जीवनवाले होते हुए प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सब ज्ञानों व स्तोत्रों के आधार' प्रभु

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३ ॥

(१) **तम्**=उस **पुराजाम्**=सदा सृष्टि से पहले होनेवाले 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **इन्द्रं वः (ज्यः)**=तुझ परमैश्वर्यशाली प्रभु को **परमया धिया**=उत्कृष्ट बुद्धि के साथ, परतत्त्व का चिन्तन करनेवाली बुद्धि के साथ (परऽमीयते यथा) **अर्कैः**=स्तुति-साधन मन्त्रों के द्वारा **अभ्यनूषि**=मैं स्तुति करता हूँ। (२) **ब्रह्म च**=यह सम्पूर्ण वेदज्ञान **गिरः**=सब ज्ञान की वाणियाँ **अस्मिन्**=इस प्रभु में ही **संदधिरे**=धारण की जाती है। **च**=और **महान् स्तोमः**=यह महान् स्तुति समूह **इन्द्रे**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु में ही **अधिवर्धत्**=आधिक्येन वृद्धि को प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ज्ञान व स्तुतियों का आधार प्रभु ही हैं।

भावार्थ—हम बुद्धिपूर्वक किये गये स्तोत्रों द्वारा प्रभु का स्तवन करते हैं। सब ज्ञानों व स्तोत्रों का आधार प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु की प्राप्ति के साधन

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम्॥ ४॥

(१) **यम्**=जिस प्रभु को **यज्ञः वर्धात्**=यज्ञ बढ़ाता है, अर्थात् जब एक मनुष्य यज्ञशील बनता है तो उसके अन्दर प्रभु के प्रकाश की वृद्धि होती है। **उत**=और **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सोमः**=सोम **वर्धात्**=बढ़ाता है। सोमरक्षण से हम बुद्धि की तीव्रता के द्वारा प्रभु के समीप पहुँचते हैं। उस प्रभु को **ब्रह्म**=(ब्रह्म वेदस्तपः त्वम्) तप बढ़ाता है, **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ बढ़ाती हैं, **च**=और **मन्म उक्था**=मननीय स्तोत्र बढ़ाते हैं। तप, ज्ञान व स्तवन के द्वारा हम प्रभु के उपासक बनते हैं। (२) **अक्तोः यामन्**=रात्रि के जाने पर **उषसः**=उषाएँ **अह**=निश्चय से **एनं वर्ध**=इस प्रभु को बढ़ाती हैं। **मासाः**=महीने **शरदः**=संवत्सर व **द्यावः**=दिन उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **वर्धान्**=बढ़ाते हैं। इन सब कालचक्रों में प्रभु की महिमा दिखती है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना के लिये 'यज्ञ, सोमरक्षण, तप, ज्ञान की वाणियाँ व मननीय स्तोत्र' साधन बनते हैं। उषाएँ मास संवत्सर व दिन सभी प्रभु की महिमा का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सहसे-राधसे-श्रुताय-अवसे

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु॥ ५॥

(१) **एवा**=गतमन्त्र में वर्णित 'यज्ञ, सोमरक्षण, तप, ज्ञान व स्तवन' से **जज्ञानम्**=प्रादुर्भूत होते हुए आपको **वृत्रतूर्येषु**=वासनाओं के संहार रूप कार्यों के निमित्त **नूनम्**=निश्चय से **आविवासेम**=परिचरित करें। (२) हे **विप्र**=मेधाविन् प्रभो! **असामि वावृधानम्**=पूर्णरूप से वृद्धि को प्राप्त होते हुए, **महान्**=महान्, **उग्रम्**=तेजस्वी आपको **सहसे**=शत्रुओं के पराभव के लिये, **राधसे**=सब कार्यसाधक ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये **च**=और **श्रुताय**=ज्ञान के लिये तथा **अवसे**=रक्षण के लिये हम आपका पूजन करें।

भावार्थ—प्रभु का पूजन 'शत्रु मर्षण के लिये, ऐश्वर्य के लिये, ज्ञान के लिये व रक्षण के लिये' होता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण-ज्ञान व अन्तःप्रेरणा श्रवण

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

(१) हे **देव**=हमारे सब शत्रुओं को जीतने की कामना (विजिगीषा) वाले प्रभो! आप **नः**=हमारे **तस्य**=उस **मध्वः**=सब भोजनों के सारभूत मधु, अर्थात् सोम (वीर्य शक्ति) का **अपः**=रक्षण करिये। जो **मन्द्रस्य**=मद व उल्लास का जनक है, **कवेः**=क्रान्तदर्शित्व को प्राप्त करानेवाला है, **दिव्यस्य**=दिव्यता को उत्पन्न करनेवाले है तथा **वह्नेः**=हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाला है। (२) हमारे उस सोम को आप रक्षित करिये, जो **विप्रमन्मनः**=(विप्राः मन्मनः स्तोतारो यस्य) ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित होता **वचनस्य**=स्तुति के योग्य है और **सचनस्य**=सेव्य है। इस सोमरक्षण के साथ **गृणते**=स्तुति करनेवाले मेरे लिये **गो अग्राः**=(गावो अग्रे यासां) ज्ञान की वाणियाँ जिनके अग्रभाग में हैं उन **इषः**=प्रेरणा को **युवस्व**=प्राप्त कराइये (संयोजय)। आपके अनुग्रह से मैं ज्ञान को प्राप्त करूँ और हृदयस्थ की प्रेरणाओं को सुनूँ।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से (क) मैं सोम का रक्षण कर पाऊँ, (ख) ज्ञान-वाणियों को अपनानेवाला बनूँ तथा (ग) अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुनूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'बल व पणियों' के साथ युद्ध

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २ ॥

(१) **अयं इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु **अद्रिं परि**=अविद्या पर्वत का भाग बनी हुई (भागे) **उस्राः**=ज्ञानेन्द्रिय रूप गौवों को **उशानः**=हमारे लिये प्राप्त कराने की कामना करते हुए **धीतिभिः**=सत्यकर्मा उपासकों से **युजानः**=युक्त हुए-हुए **ऋतयुक्**=हमारे साथ ऋत को जोड़नेवाले **वलस्य**=ज्ञान पर परदा डाल देनेवाले वलासुर (काम-वासना) के **सानुम्**=समुच्छ्रित **अरुग्णम्**=जिसका भंग बड़ा कठिन है उस अविद्या पर्वत को **विरुजत्**=भग्न करते हैं। अर्थात् प्रभु उपासकों के अज्ञान को नष्ट करके इन्द्रियों को अविद्याजनित वैषयिक बन्धनों से मुक्त करते हैं। (२) ये शत्रुविद्रावक प्रभु **पणीन्**=अविद्या की अनुचरभूत पूर्णरूप से व्यावहारिक (सांसारिक) वृत्तियों को, लोभ व कृपणता से धनार्जन की वृत्तियों को **वचोभिः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा **अभियोधत्**=पराभूत करते हैं। प्रभु कृपा से ज्ञान की वाणियाँ इस अध्यात्म युद्ध में कृपणता को परास्त करती हैं। हम उदारवृत्ति के बनकर धर्ममय जीवनवाले बन पाते हैं 'उदारं धर्ममित्याहुः'।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान प्राप्त कराके हमारी इन्द्रियों को विषय-बन्धनों से मुक्त करते हैं। हमारी वासना व कृपणता को दूर करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

चन्द्रमा की गति से तिथि पक्ष आदि काल-विभाग

अयं द्योतयद्द्युतो व्यू१क्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्द्रुरिन्द्र।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार॥ ३॥

(१) **अयं इन्दुः**=यह चन्द्रमा, हे **इन्द्र**=प्रभो! आपसे नियम्यमान होता हुआ **अद्युतः**=न चमकनेवाली **अक्तून्**=रात्रियों को **वि द्योतयत्**=विशिष्टरूप से दीप्त करता है। इस अपने आगमन से **दोषा वस्तोः**=रात्रियों व दिनों को तथा **शरदः**=संवत्सरों को प्रकाशित करता है। (२) **नू चित्**=निश्चय से **इमम्**=इस चन्द्रमा को **अह्नाम्**=दिनों के **केतुम्**=प्रकाशक के रूप में **अदधुः**=स्थापित करते हैं। चन्द्र से ही प्रतिपदा द्वितीया आदि तिथियों का ज्ञान होता है। यह चन्द्र ही **उषसः**=उषाओं को **शुचि जन्मनः**=पवित्र प्रादुर्भाववाला **चकार**=करता है। इन उषाकालों में चन्द्र किरणों द्वारा वायुमण्डल में सोमशक्ति का (ओजोन गैस) का स्थापन होता है। सो इस समय की वायु जीवनी शक्ति का संचार करती प्रतीत होती है।

भावार्थ—चन्द्रमा रात्रियों को प्रकाशित करता है। इस प्रकार दिन-रात व संवत्सर का मान होता है। चन्द्रमा दिनों का ज्ञापक बनता है। इसी से 'प्रतिपदा' आदि तिथियों का व्यवहार होता है। उषाओं को यही सोम शक्ति सम्पन्न व उज्ज्वल बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'सूर्य द्वारा लोक प्रकाशक' प्रभु

अयं रोचयद्रुचो रुचानो३ऽयं वासयद् व्यू१तेन पूर्वीः।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः॥ ४॥

(१) **अयम्**=ये प्रभु ही **रुचानः**=सूर्यात्मना दीप्त होते हुए **अरुचः**=अप्रकाशमान लोकों को **रोचयत्**=प्रकाशित करते हैं। **अयम्**=ये प्रभु ही **ऋतेन**=अपने गमनशील तेज से **पूर्वीः**=इन बहुत उषाकालों को **विवासयत्**=अपगत अन्धकारवाला करते हैं। (२) **अयम्**=ये प्रभु ही **ऋतयुग्भिः**=ऋत के साथ मेलवाले **अश्वैः**=इन्द्रियाश्वों से तथा **स्वर्विदा**=सुख को प्राप्त करानेवाले अथवा (सु+अर्) सुष्ठु अरणीय धन को प्राप्त करानेवाले **नाभिना**=(नह बन्धने) सुन्दर सब अंगोंवाले शरीर-रथ से **चर्षणिप्राः**=तब मनुष्यों का पूरण करनेवाले होते हुए **ईयते**=गति करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सूर्योदय द्वारा सब लोकों को प्रकाशित करते हैं, प्रभु ही उषाकालों को अन्धकारशून्य करते हैं। ये प्रभु ही ऋत से मेलवाले, यज्ञ प्रवृत्त, इन्द्रियाश्वों को व सुदृढ़ शरीरों को प्राप्त कराके मनुष्यों का पूरण करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

'अपः, ओषधीः अविषा वनानि

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नृनृचसे रिरीहि॥ ५॥

(१) हे **प्रत्न राजन्**=सनातन शासक प्रभो! **नु**=अब **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **वसुदेयाय**=वसु हैं दातव्य जिसके लिये उस **गृणते**=स्तोता के लिये **पूर्वीः**=पालन व पूरण करनेवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **पिन्व**=प्राप्त कराइये (सिञ्च=प्रयच्छ सा०)। आपकी प्रेरणाओं से

ही ठीक मार्ग पर चलता हुआ यह स्तोता सब वसुओं को प्राप्त करता है। (२) **ऋचसे**=इस स्तुति करनेवाले के लिये आप **अपः ओषधीः**=जलों व ओषधियों को, **अविषा वनानि**=सब विषों को दूर करनेवाले (अ+विषा) अथवा रक्षा करनेवाले (अव् रक्षणे) आम्र पनस आदि वृक्षसमूहों को, **गाः अर्वतः**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियरूप गौओं व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को तथा **तॄन्**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले वीर सन्तानों को **रिरीहि**=दीजिये।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम प्रेरणाएँ प्राप्त कराये, जल, ओषधि, रक्षक फलों, उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों तथा उन्नतिशील सन्तानों को प्राप्त कराइये।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

जीव का मौलिक कर्त्तव्य

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायावं स्य हरी वि मुचा सखायां।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः॥ १॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **पिब**=तू इस सोम का पान कर। **तुभ्यम्**=तेरे लिये **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **मदाय**=हर्ष के लिये होता है। **हरी**=तू इन्द्रियाश्वों को **अव स्य**=विषय बन्धन से छुड़ा। **सखाया**=सखिभूत इन इन्द्रियाश्वों को **वि मुचा**=विशिष्ट प्रयत्न द्वारा वासना बन्धन से मुक्त कर। (२) **उत**=और **गणे**=समूह में **आ निषद्य**=स्थित होकर **प्रगाय**=प्रभु के गुणों का गान कर। सारे परिवारवाले इकट्ठे बैठकर प्रभु का गुणगान करें **अथा**=अब **यज्ञाय**=उपासनीय **गृणते**=वेदोपदेश देनेवाले उस प्रभु के लिये **वयः धाः**=जीवन को धारण कर। अर्थात् तेरा जीवन प्रभु के लिये अर्पित हो।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करें। इन्द्रियाश्वों को विषय-बन्धन से मुक्त करें। मिलकर प्रभु का गुणगान करें। जीवन को प्रभु के लिये अर्पित करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मदाय-क्रत्वे

अस्यं पिब यस्यं जज्ञान इंन्द्र मदांय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्य पिब**=इस सोम का पान (रक्षण) करिये। हे **विरप्शिन्**=महान् प्रभो! **यस्य**=जिस सोम का आप **जज्ञानः**=प्रादुर्भूत होते हुए ही **अपिबः**=पान करते हैं और **मदाय**=उल्लास के लिये तथा **क्रत्वे**=शक्ति व प्रज्ञान के लिये होते हैं। प्रभु का हृदयों में प्रकाश होते ही सोमरक्षण का सम्भव होता है यह सुरक्षित सोम 'उल्लास, शक्ति व प्रज्ञान' का साधन बनता है। (२) **तं इन्दुं उ**=उस सोम को निश्चय से **ते**=हे प्रभो! आपकी **गावः**=ये गौएँ-गोदुग्ध **नरः**=उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले मनुष्य, **आपः**=जल तथा **अद्रिः**=(adore) उपासना **अस्मै पीतये**=इस उपासक के रक्षण के लिये **संसं अह्यन्**=सम्यक् प्राप्त कराते हैं। गोदुग्ध से उत्पन्न सोम शरीर में संरक्षणीय होता है। उत्तम माता, पिता व आचार्यरूप नर इस सोमरक्षण वृत्ति का विकास करते हैं। जल तो शरीर में रेतःकणों के रूप में रहते ही हैं, इनके द्वारा अंगविशेषों का स्नान सोमरक्षण में बड़ा सहायक होता है। उपासना तो वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण करती ही

है।

भावार्थ—प्रभु का ध्यान करते हुए हम वासनाओं से बचकर सोम का रक्षण करें। रक्षित सोम उल्लास शक्ति और प्रज्ञान को देनेवाला है। इस सोमरक्षण के लिये गोदुग्ध का प्रयोग, शीतल जलों से स्नान भी सहायक होता है। जीवन के आरम्भ में उत्तम माता, पिता व आचार्यों का मिलना भी अत्यन्त सहायक बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समिद्धे अग्नौ, सुते सोमे

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अग्नौ समिद्धे**=ज्ञानाग्नि के दीप्त होने पर तथा **सोमे सुते**=सोम का सम्पादन होने पर, हे प्रभो! **त्वा**=आपको **वहिष्ठाः**=वोढृतम-वहन करने में उत्तम **हरयः**=इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमारे लिये प्राप्त करानेवाले हों। अर्थात् इन्द्रियाँ हमें प्रभु को प्राप्त कराने में सहायक बनें। (२) हे **इन्द्र**=प्रभो! **त्वायता**=आपकी कामनावाले **मनसा**=मन से **जोहवीमि**=मैं आपको पुकारता हूँ। **आयाहि**=आप हमें प्राप्त होइये और **नः**=हमारे **महे सुविताय**=महान् कल्याण के लिये होइये।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—(क) ज्ञानाग्नि को समिद्ध करें, (ख) सोम शक्ति का सम्पादन करें, (ग) मन में प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाले हों। यह प्रभु प्राप्ति हमारे महान् कल्याण के लिये होगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु प्राप्ति के चार साधन

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात्॥ ४॥

(१) जीव से प्रभु कहते हैं कि—हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **आयाहि**=हमारे समीप आ। **शश्वत्**=सदा **उशता**=चाहते हुए **महा मनसा**=बड़े दिल से **सोमपेयम्**=सोम के पान को **ययाथ**=प्राप्त हो। यह सोमपान (वीर्य-रक्षण) तुझे हमारे समीप लानेवाला हो। (२) **नः**=हमारी **इमा**=इन **ब्रह्माणि**=ज्ञान की वाणियों को **उपशृणवः**=आचार्यों के समीप बैठकर सुननेवाला हो। **अध**=अब **यज्ञः**=यह यज्ञ **ते तन्वे**=तेरे शरीर के लिये **वयोः**=उत्कृष्ट जीवन को **धात्**=धारण करे।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के साधन निम्न हैं—(क) प्रभु की ओर जाना, प्रभु की उपासना, (ख) सोम का पान करना, (ग) ज्ञान की वाणियों को सुनना, (घ) यज्ञशील बनना।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु द्वारा हमारे यज्ञों का रक्षण

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=यदि आप **पार्ये दिवि**=बहुत सुदूर द्युलोक में हों, **यद्**=यदि इस द्युलोक से भिन्न किसी अन्य देश में हों, **यद् वा**=अथवा यदि **स्वे सदने**=अपने

गृह में आप हैं, **यत्र वा असि**=अथवा जहाँ कहीं भी हैं, **अतः**=उस स्थान से **नः यज्ञम्**=हमारे इस यज्ञ में **नियुत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाँ श्रेष्ठवाले होते हुए **अवसे**=रक्षण के लिये आइये। आप हमें प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराइये, जिससे हम यज्ञ आदि कर्मों को सम्यक् कर सकें। (२) हे **गिर्वणः**=ज्ञान-वाणियों द्वारा सेवनीय प्रभो! आप **मरुद्भिः**=प्राणों के साथ **सजोषाः**=प्रीयमाण होते हुए **पाहि**=हमारा रक्षण कीजिये। वस्तुतः प्राणों के द्वारा ही आप हमारा रक्षण करते हैं। यह प्राणशक्ति हमारा रक्षण करनेवाली हो जाती है।

भावार्थ—प्रभु हमें प्रशस्त इन्द्रियों व प्राणशक्ति को प्राप्त कराते हैं। इनके द्वारा हम यज्ञों को कर पाते हैं।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रथमः यज्ञियानाम्

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम्॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अहेडमानः**=हमारे पर क्रोध न करते हुए आप **यज्ञं उपयाहि**=हमारे इस जीवन-यज्ञ में प्राप्त होइये। हम आपके क्रोध के पात्र न बनें, आप से रक्षित हुए-हुए जीवनयज्ञ को सफल बना पायें। हे प्रभो! **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए ये **इन्दवः**=सोमकण **तुभ्यं पवन्ते**=आपकी प्राप्ति के लिये शुद्ध किये जाते हैं। सोमकणों को शुद्ध रखकर हम बुद्धि की दीप्ति के द्वारा प्रभु का दर्शन करते हैं। (२) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **गावः न**=जैसे गौवें गोष्ठ में अपने-अपने स्थान पर आती हैं, इसी प्रकार आप **स्वं ओकः**=इस हृदयरूप अपने घर की **अच्छ**=ओर **आगहि**=आइये। आप **यज्ञियानां प्रथमः**=उपास्यों में मुख्य हैं। आपको अपने हृदयासन पर बिठाकर मैं आपकी उपासना करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु हमें जीवन-यज्ञ में प्राप्त हों। प्रभु कृपा से ही ये यज्ञ पूर्ण होते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये हम सोम-शक्ति को वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। हमारा हृदय प्रभु का घर बने। वहाँ प्रभु को आराधन करके हम उसकी उपासना करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'सुकृता-वरिष्ठा' काकुत्

या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तयो पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः॥ २॥

(१) हे प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी, आप से दी गयी, यह **काकुत्**=जिह्वा **सुकृता**= सम्यक् परिष्कृत है, **या**=जो **वरिष्ठा**=उरुतम है, विशाल है, **यया**=जिसके द्वारा **शश्वत्**=सदा **मध्वः ऊर्मिम्**=मधुर ज्ञान की **ऊर्मिम्**=ऊर्मि को, लहर को **पिबसि**=हमारे शरीर के अन्दर पान करते हैं **तया पाहि**=उसके द्वारा हमें रक्षित करिये। जब मनुष्य इस जिह्वा से ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता है और अपने ज्ञान को विशाल बनाता है तो उस समय यह ज्ञान प्राप्ति में लगी हुई जिह्वा सोमरक्षण का साधन बनती है। यह सोमरक्षण हमारे 'शरीर मानस व बौद्ध' स्वास्थ्य का साधन बनता है। (२) **ते**=यह आपसे रक्षित **अध्वर्युः**=यज्ञादि उत्तम कर्मों का प्रणेता पुरुष

प्र अस्थात्=जीवनयात्रा में आगे और आगे बढ़ता है। हे **इन्द्र**=प्रभो! **ते**=आपका **वज्रः**=वज्र, यह क्रियाशीलता रूप आज हमारे लिये **गव्युः**=प्रशस्त इन्द्रियों को हमारे साथ जोड़नेवाला **संवर्तताम्**=हो। अर्थात् आपकी प्रेरणा से यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रेरित हुए-हुए हम सदा अपनी इन्द्रियों को प्रशस्त रख पायें, हमारी ये इन्द्रियाँ वासनाओं से मलिन न हों।

भावार्थ—प्रभु से दी गई ये वाणी (जिह्वा) ज्ञान प्राप्ति में लगी रहकर सोमरक्षण का साधन बने। सुरक्षित सोमवाला यह पुरुष यज्ञशील बने। यज्ञशीलता इसकी इन्द्रियों को विषयाक्रान्त होने से बचाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'द्रप्सः वृषभः विश्वरूपः' सोम

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम्॥ ३॥

(१) **एषः**=यह **सोमः**=सोम **द्रप्सः**=(दर्पति दीप्ति कर्मा) ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला है। **वृषभः**=सुखों का वर्षण करनेवाला है। **विश्वरूपः**=सब अंग-प्रत्यंगों को उत्तम रूप देनेवाला है। यह **वृष्णे**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **समकारि**=किया गया है। इसके रक्षण के द्वारा ही हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले, **स्थातः**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता बननेवाले **उग्र**=तेजस्विन् उपासक! **एतं पिब**=इसका तू पान कर। प्रकृष्ट ज्ञान के होने पर **यस्य ईशिषे**=जिसका तू ईश बनता है और **यः**=जो **ते अन्नम्**=अन्न बनता है। सोम का भक्षण ही इसे पूर्ण स्वस्थ बनाता हुआ अध्यात्म उन्नति के शिखर पर पहुँचनेवाला होता है। ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना, वासनाओं के अनाक्रमण के द्वारा, सोम-रक्षण का पात्र बन जाता है।

भावार्थ—यह सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला, सुखों का वर्षक, अंग-प्रत्यंग को उत्तम रूप प्राप्त करानेवाला है। इसके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम जितेन्द्रिय बनें व अतिरिक्त समय को ज्ञान प्राप्ति में ही व्यतीत करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

चिकितुषे रणाय

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयोञ्चिकितुषे रणाय।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **असुतात्**=न उत्पन्न हुए-हुए सोम से **सुतः सोमः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **वस्यान्**=वसुमत्तर, प्रशस्यतर होता है। उत्पन्न होकर रक्षित हुआ-हुआ **अयम्**=यह सोम **चिकितुषे**=ज्ञानी के लिये तथा **रणाय**=(रण शब्दे) प्रभु के स्तोता के लिये **श्रेयान्**=कल्याणकर होता है। यह ज्ञानी स्तोता सोम का रक्षण कर पाता है और इस प्रकार रक्षित सोम के द्वारा अपना रक्षण करनेवाला होता है। (२) हे **तितिः**=काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को तैरनेवाले **एतं यज्ञम्**=इस संगतिकरण योग्य सोम को **उपयाहि**=तू समीपता से प्राप्त हो। और **तेन**=उस सोम के द्वारा **विश्वाः तविषीः**=सब बलों को **आपृणस्व**=अपने अन्दर आपूरित कर। सोम ही सब शक्तियों का मूल है।

भावार्थ—अनुत्पन्न सोम से उत्पन्न सोम श्रेष्ठ है। ज्ञानी स्तोता इसका रक्षण करता है और इसके

द्वारा सब बलों को अपने में धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोम द्वारा शक्तियों का विस्तार

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङ्ङं ते सोमस्तन्वे भवाति।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वा ह्वयामसि**=हम आपको पुकारते हैं। **अर्वाङ् याहि**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइये। **ते सोमः**=आपका यह सोम (वीर्यशक्ति) **तन्वे**=शक्तियों के विस्तार के लिये **भवाति**=होता है। (२) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! आप **सुतेषु**=इन सोमों के उत्पन्न होने पर **मादयस्व**=हमारे जीवनों को उल्लासमय करिये। आप **पृतनासु**=संग्रामों में **अस्मान्**=हमें **प्र अवि**=प्रकर्षेण रक्षित करिये। **विक्षु**=सब प्रजाओं में हमारा अवश्य **प्र (अव)**=रक्षण करिये।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें। रक्षित सोम हमारी शक्तियों का विस्तार करे। उत्पन्न सोम हमारे उल्लास का कारण बने। हमें वासनाओं व रोगों से रक्षित करें।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

गतिशीलता व सोमरक्षण

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर। अरंगमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरे॥ १॥

(१) हे प्रभो! **अस्मै**=इस उपासक के लिये **प्रतिभर**=अंग-प्रत्यंग में सोम का भरण करिये। जो उपासक **पिपीषते**=सोम का पान करना चाहता है तथा **विश्वानि विदुषे**=सब वेद्य वस्तुओं को जानने के लिये यत्नशील होता है। इसके लिये सोम का भरण करिये। (२) उस उपासक के लिये सोम का रक्षण करिये जो **अरङ्गमाय**=खूब क्रियाशील है, **जग्मये**=यज्ञादि उत्तम कर्मों में जाने के स्वभाववाला है, **अपश्चाद्दध्वने**=कभी पीछे गतिवाले न होकर सदा अग्रगतिवाला है तथा **नरे**=अपने को सदा उन्नतिपथ पर ले चलनेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये सर्वोत्तम साधन सदा उत्तम कर्मों में लगे रहना ही है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सोमरक्षण व प्रभु प्राप्ति

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्। अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः॥ २॥

(१) **सोमपातमम्**=हमारे सोमों का अतिशयेन रक्षण करनेवाले **एनम्**=इस प्रभु को **ईन्**=निश्चय से **सोमेभिः**=इन सोमों के द्वारा **आ प्रत्येतन**=आभिमुख्येन जानेवाले बनो। सोमरक्षण से ही, बुद्धि की तीव्रता होकर, प्रभु का दर्शन होता है। प्रभु की उपासना ही सोमरक्षण का साधन बनती है। (२) उस प्रभु की ओर चलो जो **अमत्रेभिः**=बलों के साथ (अमत्र=strength) **ऋजीषिणम्**=ऋजुता की प्रेरणा देनेवाले हैं। इस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सुतेभिः**=उत्पन्न **इन्दुभिः**=सोमों के द्वारा प्राप्त होनेवाले होवो। सुरक्षित सोम ही प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना सोमरक्षण का साधन बनती है। सुरक्षित सोम प्रभु प्राप्ति कराने

में सहायक होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सोमेभिः प्रतिभूषथ

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ। वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते ॥ ३ ॥

(१) **यदि**=यदि **सुतेभिः**=उत्पन्न हुए-हुए **इन्दुभिः**=अपने को शक्तिशाली बनानेवाले **सोमेभिः**=सोमकणों के द्वारा, सोमकणों के रक्षण के द्वारा **प्रतिभूषथ**=उस प्रभु को प्राप्त करते हो (भू प्राप्तौ), तो वह उपासक उत्तम बुद्धि को प्राप्त करनेवाला होता हुआ **विश्वस्य वेद**=सब ज्ञानों को प्राप्त करता है। सोमरक्षण ज्ञानाग्नि की दीप्ति होती है और मनुष्य का झुकाव प्रकृति की ओर न होकर प्रभु की ओर होता है। मनुष्य सब **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षण करता हुआ **तं तं इत्**=उस-उस कामना को **आ ईषते**=सब प्रकार प्राप्त करता है (to collect)। वासनाओं को विनाश से सब कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

भावार्थ—अपने जीवनों को सोमरक्षण के द्वारा प्रभु की ओर गतिवाला करें। इसी मार्ग में बुद्धि है, वासनाओं का क्षय है और सब कामनाओं की पूर्ति है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शत्रु हिंसन से रक्षण

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥

(१) हे **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष, अध्वरों में अपने को जोड़नेवाले पुरुष **अस्मै अस्मै इत्**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिये और इस प्रभु की प्राप्ति के लिये ही **अन्धसः**=सोमरूप अन्न के **सुतम्**=उत्पादन को **प्रभर**=अपने अन्दर धारण कर। यह सुरक्षित सोम ही तुझे प्रभु को प्राप्त करायेगा। (२) ये प्रभु ही तुझे **समस्य**=सब **जेन्यस्य**=जीतने योग्य **शर्धतः**=उत्सहमान आक्रामण करते हुए शत्रु के **अभिशस्तेः**=हिंसनों से **कुवित्**=खूब ही **अवस्परत्**=पालित करेंगे, बचाएँगे। प्रभु ही वस्तुतः उपासक को काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं के आक्रमण से बचाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये हम शरीर में सोमरूप अन्न का सम्पादन करें। ये प्रभु हमें शत्रुओं के हिंसनों से बचायेंगे।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शम्बर-रन्धन

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **यस्य मदे**=जिस सोम के रक्षण से उत्पन्न उल्लास में तू **दिवोदासाय**=ज्ञान के देनेवाले उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **त्यत्**=उस **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्या नामक आसुर भाव को **रन्धयः**=विनष्ट करता है। **अयं सः सोमः**=यह वह सोम **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। (२) **पिब**=इस सोम का तू पान कर। इसके रक्षण से ही तू ईर्ष्या आदि आसुरभावों से ऊपर उठकर शान्त जीवनवाला बन सकेगा। यह शान्त जीवन

ही तेरे लिये प्रभु को प्राप्त करानेवाला होगा।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम ईर्ष्या का विनाश करें। ईर्ष्या विनाश शान्ति का साधन बनेगा। सोम रक्षण प्रभु को प्राप्त करानेवाला होगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

तीनों सवनों में सोमरक्षण

यस्य॑ तीव्र॒सुतं॑ मद॒ं मध्य॒मन्तं॑ च॒ रक्ष॑से। अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑॥ २॥

(१) जीवन का प्रातः सवन प्रथम २४ वर्ष का है। इस सवन में सोम का सवन, वीर्यशक्ति का उत्पादन उत्कृष्ट रूप में होता है। उतना प्रबल उत्पादन जीवन के माध्यन्दिन सवन में नहीं रहता। और जीवन के तृतीय सवन में, ६९ से ११६ तक यह उत्पादन अत्यन्त शान्त-सा हो जाता है। तीनों ही सवनों में सोम अभिप्रेत है। सो कहते हैं कि **यस्य**=जिस सोम के **तीव्रसुतम्**=प्रातः सवन में होनेवाले तीव्र उत्पादनवाले **मदम्**=उल्लास को **रक्षसे**=तू रक्षित करता है, **च**=और **मध्यम्**=माध्यन्दिन सवन में होनेवाले **अन्तम्**=सायन्तन सवन में होनेवाले मद को रक्षित करता है। **अयं सः सोमः**=यह वह सोम, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। (२) **पिब**=इस सोम को तू अपने अन्दर ही पीनेवाला बन। यही सुरक्षित हुआ-हुआ तुझे दीर्घजीवन प्राप्त करायेगा।

भावार्थ—जीवन के प्रातः, मध्याह्न व तृतीय में इस सोम का रक्षण सदा अभिप्रेत है। यह सुरक्षित सोम ही दीर्घजीवन का साधन बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

अविद्या पर्वत विदारण

यस्य॒ गा अ॒न्तरश्म॑नो॒ मदे॑ दृ॒ळ्हा अ॒वासृ॑जः। अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑॥ ३॥

(१) वासनारूप शत्रु इन्द्रिय रूप गौवों को दृढ़ता से अविद्या पर्वत में ढक कर स्थापित करता है। सोमरक्षण से ज्ञानदीप्ति होकर इन इन्द्रियों की इस अविद्या पर्वत से मुक्ति होती है। सो कहते हैं कि **यस्य मदे**=जिस सोम के रक्षण से जनित उल्लास में **अश्मनः अन्तः**=अविद्या पर्वत के अन्दर **दृढाः**=दृढ़ता से स्थापित **गाः**=इन्द्रियरूप गौवों को **अवासृजः**=तू मुक्त करता है। **अयं सः सोमः**=यह सोम, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। (२) **पिब**=तू इसका पान कर। इसके पान से अपने ज्ञान को तू उज्ज्वल बना। इस ज्ञान की अग्नि से ही अविद्यापर्वत में निरुद्ध गौवों की इस अविद्या से मुक्ति होगी।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके अविद्यान्धकार को नष्ट करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

माघोनं शवः

यस्य॑ मन्दा॒नो अन्ध॑सो॒ माघो॑नं दधि॒षे शवः॑। अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑॥ ४॥

(१) **यस्य अन्धसः**=जिस सोमरक्षण अन्न के रक्षण से **मन्दानः**=हर्ष का अनुभव करता हुआ तू **माघोनः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु सम्बन्धी **शवः**=बल को **दधिषे**=धारण करता है। **अयं सः सोमः**=यह वह सोम **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया या है। (२) **पिब**=इस सोम का तू पान कर जिससे तुझे प्रभु की तेजस्विता प्राप्त होगी।

भावार्थ—सोमरक्षण से यह उपासक प्रभु के बल धारण करनेवाला बनता है।

यह सोमरक्षक पुरुष 'शंयु' बनता है शरीर में नीरोग मन में निर्भीक यह इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है—

चतुर्थोऽनुवाकः

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

रयिन्तमः-द्युम्नवत्तमः

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः। सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

(१) हे **रयिवः**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः ते सुतः सोमः**=जो आपके द्वारा उत्पन्न किया गया यह सोम है **सः**=वह **रयिन्तमः**=सर्वोत्कृष्ट रयि है, प्रमुख धन है। **यः**=जो सोम है वह **द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः**=ज्ञानों से अतिशयेन ज्ञानज्योतिवाला है। यह सोम वास्तविक धन है और ज्ञान को प्राप्त करानेवाला है। (२) हे **इन्द्र**=शक्तिशालि प्रभो! हे **स्वधापते**=आत्मधारण-शक्ति के स्वामिन्! यह आपका सोम **मदः अस्ति**=उल्लास का जनक है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही उत्कृष्ट धन है, यही ज्ञान-ज्योति को जगानेवाला है, उल्लास का जनक है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शग्मः, रायः मतीनां दामा

यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम्।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥

(१) हे **तुविशग्म**=महान् सुखवाले प्रभो! **ते**=आपका **सुतः स सोमः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **शग्मः**=सुखों को देनेवाला है। **सः**=वह **ते**=आपका सोम **रायः**=ऐश्वर्य का व **मतीनाम्**=बुद्धियों का **दामा**=दाता है। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **स्वधापते**=हे आत्मधारणशक्ति के स्वामिन्! यह आपका **सोमः**=सोम **मदः**=उल्लास का जनक **अस्ति**=है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सुख का जनक है, बुद्धियों का वर्धक है, उल्लास का जनक है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शवसा वृद्धः, तुरः

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥

(१) **येन**=जिस अपने अन्दर पीये हुए सोम से **शवसा वृद्धः न**=बल के दृष्टिकोण से बढ़े हुए के समान तथा **स्वाभिः ऊतिभिः**=अपने रक्षणों के द्वारा **तुरः न**=शत्रुहिंसक के समान होता है। अर्थात् इस सोमरक्षण से शक्ति का वर्धन होता है तथा अपना रक्षण करते हुए हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हिंसन कर पाते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **स्वधापते**=आत्मधारण शक्ति के स्वामिन् प्रभो! **सोम सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **ते सोमः**=आपका यह सोम **मदः अस्ति**=उल्लास का जनक है।

भावार्थ—इस सोमरक्षण से बल की वृद्धि होती है और हम अपना रक्षण करते हुए काम-क्रोध आदि का नाश कर पाते हैं। इस प्रकार यह सोम उल्लास का जनक होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शवसस्पति-विश्वचर्षणि

त्यमु॑ वो॒ अप्र॑हणं गृणी॒षे शव॑स॒स्पति॑म्। इन्द्रं॒ विश्वा॒साहं॒ नरं॑ मंहि॒ष्ठं वि॒श्वच॑र्षणिम्॥ ४॥

(१) **वः**=तुम सबके **अप्रहणम्**=अप्रहन्ता, न नष्ट करनेवाले **त्यम्**=उस प्रभु का **उ**=निश्चय से **गृणीषे**=स्तुति करता हूँ। मैं प्रभु का स्तवन करनेवाला बनता हूँ। वे प्रभु **शवसस्पतिम्**=बल के स्वामी हैं। मुझे बल देकर इस योग्य बनाते हैं कि मैं अपना रक्षण कर सकूँ। (२) उस प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ जो **इन्द्रम्**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं। **विश्वासाहम्**=सब शत्रुओं का पराभव करनेवाला है। **नरम्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं। **मंहिष्ठम्**=दातृतम हैं, सब आवश्यक वस्तुओं (वसुओं) के देनेवाले हैं और **विश्चर्षणिम्**=सब के द्रष्टा हैं, सबका पालन करनेवाले हैं (one who looks after)।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें शक्ति देकर शत्रु-शातन के आरक्षण के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

राधस्+शुष्म

यं व॒र्धय॒न्तीद्गिरः॒ पतिं॑ तु॒रस्य॒ राध॑सः। तमिन्व॑स्य॒ रोद॑सी दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः॥ ५॥

(१) **गिरः**=स्तुति-वाणियाँ **तुरस्य**=शत्रुओं के हिंसक **राधसः**=ऐश्वर्य के **पतिम्**=स्वामी **यम्**=उस प्रभु को **इत्**=ही **वर्धयन्ति**=बढ़ाती हैं। प्रभु से दिया गया ऐश्वर्य हमें काम-क्रोध-लोभ का शिकार नहीं होने देता। (२) **नु**=अब **इत्**=निश्चय से **देवी रोदसी**=ये प्रकाशमय व दिव्यगुणोंवाले द्यावापृथिवी **अस्य**=इस प्रभु के **तं शुष्मम्**=उस शत्रु-शोषक बल का **सपर्यतः**=पूजन करते हैं। द्यावापृथिवी अर्थात् इन में रहनेवाले व्यक्ति आपकी उपासना से शत्रु-शोषक बल को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से वह धन प्राप्त होता है जो हमें वासनाओं में नहीं फँसाता और यह उपासना हमें शत्रु-शोषक बल प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु का ही स्तवन

तद्व॒ उ॒क्थस्य॑ ब॒र्हणेन्द्रा॑योपस्तृणी॒षणि॑। विपो॒ न यस्योत॑यो॒ वि यद्रोह॑न्ति सु॒क्षित॑यः॥ ६॥

(१) **वः**=तुम्हारे **उक्थस्य**=स्तोत्र का **तद् बर्हणा**=वह माहात्म्य है कि **इन्द्राय**=उस शत्रु शातक प्रभु के लिये **उपस्तृणीषणि**=उपस्तरणीय होता है, उपासना में विस्तरणीय होता है। वस्तुतः वेद ही स्तोत्र है जो प्रभु के लिये उच्चरित होता है। अर्थात् प्रभु की ही स्तुति करनी चाहिये। **यस्य ऊतयः**=जिसके रक्षण **विपः न**=मेधावी पुरुष के समान हैं, अर्थात् जिस प्रभु के रक्षण अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक होते हैं। और **यत् रक्षिता**=जो रक्षक समान निवासवाले लोग **विरोहन्ति**=विशिष्ट उन्नतिवाले होते हैं। प्रभु को आधार बनानेवाले व्यक्ति उन्नत होते ही हैं। ये सब पापकर्मों से दूर रहते हुए उज्ज्वल चरित्रवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम सदा प्रभु का स्तवन करें जिनके रक्षण बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक होते हैं और जिनकी शरण में रहनेवाले व्यक्ति सदा उन्नत होते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'वलद्यता-धनविचेता' प्रभु

अविंदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्त्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७ ॥

(१) वह **नवीयान्**=अतिशयेन स्तुत्य-स्तुत्यतर **मित्रः**=पापों से बचानेवाले प्रभु **दक्षम्**=बल को **अविदत्**=प्राप्त कराते हैं। बल को देकर ही हमें वह पापों से बचाते हैं। निर्बलता में ही पापों का निवास है। **पपानः**=(पन स्तुतौ) स्तुति किये जाते हुए वे प्रभु **देवेभ्यः**=इन स्तोताओं के लिये (दिव् स्तुतौ) **वस्यः**=सशक्त धन का **अचैत्**=संचय करते हैं। वे प्रभु स्तोताओं के लिये सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। (२) **स्तौलाभिः**=(स्थूलाभिः) अत्यन्त प्रवृद्ध **धौतरीभिः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाली शक्तियों से **ससवान्**=संभजमान वे प्रभु **उरुष्या**=हमारे रक्षण की कामना से **सखिभ्यः**=अपने इन साथियों के लिये **पायुः अभवत्**=रक्षक होते हैं। शत्रु-कम्पक शक्तियों को प्राप्त कराके वे प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—वे स्तुत्य प्रभु हमें शक्ति व धन प्राप्त कराते हैं। प्रवृद्ध शत्रु-कम्पक शक्तियों के द्वारा वे हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमपान-ज्ञान-बल प्रभु दर्शन

ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन्।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

(१) **ऋतस्य पथि**=यज्ञ के मार्ग में **वेधाः**=बुद्धि का जनक यह सोम (वेधाः=सोम) संचय किया जाता है। अर्थात् यज्ञादि कर्मों में लगे रहने से वासनाओं का आक्रमण न होने के कारण, सोम **अपायि**=होता है। इस प्रकार **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **श्रिये**=शोभा के लिये **मनांसि अक्रन्**=ज्ञान का सम्पादन करते हैं। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और ज्ञान से पवित्रता होकर उसकी शोभा बढ़ती है। (२) **वचोभिः**=स्तुति वचनों के द्वारा **नाम**=शत्रुओं को नमानेवाले सोम को धारण करते हुए **वेन्यः**=वे कमनीय प्रभु **वपुः**=अपने तेजोमय रूप को **दृशये**=समयक देखे जाने के लिये **व्यावः**=प्रकट करते हैं। अर्थात् यह प्रभु-स्तवन हमें शत्रुओं को नष्ट करने बल को प्राप्त कराता है तथा प्रभु दर्शन का पात्र बनाता है।

भावार्थ—हम यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे रहकर, वासनाओं से बचे रहने के द्वारा, सोम का पान करें। ज्ञान को प्राप्त करें। स्तवन के द्वारा शत्रुओं के झुकानेवाले बल को प्राप्त हों तथा प्रभु दर्शन के योग्य बनें। सोमरक्षण से ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान से शत्रुओं को झुकानेवाला व बल मिलता है। इस बल से सम्पन्न व्यक्ति प्रभु दर्शन पाता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

द्युमत्तमं दक्षम्

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥

(१) हे प्रभो! **द्युमत्तमम्**=अधिक से अधिक ज्ञान की ज्योतिवाले **दक्षम्**=बल को **अस्मे**=हमारे

लिये **धेहि**=धारण कीजिये, हमें ज्ञान-बल प्राप्त हो। इस प्रकार ज्ञान व बल को प्राप्त कराके आप **जनानाम्**=लोगों के **पूर्वीः अरातीः**=इन बहुत संख्यावाले शत्रुओं को **सेधा**=दूर करिये। ज्ञानाग्नि में काम-क्रोध दग्ध हो जाएँ और बल से रोग भाग जायें। (२) इस प्रकार **शचीभिः**=कर्मशक्ति (बल) व प्रज्ञानों से हमारे **वर्षीयः**=अत्यन्त उत्कृष्ट व दीर्घ **वयः**=जीवन को **कृणुहि**=करिये। इस जीवन में **धनस्य सातौ**=धन की प्राप्ति के निमित्त **अस्मान् अविड्दि**=हमारा रक्षण कीजिये। आवश्यक धनों को प्राप्त करके हम अपने जीवनों को धन्य बनायें।

भावार्थ—हमें ज्ञानयुक्त बल प्राप्त हो ताकि हम निर्मल मनवाले व नीरोग शरीरवाले बनें। शक्ति व प्रज्ञान के साथ उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त करते हुए हम धनों को प्राप्त कर धन्य बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

नकिः आपिः ददृशेमर्त्यत्रा

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः॥ १०॥

(१) हे **मघवन्**=ज्ञान रूप ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक बल सम्पन्न प्रभो! **वयम्**=हम **दात्रे**=इन ऐश्वर्यों को देनेवाले **तुभ्यम्**=आपके लिये ही **अभूम**=शेषभूत-सन्तानतुल्य हों। आपको ही अपना हितैषी जानकर हम संसार के सब व्यवहारों में वर्तें। हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **मा विवेनः**=हमारे प्रति अपगत कामनावाले आप **इत्**=हम आपके सदा प्रीति पात्र बने रहें। (२) यहाँ **मर्त्यत्रा**=मनुष्यों में **आपिः**=मित्र **नकिः**=नहीं **ददृशे**=दिखता। मानव मैत्री स्वार्थमयी होने से स्थायी नहीं होती। पर **किम्**=इस विषय में आपका क्या कहना। हे **अंग**=प्रिय प्रभो, सतत गतिशील प्रभो! **त्वा**=आपको **रध्रचोदनम्**=कार्य प्रेरक धन (धनों का प्रेरक) **आहुः**=कहते हैं। आप अपने उपासकों के लिये सब आवश्यक धनों को देते हैं।

भावार्थ—प्रभु 'मघवान्' हैं, 'इन्द्र' हैं। हमारे लिये ज्ञान व बल को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही एकमात्र निःस्वार्थ मित्र हैं। वे प्रभु ही कार्य-साधक धनों को सदा प्राप्त करानेवाले हैं। संसार के मित्रताएँ अन्ततः स्वार्थमयी हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'असुषि व अपृणन्' का विनाश

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः॥ ११॥

(१) हे **वृषभ**=शक्तिशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **जस्वने**=उपक्षय करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं के लिये **मा ररीथाः**=मत दे डालिये। आप से शक्ति को प्राप्त करते हुए हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीत पाएँ। **रेवतः**=सब ऐश्वर्योंवाले **ते**=आपकी **सख्ये**=मित्रता में **मा रिषाम**=हम हिंसित न हों। आपको मित्र पाकर हम काम-क्रोध आदि से कभी आक्रान्त न हों। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक, सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभो! **ते**=आपकी **जनेषु**=मनुष्यों में **पूर्वीः**=बहुत **निष्षिधः**=बुराइयों के रोकने की शक्तियाँ हैं आप उपासकों के समीप रोगों व काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नहीं आने देते। आप **असुष्वीन्**=अयज्ञशील पुरुषों को **जहि**=नष्ट करिये। **अपृणतः**=अदानशील पुरुषों को **प्रवृह**=उन्मूलित करिये।

भावार्थ—हम काम आदि से आक्रान्त न हों। प्रभु की मित्रता में रहते हुए हम शत्रुओं से

विनष्ट न किये जा सकें। प्रभु शत्रुओं को हमारे से दूर रखें। अयज्ञशील व अदानशील का ही तो उन्मूलन होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

अकृपण धनी

उद्भ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः॥ १२॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **अभ्राणि**=मेघों को **स्तनयन् इव**=गर्जना कराते हुए की तरह **अश्व्यानि**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली कर्मेन्द्रियों से सम्बद्ध तथा **गव्या**=अर्थों की गमक ज्ञानेन्द्रियों से सम्बद्ध **राधांसि**=सिद्धियों को **उदियर्ति**=उत्कर्षेण प्रेरित करते हैं। वे प्रभु अन्तरिक्ष में जैसे बादलों की गर्जना होती है, उसी प्रकार हमारे हृदयान्तरिक्ष में प्रेरणा को देते हुए हमें उत्तम कर्मेन्द्रियाँ व उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं। हे प्रभो! **त्वम्**=आप **प्रदिवः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले व **कारुधायाः**=क्रियाशील स्तोताओं के धारण करनेवाले प्रेरक **असि**=हो **त्वा**=आपको **मघोनः**=धनवान्, पर **अदामानः**=अदानशील-कृपण वृत्तिवाले **दभन्**=मत हिंसित करें। अर्थात् हमारे में से कोई धनी होता हुआ कृपण न हो और इस प्रकार आपको भूल न जाऊँ धन हमें आपको भुलानेवाला न हो।

भावार्थ—प्रभु प्रेरणा देते हैं, उत्तम कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों प्राप्त कराते हैं। स्तोताओं का वे धारण करनेवाले हैं। हम धनी होकर कृपण न हो जाएँ। प्रभु हमें विस्मरण न हो जाये, हम धन में ही न उलझ जाएँ।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

पूर्वाभिः उत नूतनाभिः

अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम्॥ १३॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष! **महे**=उस महान् **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **सुतानां प्रभर**=इन उत्पन्न सोमों का धारण कर। ये सुरक्षित सोम ही तुझे प्रभु प्राप्ति के योग्य बनायेंगे। **सः हि**=वे प्रभु ही **अस्य राजा**=इस सोम को जीवन में दीप्त करनेवाले हैं। अर्थात् हमारे जीवनों में सोम का स्थापन करके प्रभु हमें दीप्त जीवनवाला बनाते हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **गृणतां ऋषीणाम्**=स्तुति करनेवाले तत्त्वद्रष्टा ज्ञानियों की **पूर्व्याभिः**=पूर्वकाल में होनेवाली **उत**=और **नूतनाभिः**=इस समय होनेवाली नवीन **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों से **वावृधे**=बढ़ाये जाते हैं। वे प्रभु ही इस सोम के द्वारा हमारे जीवन को दीप्त करते हैं। प्रभु स्तवन ही सोमरक्षण का साधन होता है। प्रभु स्तवन से सोमरक्षण होता है, रक्षित सोम से ज्ञानाग्नि के दीपन के द्वारा प्रभु दर्शन होता है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये हम सोमरक्षण द्वारा दीप्त जीवनवाले बनें। सोमरक्षण के लिये सदा स्तुतिशील हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मधुमान् सोम का रक्षण

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै॥ १४॥

(१) **अस्य**=इस सोम के **मदे**=उल्लास में, सोमरक्षण जनित हर्ष में **पुरु**=अनेकों **वर्पांसि**=आसुर वृत्ति के रूपों को **विद्वान्**=जानता हुआ **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **अप्रती वृत्राणि**=जिनका मुकाविला करना बड़ा कठिन है उन वासनारूप शत्रुओं को **जघान**=नष्ट करता है। वासनाएँ नानारूपों में आया करती हैं और साथ ही ये अत्यन्त प्रबल हैं। इन्हें एक जितेन्द्रिय पुरुष ही, प्रभु की कृपा से जीत पाता है। (२) हे प्रभो! **तं उ**=उस निश्चय से **मधुमन्तम्**=जीवन को मधुर बनानेवाले प्रभो! **अस्मै**=इस **वीराय**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **शिप्रिणे**=शोभन हनु व नासिकावाले, खूब खानेवाले (हनु) प्राणसाधक (नासिका) पुरुष के लिये **पिबध्यै**=शरीर में ही पीने व व्याप्त करने के लिये **प्रहोषि**=देते हैं (हु दाने)। सोमरक्षण के लिये 'वासनाओं का अनाक्रमण, चबाकर खाना व प्राणसाधना' ये सब चीजें सहायक होती हैं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर वासनाओं का विनाश करें। चबाकर खायें, प्राणसाधना करनेवाले बनें। इस प्रकार सोम की रक्षा करें। रक्षित सोम हमारे जीवन को मधुर बनायेगा।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण-वृत्रहनन-यज्ञशीलता

पाता सुतमिन्दो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः॥ १५॥

(१) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **सुतं सोमः**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को (वीर्यशक्ति को) **पाता अस्तु**=उत्तमता से पीनेवाला हो (साधुकारिणि तृन्)। और **मन्दसानः**=सोमरक्षण से उल्लास का अनुभव करता हुआ (माद्यन्) यह इन्द्र **वज्रेण**=क्रियाशीलता रूप वज्र से **वृत्रं हन्ता**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को नष्ट करनेवाला हो। (२) **परावतः चित्**=कार्यवश दूर-दूर देशों में गया हुआ भी **यज्ञं अच्छा गन्ता**=यज्ञों की ओर जानेवाला हो। इस प्रकार यह जितेन्द्रिय पुरुष **वसुः**=जीवन के निवास को उत्तम बनानेवाला हो। **धीनां अविता**=बुद्धियों व कर्मों का रक्षक हो। **कारुधायाः**=कर्म करनेवालों का धारण करनेवाला हो। कर्मशीलों को उत्साहित करे।

भावार्थ—सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि का दीपन करके हम वासनारूप वृत्रों का दहन करें। वासना-विनाश से यज्ञशील जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमरक्षण से 'अमृतत्त्व-सौमनस्य-निर्द्वेषता व निष्पापता' की प्राप्ति

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यन्त्स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः॥ १६॥

(१) **इदम्**=यह **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **पात्रम्**=रक्षण का साधनभूत **इन्द्रपानम्**=जितेन्द्रिय पुरुष से रक्षित **इन्द्रस्य प्रियम्**=जितेन्द्रिय पुरुष की प्रीति को उत्पन्न करनेवाला **अमृतम्**=रोगों से ऊपर उठानेवाले (न मृतं यस्मात्) यह सोम **अपायि**=पीया जाता है, शरीर में ही सुरक्षित किया जाता

है। (२) इसलिए यह सोम **देवम्**=इस देववृत्तिवाले पुरुष को **सौमनसाय**=सुमनरूप के लिये **मत्सत्**=आनन्दित करता है यह सोम सुरक्षित हुआ-हुआ **अस्यत्**=हमारे से **द्वेषः**=द्वेष के भाव को **वियुयवत्**=विशेष रूप को **अंहः**=पाप को **वि** (युयवत्)=पृथक् करे।

भावार्थ—सोमरक्षण से 'अमृतत्व-सौमनस्य-निर्द्वेषता व निष्पापता' प्राप्त होती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'जामि व अजामि' रूप सब शत्रुओं का विनाश

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान्।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्परा च इन्द्र प्र मृणा जही च॥ १७॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले पुरुष! **एना**=इस सोम के रक्षण से **मन्दानः**=आनन्दित होता हुआ **शत्रून् जहि**=शत्रुओं को विनष्ट कर। हे **मघवन्**=यज्ञशील पुरुष! **जामिम्**=जन्म से ही उत्पन्न अथवा **अजामिम्**=पीछे उत्पन्न हो जानेवाले **अमित्रान्**=वासनारूप शत्रुओं को तू विनष्ट कर व कृत्रिम दोषों को तू इस सोम के द्वारा दूर कर। (२) **अभिषेणान्**=सेना के द्वारा हमारे पर आक्रमण करनेवाले व **अभि आदेदिशानान्**=हमारी ओर शस्त्रों को छोड़ते हुए इन शत्रुओं को, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **परा प्रमृणा च**=पराङ्मुख करके बाधित कर, **च**=और **जहि**=नष्ट कर। कामदेव पञ्चबाण हैं। ये अपने शस्त्रों का हमारे पर प्रहार करते हैं। नाना प्रकार की वासनाएँ इसकी सेना हैं। इन सब शत्रुओं को हम पराङ्मुख करें और विनष्ट करें।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम जन्मजात (सहज) व पीछे उत्पन्न (कृत्रिम) सब वासनारूप शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले हों, इन शत्रुओं के बाणों व सैन्यों को हम अपने से दूर करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

संग्राम विजय

आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम्॥ १८॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **आसु नः पृत्सु**=इन हमारे संग्रामों **में अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **महि**=महान् **सुगम्**=सुखेन गन्तव्य (प्राप्य) **वरिवः**=धन को **कः स्मा**=अवश्य करिये। हम आपकी कृपा से संग्रामों में जीतें और उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करें। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभु! **अपाम्**=(आपः रेतो भूत्वा) रेतःकणों के, **तोकस्य**=उत्तम पुत्रों के **तनयस्य**=पौत्रों के **जेषः**=जीत कर **नः सूरीन्**=हम स्तोताओं को **स्म**=निश्चय से **अर्धं कृणुहि**=समृद्ध करिये अथवा नष्ट कर अर्थात् शत्रुओं का खण्डयिता करो। हम शत्रुओं को नष्ट करके रेतःकणों का रक्षण करें और पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम प्रभु कृपा से संग्रामों में विजयी होकर उत्कृष्ट जीवन यापन करें। शत्रुओं का खण्डन करके रेतःकणों का रक्षण करते हुए उत्तम पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

कैसे इन्द्रियाश्व सोमपान करें?

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु॥ १९॥

(१) **त्वा**=तुझे **हरयः**=ये इन्द्रियाश्व **वृष्णे**=शक्ति का सेचन करनेवाले, **मदाय**=उल्लास के जनक सोम के पान के लिये **आ वहन्तु**=समन्तात् कार्यों में प्राप्त करायें। निरन्तर क्रियाओं में व्यापृत इन्द्रियाँ इस सोम के रक्षण के योग्य बनायें। यह सुरक्षित सोम हमारे में शक्ति का सेचन करे (वृषा)=और हमें हर्ष देनेवाला हो (मद)। हमारे इन्द्रियाश्व **वृषणः**=शक्ति का अपने में सेचन करनेवाले हों। **युजानाः**=शरीर रथ में जुते हुए, अर्थात् सदा स्वकार्य व्यापृत हों। **वृषरथासः**=शक्तिशाली शरीर रूप रथवाले, **वृषरश्मयोः**=शक्तिशाली मनरूप लगामवाले व **अत्याः**=निरन्तर गतिशील हों। (२) ये इन्द्रियाश्व **अस्मत्राञ्चः**=हमारे प्रति (प्रभु के प्रति) आते हुए, अर्थात् प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलते हुए, **वृषणः**=शक्तिशाली व नित्य तरुण हों। **वज्रवाहः**=क्रियाशीलता रूप वज्र का धारण करनेवाले **सुयुजः**=सदा शोभन कर्मों में लगे हुए हों।

भावार्थ—सतत-स्व-कार्य-व्यापृत व प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाले इन्द्रियाश्व सोम का, वीर्यशक्ति का पान करनेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः

आ ते॑ वृष॒न्वृष॑णो॒ द्रोण॑मस्थुर्घृ॒तप्रु॑षो॒ नोर्म॑यो॒ मद॑न्तः।
इन्द्र॒ प्र तु॒भ्यं॒ वृष॑भिः सु॒ताना॑ं॒ वृष्णे॑ भरन्ति वृष॒भाय॒ सोम॑म्॥ २०॥

(१) हे **वृषन्**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले उपासक! **ते वृषणः**=तेरे ये शक्तिशाली इन्द्रियाश्व **घृतप्रुषः ऊर्मयः न**=जल का सेचन करनेवाली समुद्र-तरंगों के समान **मदन्तः**=उल्लासमय होते हुए, कार्यों में नाचते हुए **द्रोणम्**=इस गतिशील शरीर रथ में **आ अस्थुः**=समन्तात् स्थित हों। शरीर रथ में जुते हुए ये इन्द्रियाश्व जीवनयात्रा में तुझे आगे और आगे ले जानेवाले हों। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **वृषभिः**=शक्तिशाली इन्द्रियाश्वों द्वारा **सुतानाम्**=उत्पन्न किये गये सोम कणों के **वृष्णे**=अपने में सेचन करनेवाले **वृषभाय**=शक्तिशाली श्रेष्ठ जीवनवाले **तुभ्यम्**=तेरे लिए सोम को सब देव **प्रभरन्ति**=प्राप्त कराते हैं। इस सोम के रक्षण से ही तेरा जीवन सुन्दर हो पायेगा।

भावार्थ—उल्लासमय इन्द्रियाश्व शरीर रथ में जुते रहें, अर्थात् इन्द्रियाँ निज कार्य में लगी रहें, तो ये इन्द्रियाँ सोम का शरीर में सेचन करती हैं और हमें शक्तिशाली व श्रेष्ठजन बनाती हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'स्वादुः रसः मधुपेयः' सोमः

वृषा॑सि दि॒वो वृ॑ष॒भः पृ॑थि॒व्या वृषा॒ सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम्।
वृष्णे॑ त॒ इन्दु॑र्वृषभ पीपाय स्वा॒दू रसो॑ मधुपेयो॒ वरा॑य॥ २१॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **दिवः वृषा असि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक का शक्ति से सेचन करनेवाला है। **पृथिव्याः वृषभः**=इस शरीर रूप पृथिवी का भी शक्ति से सेचन करनेवाला है। **सिन्धूनाम्**=ज्ञाननदी के प्रवाहों का तू अपने में सेचन करनेवाला है और इसी दृष्टिकोण से **स्तियानाम्**=(स्तिया आपो भवन्ति सत्यानात् नि० ६।१७) तू रेतःकणरूप जलों का (आपः रेतो भूत्वा) **वृषभः**=अपने में सेचन करनेवाला है। ये रेतःकण ही शरीर में सिक्त होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। ज्ञानाग्नि के दीप्त होने पर ही ज्ञाननदियों का प्रवाह चला करता है। (अग्नेरापः)। (२) हे **वृषभः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले **वराय**=श्रेष्ठ व **वृष्णे**=शक्तिशाली **ते**=तेरे लिये ही यह **इन्दुः**=सोम **पीपाय**=आप्यायित होता है, बढ़ता है। यह सोम **स्वादुः**=तेरे जीवन

को मधुर बनाता है। **रसः**=जीवन को रसमय करता है। अतएव **मधुपेयः**=मधुवत् पातव्य होता है। यह सोम सब भोजनों का सारभूत है, अतएव ग्राह्यतम है।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा मनुष्य मस्तिष्क को व शरीर को शक्ति सिक्त करता है। इस सोमरक्षण से वह अपने में ज्ञाननदियों को प्रवाहित करता है। यह सोम जीवन को मधुर व रसमय बनाता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोमरक्षण व लोभ विनाश

अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत्।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः॥ २२॥

(१) **अयम्**=यह **देवः**=दिव्य गुणों को जन्म देनेवाला सोम **सहसा**=शत्रुमर्षक बल के साथ **जायमानः**=प्रादुर्भूत होता हुआ **इन्द्रेण युजा**=अपने साथी इस जितेन्द्रिय पुरुष के साथ **पणिम्**=व्यापारिक-व्यावहारिक-धनादि के प्रति आसक्ति रूप लोभवृत्ति को **अस्तभायत्**=रोकता है। इसके रक्षण से लोभवृत्ति का निरोध होता है। (२) **अयं इन्दुः**=यह सोम **स्वस्य**=धन के **पितुः**=पिता धन के पहरेदार बने हुए, इस लोभ के **आयुधानि**=अस्त्रों को **अमुष्णात्**=अपहृत चुराने के लोभ के अस्त्र इस सोमरक्षक को आहत नहीं कर पाते। **अशिवस्य**=अकल्याणकर आसुरी **मायाः**=मायाओं को, फँसानेवाले आकर्षक रूपों को यह सोम नष्ट करता है। आसुररूपी माया इस सोमरक्षक को प्रभावित नहीं कर पाती।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष सोम का रक्षण करता हुआ लोभ की माया में नहीं फँसता।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'ज्योति का स्रोत' प्रभु

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम्॥ २३॥

(१) **अयं**=यह प्रभु ही **उषसः**=उषाकालों की **सुपत्नीः**=सूर्यरूप शोभन पतिवाला रक्षक है। अर्थात् उषाकालों में सूर्य-किरणों द्वारा यह प्रभु ही प्रकाश को स्थापित करता है। **अयम्**=ये प्रभु ही **सूर्ये अन्तः**=सूर्य के अन्दर **ज्योतिः अदधात्**=प्रकाश को स्थापित करता है। सूर्य भी प्रभु की दीप्ति से ही दीप्त होता है। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। (२) **अयम्**=ये प्रभु ही **दिवि**=द्युलोक में **रोचनेषु**=चमकते हुए नक्षत्रों में निवास करनेवाले **त्रितेषु**=शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों का विस्तार करनेवाले पुरुषों में (त्रीन् तनोति) **निगूढम्**=सुरक्षित रूप से विद्यमान **त्रिधातु अमृताम्**=ज्ञान, कर्म व श्रद्धा इन तीनों का धारण करनेवाले अमरण हेतु भूत सोम को **विन्दत्**=प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभु ही उषाओं को, सूर्य को व नक्षत्र निवासी देव पुरुषों को दीप्ति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दशयन्त्रं उत्सम्

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम्।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम्॥ २४॥

(१) **अयं सोमः**=प्रभु से उत्पन्न किया हुआ यह सोम **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर को **विष्कभायत्**=थामता है। सोम से मस्तिष्क ज्ञानाग्निदीप्त व शरीर दृढ़ बनता है। **अयम्**=यह सोम ही **सप्तरश्मिम्**=सप्त छन्दोमयी वेदवाणीरूप सात रश्मियोंवाले, प्रकाश-किरणोंवाले, **रथम्**=शरीर-रथ को **अयुनक्**=इन्द्रियाश्वों से जोतता है। प्रभु ही शरीर-रथ में इन्द्रियाश्वों को स्थापित करते हैं। (२) **अयम्**=यह ही **गोषु अन्तः**=ज्ञानेन्द्रियों के अन्दर **पक्वम्**=परिपक्व ज्ञान को **शच्या**=शक्ति के साथ स्थापित करता है और यह सोम ही **दशयन्त्रं उत्सम्**=दश प्राणरूप यन्त्रों से युक्त इस उत्सरणशील शरीर को **दाधार**=धारण करता है। शरीर शक्ति व ज्ञान का स्रोत बनता है, सो दशयन्त्र कहा गया है। इस में दश प्राण ही दश यन्त्र हैं जो इस शरीर के सारे कर्मों का पालन करते हैं। सोम के द्वारा यह ठीक रहता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से मस्तिष्क व शरीर ठीक रहते हैं। इन्द्रियाँ व प्राण भी इस सोम के द्वारा ही ठीक प्रकार कार्य करते रहें तभी हमारे जीवन में शक्ति व प्रज्ञान का स्थापन होता है।

अगले सूक्त में भी शंयु ही इन्द्र का स्तवन करता है—

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'युवा सखा' प्रभु

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्। इन्द्रः स नो युवा सखा॥ १॥

(१) **यः**=जो **तुर्वशम्**=त्वरा से इन्द्रियों को वश में करनेवाले **यदुम्**=यत्नशील पुरुष को (प्रतमानं नरम् द० १।५४।६) **परावतः**=सुदूरदेश से भी, धर्म मार्ग से बहुत दूर गये हुए को भी **सुनीती**=उत्तम नीति से, प्रणयन से **आनयत्**=पुनः धर्म मार्ग पर ले आता है। **सः**=वही **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभु है। संसार के विषय अपनी चमक के कारण मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। पर यदि मनुष्य इन से आहत होकर प्रभु की शरण में आता है, तो प्रभु कितने भी भटके हुए उस मनुष्य को फिर धर्म-मार्ग पर ले आते हैं। हृदयस्थ प्रभु प्रेम से, पिता जैसे पुत्र के लिये प्रेरणा देते हैं। और इस पुकारनेवाले को धर्ममार्ग पर ले आते हैं। यह इन्द्रियों को वश में करनेवाला बनता है, सदा धर्ममार्ग पर चलने के लिये यत्नशील होता है। (२) ये प्रभु **नः**=हमारे **युवा**=बुराइयों को दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले **सखा**=मित्र हैं। सच्चे मित्र का यही तो लक्षण होता है कि 'पापात् निवारयति, योजयते हिताय'।

भावार्थ—प्रभु हमारे सच्चे मित्र हैं। वे हमें बुराइयों से दूर करते हैं और अच्छाइयों से हमें मिलाते हैं। उत्तम नीति से हमें वे धर्ममार्ग पर लानेवाले हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्रो जेता हितं धनम्

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता। इन्द्रो जेता हितं धनम्॥ २॥

(१) **अ-विप्रे चित्**='जो बहुत उत्कृष्ट ज्ञानी नहीं है' उसमें भी **वयः दधत्**=दीर्घजीवन को धारण करते हैं। जो व्यक्ति बहुत ज्ञान को नहीं भी प्राप्त करता, परन्तु प्रभु का कुछ भक्त बनता है उस अल्पज्ञ भक्त को भी लम्बा जीवन देते हैं। प्रभु भक्ति के कारण यह बहुत अनियमित जीवनवाला नहीं बनता दीर्घ जीवन को प्राप्त करता है। (२) **अनाशुना चित्**=बहुत शीघ्रता से कर्मों में न व्याप्त हुआ **अर्वता**=इन्द्रियाश्वों से **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु इस अविप्र (अल्पज्ञ)

भक्त के लिये भी हितकर धन को **जेता**=जीतनेवाले होते हैं। वस्तुतः धनों का विजय प्रभु ही करते हैं। सो हमारे लिये बहुत चुस्त न भी हुए तो भी कोई बहुत हानि नहीं। प्रभु-भक्ति चाहिए, फिर कल्याण ही होते हैं।

भावार्थ—अल्पज्ञ होते हुए भी एक प्रभु-भक्त दीर्घजीवन को प्राप्त करता है और प्रभु उसके लिये हितकर धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

प्रणीति-प्रशस्ति-ऊति

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः। नास्य क्षीयन्त ऊतयः॥ ३॥

(१) **अस्य**=इस प्रभु के **प्रणीतयः**=प्रणयन हमें उन्नतिपथ पर ले चलने के कार्य **महीः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **उत**=और **प्रशस्तयः**=इस प्रभु की प्रशस्तियाँ **पूर्वी**=बहुत हैं अथवा हमारा पालन व पूरण करनेवाली हैं। (२) **अस्य**=इस प्रभु की **ऊतयः**=रक्षायें **न क्षीयन्ते**=कभी क्षीण नहीं होती। प्रभु के रक्षण कार्य सदा चलते ही हैं। मनुष्य अशक्ति व अज्ञान के कारण कई बार रक्षण नहीं कर पाता। चाहते हुए भी माता-पिता भी सन्तान के रक्षण में कई बार अपने को अशक्त अनुभव करते हैं। प्रभु के यहाँ अशक्ति व अज्ञान का प्रश्न ही नहीं है।

भावार्थ—प्रभु के प्रणयन महान् हैं। प्रभु की प्रशस्तियाँ हमारा पालन व पूरण करनेवाली हैं। प्रभु के रक्षण कभी क्षीण नहीं होते।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अर्चत-प्र च गायत (उपासना व स्तुति)

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत। स हि नः प्रमतिर्महीं॥ ४॥

(१) एक उपासक अपने मित्रों से कहता है कि **सखायः**=हे मित्रो! **ब्रह्मवाहसे**=ज्ञान को प्राप्त करानेवाले उस प्रभु के लिये **अर्चत**=पूजा करो, **च**=और **प्रगायत**=उसके गुणों का गान करो। यह पूजा तुम्हें दुर्गुणों से बचायेगी और गुणगान तुम्हारे सामने एक लक्ष्य दृष्टि को स्थित करेगा, तुम्हारे अन्दर भी उन गुणों को धारण करने की वृत्ति उत्पन्न होगी। अर्थात् यह स्तोता यही सोचता है कि प्रभु दयालु हैं, मैं भी दयालु बनूँ। प्रभु न्यायकारी हैं, मैं भी न्यायकारी बनूँ। (२) **सः**=वे प्रभु **हि**=ही **नः**=हमारे लिये **मही प्रमतिः**=महान् बुद्धि हैं। हमारे अन्दर प्रभु प्रकृष्ट बुद्धि के रूप में निवास करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का पूजन करें, गायन करें। प्रभु हमें बुद्धि प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

शक्ति व ज्ञान का रक्षण

त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि। उतेदृशे यथा वयम्॥ ५॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **एकस्य**=एक शरीर के बल के महान् **असि**=रक्षक हैं। **द्वयोः**=बल व ज्ञान दोनों के भी **अविता (असि)**='रक्षक' हैं। (२) **उत**=और दोनों में भी **यथा वयम्**=जैसे कि हम हैं, उनमें भी आप शक्ति व ज्ञान के रक्षक होते हैं। हम बलहीन हैं। हमने क्या तो वृत्र को मारना और क्या शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करना? यह तो आपका अनुग्रह है कि आप हम जैसे लोगों को भी वासनाविनाश के द्वारा ज्ञान व शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु वासना को विनष्ट करके हमारे शरीरों में शक्ति व मस्तिष्कों में ज्ञान भरते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

निर्द्वेषता व स्तुति

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ६ ॥

(१) हे प्रभो! आप हमें **इत् उ**=निश्चय से **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **अतिनयसि**=पार ले जाते हैं, हमें द्वेष की भावना से दूर करते हैं। द्वेष की भावना से दूर करके हमें **उक्थशंसिनः कृणोषि**=स्तोत्रों का शंसन करनेवाला बनाते हैं। सच्चा स्तोता कभी द्वेष करनेवाला नहीं होता। प्रभु हमें द्वेष से दूर करके सच्चा स्तोता बनने की योग्यता प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्रभो! **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से आप ही **सुवीरः**=अच्छी प्रकार शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले **उच्यसे**=कहे जाते हैं। स्तोताओं के शत्रुओं का शातन आप ही तो करते हैं। प्रकृष्ट बलवाले इस काम का विध्वंस आप ही तो करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें द्वेष से दूर करके सच्चा स्तोता बनाते हैं, प्रभु हमारे शत्रुओं को कम्पित करके दूर करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ब्रह्म-दोहन

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सख्यायमृग्मियम्। गां न दोहसे हुवे ॥ ७ ॥

(१) मैं **दोहसे**=दोहन के लिये **न**=जैसे **गाम्**=गौ को पुकारते हैं, इसी प्रकार ज्ञानदुग्ध का दोहन करने के लिये **गीर्भिः**=स्तुति-वाणियों के द्वारा **ऋग्मियम्**=स्तुति के योग्य प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। गौ से दूध को प्राप्त करते हैं, प्रभु से ज्ञानदुग्ध को। (२) उस प्रभु को हम पुकारते हैं जो कि **ब्रह्माणम्**=(परिबृढं) खूब बढ़े हुए हैं। **ब्रह्मवाहसम्**=सम्पूर्ण ज्ञानों का धारण करने व करानेवाले हैं। **सख्यायम्**=हम सबके सखा हैं। वस्तुतः 'इस प्रभु से ज्ञान का दोहन' ही जीवन का सर्वमहान् ध्येय होना चाहिए।

भावार्थ—हम प्रभु से प्रार्थना के द्वारा इस प्रकार ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करें जैसे कि गौ से दूध को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वसु प्राप्ति

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता। वीरस्य पृतनाषहः ॥ ८ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार हम उस प्रभु को (हुवे) पुकारते हैं **यस्य**=जिसके **हस्तयोः**=हाथों में **द्विता**=दो प्रकार से वर्तमान, द्युलोक व पृथिवी में वर्तमान शरीर रूप पृथिवी में व मस्तिष्क रूप द्युलोक में क्षत्र व ब्रह्म के रूप में वर्तमान **विश्वानि वसूनि**=सब वसुओं को **न्यूचुः**=निश्चय से कहते हैं। प्रभु के ही हाथों में सब वसु हैं। (२) वे प्रभु **वीरस्य**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले हैं तथा **पृतनासहः**=शत्रु-सैन्यों का मर्षण करनेवाले हैं। वस्तुतः इन शत्रुओं का संहार करके ही हम वसुओं को प्राप्त करते हैं। द्युलोक का वसु ज्ञान है तो पृथिवी लोक का वसु बल है। वेद में बल व ज्ञान का साधन प्राप्त करने का उल्लेख है। 'इदं मे ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे श्रेयमश्नुताम्'। इसी में शोभा है।

भावार्थ—प्रभु के हाथों में सब वसुओं का स्थापन है। प्रभु हमें इन वसुओं को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु माया का विनाश

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते। वृह माया अनानत ॥ ९ ॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रवन् प्रभो! आप **जनानाम्**=लोगों के **दृढानि चित्**=दृढ़मूल भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं को **विवृह**=उखाड़ दीजिये। प्रभु की उपासना के होने पर इन काम-क्रोध आदि शत्रुओं के साथ प्रभु का संघर्ष होता है। उस संघर्ष में इन शत्रुओं का विनाश होता है। इनका जोर तो मेरे पर ही चल रहा था। (२) हे **शचीपते**=शक्तियों व प्रज्ञानों के स्वामिन्! **अनानत**=शत्रुओं से न दबाये गये प्रभो! आप इन शत्रुओं की **मायाः**=मायाओं को **विवृह**=उन्मूलित कर दीजिये। इन आसुरभावों की मायाओं को विनष्ट करनेवाले होइये।

भावार्थ—प्रभु स्तोताओं के दृढमूल भी शत्रुओं का उन्मूलन करते हैं, इनकी मायाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सत्य सोमपा' प्रभु

तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते। अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥

(१) हे प्रभो! **तं त्वा उ**=उन आपको ही **श्रवस्यवः**=ज्ञान की कामनावाले हम **अहूमहि**=पुकारते हैं। आप से ही तो हमें सब सत्य ज्ञानों की प्राप्ति होती है। (२) हे प्रभो! आप ही **सत्य**=सत्यस्वरूप हैं। **सोमपाः**=हमारे सोम का रक्षण करनेवाले हैं। **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं। **वाजानां पते**=सब शक्तियों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें, प्रभु ही हमें सत्यज्ञान की प्रेरणा देंगे। वे सत्यस्वरूप हैं, सोम का रक्षण करनेवाले हैं, शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले व शक्तियों के पति हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हव्य प्रभु

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने। हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

(१) हे इन्द्र! **तं त्वा उ**=उन आपको ही हम स्तुत करते हैं **यः**=जो आप **पुरा**=पहले भी **हव्यः**=पुकारने योग्य **आसिथ**=थे **यः वा**=और जो **नूनम्**=आज भी **हिते धने**=हितकर धन के निमित्त **हव्यः**=पुकारने योग्य हैं। आप से ही हमें हितकर धन प्राप्त कराया जाता है। (२) **सः**=वे आप **हवं श्रुधि**=हमारी पुकार को सुनिये। प्रभु से हम सुनी जानेवाली पुकार के योग्य बनेंगे तो हमारी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायेगी।

भावार्थ—प्रभु ही पुकारने योग्य हैं, प्रभु ही हितकर धन को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हितं धनम्

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्। त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **धीभिः**=बुद्धियों के द्वारा तथा **अर्वद्भिः**=इन इन्द्रियाश्वों के द्वारा **श्रवाय्यान्**=अतिशयेन प्रशस्य **अर्वतः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करनेवाले **वाजाम्**=बलों को **जेष्म**=जीतनेवाले हो। हम बुद्धिपूर्वक इन्द्रियों से इस प्रकार कार्यों में लगे रहें

कि हम उन बलों को प्राप्त करें जो हमें काम-क्रोध आदि का शिकार न होने दें और हमारे जीवन को प्रशस्त बनाएँ। (२) हे प्रभो! इस प्रकार प्रशस्त जीवनवाले बनकर हम **त्वया**=आपके द्वारा **हितं धनं जेष्म**=हितकर धन का विजय करें। हमारा जीवन इन धनों के द्वारा सब उत्तम कर्मों को सिद्ध करता हुआ धन्य बने।

भावार्थ—हम बुद्धि व इन्द्रियों का इस प्रकार से प्रयोग करें कि हमें शत्रु-संहारक प्रशस्त बल प्राप्त हो। और हम हितकर धनों का विजय करके जीवन को धन्य बना पायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

भरे वितन्तसाय्यः

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते। भरे वितन्तसाय्यः॥ १३॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं के कम्पित करनेवाले! **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से संभजनीय! **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हिते धने**=हितकर धन के निमित्त **उ**=निश्चय से **महान् अभूः**=पूज्य होते हैं। आपका उपासक वीर बनता है, ज्ञान की वाणियों का सेवन करनेवाला होता है और शत्रुविद्रावक बनकर हितकर धनों का विजेता बनता है। (२) हे प्रभो! आप ही **भरे**=संग्राम में **वितन्तसाय्यः**=विजेता (अभूः) होते हैं। उपासक आपके द्वारा ही विजय को प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—उपासक प्रभु के द्वारा हितकर धनों का विजय करता है और संग्राम में विजयी होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मक्षूजवस्तमा ऊतिः

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति। तया नो हिनुही रथम्॥ १४॥

(१) हे **अमित्रहन्**=शत्रुओं के हन्ता प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी **ऊतिः**=रक्षा है, वह **मक्षु जवस्तमा**=अतिशयेन वेगवती **असति**=है। प्रभु का रक्षण प्राप्त होने में देर नहीं लगती। प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं, उन्हें रक्षण के लिये आने में समय की अपेक्षा नहीं है। उसके रक्षण सदा सर्वत्र संप्राप्य हैं। (२) हे प्रभो! **तया**=उस रक्षण के द्वारा **नः रथम्**=हमारे शरीररथ को आप **हिनु हि**=प्रेरित करिये। आपके रक्षण में यह शरीररथ जीवनयात्रा में आगे और आगे बढ़ता चले। हम दिन प्रतिदिन उन्नत होते चलें।

भावार्थ—प्रभु का रक्षण अतिशयेन वेगवान् है। उस रक्षण से हम जीवनयात्रा में इस शरीररथ के द्वारा आगे बढ़नेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'रथीतम' प्रभु

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना। जेषि जिष्णो हितं धनम्॥ १५॥

(१) हे **जिष्णो**=विजयशील प्रभो! **सः**=वे आप **रथीतमः**=अतिशयेन प्रशस्त रथी हैं, महारथी हैं। वस्तुतः इन शरीर-रथों का संचालन आप ही करते हैं। (२) आप **अस्माकेन**=हमारे **अभियुग्वना**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले अथवा इन्द्रियाश्वों से जुते **रथेन**=इस शरीर-रथ के द्वारा **हितं धनम्**=हितकर धन का आप ही **जेषि**=विजय करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे शरीर-रथों के सञ्चालक हैं। इन शरीर-रथों के द्वारा वे ही हितकर

धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विचर्षणि-वृषक्रतु

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

(१) **यः**=जो प्रभु हैं, वे **एकः इत्**=अद्वितीय ही, बिना किसी अन्य की सहायता के ही **कृष्टीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **विचर्षणिः**=विशेषेण द्रष्टा हैं। सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाले प्रभु ही हैं। **तं उ**=उनको ही **स्तुहि**=तू स्तुत कर, अर्थात् प्रभु का ही स्तवन करनेवाला बन। (२) वे **वृषक्रतुः**=शक्तिशाली कर्मों व प्रज्ञानोंवाले प्रभु **पतिः जज्ञे**=सब के स्वामी व रक्षक हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सर्वद्रष्टा सर्वरक्षक हैं। उन्हीं की उपासना करनी योग्य है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शिवः सखा

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा। स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो **त्वम्**=आप **गृणताम्**=स्तुतिशील पुरुषों के **इत्**=निश्चय से **आपिः आसिथ**=मित्र हैं, वे आप ही **ऊती**=रक्षणों के द्वारा **शिवः**=कल्याणकर **सखा**=मित्र होते हैं। आप ही इन स्तोताओं को अन्तः व बाह्य शत्रुओं से बचाकर कल्याण प्राप्त कराते हैं। (२) **सः**=वे आप **नः**=हमें **मृडय**=सुखी करिये। हम भी आपके स्तवन में प्रवृत्त होकर अशुभों से बचकर शुभ मार्ग पर चलते हुए कल्याण के भागी हों।

भावार्थ—प्रभु ही स्तोताओं के शिव सखा हैं। हम भी प्रभु स्तवन करते हुए कल्याण को प्राप्त करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रक्षोहत्याय

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः। सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

(१) हे **वज्रिवः**=वज्रवन् प्रभो! आप **गभस्त्योः**=हाथों में **वज्रं धिष्व**=वज्र को धारण करिये। और **रक्षोहत्याय**=हमारे राक्षसीभावों के विनाश के लिये होइये। आपके अनुग्रह से क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लेकर हम राक्षसीभावों के आक्रमण से बचे रहें। (२) हे प्रभो! आप **स्पृधः**=स्पर्धमान **अभि (गभीः)**=आक्रमण करनेवाले इन शत्रुओं को **सासहीष्ठाः**=पराभूत करिये।

भावार्थ—हम हाथों में वज्र को धारण करके, क्रियाशील बनकर अन्तः व बाह्य शत्रुओं के आक्रमण से अपना रक्षण कर पायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सखायं

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्। ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥

(१) मैं **ब्रह्मवाहस्तमम्**=अतिशयेन ज्ञानों का धारण करनेवाले उस प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। प्रभु का ज्ञान नितिशय है। प्रभु का उपासक बनकर मैं भी ज्ञान को प्राप्त करता हूँ। (२) उस प्रभु को मैं पुकारता हूँ, जो **प्रत्नं सखायम्**=सनातन सखा हैं, सदा से हमारे मित्र हैं। **रयीणां**

युजम्=धनों का हमारे साथ सम्पर्क करनेवाले हैं और **कीरिचोदनम्**=स्तोताओं को सदा सत्प्रेरणा देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की आराधना मुझे उस सनातन सखा से 'ज्ञान, धन व उत्तम प्रेरणा' को प्राप्त करायेगी।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

अधिगुः

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते। गिर्वणस्तमो अधिगुः॥ २०॥

(१) **सः**=वह **एकः**=अद्वितीय प्रभु **हि**=ही **विश्वानि**=सब **पार्थिवा**=पृथिवी में होनेवाले **वसूनि**=धनों को **पत्यते**=अपने में सुरक्षित करते हैं। सम्पूर्ण धनों के स्वामी वे प्रभु ही हैं। (२) ये प्रभु **गिर्वणस्तमः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा अधिक-से-अधिक सम्भजनीय हैं व **अधिगुः**=अधृतगमन हैं, प्रभु को अपने कार्यों में कोई विहत नहीं कर पाता।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान की वाणियों द्वारा सम्भजनीय हैं, सर्वशक्तिमान् हैं। प्रभु ही सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'गोमद्भिः अश्विभिः' वाजेभिः

स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः। गोमद्भिर्गोपते धृषत्॥ २१॥

(१) हे प्रभो! **सः**=वे आप **धृषत्**=शत्रुओं के धर्षण होते हुए **नः कामम्**=हमारी कामना को **नियुद्भिः**=निश्चय से कार्यों में व्यापृत होनेवाले इन्द्रियाश्वों से **आपृण**=पूरित करिये। कार्यव्यापृति ही कामनापूर्ति का साधन है। (२) हे **गोपते**=इन ज्ञान की वाणियों के स्वामिन् प्रभो! आप **गोमद्भिः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले व **अश्विभिः**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाले **वाजेभिः**=बलों से हमारी कामनाओं को पूर्ण करिये, हमें वह शक्ति प्राप्त कराइये जिससे कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ ठीक बनी रहें। यही सुख प्राप्ति का साधन है, वस्तुतः यही 'सु-ख' है, उत्तम इन्द्रियों का होना।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं का धर्षण करते हुए हमें प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बल को प्राप्त करायें। यह बल हमारे सब इष्टों का साधक हो।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

मिलकर प्रभु का गुणगान

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद्गवे न शाकिने॥ २२॥

(१) **वः**=तुम **सुते**=शरीर में सोम का सम्पादन करने पर **सचा**=मिलकर **पुरुहूताय**=पालक व पूरक पुकारवाले, जिसकी प्रार्थना हमारा पालन व पूरण करती है, उस **सत्वने**=शत्रुओं के सादयिता (नाशक) व धनों के दाता प्रभु के लिये **तद् गाय**=उन स्तोत्रों का गायन करो। (२) **यत् गवे न**=(गमयति) अर्थात् सब अर्थों के ज्ञापक के **न**=समान **शाकिने**=सर्वशक्तिमान् प्रभु के लिये उस स्तोत्र का गायन करो **यत्**=जो **शम्**=शान्ति का देनेवाला हो। वस्तुतः प्रभु को सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् के रूप में सोचते हुए हम भी ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा लेते हैं और इस प्रकार जीवन में शान्ति को पाते हैं।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करते हुए मिलकर घरों में प्रभु का गायन करें। यह गायन

हमें ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा देगा और हमारे जीवन को शान्त बनायेगा।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु स्तवन से ज्ञानयुक्त शक्ति की प्राप्ति

न घा॒ वसु॒र्नि य॑मते दा॒नं वाज॑स्य॒ गोम॑तः। यत्सी॒मुप॒ श्रव॒द्गिरः॑॥ २३॥

(१) **यत्**=जब **वसुः**=सबके बसानेवाले वे प्रभु **गिरः**=हमारी स्तुति वाणियों को **सीम्**=निश्चय से **उपश्रवद्**=सुनते हैं, तो **घा**=निश्चय से **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजस्य**=शक्ति के **दानम्**=दान को **न नियमते**=उपरत नहीं करते, अर्थात् हमें ज्ञान व बल प्राप्त कराते ही हैं। (२) प्रभु सबको बसानेवाले हैं। इस निवास के लिये ही वे हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं। जब हम प्रभु का स्तवन करते हैं तो हमें प्रभु ज्ञानयुक्त शक्ति देकर उत्तम निवासवाला करते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु वसु हैं, हमारे निवास को उत्तम बनाते हैं। इसलिए ही वे हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं। सो हम सदा प्रभु स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कुवित्स का गोमान् व्रज

कु॒वित्स॑स्य॒ प्र हि व्र॒जं गोम॑न्तं दस्यु॒हा ग॑मत्। श॒ची॒भि॒रप॑ नो वरत्॥ २४॥

(१) **दस्युहा**=दास्यव (=राक्षसी) भावों का विनाश करनेवाले प्रभु **कुवित्सस्य**=(कुवित् स्यति) खूब ही शत्रुओं के विनष्ट करनेवाले उपासक के **हि**=निश्चय से **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **वज्रम्**=इस शरीररूप गोष्ठ को **गमत्**=प्राप्त होते हैं। (२) यहाँ हम कुवित्सों को प्राप्त होकर वे प्रभु **नः**=हमारी इन इन्द्रियरूप गौओं को **शचीभिः**=अपने प्रज्ञानों व बलों से **अपवरत्**=वासना के आवरण से रहित करते हैं। हम भी वासनाओं को दूर करने के लिये यत्नशील हों। प्रभु हमारी इन्द्रियों को इन विषयों के आवरण से रहित करेंगे।

भावार्थ—प्रभु हमारे दास्यवभावों को विनष्ट करके हमारी इन्द्रियों को अज्ञान के आवरण से रहित करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु स्तवन

इ॒मा उ॒ त्वा श॑तक्रतो॒ऽभि प्र णो॑नुवु॒र्गिरः॑। इन्द्रं॒ व॒त्सं न मा॒तरः॑॥ २५॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! **इमाः**=ये **नः**=हमारी **गिरः**=स्तुति-वाणियाँ **उ**=निश्चय से **त्वा अभि**=आपका लक्ष्य करके **प्रणोनुवुः**=उच्चरित होती हैं। अर्थात् हम सदा आपका स्तवन करनेवाले बनते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हमारी स्तुतिवाणियाँ इस प्रकार आपके प्रति उच्चरित होती हैं **न**=जैसे कि **मातरः**=मातृभूत गौवें **वत्सम्**=बछड़े का लक्ष्य करके हंभा रव को करती हैं। धेनुओं को जैसे बछड़े से प्रेम होता है, उसी प्रकार हमारी स्तुति-वाणियाँ आपके प्रति प्रेमवाली हों। अर्थात् हम आपकी स्तुति में आपका अनुभव करें।

भावार्थ—हम सदा प्रीतिपूर्वक उस 'शतक्रतु इन्द्र' नामक प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दूणाशं सख्यं तव (प्रभु की अटूट मैत्री)

दू॒णाशं॑ स॒ख्यं त॒व॒ गौर॑सि वीर गव्य॒ते। अश्वो॑ अश्वाय॒ते भ॑व॥ २६॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले प्रभो! **तव सख्यम्**=आपकी मित्रता **दूणाशम्**=नष्ट नहीं की जा सकती, अर्थात् अटूट है। सांसारिक मित्रताएँ स्वार्थवश विनष्ट हो जाती हैं, पर प्रभु की मित्रता कभी टूटनेवाला नहीं। (२) हे प्रभो! आप **गव्यते**=ज्ञानेन्द्रियों की कामनावाले पुरुष के लिये **गौः असि**=(गौः=गोदाता) ज्ञानेन्द्रिय बन जाते हैं, उसे ज्ञानेन्द्रियों के देनेवाले होते हैं तथा **अश्वायते**=कर्मेन्द्रियों की कामनावाले इस उपासक के लिये **अश्वः भव**=कर्मेन्द्रिय हो जाते हैं, इसे कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु हमारे अजरामर सखा हैं। हमें प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों व प्रशस्त कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

न स्तोतारं निदे करः

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः॥ २७॥

(१) हे प्रभो! **सः**=वे आप **हि**=निश्चय से **अन्धसः**=सोमरूप अन्न से सोम के द्वारा **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार से **मन्दस्व**=हमें आनन्दित करिये। जिससे हम **महे राधसे**=महान् ऐश्वर्य के लिये हों। सोमरक्षण द्वारा शक्तियों का विस्तार ही महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन बनता है। (२) हे प्रभो! आप **स्तोतारम्**=अपने इस स्तोता को **निदे**=निन्दनीय कर्मों के लिये **नकरः**=न करिये। अर्थात् यह स्तोता कभी निन्दा का पात्र न बने। आपकी प्रेरणा इसे सदा सत्कर्मों में व्यापृत रखे।

भावार्थ—हम सोमरक्षण द्वारा शक्तियों का विस्तार करते हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करें। प्रभु का स्तवन हमें निन्दनीय कर्मों से दूर रखे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सोमरक्षण व प्रभु स्तवन

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। वत्सं गावो न धेनवः॥ २८॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित इन स्तुति-वाणियों से सेवनीय प्रभो! **इमाः गिरः**=ये वाणियाँ **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **सुते सुते**=सोम का जब-जब सम्पादन होता है तब-तब, अर्थात् शरीर में सोम का रक्षण होने पर **नक्षन्ते**=व्याप्त करती हैं। सोमरक्षण के अभाव में हमारी वृत्ति असंयम व भोग की होकर प्रभु से दूर प्रकृति की ओर भागी हुई होती है। (२) हे प्रभो! हमारी यही कामना है कि **न**=जैसे **धेनवः गावः**=दोग्ध्री गौवें, नवसूतिका गौवें **वत्सम्**=बछड़े की ओर प्रेम से जाती हैं, इसी प्रकार हमारी स्तुति-वाणियाँ आपकी ओर आनेवाली हों। सदा प्रभु का स्तवन करते हुए ही वस्तुतः हम सोम का रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—हम सदा ज्ञानपूर्वक प्रभु की स्तुति-वाणियों का उच्चारण करनेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'पुरू-तम' प्रभु

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि। वाजेभिर्वाजयताम्॥ २९॥

(१) **पुरूणाम्**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **स्तोतॄणाम्**=इन स्तोताओं की स्तुति-वाणियाँ, हे प्रभो! आपको व्याप्त करती हैं, जो आप **पुरूतमम्**=(पुरूणां तमयितारं) बहुत भी शत्रुओं के ग्लापयिता-क्षीण करनेवाले हैं। आपका स्तवन स्तोता के काम-क्रोध आदि शत्रुओं का

विनाश करता है। (२) इसीलिए इन **वाजेभिः**=शक्तियों से **वाजयताम्**=अपने को शक्तिशाली बनाने की कामनावाले स्तोताओं की वाणियाँ **विवाचि**=विशिष्ट ज्ञान की वाणियों के उच्चारण के होने पर आपको ही स्तुत करती हैं। वस्तुतः आपका स्तवन ही इन विशिष्ट ज्ञान की वाणियों की प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं को अधिक से अधिक क्षीण करनेवाले हैं। हम प्रभु का ही स्तवन करें और विशिष्ट ज्ञान की वाणियों को व बलों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

'वाहिष्ठः अन्तमः' स्तोमः

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः। अस्माञ्राये महे हिनु॥ ३०॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **ते स्तोमः**=आपका स्तोम, स्तुतिसमूह **अस्माकम्**=हमारा **वाहिष्ठः**=अधिक से अधिक आपके समीप प्राप्त करानेवाला **भूतु**=हो। यह स्तोम ही **अन्तमः**=हमारा अन्तिक-तम हो, हमारे लिये अधिक से अधिक समीप व प्रिय हो। हम सदा अतिशयेन प्रीतिपूर्वक आपका स्तवन करनेवाले बनें। (२) हे प्रभो! **अस्यात्**=हम स्तोताओं को आप **महे रायेः**=महान् ऐश्वर्य के लिये, भौतिक ऐश्वर्य से ऊपर उठकर अध्यात्म ऐश्वर्य के लिये **हिनु**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें, प्रभु स्तवन ही हमें अतिशयेन प्रिय हो। यह हमें अध्यात्म ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला बने।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**बृबुस्तक्षा**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

पणीनां बृबुः

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्। उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः॥ ३१॥

(१) **पणीनाम्**=पणियों का, एकदम सांसारिक लोभ आदि वृत्तियों का **बृबुः**=(हन्तो द०) उच्छेदन करनेवाला **पुरुः वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि**=सर्वोच्च शिखर पर **अस्थात्**=स्थित होता है। अधिक से अधिक उन्नत स्थिति में पहुँचता है। लोभ आदि कृपणतापूर्ण वृत्तियों को समाप्त करके ही हम उन्नति के शिखर पर पहुँचते हैं। (२) **न**=जैसे **गाङ्ग्यः**=एक तीव्रगति (गच्छति इति गंगा) वाली नदी के तट पर होनेवाला **कक्षः**=तृण भी समुद्र तक पहुँचता है, इसी प्रकार यह लोभद्वेष्टा पुरुष प्रभु तक पहुँचता है और **उरुः**=विशाल बनता है। प्रभु को प्राप्त करके प्रभु जैसा ही हो जाता है।

भावार्थ—हम लोभ आदि कृपणतापूर्ण वृत्तियों का उच्छेदन करके उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हों। तीव्र गतिवाले नदी के तट का तृण जैसे समुद्र को प्राप्त करता है, उसी प्रकार हम उस विशाल प्रभु को प्राप्त करके विशाल ही हो जाएँ।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**बृबुस्तक्षा**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

भद्रा रातिः सहस्त्रिणी

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्त्रिणी। सद्यो दानाय मंहते॥ ३२॥

(१) **यस्य**=जिसकी **सहस्त्रिणी रातिः**=सहस्र संख्यावाली व प्रसन्नतापूर्वक की गई (सहस्) दान क्रिया **वायोः इव**=वायु के समान **द्रवत्**=सर्वत्र गतिवाली होती है, वह दान क्रिया इसके लिये **भद्रा**=सदा कल्याणकारिणी व सुख देनेवाली होती है। (२) इस प्रकार दान के शुभ परिणामों को देखता हुआ यह व्यक्ति **सद्यः**=शीघ्र **दानाय**=दान के लिये **मंहते**=धनों को देता है। अथवा

दानाय (दाप् लवने)=शत्रुओं के उच्छेदन के लिये **मंहते**=दानवृत्तिवाला होता है।

भावार्थ—प्रसन्नतापूर्वक की गयी दान क्रियाएँ मनुष्य का कल्याण ही करती हैं, ये आसुरभावों का उच्छेदन भी करती हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृबुस्तक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सहस्त्रदातमं-सहस्त्रासातमम्

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः। बृबुं सहस्त्रदातमं सूरिं सहस्त्रसातमम्॥ ३३ ॥

(१) **नः**=हमारे **विश्वे**=सब **अर्यः**=स्तुतियों के प्रेरक (ईरयितारः) **कारवः**=कुशलता से कार्यों को करनेवाले लोग **सु**=अच्छी प्रकार **सदा**=सदा **तद्-आगृणन्ति**=उस प्रभु का ही स्तवन करते हैं। प्रभु स्तवन ही उन्हें कार्यदक्षता प्राप्त कराता है। (२) उस प्रभु को ये स्तुत करते हैं जो **बृबुम्**=सब अशुभ-वृत्तियों के उच्छेदक हैं। **सहस्त्रदातमम्**=अतिशयेन धनों के देनेवाले हैं। **सूरिम्**=ज्ञानी हैं और **सहस्त्रासातमम्**=हजारों ऐश्वर्यों के प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए हम प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारे शत्रुओं के उच्छेदक हैं व शतशः धनों के देनेवाले हैं।

अगले सूक्त में भी शंयु ही इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु के आराधन के लाभ

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥ १ ॥

(१) **कारवः**=कुशलता से कार्यों को करनेवाले स्तोता लोग **वाजस्य सातौ**=शक्ति की प्राप्ति के निमित्त **त्वां इत् हि**=आपको ही **हवामहे**=पुकारते हैं। आप ही सब शक्तियों के देनेवाले हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **वृत्रेषु**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं के विनाश के निमित्त **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक **त्वाम्**=आपको पुकारते हैं तथा **अर्वतः**=अश्व सम्बन्धिनी **काष्ठासु**=(race ground) पलायन भूमियों में, **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **त्वाम्**=आपको पुकारते हैं। इन्द्रियाँ जब अपने मार्गों पर गति करती हैं तो नर प्रभु का ही स्मरण करते हैं, जिससे वे इन्द्रियाँ मार्गभ्रष्ट न हों।

भावार्थ—प्रभु का आराधन (१) हमें शक्ति देता है, (२) वासनाओं का विनाश करता है तथा (३) इन्द्रियों को मार्गभ्रष्ट होने से बचाता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

महः, गौ, अश्व, वाज

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥ २ ॥

(१) हे **चित्र**=चायनीय-पूजनीय **वज्रहस्त**=दुष्टों को दण्ड देने के लिये हाथ में वज्र लिये हुए **अद्रिवः**=शत्रुओं से न विदीर्ण किये जानेवाले प्रभो! **स्तवानः**=स्तुति किये जाते हुए **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमारे लिये **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षण के हेतु से **महः**=तेजस्विता को **सं किर**=दीजिये। आप से तेजस्विता को प्राप्त करके हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का धर्षण करनेवाले

बनें। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **रथ्यम्**=शरीररूपी रथ में उत्तमता से कार्य करनेवाली **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों व **अश्वम्**=कर्मेन्द्रियों को **संकिर**=दीजिये और हे प्रभो! **सत्रा**=सदा **जिग्युषे न**=जैसे एक विजयशील पुरुष के लिये उसी प्रकार हमें **वाजम्**=शक्ति को दीजिये। एक इन्द्रियों को जीतनेवाला पुरुष जैसे शक्ति-सम्पन्न बनता है, उसी प्रकार हम भी शक्ति को प्राप्त करें।

भावार्थ—स्तुति किये जाते हुए प्रभु हमारे लिये शक्ति को दें, जिससे कि हम शत्रुओं के विजेता बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शक्ति प्राप्ति व संग्राम विजय

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
सहस्त्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे॥ ३॥

(१) **यः**=जो **सत्राहा**=महान् शत्रुओं के नाशक **विचर्षणिः**=हमारा विशेषरूप से ध्यान करनेवाले प्रभु हैं, **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **वयम्**=हम **हूमहे**=पुकारते हैं। प्रभु का आराधन हमें शत्रुओं के विनाश के योग्य बनाता है। (२) हे **सहस्त्रमुष्क**=अनन्त वीर्यवाले **तुविनृम्ण**=महान् धनवाले **सत्पते**=सज्जनों के रक्षक प्रभो! आप **समत्सु**=संग्रामों में **नः**=हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **भवा**=होइये। आप से शक्ति की वृद्धि को प्राप्त करके ही तो हम संग्रामों में विजयी बनेंगे।

भावार्थ—हे प्रभो! आप ही हमें शक्ति प्राप्त कराते हैं और आप ही हमें संग्रामों में विजयी करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

तनूषु अप्सु सूर्ये

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना धृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये॥ ४॥

(१) हे **ऋचीषम**=हे ऋचासम=स्तुति के समान, अर्थात् जितनी भी स्तुति की जाए प्रभु उससे अधिक ही हैं, ऐसे प्रभो! इस **धृषौ**=शत्रुओं का घर्षण करनेवाले **मीढे**=संग्राम में **वृषभा इव**=शक्ति के सेचन की तरह (वृषभेण इव) **मन्युना**=ज्ञान से **जनान्**=शत्रुजनों को **बाधसे**=तू बाधित करता है। प्रभु हमें शक्ति देते हैं और ज्ञान देते हैं। इस शक्ति व ज्ञान के द्वारा प्रभु हमें संग्राम में विजयी बनाते हैं। (२) हे प्रभो! आप **महाधने**=इस संग्राम में **अस्माकम्**=हमारे **अविता बोधि**=रक्षक होइये। **तनूषु**=शक्तियों के विस्तार के निमित्त, **अप्सु**=रेतःकणों के रक्षण के निमित्त तथा **सूर्ये**=ज्ञान के सूर्य के उदय के निमित्त हमारे रक्षक होइये। आप से रक्षित हुए-हुए हम शक्तियों का विस्तार करें, रेतःकणों का रक्षण करें तथा ज्ञानसूर्य को मस्तिष्क रूप गगन में उदित करें।

भावार्थ—यहाँ जीवन संग्राम में प्रभु ही हमारे शत्रुओं को पीड़ित करते हैं। प्रभु से रक्षित हुए-हुए हम 'शक्ति विस्तार, रेतःकणों के रक्षण व ज्ञानसूर्योदय' को करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः प्रगाथो वा ॥ छन्दः—स्वराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

'ज्येष्ठ-ओजिष्ठ-पपुरि-शवस्'

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **नः**=हमारे लिये **ज्येष्ठम्**=प्रशस्यतम **ओजिष्ठम्**=अत्यन्त ओजस्वी **पपुरि**=पालक व पूरक **श्रवः**=ज्ञान को **आभर**=प्राप्त कराइये। (२) हे **चित्र**=चायनीय-पूजनीय, **वज्रहस्त**=वज्र हाथ में लिये हुए प्रभो! दुष्टों को दण्ड देनेवाले **सुशिप्र**=उत्तम हनु व नासिकावाले प्रभो! उस ज्ञान को हमें प्राप्त कराइये **येन**=जिससे कि **इमे उभे**=इन दोनों **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **आ प्राः**=आप पूरित करते हैं। यहाँ 'सुशिप्र' सम्बोधन इस भाव को व्यक्त कर रहा है कि हम खूब चबाकर खायें (हनु) और प्राणायाम करें (नासिका) जिससे शरीर के रोगों व मन के दोषों से दूर रहते हुए हम उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त कर सकें। प्रभु सुशिप्र हैं, हम भी सुशिप्र बनें और 'ज्येष्ठ ओजिष्ठ पपुरि श्रव' को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु हमें वह प्रशस्त ज्ञान दें जिससे कि वे सब का पूरण करते हैं, सब की न्यूनताओं को दूर करते हैं।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः प्रगाथो वा ॥ छन्दः—ब्राह्मीगायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अमित्रान् सुषहान् कृधि

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥ ६ ॥

(१) हे **देवेषु राजन्**=सब सूर्य आदि देवों में दीप्त होनेवाले, अर्थात् सूर्य आदि को दीप्त करनेवाले प्रभो! **उग्रम्**=तेजस्वी **चर्षणीसहम्**=शत्रुगणों का अभिभव करनेवाले **त्वाम्**=आपको **अवसे**=रक्षण के लिये **हूमहे**=पुकारते हैं। आपकी शक्ति व दीप्ति से हमारा रक्षण होना है। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **नः**=हमारे **विश्वा**=सब **पिब्दना**=(पेष्टुमर्हाणि शत्रुसैन्यानि द०) पीस देने योग्य शत्रु-सैन्यों को **सुविथुरा कृधि**=अच्छी प्रकार व्यथित व बाधित करिये। **अमित्रान्**=हमारे शत्रुभूत जनों को **सुषहान्**=सुखेन अभिभवितुं शक्य, सुगमता से जीते जाने योग्य करिये। हम शत्रुओं को सुगमता से जीत सकें।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हैं। प्रभु हमारे लिये शत्रुओं को पराजित करनेवाले हों।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः प्रगाथो वा ॥ छन्दः—स्वराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

ओज-नृम्ण-द्युम्न-पौंस्य

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो **ओजः**=बल **च**=और **नृम्णम्**=धन **नाहुषीषु**=मानव **कृष्टिषु**=प्रजाओं में होना चाहिए उसे **आभर**=हमारे लिये प्राप्त कराइये। (२) **यद्वा**=और जो **पञ्च क्षितीनाम्**='अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय' इन पाँचों भूमियों का **द्युम्नम्**=आन्तर ऐश्वर्य है, उसे हमारे लिये प्राप्त कराइये और **सत्रा**=सत्य **विश्वानि**=सब

पौंस्यानि=बलों को हमें प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें 'ओज, नृम्ण, द्युम्न व पौंस्य' प्राप्त हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'तृक्षु-द्रुह्यु-पूरु' का बल

यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम्।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्योऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे॥ ८॥

(१) हे **मघवन्**=सर्वैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद्वा**=जो कुछ **वृष्ण्यम्**=बल **तृक्षौ**=(तृक्ष् to go) गतिशील पुरुष में हैं, **तत्**=उस बल को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **नृषाह्ये**=(नृभिः सोढव्ये युद्धे प्रवृते सा०) नर पुरुषों से सोढव्य संग्राम के होने पर **संहिरीहि**=सम्यक् दीजिये। इस गतिशील पुरुष के बल को प्राप्त करके हम सदा संग्राम में आगे बढ़ें, भाग न खड़े हों। (२) **द्रुह्यौ**=वासनाओं के प्रति विद्रोह (revolt) करनेवाले मनुष्य में जो बल है, उसे हमारे लिये **अमित्रान् तुर्वणे**=इन शत्रुभूत वासनाओं के संहार के निमित्त दीजिये। इस द्रुह्यु के बल से युक्त होकर हम वासनाओं का संहार कर सकें। (३) **यत् कत् च**=जो कुछ बल **पूरौ**=अपना पालन व पूरण करनेवाले में है, उसे हमारे लिये **पृत्सु**=इन संग्रामों के निमित्त दीजिये। इस पूरु के बल को प्राप्त करके हम जीवन-संग्राम में सदा विजयी हों।

भावार्थ—हमें गतिशील, वासनाओं के प्रति विद्रोह की भावनावाले व अपना पालन व पूरण करनेवाले पुरुष का बल प्राप्त हो, जिससे कि हम सदा संग्राम में विजयी हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

उत्तम गृह

इन्द्रं त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **शरणम्**=गृह को **यच्छ**=दीजिये। जो घर **त्रिधातु**=तीनों बालक, युवक व वृद्धों का सम्यक् धारण करनेवाला हो। **त्रिवरूथम्**=शीत, आतप व वर्षा तीनों का निवारण करनेवाला हो। **स्वस्तिमत्**=कल्याणकर हो। **छर्दिः**=उत्तम छत से युक्त हो (छर्दिष्मत्)। (२) **च**=और इस प्रकार के गृहों को प्राप्त कराके आप **मह्यम्**=मेरे लिये **एभ्यः**=इन गृहों से **दिद्युम्**=खण्डनकारिणी (दो अवखण्डने) विद्युत् को **यावया**=पृथक् करिये। इन घरों पर विद्युत् पतन का भय न हो।

भावार्थ—हम उत्तम गृहों को बनाकर स्वस्थ मन से उनमें निर्भयतापूर्वक रहते हुए उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़नेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तनूपाः, अन्तमः

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अधा स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव॥ १०॥

(१) उपरले मन्त्र के अनुसार उत्तम घरों में रहते हुए हम वे बनें **ये**=जो **गव्यता मनसा**=(गाः=आगमन इच्छता) ज्ञान की वाणियों को अपनाने की कामनावाले मन से **शत्रुं**

आदभुः=कामरूप शत्रु को हिंसित करते हैं। और **धृष्णुया**=शत्रु-घर्षण शक्ति के द्वारा **अभिप्रघ्नन्ति**=इन वासनारूप शत्रुओं का समन्तात् विनाश करते हैं। (२) **अध**=अब, हे मघवन् **इन्द्र**=सर्वैश्वर्यशालिन् शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **स्मा**=निश्चय से **नः**=हमारे होइये, हम आपकी ओर झुकाववाले हों। हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय प्रभो! आप हमारे **तनूपाः**=शरीरों के रक्षक **अन्तमः**=अन्तिकतम मित्र **भव**=होइये।

भावार्थ—हम ज्ञान की वाणियों की कामनावाले होते हुए शत्रुओं का धर्षण करें। प्रभु के मित्र बनें, प्रभु हमारे रक्षक अन्तिकतम मित्र हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रभु स्मरण व विजय

अध॑ स्मा नो वृ॒धे भु॒वेन्द्र॑ ना॒यम॑वा यु॒धि।
यद॒न्तरि॑क्षे प॒तय॑न्ति प॒र्णिनो॑ दि॒द्यव॑स्ति॒ग्ममू॑र्धानः ॥ ११ ॥

(१) **अध**=अब **स्मा**=निश्चय से **नः**=हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **भव**=होइये। हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **युधि**=युद्ध में **नायम्**=हमारे अग्रणी नेता का **अवा**=रक्षण करिये। (२) उस युद्ध में रक्षण करिये, **यत्**=जब कि **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में, चारों ओर के वातावरण में **पर्णिनः**=अग्रभाग में जिनके पंख लगे हुए हैं ऐसे, **तिग्ममूर्धानः**=बड़े तेज शिखरोंवाले **दिद्यवः**=घातक बाण **पतयन्ति**=निरन्तर गिर रहे हैं। इन युद्धों में प्रभु स्मरण ही शक्ति देता है।

भावार्थ—युद्धों में, प्रभु स्मरण हमारे लिये रक्षक हो। प्रभु स्मरणपूर्वक युद्ध करते हुए हम विजयी बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पितृलोक की प्राप्ति

यत्र॒ शूरा॑सस्त॒न्वो॑ वितन्व॒ते प्रि॒या शर्म॑ पितृ॒णाम्।
अध॑ स्मा यच्छ त॒न्वे॒३॒॑ तने॑ च छ॒र्दिर॑चित्तं॒ याव॑य॒ द्वेष॑ः ॥ १२ ॥

(१) **यत्र**=जहाँ **शूरासः**=शूर-वीर लोग **तन्वः**=अपने शरीरों को **वितन्वते**=(वितन=to give) देश हित के लिये दे डालते हैं तो ये **पितृणाम्**=पितरों के **प्रियाशर्म**=प्रिय गृहों को (=लोकों को) प्राप्त होते हैं। अर्थात् युद्ध में प्राणत्याग उत्कृष्ट लोकों की प्राप्ति का कारण बनता है। (२) **अध**=अब **स्मा**=निश्चय से **तन्वे**=हमारे शरीरों के लिये **तने च**=और सन्तानों के लिये **छर्दिः**=रक्षक गृह को **यच्छ**=कीजिये। हम शत्रु विजय करके सुरक्षित गृहों में निवास करनेवाले हों। हे प्रभो! आप **अचित्तं द्वेषः**=मूर्खतापूर्ण द्वेष को **यावय**=हमारे से पृथक् करिये। हम व्यर्थ में द्वेष के कारण युद्धों में प्रवृत्त न हो जाएँ।

भावार्थ—हम मूर्खता से द्वेषवश युद्धों में प्रवृत्त न हो जाएँ। युद्ध आ ही जाये, तो जीवन के त्याग के लिये तैयार हों। यही उत्तम लोकों की प्राप्ति का साधन है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

श्येन-श्रवस्यन्

यद्रि॑न्द्र॒ सर्गे॑ अ॒र्वत॑श्चो॒दया॑से महाध॒ने।
अ॒स॒म॒ने अ॑ध्व॒नि वृ॒जि॒ने प॒थि श्ये॒नाँइ॑व श्रवस्य॒तः ॥ १३ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब **असमने**=(Unequal) विषम **अध्वनि**=मार्ग में, **वृजिने**=कुटिल **पथि**=पथ में भटकते हुए इन **अर्वतः**=इन्द्रियाश्वों को **सर्गे**=(onset, advance of troop) सैन्यों के आक्रमणवाले **महाधने**=संग्राम में **चोदयासे**=प्रेरित करते हैं। बजाय इसके कि ये इन्द्रियाश्व कुटिल मार्गों में भटकते रहें, प्रभु कृपा से ये अध्यात्म संग्राम में प्रवृत्त हों। (२) हे प्रभो! इस प्रकार हमारी इन इन्द्रियों को आप **श्येनान् इव**=शीघ्र शंसनीय गतिवाली बनाइये और इसी प्रकार **श्रवस्यतः**=ज्ञान की कामनावाली करिये। कर्मेन्द्रियाँ कर्मों में शीघ्रता से व्याप्त हों, तो ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ—इन्द्रियाँ कुटिल पथ में न भटककर अध्यात्म संग्राम में प्रवृत्त होकर काम आदि शत्रुओं के आक्रमण से अपने को बचाएँ। शुभ कर्मों व ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त हो।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा**॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

आवृत्त चक्षुष्कता

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि॥ १४॥

(१) **प्रवणे**=निम्न प्रदेश की ओर **यतः**=जाते हुए **सिन्धून् इव**=नदियों की तरह निम्न प्रकृति के भोगों के मार्ग की ओर **आशुया**=शीघ्रता से जाते हुए इन्द्रियाश्वों को **यदि**=यदि **क्लोशं अनु**=भय का लक्ष्य करके **स्वनि**=आवाज के होने पर, हे प्रभो! आप उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराते हैं तो **ये**=जो इन्द्रियाश्व **आववृततति**=सर्वथा विषयों से लौट आते हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व, **न**=जैसे **आमिषि**=मांस में **वयः**=पक्षी फिर-फिर लौट आते हैं, उसी प्रकार **गृभीताः**=ग्रहण किये हुए, वशीभूत हुए-हुए **बाह्वोः**=बाहुओं में (बाह्यप्रयत्ने) अभ्युदय व निःश्रेयस के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों में तथा **गवि**=ज्ञान की वाणियों में आवृत्त होते हैं, अर्थात् इन्हीं में निरन्तर लगे रहते हैं। इन्हीं में लगे रहना ही निर्भयता का मार्ग है।

भावार्थ—सामान्यतः इन्द्रियाँ निम्न मार्ग की ओर जाती हैं। उधर भय होने पर ये लौटती हैं और अब उत्तम ऐहिक व पारलौकिक प्रयत्नों में तथा ज्ञान की वाणियों में प्रवृत्त होते हैं।

आवृत्त चक्षु बनकर यह विषयों से ऊपर उठ जाता है और सोमपान करनेवाला बनता है ('गिरति' इति गर्गः) सो गर्ग कहलाता है। सोमरक्षण से अपने में शक्ति को भरनेवाला यह भरद्वाज है। यह कहता है—

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'स्वादु, मधुमान्, तीव्र, रसवान्' सोम

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु॥ १॥

(१) **किल**=निश्चय से **अयम्**=यह सोम **स्वादुः**=जीवन को स्वादवाला बनाता है। **उत**=और **अयम्**=यह **मधुमान्**=वाणी में माधुर्य का संचार करनेवाला है। **किल**=निश्चय से **अयम्**=यह **तीव्रः**=रोगकृमियों के संहार के लिये बड़ा उग्र है। **उत**=और नीरोगता के द्वारा **अयं रसवान्**=यह जीवन को रसवाला बनाता है। (२) **उत उ**=और निश्चय से **नु**=अब **अस्य पपिवांसम्**=इसका

खूब पान करनेवाले इस **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **कश्चन**=कोई भी **आहवेषु**=युद्धों में **न सहते**=नहीं पराभूत कर पाता है। न इसे रोग और नां ही वासनाएँ दबा पाती हैं।

भावार्थ—सोम शरीर में पिया जाने पर रोगों को नष्ट करके जीवन को मधुर बनाता है, वासनाओं को नष्ट करके जीवन को रसवान् बनाता है। सोमरक्षक अपराजित होता है।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

निन्यानवें आसुरपुरियों का विध्वंस

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्योऽहन्॥ २॥

(१) **अयम्**=यह सोम **स्वादुः**=आस्वादित करने योग्य है। **इह**=यहाँ **मदिष्ठः आस**=अतिशयेन मादयिता होता है। **यस्य**=जिस सोम के पान से **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **वृत्रहत्ये**=वासनारूप वृत्र के विनाश में **ममाद**=उल्लासमय हुआ। (२) **यः**=जो सोम **शम्बरस्य**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाली ईर्ष्या के **पुरूणि**=बहुत अधिक **च्यौत्ना**=बलों को **हन्**=नष्ट करता है **च**=और **नवतिं नव**=निन्यानवे **देह्यः**=उपचित (=बढ़ी हुई) वृद्धि को प्राप्त हुई-हुई आसुरपुरियों को (हत्=) विनष्ट करता है। सोम के रक्षण के होने पर ईर्ष्या व अन्य आसुरभाव विनष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर (क) जीवन को मधुर बनाता है, (ख) वासना विनाश द्वारा जीवन को उल्लासमय करता है, (ग) ईर्ष्या के बल को समाप्त कर देता है, (घ) आसुरभावों को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मनीषाम् ओषधि

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे॥ ३॥

(१) **पीतः**=पिया हुआ, शरीर में ही सुरक्षित किया हुआ **अयम्**=यह सोम **मे वाचम्**=मेरे लिये ज्ञान की वाणियों को **उदियर्ति**=उद्गत करता है। **अयम्**=यह **उशती**=कान्त **मनीषाम्**=बुद्धि को (उद्य् अजीणः=(उद्गार यति) प्रकाशित करता है। (२) **अयम्**=यह **धीरः**=बुद्धि को प्रेरित करनेवाला सोम (धियं ईरयति) **षट्**=छः **उर्वीः**='द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन-रात व जल ओषधि' रूप उर्वियों को **अमिमीत**=सम्यक् जाननेवाला होता है। उन उर्वियों को **याभ्यः**=जिनसे कि **कच्चन भुवनं आरे न**=कोई भी लोक व प्राणी दूर नहीं होता। सब प्राणियों के जीवन का आधार ये छः उर्वियाँ ही हैं। सोमरक्षक इन्हें सम्यक् जाननेवाला होता व अपने जीवन में इनका ठीक निर्माण करता है। मस्तिष्क ही द्युलोक है, पृथिवी शरीर है। इन्हें तो वह बनाते ही हैं। एक-एक दिन को वह ठीक बिताता है व दीर्घजीवनवाला होता है और जल-ओषधियों का समुचित प्रयोग करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (१) ज्ञान की वाणियों को उदित करता है, (२) बुद्धि को प्रकाशित करता है, (३) हमारे जीवन में 'द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन-रात व जल ओषधियों' का ठीक स्थान में रखता है।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'वह महान् सोम' प्रभु

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम्॥ ४॥

(१) **अयम्**=यह प्रभु ही सोम है **सः यः**=वह जो **पृथिव्याः**=पृथिवी के **वरिमाणम्**=विस्तार को **अकृणोत्**=करता है। **अयं सः**=यह वह प्रभु ही **दिवः**=द्युलोक के **वर्ष्माणम्**=दृढ़त्व को, सर्वलोक बन्धन सामर्थ्य को **अकृणोत्**=करता है। (२) **अयम्**=यह **सोमः**=शान्त प्रभु ही **तिसृषु प्रवत्सु**=तीनों उत्कृष्ट 'ओषधि, जल व गौवों' में **पीयूषम्**=अमृतत्व को **दाधार**=धारण करता है। प्रभु ही **उरु अन्तरिक्षम्**=विशाल अन्तरिक्ष को धारण करता है।

भावार्थ—प्रभु ही पृथिवी को विशाल बनाते हैं, द्युलोक को सर्वलोक बन्धन के सामर्थ्यवाला करते हैं। प्रभु ही 'ओषधि, जल व गौवों' में अमृतत्व को धारण करते हैं। विशाल अन्तरिक्ष को धारण करते हैं।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वृषभः मरुत्वान्

अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान्॥ ५॥

(१) **अयम्**=यह सोम **शुक्रसद्मनाम्**=शुक्र, अर्थात् निर्मल (शुच्) अन्तरिक्ष है सदन (गृह) जिनका, उन उषाकालों के **अनीके**=प्रमुख भाग में **चित्रदृशीकम्**=अद्भुत दर्शनवाली **अर्णः**=कर्मों में प्रेरक ज्ञान-ज्योति को **विदत्**=प्राप्त कराता है। सोमरक्षणवाला पुरुष उषाकालों में स्वाध्याय के द्वारा अपनी ज्ञान-ज्योति को बढ़ानेवाला होता है। (२) **अयम्**=यह सोम **महान्**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **महता स्कम्भनेन**=महान् आधार के द्वारा यह सोम **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **उद् अस्तभ्नात्**=उत्कृष्ट स्थिति में थामता है। सोम ही मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, यही सुरक्षित हुआ-हुआ बुद्धि को तीव्र बनाता है। साथ ही यह सोम **वृषभः**=हमारे में शक्ति का सेचन करता है और **मरुत्वान्**=यह सोम प्रशस्त प्राणोंवाला है। प्राणशक्ति को यह सोम ही बढ़ाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम (१) बुद्धि को तीव्र बनाकर ज्ञान-ज्योति को बढ़ाता है, (२) शरीर का सेचन करता है, (३) प्राणशक्ति का विकास करता है।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'रयिस्थानः' सोमः

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाले, **शूर**=वीर उपासक **वसूनाम्**=इन वसुओं के **समरे**=युद्ध में, अर्थात् जिस युद्ध में विजयी बनकर हम सब वसुओं को प्राप्त करते हैं, **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षण करके **कलशे**=इस शरीर कलश में **सोमं पिब**=सोम को पीनेवाला बन। (२) माध्यन्दिन **सेवने**=जीवन के माध्यन्दिन सवन में, अर्थात् ५५ से ६८ वर्ष तक भी **आवृषस्व**=सोम का शरीर में समन्तात् सेचन करनेवाला बन। हे सोम!

रयिस्थानः=ऐश्वर्यों का आधारभूत स्थान है। **अस्यासु रयिं धेहि**=हमारे में रयि का धारण करनेवाला बन।

भावार्थ—वासनाओं का धर्षण करके हम सोम का रक्षण करें। सुरक्षित सोम हमें सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

(भवा सुपारः, अतिपारयः नः) सुनीतिः-वामनीतिः

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **पुरः एता इव**=आगे चलनेवाले मार्गदर्शक की तरह **प्रपश्य**=देखिये। जैसे नेता अनुयायियों का ध्यान करता है, उसी प्रकार आप हमारा ध्यान करिये। **नः**=हमें **वस्यः**=श्रेष्ठ धन की **अच्छ**=ओर **प्रतरम्**=खूब ही **प्रनय**=ले चलिये। आपके अनुग्रह से हम उत्तम धनों को प्राप्त होनेवाले हों। (२) आप **सुपारः भव**=अच्छी प्रकार भवसागर से हमें पार करनेवाले होइये। **नः**=हमें **अतिपारयः**=शत्रुओं को लाँघकर पार होनेवाला करिये, हम शत्रुओं के जाल में न फँसें। आप **सुनीतिः भव**=हमें उत्तमता से ले चलनेवाले होइये **उत**=और **वामनीतिः**=(श्रेष्ठ प्रापणः) श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्राप्त करानेवाले होइये। आपके अनुग्रह से उत्तम व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर हम उत्तम बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारे प्रणेता हों, उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करायें। कष्टों व वासनाओं से पार करें। उत्तम मार्ग से ले चलें और श्रेष्ठ पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त करायें।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

स्ववर्त् ज्योतिः-अभयम्

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्ववर्ज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा ते इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **विद्वान्**=सर्वज्ञ होते हुए आप **नः**=हमें **उरुं लोकम्**=विशाल लोक को **अनुनेषि**=अनुकूलता से ले चलते हैं। कृपण वृत्ति से हमें ऊपर उठाकर आप हमें उदारता के मार्ग पर ले चलते हैं। इस मार्ग से ले चलते हुए आप **स्ववर्त् ज्योतिः**=सुखप्रद ज्ञान के प्रकाश को तथा **अभयम्**=निर्भयता को व **स्वस्ति**=कल्याण को प्राप्त कराते हैं (अनुनेषि)। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **स्थविरस्य**=अत्यन्त स्थूल (प्रबल) **ते**=आपकी **बाहू**=भुजाएँ **ऋष्वा**=दर्शनीय हैं। इन **बृहन्ता**=वृद्धि की कारणभूत बाहुओं को **शरणा**=रक्षकरूप से **उपस्थेयाम**=सेवन करें, इन भुजाओं को हम अपनी शरण बनाएँ। इन भुजाओं से रक्षित हुए-हुए हम कभी भी शत्रुओं से आक्रान्त न हों।

भावार्थ—प्रभु हमें विशाल लोक को प्राप्त करायें। हमें सुखप्रद ज्ञान, निर्भयता व कल्याण प्राप्त हो। हम प्रभु की भुजाओं को रक्षक रूप से प्राप्त करें।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

बन्धुर रथ, वहिष्ठ अश्व

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा।
इषमा वक्षीषां वरिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्नायोर्अयः॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **वरिष्ठे**=उरुतम, विशाल व **वन्धुरे**=सुन्दर (beautiful) शरीर-रथ में **धा**=धारण करिये। हमारा शरीर-रथ विशाल व सुन्दर हो। हे **शतावन्**=सैंकड़ों धनों के धारण करनेवाले प्रभो! **वहिष्ठयोः**=उत्तमता से वहन करनेवाले **अश्वयोः**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों में **आ (धाः)**=स्थापित करिये। हमारे ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्व उत्तम हों। (२) **इषां वर्षिणां इषम्**=अन्नों में सर्वोत्तम अन्न को **आवक्षि**=प्राप्त कराइये। हम उत्कृष्ट सात्त्विक भोजन को करें। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे **रायः**=ऐश्वर्यों को **अर्यः**=स्वामी होते हुए आप **मा तारीत्**=नष्ट न करें। हमें आपकी कृपा से आवश्यक धन प्राप्त हों। आप ही हमारे स्वामी हैं, आपने ही तो हमें धनों को प्राप्त कराना है।

भावार्थ—हमारा शरीर-रथ व इन्द्रियाश्व उत्तम हों। हमें उत्तम अन्न व धन प्राप्त हो।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

तीक्ष्ण बुद्धि

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मह्यं मृड**=मेरे लिये सुख को करनेवाले होइये। मेरे लिये **जीवातुम्**=जीवनौषध की **इच्छ**=इच्छा करिये। आपके अनुग्रह से मेरा जीवन दीर्घ व नीरोग बने। मेरी **धियम्**=बुद्धि को, **अयसः धारां न**=लोह के बने अस्त्रों की धारा के समान **चोदय**=प्रेरित करिये, तीक्ष्ण बनाइये। (२) **अहम्**=मैं **त्वायुः**=आपकी प्राप्ति की कामनावाला **यत् किञ्च**=जो कुछ **वदामि**=कहता हूँ, **तद् इदम्**=उस मेरी इस प्रार्थनाओं को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। **मा**=मुझे **देववन्तं कृधि**=उत्तम दिव्य गुणोंवाला बनाइये। मैं उत्तम बुद्धि को प्राप्त करके उत्तम मार्ग पर चलता हुआ दिव्य गुणोंवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु मेरे लिये सुख को दें। मुझे जीवनौषध प्राप्त कराके नीरोग जीवनवाला बनाये। मेरी बुद्धि को तीव्र करें। मुझे दिव्य गुणोंवाला बनाएँ।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्राता-अविता

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥ ११॥

(१) **त्रातारम्**=बाह्य शत्रुओं व रोगों से हमारा रक्षण करनेवाले **इन्द्रम्**=शत्रुविद्रावक प्रभु को **ह्वयामि**=पुकारता हूँ। **अवितारम्**=काम-क्रोध-लोभ आदि अध्यात्म शत्रुओं से बचानेवाले **इन्द्रम्**=उन सब असुरों के संहारक प्रभु को पुकारता हूँ उन प्रभु को पुकारता हूँ जो **हवेहवे सुहवम्**=प्रत्येक पुकार के अवसर पर सुख से पुकारने योग्य हैं। **शूरम्**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **इन्द्रम्**=प्रभु को पुकारता हूँ। (२) **शक्रम्**=सम्पूर्ण संसार को धारण करने में शक्त **पुरुहूतम्**=बहुतों से पुकारे जाने योग्य **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारता हूँ। यह **मघवा**=परमैश्वर्यशाली **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक प्रभु **नः**=हमारे लिये **स्वस्ति**=कल्याण का **धातु**=धारण करें।

भावार्थ—प्रभु हमें अन्तः व बाह्य शत्रुओं से बचाते हैं। वे प्रभु हमें कल्याण में धारण करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

निर्द्वेषता-निर्भयता

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥ १२॥

(१) **इन्द्रः**=वे शत्रुविद्रावक प्रभु **सुत्रामा**=उत्तमता से हमारा रक्षण करनेवाले हैं। **स्ववान्**=वे सब प्रशस्त धनोंवाले हैं। वे **विश्ववेदाः**=सर्वज्ञ व सर्वधन (वेदस्=विद् लाभे) प्रभु **अवोभिः**=रक्षणों के द्वारा **सुमृडीकः भवतुः**=उत्तम सुखों के देनेवाले हों। (२) वे प्रभु **द्वेषः बाधता**=द्वेष का हमारे से बाधन करें। **अभयं कृणोतु**=हमें निर्भय बनाएँ। **सुवीर्यस्य पतयः स्याम**=हम उत्तम शक्ति के स्वामी व रक्षक बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारा रक्षण करें। हमें कल्याण प्राप्त करायें। निर्द्वेष व निर्भय बनायें। उत्तम शक्ति सम्पन्न करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुमति-सौमनस

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु॥ १३॥

(१) **वयम्**=हम **यज्ञियस्य तस्य**=पूज्य उस प्रभु की **सुमतौ**=कल्याणीमति में तथा **भद्रे सौमनसे**=कल्याणकर शुभ मानस स्थिति में **स्याम**=हों (प्रभु के अनुग्रह से हमें शुभ बुद्धि व निर्मल मन प्राप्त हो। (२) **सः**=वह **सुत्रामा**=हमारा उत्तम त्राण करनेवाला, **स्ववान्**=प्रशस्त धनोंवाला **इन्द्रः**=शत्रु विद्रावक प्रभु **अस्मे**=हमारे से **द्वेषः**=द्वेष को **आरात् चित्**=सुदूर ही **सनुतः**=अन्तर्हित प्रदेश में **युयोतु**=पृथक् करे। प्रभु द्वेष को हमारे से इतना दूर करें कि यह द्वेष हमें दिखे ही नहीं।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से 'सुमति व सौमनस' को प्राप्त करके हम द्वेष से सदा दूर रहें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उरू राधः-सवना पुरूणि

अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून्॥ १४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नियुतः**=(a praiser) स्तोता की **गिरः**=उच्चारण की गई **ब्रह्माणि**=स्तुति वाणियाँ **त्वे अवधवन्ते**=आपकी ओर इस प्रकार शीघ्रता से प्राप्त होती हैं **न**=जैसे कि **ऊर्मिः**=जल संघात **प्रवतः**=निम्न देशों की ओर। (२) इन स्तुति वाणियों के होने पर, हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! आप **उरू राधः न**=विशाल ऐश्वर्य की तरह **पुरूणि सवना**=पालक व पूरक यज्ञों को, **अपः**=कर्मों को **गाः**=ज्ञान की वाणियों को तथा **इन्दून्**=सोमकणों को **संयुवसे**=हमारे साथ सम्यक् जोड़ते हैं।

भावार्थ—उपासकों के लिये प्रभु ऐश्वर्यों को व यज्ञों को (यज्ञ सिद्धि के लिये ऐश्वर्यों को), कर्मों व ज्ञान की वाणियों को (ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों को) तथा शक्ति के प्रापण के लिये सोमकणों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

स्तवन-प्रीणत-यजन

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत्।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ ॥

(१) **कः**=कोई एक विरल ही **ईम्**=निश्चय से **स्तवत्**=प्रभु स्तवन करता है। **कः**=कोई एक विरल पुरुष ही उस प्रभु को **पृणात्**=प्रीणित करने में तत्पर होता है। **कः**=कौन **यजाते**=प्रभु का उपासन करता है कि **उग्रं इत्**=तेजस्वी को भी **मघवा**=वे ऐश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वहा**=सदा **अवेत्**=इन शक्तियों को प्राप्त कराते हैं (विद् लाभे)। शक्ति के मद में प्रायः मनुष्य शक्ति को अपना ही समझता है और प्रभु को भूल जाता है। (२) **पादौ प्रहरन्**=चलता हुआ पुरुष, पृथ्वी पर पाँवों को पटकता हुआ पुरुष **इव**=जैसे **अन्यं अन्यं पूर्वं अपरम्**=एक को आगे और एक को पीछे, अगले को पीछे और पिछले को आगे **कृणोति**=करता है, इसी प्रकार वे प्रभु **शचीभिः**=अपनी शक्तियों व प्रज्ञानों से कर्मानुसार स्वामी को भृत्य व मृत्य को स्वामी बनाते रहते हैं।

भावार्थ—हमें प्रभु का ही स्तवन, प्रीणत व यजन करना चाहिए। प्रभु ही कर्मानुसार हमें ऊपर-नीचे विविध स्थितियों में प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

एधमानद्विट्

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥

(१) वे प्रभु **वीरः शृण्वे**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले सुने जाते हैं। **उग्रं उग्रम्**=प्रत्येक उग्र (प्रबल) शत्रु के **दमायन्**=बाधन को चाहते हुए, **अन्यं अन्यम्**=आज एक को और कल दूसरे को **अतिनेनीयमानः**=अतिशयेन आगे और आगे ले चल रहे हैं। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का बाधन करते हैं और हमें ऐश्वर्य की स्थिति में प्राप्त कराते हैं। (२) **एधमानद्विट्**=धन के दृष्टिकोण से बढ़े हुए अयज्ञशील पुरुष को ये प्रभु प्रीति का पात्र नहीं बनाते, यह अयज्ञशील धनी प्रभु का प्रिय नहीं होता। **उभयस्य राजा**=प्रभु ऐहिक व आमुष्मिक दोनों धनों के राजा हैं। **इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु **विशः मनुष्यान्**=निवेशक मनुष्यों को, परिचरण शक्ति-सेवा करनेवाले मनुष्यों को **चोष्कूयते**=सब ऐश्वर्यों को देते हैं (चोष्कूयमाणः ददत् नि० ६।२२)। वस्तुतः प्रभु से प्राप्त कराये गये ये ऐश्वर्य उन्हें और अधिक लोक सेवा के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं को नष्ट करते हैं। कर्मानुसार हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हैं। अयज्ञशील व्यक्ति प्रभु के प्रिय नहीं होते। लोक सेवकों को प्रभु आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

प्रमाद दोष परिहार

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **सख्या**=मित्रभाव के कारण **पूर्वेषाम्**=अपना पालन व

पूरण करने में प्रवृत्त लोगों के **परावृणक्ति**=रोगों व दोषों को (efface) मिटा देते हैं। **वितर्तुराणः**=इन शत्रुभूत रोगों व वासनाओं को हिंसित करते हुए वे **अपरेभिः एति**=इन अपने अपर (lower) मित्रों के साथ गतिवाले होते हैं। साहित्य में प्रभु 'पर' कहते हैं, तो जीव 'अपर'। वे पर प्रभु अपर जीव के साथ गतिवाले होते हैं। इस मित्रता से ही जीव शत्रुओं पर विजय पा सकता है। (२) **अनानुभूतीः**=(neglect) प्रमादों को **अवधून्वानः**=हमारे से कम्पित करके दूर करते हुए प्रभु **पूर्वीः शरदः**=बहुत वर्षों तक **तर्तरीति**=हमें शत्रुओं से तरानेवाले होते हैं। प्रभु हमारे जीवनों को प्रमादशून्य बनाकर हमें इस दीर्घजीवन में शत्रुओं का शिकार नहीं होने देते।

भावार्थ—प्रभु हमारे रोगों व दोषों को दूर करते हैं। हमारे शत्रुओं को नष्ट करते हुए हमारे साथ गतिवाले होते हैं। हमारे जीवन को प्रमादशून्य बनाकर दीर्घ व सुन्दर बनाते हैं।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अनेक रूप' प्रभु

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥ १८॥

(१) **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **रूपं रूपम्**=प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के **प्रतिरूपः**=प्रतिरूप **बभूव**=होता है। सर्वव्यापक होता हुआ उस-उस पदार्थ के अनुरूप रूपवाला होता है। उन पदार्थों में यह प्रभु की उपस्थिति ही विभूति की स्थापना का कारण बनती है। प्रभु सूर्य-चन्द्र में प्रभारूप से हैं, तो जलों में इस रूप से, और पृथिवी में पुण्यगन्ध के रूप से। बलवानों में बल के रूप में हैं, तो बुद्धिमानों में बुद्धि के रूप से हैं। **अस्य**=इस प्रभु का **तद् रूपम्**=वह रूप **प्रतिचक्षणाय**=प्रत्येक व्यक्ति से देखने योग्य होता है। स्वयं निराकार वे प्रभु दर्शन का विषय नहीं बनते। इन पदार्थों में प्रभु की महिमा ही दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः यही प्रभु का सगुण रूप है, जिसकी आराधना एक भक्त करता है। ज्ञान की कमी के होने पर यह भक्ति सूर्यादि की उपासना में रूपान्तरित हो जाती है। (२) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **मायाभिः**=अपने अज्ञानों से **पुरुरूपः**=अनेक रूपोंवाले होते हुए **ईयते**=गति करते हैं। **अस्य**=इस प्रभु के **हि**=ही **दश हरयः**=ये दस संख्यावाले इन्द्रियाश्व **शता**=शतवर्षपर्यन्त **युक्ताः**=हमारे शरीर-रथों में जुते होते हैं। इन इन्द्रियों की रचना में भी प्रभु की महिमा दर्शनीय होती है।

भावार्थ—वे निराकार प्रभु इन स्तवन पदार्थों में उस-उस पदार्थ के अनुरूप दिखते हैं। इन पदार्थों में ही प्रभु की महिमा द्रष्टव्य होती है। सर्वत्र प्रभु की ज्ञानपूर्विका कृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। हमारे शरीरों में इन्द्रियाश्व भी अद्भुत महिमावाले हैं।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बृहतीः**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

द्विषतः पक्षः (शत्रुओं को भूननेवाले प्रभु)

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु॥ १९॥

(१) **त्वष्टा**=वे दीप्त (त्वृष्) व निर्माता (त्वक्ष्) प्रभु **इह**=इस हमारे जीवन में **रथे**=शरीर-रथ में **हरिता**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों को **युजानः**=युक्त करते हुए **भूरि राजति**=खूब ही दीप्त होते हैं। प्रभु ने इन इन्द्रियों में अद्भुत ही शक्ति की स्थापना की है। इन इन्द्रियों में प्रभु की महिमा प्रकट हो रही है। (२) **उत**=और **आसीनेषु**=उपासना में बैठे हुए **सूरिषु**=इन स्तोताओं

में **कः**=वे अनिर्वचनीय प्रभु ही **विश्वाहा**=सदा **द्विषतः पक्षः**=शत्रुओं को पका डालनेवाले के रूप में **आसते**=स्थित होते हैं। प्रभु ही उपासक के शत्रुओं को भून डालनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ने शरीर-रथ में इन्द्रियाश्वों को जोता है, इन इन्द्रियों में प्रभु की महिमा प्रकट होती है। प्रभु ही उपासकों के शत्रुओं को भूननेवाले हैं।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः, सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अगव्यूति क्षेत्र व अंहूरणा भूमि' का परिवर्तन

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम्॥ २०॥

(१) **देवाः**=हे देवो! हम **क्षेत्रं आ अगन्म**=ऐसे शरीर रूप क्षेत्र में आ पहुँचे हैं जो **अगव्यूति**=ज्ञान की वाणी रूप गौओं के प्रचार से रहित है, जो केवल भोग-प्रधान प्रतीत होता है। **उर्वी सती**=विशाल होती हुई भी यह **भूमिः**=शरीर-भूमि **अंहूरणा अभूत्**=(अंहवः आहन्तारः दस्यवः, तेषां रमणा) दास्यव भावों के रमणवाली हो गई है। शरीर विशाल है, परन्तु वह देवों का निवास-स्थान न रहकर दस्युओं का निवास-स्थान बन गया है। (२) हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! आप हमें **गविष्टौ**=ज्ञान की वाणी रूप गौओं के अन्वेषण में **प्र चिकित्सा**=(प्रवेदय) उपाय का ज्ञान दीजिये। ऐसा उपाय सुझाइये कि हम ज्ञान की वाणियों के अन्वेषण में लगे रहें। **इत्था सते**=इस प्रकार (सते=भवते) होते हुए मेरे लिये, दास्यव भावों के रमण का स्थान बने हुए मेरे लिये, हे **इन्द्र**=शत्रु संहारक प्रभो! **पन्थाम्**=मार्ग को (प्रचिकित्स)=प्रज्ञापित करिये।

भावार्थ—हमारा यह शरीर क्षेत्र ज्ञान की वाणी रूप गौओं के प्रचारवाला हो। यह शरीर भूमि देवों का रमण प्रदेश बने। देव कृपा से हमें ज्ञान रुचि बनें। प्रभु हमें सन्मार्ग की प्रेरणा दें।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'वर्चिन् व शम्बर' का विनाश

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च॥ २१॥

(१) हमारे जीवन में **सद्मनः**=इस शरीर के अन्तर्गत हृदय रूप गृह से, स्थान से **जाः**=उदय होता हुआ **इन्द्र**=ज्ञानसूर्य **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **सदृशीः**=समानरूपवाली **कृष्णाः**=अज्ञानान्धकारवाली रात्रियों को **अन्यं अर्धम्**=हमारे से भिन्न दूसरे आधे पशु-पक्षिरूप जगत् में **अपअसेधत्**=दूर भेजता है। हृदयस्थ प्रभु की कृपा से हमारे हृदयों में ज्ञानसूर्य का उदय होता है, वहाँ अज्ञानान्धकार का नाश होता है। मानो, यह अज्ञान रात्रि पशु-पक्षियों के यहाँ चली जाती है। (२) **वृषभः**=सब सुखों व शक्तियों का वर्षण करनेवाले प्रभु **उदव्रजे**=ज्ञान-जल की गतिवाले हमारे शरीर देशों में (उद=जल, व्रज गतौ) **वर्चिनम्**=अति प्रबल काम (असुर) को **च**=तथा **शम्बरम्**=शान्ति को ढप लेनेवाले ईर्ष्यारूप असुर को **अहन्**=नष्ट करते हैं। ज्ञान जल के प्रवाह में सब वासनाएँ धुल जाती हैं। काम नष्ट होकर प्रेम का रूप धारण कर लेता है, और ईर्ष्या नष्ट होकर स्पर्धा, एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की भावना के रूप में प्रकट होती है। हम 'हेतौ ईर्ष्युः-फले नेर्ष्युः' बन जाते हैं। हमारे जीवनों में साधनों को प्राप्त करने की कामना बढ़ती है, दूसरे की वृद्धि हमें नहीं जलाती। हम समझ जाते हैं कि ये काम और ईर्ष्या **दासा**=हमारा उपक्षय करनेवाले हैं और

वस्नयन्ता=शक्ति व शान्ति के विनाशरूप प्रबल मूल्य को चाहते हैं, हमारे शक्ति व शान्ति रूप धन को हर लेते हैं।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञानसूर्य का उदय हो। अज्ञानरात्रि विनष्ट हो। कामासुर व शम्बरासुर का विनाश करके हम शक्ति व शान्ति का अनुभव करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रस्तोक का प्रभु के प्रति स्वा अर्पण

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार ज्ञान सूर्योदय के होने पर यह आराधक 'प्रस्तोक' बनता है, 'प्रस्तोधेत' (shines)। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **प्रस्तोकः**=ज्ञान सूर्य से चमकनेवाला यह स्तोता **इत् नु**=ही निश्चय से **राधसः**=ऐश्वर्य के **दश कोशयीः**=दस कोशों को, एक-एक इन्द्रिय की शक्ति एक-एक कोश है, इन दस कोशों को तथा **दश वाजिनः**=इन दस शक्तिशाली इन्द्रियों को ही **ते अदात्**=आपके लिये दे डालता है। ज्ञानी स्तोता अपना सब कुछ आपके प्रति अर्पण करता है, ऐसा करता हुआ ही वह निरहंकार बना रहता है। (२) ये आराधक ऐसा अनुभव करते हैं कि हमने **दिवोदासात्**=(दास्=दाश्=दाने) उस सब ज्ञानों के देनेवाले प्रभु से ही **अतिथिग्वस्य राधः**=(अतिथिं गच्छति) उस महान् अतिथि प्रभु के प्रति जानेवाले आराधक के कार्यसाधक धन को तथा **शाम्बरं वसु**=ईर्ष्या के विनाश से प्राप्त होनेवाले उत्तम निवासजनक धन को **प्रत्यग्रभीष्म**=प्रतिदिन प्राप्त किया है। यह सब ऐश्वर्य उस प्रभु का ही है। प्रभु ने ही हमें उस-उस इन्द्रिय की शक्ति को व इन इन्द्रियों को दिया है, ये सब उसी के हैं। इस प्रकार समर्पण करनेवाला आराधक अद्भुत शान्ति को पाता है।

भावार्थ—हम ज्ञान को बढ़ाकर प्रभु की आराधना करते हुए इन सब इन्द्रियों के ऐश्वर्य को व इन्द्रियों को प्रभु के प्रति अर्पित करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः** ॥
स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रस्तोक की आराधना

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना। दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित प्रस्तोक, ज्ञान से चमकनेवाला आराधक, आराधना करता हुआ कहता है कि मैंने **दिवोदासात्**=उस ज्ञान के देनेवाले महान् प्रभु से ही **दश अश्वान्**=दस इन्द्रियाश्वों को **असानिषम्**=प्राप्त किया है। **दश कोशान्**=इन इन्द्रियों के दस कोशों को भी उसी प्रभु से ही तो लिया है। (२) **दश वस्त्रा**=इन इन्द्रिय रूप गौओं के रक्षण के लिये दस प्राणरूप वस्त्रों को भी प्रभु ने ही मुझे प्राप्त कराया है। ये दश प्राणरूप वस्त्र **आधिभोजता**=आधिक्येन हमारा पालन करनेवाले हैं (भुज्पालने)। **उ**=और **दश**=दस **हिरण्यपिण्डान्**=हितरमणीय दस इन्द्रियों के आधारभूत शरीरों को (पिण्ड=देह) भी प्रभु ने ही तो हमारे लिये दिया है। शरीर एक है, पर दस इन्द्रियाश्वों से जुता यह शरीर-रथ यहाँ 'दश' शब्द से विशेषित हुआ है।

भावार्थ—प्रस्तोक अनुभव करता है कि ये दस इन्द्रियाँ, दस इन्द्रियशक्तियाँ, दश प्राण, दशेन्द्रिययुक्त ये शरीर सब उस प्रभु के हैं। ये सब प्रभु ने ही तो मुझे प्राप्त कराये हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'पायु-अथर्वः' बनना

दश॒ रथा॒न्प्रष्टि॑मतः श॒तं गा अथ॑र्वभ्यः। अ॒श्व॒थः पा॒यवे॑ऽदात्॥ २४॥

(१) **अश्वथः**=(protection) इन्द्रियाश्वों का रक्षण करनेवाले प्रभु **पायवे**=विषय वासनाओं व रोगों से अपना बचाव करनेवाले उपासक के लिये **दश**=दस **प्रष्टिमतः**=(प्रष्टि=side horse) प्रशस्त इन्द्रियरूप अश्वोंवाले **रथान्**=शरीर-रथों को **अदात्**=देते हैं। प्रभु ने यह शरीर-रथ हमें दिया है। इसमें दस इन्द्रियरूप घोड़े जुते हैं। ये सब घोड़े इस शरीर-रथ को सम्यक् प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर ले चलनेवाले हैं। हमें इनका रक्षण करना है, ये विषयों की दल-दल में न फँस जाएँ। (२) ये प्रभु **अथर्वभ्यः**=(अथ अर्वाङ्) अन्तर्दृष्टिवाले पुरुषों के लिये **शतम्**=शतवर्ष पर्यन्त **गाः**=ज्ञान की वाणियों को देते हैं। अन्तर्दृष्टिवाले ये पुरुष सदा उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु दस इन्द्रियाश्वों से युक्त शरीर-रथों को व ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सार्ञ्जयः (सृ+जि)

महि॒ राधो॑ वि॒श्वज॑न्यं॒ दधा॑नान्भ॒रद्वा॑जान्त्साञ्ज॒यो अ॒भ्य॑यष्ट॥ २५॥

(१) प्रभु गतिशील पुरुषों को विजय प्राप्त कराते हैं ('सृ+जि') सो 'साञ्जय' कहलाते हैं। ये प्रभु **भरद्वाजान्**=संयम द्वारा अपने में शक्ति का भरण करनेवाले पुरुषों को **अभ्ययष्ट**=अपने साथ संगत करते हैं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' निर्बल से ये प्रभु प्राप्य नहीं। (२) ये प्रभु उनको प्राप्त होते हैं, जो **राधः**=कार्यसाधक धनों को **दधानान्**=धारण करते हैं। उस धन को जो **महि**=पूजनीय है, अर्थात् प्रशस्त साधनों से कमाया गया है तथा **विश्वजन्यम्**=सब लोकों के लिये हितकर है, जिस धन का विनियोग प्राजापत्य यज्ञ में होता है नकि भोग-विलास में।

भावार्थ—प्रभु उनको प्राप्त होते हैं जो (क) उत्तम मार्ग से धनों का अर्जन करके उसका लोकहित के कार्यों में विनियोग करते हैं तथा (ख) संयम द्वारा अपने में शक्ति को भरते हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, रथः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'दृढ़ प्रकाशमय' शरीर-रथ

वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो॒ हि भूया॒ अ॒स्मत्स॑खा॒ प्रत॑रणः सु॒वी॒रः।
गोभि॒: सन्न॑द्धो असि वी॒ळय॑स्वास्था॒ता ते॑ जयतु जेत्वा॑नि॥ २६॥

(१) इस शरीर-रथ को यहाँ 'वनस्पते' शब्द से सम्बोधित किया है, स्पष्ट है कि इसका पोषण वनस्पतियों द्वारा ही होना चाहिए। हे **वनस्पते**=वनस्पति से बने हुए शरीर-रथ! तू **हि**=निश्चय से **वीड्वङ्गः**=दृढ़ अंगोंवाला **भूयाः**=हो। तू **अस्मत् सखा**=हमारा मित्र हो। **प्रतरणः**=जीवनयात्रा में सब विघ्नों को तैरते हुए यात्रा की पूर्ति का साधन बन। **सुवीरः**=तू उत्तम वीरतावाला हो। (२) तू **गोभिः**=इन्द्रियों से **सन्नद्धः**=सम्यक् बद्ध **असि**=है। तेरे में उस-उस स्थान पर इन्द्रियाश्व जुते हुए हैं। अथवा तू ज्ञान की वाणियों से युक्त है, प्रकाशमय है। **वीडयस्व**=तू शक्तिशाली कर्मों को करनेवाला बन। **ते आस्थाता**=तेरे पर अधिष्ठित होनेवाला यह जीव **जेत्यानि**=जेतव्य शत्रुओं

को **जयतु**=जीतनेवाला हो। काम-क्रोध आदि को परास्त करके यह अधिष्ठाता यात्रा को पूर्ण करनेवाला बने।

भावार्थ—हमारा शरीर-रथ दृढ़ अंगोंवाला हो, ज्ञान के प्रकाश से युक्त हो। इस पर अधिष्ठित होकर शत्रुओं को परास्त करते हुए हम जीवनयात्रा को पूर्ण करें।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः, रथः**॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'ओजस्वी व सहस्वी' शरीर-रथ

दिवस्पृथिव्याः पार्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज॥ २७॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे जीव! **हविषा**=दानपूर्वक अदन के द्वारा **रथं यज**=तू शरीर-रथ को अपने साथ संगत कर। यह शरीर-रथ वह है जिसमें **दिवः परि**=द्युलोक से **ओजः उद्भृतम्**=ओजस्विता का भरण किया गया है, जिसमें सूर्य-किरणों ने प्राणशक्ति का संचार किया है। **पृथिव्याः परि**=इस विशाल अन्तरिक्ष से (ओजः उद्भृतं)=ओजस्विता का भरण हुआ है, जिसमें चन्द्र-किरणों ने सुधारस को संचरित किया है। इस शरीर-रथ में **वनस्पतिभ्यः**=वनस्पतियों से **सहः**=बल का **पर्याभृतम्**=भरण हुआ है। पृथिवी से उत्पन्न ओषधि वनस्पतियों के सेवन से यह शरीर नीरोग व सबल बना है। (२) इस शरीर-रथ को तू अपने साथ संगत कर जो **अपां ओज्मानम्**=(आपः रेतो भूत्वा०) रेतःकणों के ओजवाला है, जिसे रेतःकण ओजस्वी बना रहे हैं। जो **गोभिः**=ज्ञानरश्मियों से **परिआवृतम्**=आच्छादित है। **इन्द्रस्य वज्रम्**=यह शरीर-रथ इन्द्र का वज्र है, जितेन्द्रिय पुरुष का गतिशीलता का साधन है।

भावार्थ—इस शरीर-रथ को 'सूर्य-चन्द्र' ओजस्वी बनाते हैं, वनस्पतियाँ इसमें सहस् का संचार करती हैं। यह रेतःकणों के ओजवाला व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञानरश्मियों से आच्छादित है। इसे दानपूर्वक अदन से हम अपने साथ संगत करें और गतिशील बनें।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः, रथः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मित्रस्य गर्भः, वरुणस्य नाभिः

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥ २८॥

(१) यह शरीर-रथ **इन्द्रस्य वज्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष का वज्र है, गतिशीलता का साधन है। **मरुतां अनीकम्**=प्राणों का इसमें बल है। **मित्रस्य गर्भः**=स्नेहभाव को यह अपने अन्दर धारण करनेवाला है। **वरुणस्य नाभिः**=निर्द्वेषता को यह अपने में बाँधनेवाला है (णह बन्धने)। (२) हे **देवरथ**=ज्ञान किरणों से द्योतमान (परि गोभिरावृतम् ४७। २७) शरीर-रथ अथवा सब व्यवहारों के साधक शरीर-रथ! **सः**=वह तू **नः**=हमारी **इमाम्**=इस **हव्यदातिम्**=हव्य के देने की क्रिया को, यज्ञादि क्रियाओं को **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता हुआ **हव्या**=हव्य पदार्थों को **प्रतिगृभाय**=ग्रहण करनेवाला बन। अर्थात् दानपूर्वक अदन करनेवाला बन तथा सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन कर।

भावार्थ—यह शरीर-रथ जितेन्द्रिय पुरुष का गतिशीलता का साधन बने। प्राणों के बल को, स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करे। यज्ञशील हो। यज्ञशेष के रूप में सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करे।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः, दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'दुन्दु' शब्द से भयभीत करनेवाली 'दुन्दुभि'

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून्॥ २९॥

(१) युद्ध में यदि हमारा पक्ष धार्मिक है तो हमारी दुन्दुभि शत्रुओं को भयभीत कर डालती है। सो कहते हैं कि हे **दुन्दुभे**=दुन्दुभि! **सः**=वह तू **पृथिवीं उत द्याम्**=पृथिवीलोक व द्युलोक को **उपश्वासय**=अनुप्राणित करनेवाली हो, अपने शब्द से हमारे सैन्यों में सर्वत्र उत्साह का संचार करनेवाली हो। यह **विष्ठितम्**=विशेषरूप से अपने-अपने स्थान में स्थित **जगत्**=लोक **पुरुत्रा**=सर्वत्र **ते मनुताम्**=तेरे शब्द को जाननेवाला हो। (२) हे दुन्दुभे! वह तू **इन्द्रेण**=शत्रुविद्रावक सेनापति व **देवैः**=विजिगीषु सैनिकों के साथ **शत्रून्**=शत्रुओं को **दूरात् दवीयः**=दूर से दूर **अपसेध**=मार भगानेवाली हो। दुन्दुभि के शब्द से ही शत्रुओं के दिल दहल जाएँ और शत्रु भयभीत हो भाग उठें।

भावार्थ—दुन्दुभि (रणभेरी) का शब्द द्युलोक व पृथिवीलोक को गुंजा दे। शत्रु इससे भयभीत होकर भाग जाएँ।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः, दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'दुरिता-दुच्छुना' बाधमानः

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व॥ ३०॥

(१) हे दुन्दुभे! तू **आक्रन्दय**=शत्रुओं को रुलानेवाली बन। **नः**=हमारे मनों में **बलं ओजः**=बल और ओज को **आधाः**=स्थापित कर। हमारा युद्ध का वाद्य शत्रुओं को भयभीत करनेवाला हो और हमारे अन्दर उत्साह का संचार करनेवाला हो। सब **दुरिता बाधमानः**=बुराइयों को रोकती हुई **निष्टनिहि**=तू ध्वनि कर, तेरी गर्जना हमारे जीवनों में से सब बुराइयों को दूर करनेवाली हो। जीवन को युद्ध यात्रा समझेंगे तो विलास से ऊपर उठेंगे ही, (२) हे **दुन्दुभे**=भेरी स्वर! **दुच्छुना**=सब दुष्ट सुखों को, भोग-विलासों को या शत्रुओं को **इतः**=यहाँ से **अपप्रोथ**=सुदूर हिंसित कर। तू **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष की **मुष्टिः असि**=शत्रुओं को विनष्ट करनेवाली मुष्टि है। **वीळयस्व**=हमारे जीवनों को सुदृढ़ बना।

भावार्थ—दुन्दुभि का शब्द शत्रुओं को भयभीत करें, हमें सोत्साहित करे। यह हमारे जीवनों से दुरितों व दुष्ट सुखों को दूर करे और हमें शत्रुहनन के लिये दृढ़ शक्ति प्रदान करे।

ऋषिः—**गर्गः**॥ देवता—**इन्द्रः, दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

विजय

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥ ३१॥

(१) हे प्रभो! **अमूः**=उन विषयों में चरती हुई इन्द्रियरूप गौओं को **आ अज**=हमारे प्रति आनेवाला करिये। **इमाः**=इन इन्द्रियों को **प्रत्यावर्तय**=विषयों से व्यावृत्त करिये। **केतुमत्**=प्रशस्त ज्ञानवाली **दुन्दुभिः**=यह रणभेदी चेतना को जागरित करनेवाली दुन्दुभि **वावदीति**=खूब शब्द कर

रही है (इसके शब्द से जीवन को संग्राम की स्थिति में समझते हुए हम विषयों से पराङ्मुख रहें। (२) **नः नरः**=हमारे सब मनुष्य **अश्वपर्णाः**=इन्द्रियाश्वों का पालन व पूरण करनेवाले होते हुए **संचरन्ति**=सम्यक् गतिवाले होते हैं। हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **अस्माकम्**=हमारे **रथिनः**=रथी पुरुष, शरीर-रथ के स्वामी पुरुष **जयन्तु**=सदा विजयी हों। ये कभी भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं के शिकार न होते हुए बाह्य शत्रुओं को भी पराजित करनेवाले हों।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ विषयव्यावृत्त हों। हमारे में ज्ञान-ज्योति जगे। इन्द्रियाश्वों का पूरण करनेवाले लोग सम्यक् गतिवाले हों। हम रथी बनकर विजय बनें।

अगला सूक्त भी 'शंयु बार्हस्पत्य' ऋषि का है—

अथ चतुर्थाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

यज्ञा-गिरा

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥ १॥

(१) **वः**=तुम **यज्ञा यज्ञा**=प्रत्येक यज्ञरूप उत्तम कर्म के द्वारा **च**=और **गिरा गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये शंसन करो, जिससे **दक्षसे**=यह शंसन तुम्हारी उन्नति व विकास (वृद्धि) के लिये हो। प्रभु की उपासना 'ज्ञान-कर्म' से होती है। यह उपासना उपासक की वृद्धि का कारण बनती है। (२) **वयम्**=हम **अमृतम्**=उस अमर **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ प्रभु को **प्रियं मित्रं न**=प्रिय मित्र के समान **प्रप्र शंसिषम्**=खूब ही प्रशंसित करें। वे प्रभु हमें उत्तम प्रेरणा के द्वारा सब बुराइयों से दूर करते हुए वास्तव में ही हमारे सच्चे मित्र हैं। ये सदा हमारी उन्नति व विकास का कारण बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु की सच्ची उपासना यही है कि हम हाथों से यज्ञों को करें तथा वाणी से ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें। वे प्रभु हमारे सच्चे मित्र हैं, वे हमें उत्तम प्रेरणा द्वारा ज्ञानवृद्धि को प्राप्त कराते हुए अमर बनाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्चीजगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अविता-वृधः-त्राता

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम्॥ २॥

(१) गत मन्त्र से 'प्रशंसिषम्' क्रिया का अध्याहर करके यहाँ अर्थ इस प्रकार लेना है कि मैं **ऊर्जो नपातम्**=शक्ति को न नष्ट होने देनेवाले उस प्रभु को प्रशंसित करता हूँ, क्योंकि **सः**=वह **हि न**=निश्चय से (निपातद्वयम् हि० ९) **अयम्**=ये प्रभु **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाले हैं। उस **हव्यदातये**=हव्य पदार्थों के देनेवाले प्रभु के लिये **दाशेम**=हम अपना अर्पण करें। (२) ये प्रभु **वाजेषु**=संग्रामों में **अविता भुवत्**=रक्षक होते हैं। **वृधः भुवत्**=हमारे वर्धक होते हैं। **उत**=और **तनूनां त्राता**=हमारे शरीरों के रक्षक होते हैं।

भावार्थ—प्रभु शक्ति को देकर हमारा रक्षण करते हैं। वे ही संग्रामों में हमें विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शक्ति व दीप्ति की प्राप्ति

वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्त्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वृषा**=हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाले हैं। **अजरः**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं, अपने उपासकों को भी आप अजर बनाते हैं। **महान्**=आप पूज्य हैं, **अर्चिषा**=ज्ञान ज्वाला से **विभासि**=आप विशेषरूप से दीप्त होते हैं। (२) **अजस्त्रेण**=अविच्छिन्न **शोचिषा**=दीप्ति से **शोशुचत्**=दीप्त होते हुए हे **शुचे**=दीप्त प्रभो! **सुदीतिभिः**=उत्तम दीप्तियों से **सुदीदिहि**=आप हमें दीप्त करिये। एक उपासक अपने जीवन को आपकी दीप्ति से दीप्त करनेवाला बनता ही है।

भावार्थ—प्रभु हमारे में शक्ति का सेचन करते हुए हमें अजर बनाते हैं। वे दीप्त प्रभु हमें ज्ञानदीप्ति से दीप्त करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

क्रत्वा-दंसना

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्रेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

(१) हे प्रभो! आप **महः देवान्**=महनीय दिव्य गुणों को **यजसि**=हमारे साथ संगत करते हैं। आप **तव क्रत्वा**=अपनी शक्ति व प्रज्ञान से **उत**=और **दंसना**=उत्तम कर्मों से **आनुषक् यक्षि**=निरन्तर हमें संगत करते हैं। उपासक दिव्यगुणों को, शक्ति व प्रज्ञान को तथा उत्तम कर्मों को प्राप्त करता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **सीम्**=निश्चय से आप हमारे **अवसे**=रक्षण के लिये **अर्वाचः**=(अर्वाङ्ङ् अक्रति) अन्तर्मुखी वृत्तिवाला **कृणुहि**=करिये। **वाजा**=शक्तियों को **रास्व**=दीजिये **उत**=और **वंस्व**=हमें विजयी बनाइये (वन्=win) अथवा हमारे शत्रुओं का संहार करिये (to kill)।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे साथ दिव्यगुणों का शक्ति प्रज्ञान व उत्तम कर्मों का मेल हो। हम शक्ति को प्राप्त करें तथा विजयी बनें अथवा शत्रुओं का संहार कर सकें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

आपः अद्रयः बना (ऋतस्य गर्भं पिप्रति)

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥ ५ ॥

(१) प्रभु वे हैं **यं ऋतस्य गर्भम्**=ऋत के धारण करनेवाले जिनको **आपः**=(आप्लृव्याप्तौ)

कर्मों में व्याप्त होनेवाले, **अद्रयः (आद्रियन्ते)**=उपासना करनेवाले **वना**=काम-क्रोधादि शत्रुओं का हिंसन करनेवाले लोग **पिप्रति**=अपने अन्दर पूरित करते हैं। प्रभु का प्रकाश अधिकाधिक ये ही लोग देखते हैं, जो कर्मशील, उपासनामय व शत्रुओं का संहार करनेवाले होते हैं। (२) प्रभु वे हैं **यः**=**जो नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **सहसा**=शत्रुमर्षण के द्वारा अथवा शत्रुमर्षण बल के साथ **मथितः**=चिन्तन किये गये हुए **जायते**=प्रभुभूत होते हैं। प्रभु का प्रकाश **पृथिव्याः सानवि अधि**=इस शरीर रूप पृथिवी के शिखर प्रदेश मस्तक में होता है। ज्ञान के द्वारा ही प्रभु का प्रकाश होता है। ज्ञानदायिनी सूक्ष्म बुद्धि ही प्रभु का दर्शन कराती है 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः'।

भावार्थ—प्रभु दर्शन 'कर्मशील-उपासनामय-शत्रुसंहारक-बल-बुद्धियुक्त' पुरुष को होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**महाबृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

अरुषः वृषा

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा॥ ६॥

(१) **यः**=जो अग्नि नामक प्रभु **भानुना**=दीप्ति से **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **आपप्रौ**=आपूरित कर देते हैं। वे प्रभु ही **धूमेन**=वासनाओं को कम्पित करके दूर करने के द्वारा **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में **धावते**=उपासकों के जीवन को शुद्ध कर डालते हैं। (धाव् शुद्धौ)। बाह्य जगत् को जहाँ प्रभु प्रकाशित करते हैं, वहाँ हमारे आन्तर जगत् को भी वे ज्ञानदीप्त करते हैं। (२) इस प्रकार प्रकाश के होने पर **स्यावासु**=कृष्णवर्ण **ऊर्म्यासु**=रात्रियों में भी **तमः**=अन्धकार **तिरः ददृशे**=तिरोहित हो जाता है। मानव जीवन में तीन रात्रियाँ 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' के अज्ञान के रूप में ही है। प्रभु का अनुग्रह जब वासनाओं के निराकरण के द्वारा ज्ञान के प्रकाश को करता है, तो इन रात्रियों का अन्धकार समाप्त हो जाता है। वे प्रभु **अरुषः**=आरोचमान व **वृषा**=हमारे में शक्तियों का सेचन करनेवाले हैं। **श्यावाः आ (तिष्ठति)**=प्रभु इन कृष्णवर्ण रात्रियों को अधिष्ठित कर लेते हैं। इनको अभिभूत करके हमें भी वे **अरुषः**=आरोचमान व **वृषा**=शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु बाह्य जगत् व आन्तर जगत् को प्रकाशमय करते हैं। रात्रियों का अन्धकार दूर होता है और उपासक भी प्रभु की तरह आरोचमान व शक्तिशाली बनता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**महाबृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

रेवत्-द्युमत्

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी **देव**=दीप्यमान प्रभो! आप **भरद्वाजे**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले पुरुष में **बृहद्भिः अर्चिभिः**=वृद्धि की कारणभूत ज्ञान ज्वालाओं से तथा **शुक्रेण शोचिषा**=निर्मल दीप्ति से **समिधानः**=दीप्त होइये। अर्थात् आप उपासक को ज्ञान व नैर्मल्य प्राप्त कराके उसके हृदय में प्रकाशित होइये। (२) हे **यविष्ठ्य**=बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को

हमारे साथ मिलानेवाले **शुक्र**=दीप्त प्रभो! **रेवत्**=ऐश्वर्ययुक्त होते हुए **नः**=हमारे लिये **दीदिहि**=दीप्त होइये। हे **पाक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! **द्युमत्**=ज्ञान दीप्ति को प्राप्त कराते हुए आप हमारे लिये **दीदिहि**=दीप्त होइये।

भावार्थ—हम भरद्वाज बनें, अपने में संयम द्वारा शक्ति को भरने का यत्न करें। प्रभु हमारे मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त व मन को निर्मल बनाएँगे तथा हमारे जीवनों को आवश्यक धनों से परिपूर्ण करेंगे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**महासतोबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

समेद्धा-दाता

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम्।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥ ८ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **विश्वासाम्**=सब **मानुषीणाम्**=मानव-धर्म का पालन करनेवाली **विशाम्**=प्रजाओं के **गृहपतिः असि**=गृहपति हैं, रक्षक हैं, गृह-स्वामी हैं। उन घरों में आपका ही पूजन होता है। (२) हे **यविष्ठ**=बुराई को दूर करनेवाले व अच्छाई को हमारे साथ मिलानेवाले प्रभो! **समेद्धारम्**=इस अग्नि की दीपन करनेवाले, यज्ञाग्नि द्वारा आपकी उपासना करनेवाले पुरुष को **शतम्**=शत वर्ष पर्यन्त **पूर्भिः**=पालन व पूरण की क्रियाओं द्वारा **अंहसः पाहि**=पाप से बचाइये। **च**=और उन्हें भी **शतं हिमाः**=शत वर्ष पर्यन्त पापों से बचाइये **ये**=जो **स्तोतृभ्यः ददति**=स्तोताओं के लिये आवश्यक धनों को देते हैं। इन दानशील व्यक्तियों को भी पाप से बचाइये।

भावार्थ—मानव-धर्म का पालन करनेवाले मनुष्य प्रभु के रक्षणीय होते हैं। यज्ञशील व दानशील व्यक्तियों को प्रभु पापों से बचाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

धन व प्रतिष्ठा

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ९ ॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिये **चित्रः**=(चित्+र) ज्ञान को देनेवाले हैं। हे **वसो**=हमें उत्तम निवास को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **ऊत्या**=रक्षण के हेतु से **राधांसि**=कार्य-साधक धनों को **चोदय**=हमारे लिए प्रेरित करिये। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप ही **अस्य रायः**=इस सम्पूर्ण धन के **रथीः**=नेता प्राप्त करानेवाले (नी प्रापणो) **असि**=हैं। आप इन आवश्यक धनों को प्राप्त कराइये और **नः**=हमारे **तुचे**=सन्तानों के लिये **गाधं तु विदा**=प्रतिष्ठा को अवश्य प्राप्त कराइये। इन धनों का विनियोग हमारे घरों में इस प्रकार हो कि कोई भी (अवाञ्छनीय) प्रभाव हमारे सन्तानों पर न हो। ये धन उनकी प्रतिष्ठा का कारण बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान दें, धन दें, हमारे सन्तानों के जीवनों को भी प्रतिष्ठावाला बनायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

अदिव्य भावनाएँ व आधिदैविक कष्ट

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च॥ १०॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **अदब्धैः**=अहिंसित व **अप्रयुत्वभिः**=अविच्छिन्न, अपृथग् भूत (without gap) **पर्तृभिः**=पालन क्रियाओं के द्वारा **तोकम्**=हमारे पुत्रों को व **तनयम्**=पौत्रों को **पर्षि**=पालित करके पूरित करिये। (२) हे अग्ने! **दैव्या हेडांसि**=देवों के क्रोधों को **नः युयोधि**=हमारे से पृथक् करिये। हमें सब देवों की अनुकूलता प्राप्त हो। आधिदैविक कष्टों से हम आक्रान्त न हों। **च**=और **अदेवानि**=अदिव्य, हमारे जीवनों को अदिव्य बनानेवाले **ह्वरांसि**=कुटिल भावों को हमारे से दूर करिये। अदिव्य भावों का दूरीकरण ही आधिदैविक आपत्तियों से बचने का साधन होता है।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हमारे पुत्र-पौत्र भी पवित्र जीवनवाले हों। हमारे जीवनों में अदिव्य भाव न आ जायें और हम आधिदैविक कष्टों से बचे रहें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'सबर्दुघा-अनपस्फुरा' वेद धेनु

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः। सृजध्वमनपस्फुराम्॥ ११॥

(१) हे **सखायः**=समान ख्यान (ज्ञान प्राप्ति के क्रम) वाले मित्रो! **सबर्दुघाम्**=इस ज्ञानदुग्ध को देनेवाली **धेनुम्**=वेदवाणी रूप धेनु को **आ अजध्वम्**=अपनी ओर सर्वथा गतिवाला करो। (२) इस **अनपस्फुराम्**=(not refusing to be milked) सुखसंदोह्य अथवा अवध्य वेद धेनु को **नव्यसा वचः**=(वचसा) अत्यन्त स्तुत्य वचनों के हेतु से **उपसृजध्वम्**=अपने साथ सृष्ट करो, इसे अपने समीप करो, इसे अपनाओ। इसके अध्ययन से ज्ञानदुग्ध का तुम पान करनेवाले बनो।

भावार्थ—यह वेद धेनु 'अनपस्फुरा' सुख संदोह्य व अवध्य है। इसका हम नियमपूर्वक दोहन करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शर्धाय मारुताय स्वभानवे

या शर्धाय मारुताय स्वर्भानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी॥ १२॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **या**=जो वेद धेनु **अमृत्यु**=मृत्यु से ऊपर उठानेवाले **श्रवः**=ज्ञानदुग्ध को **शर्धाय**=वासनाओं का हिंसन करनेवाले। **मरुताय**=प्राणसाधना करनेवाले (मरुतः=प्राणाः), **स्वभानवे**=आत्मदीप्तिवाले पुरुष के लिये **धुक्षत**=दोहती है। वेद धेनु का ज्ञानदुग्ध हमें मृत्यु से ऊपर उठानेवाला है। यह प्राप्त उन पुरुषों को होता है, जो वासनाओं का हिंसन करें, प्राणसाधना की प्रवृत्तिवाले है, आत्मज्ञान की ओर झुकाव रखते हैं। (२) यह वेद धेनु वह है **या**=जो

मरुताम्=प्राणसाधना करनेवाले **तुराणाम्**=काम-क्रोध आदि शत्रु हिंसक पुरुषों के **मृडीके**=सुख के निमित्त होती है। और **या**=जो **सुम्नैः**=स्तोत्रों के साथ **एवयावरी**=गतिशील इन्द्रियाश्वों के द्वारा प्राप्त होनेवाली है। जो प्रभु का स्तोता बनता है और गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला होता है, वही इस वेद धेनु का दोहन कर पाता है।

भावार्थ—हम शत्रुहिंसक प्राणसाधक व आत्मज्ञान की प्रवृत्तिवाले बनकर वेद धेनु का दोहन करें और सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**मरुतो लिङ्गोक्ता वा**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

विश्वोदहस् धेनु, विश्वभोजस् इष्

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता। धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम्॥ १३॥

(१) हे मरुतो, प्राणो! **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति को भरनेवाले के लिये **द्विता**=दो प्रकार से **अवधुक्षत**=प्रपूरण करने हैं। एक तो **विश्वदोहसं धेनुम्**=सम्पूर्ण ज्ञानों का प्रपूरण करनेवाली वेद धेनु को **च**=और **विश्वभोजसम्**=सब पालन करनेवाली **इषम्**=प्रेरणा को। (२) प्राणसाधना के द्वारा बुद्धि की दीप्ति को प्राप्त करके हम वेद धेनु के दोहन से सब आवश्यक ज्ञान को प्राप्त करें। इस प्राणसाधना से हम मन की निर्मलता के होने पर अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुनें। यह प्रेरणा सब प्रकार से हमारा पालन करनेवाली होगी, हमें मार्गभ्रष्ट होने से बचायेगी।

भावार्थ—प्राणायाम से बुद्धि की दीप्ति होने पर हम वेद धेनु का दोहन करते हैं, जो सब आवश्यक ज्ञानदुग्धों को प्राप्त कराती है। इस प्राणसाधना से उत्पन्न मन की निर्मलता हमें उस प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाती है, जो हमें मार्गभ्रष्ट नहीं होने देती।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**मरुतो लिङ्गोक्ता वा**॥ छन्दः—**बृहती**॥ स्वरः—**मध्यमः**॥

प्राणों की महिमा

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम्।
अर्यमणं न मन्द्रं सुप्रभोजसं विष्णु न स्तुष आदिशे॥ १४॥

(१) **तम्**=उस **वः**=(त्वाम्) तुझ मरुद्गण को **आदिशे**=(अतिसर्जनाय-प्रदानाय) धनों के, ऐश्वर्यों के, प्रदान के लिये **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। जो मरुद्गण **न**=जैसे **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् है, उसी प्रकार **सुक्रतुम्**=शोभन कर्मोंवाला है। **इव**=जिस प्रकार **वरुणम्**=निर्द्वेषतावाला है, पापों का निवारण करनेवाला है, उसी प्रकार **मायिनम्**=प्रज्ञावाला है। (२) यह मरुद्गण **अर्यमणं न**=जिस प्रकार काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नियमन करनेवाला है (ऋरीन् यच्छति), उसी प्रकार **मन्द्रम्**=आनन्द को देनेवाला है। यह मरुद्गण **विष्णुं न**=विष्णु के समान है (विष् व्याप्तौ) सारे शरीर में व्याप्त होकर धारण करनेवाला है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सशक्त बनकर हम उत्तम कर्मोंवाले होते हैं। पापों का निवारण करते हुए प्रज्ञावाले बनते हैं। काम-क्रोध आदि का नियमन करके आनन्द का अनुभव करते हैं। ये प्राण विष्णु के समान धारक हैं। इन्हें धनों के प्रदान के लिये आराधित करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतो लिङ्गोक्ता वा** ॥
छन्दः—**निचृदतिजगती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रसुप्त शक्तियों का जागरण

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत् सुवेदा नो वसू करत्॥ १५॥

(१) **न**=(इदानीं) अब **मारुतं शर्धः**=मरुद्गण का यह शत्रु हिंसक बल **त्वेषम्**=दीप्त है, **तुविष्वणि**=महान् स्वनवाला है, अर्थात् प्रभु की आराधना करनेवाला है। **अनर्वाणम्**=यह शत्रुओं से अनाक्रान्त है और **पूषणम्**=पोषक है। **यथा**=जैसे यह मरुद्गण (=प्राणसमूह) **शता**=सैंकड़ों धनों को **सं चर्षणिभ्यः**=श्रमशील मनुष्यों के लिये **कारिषत्**=करता है। यह मरुद्गण **सहस्रा सम्**=हजारों धनों को सम्यक् करता है। (२) यह प्राणसमूह **गूढा**=हमारे अन्दर छिपे रूप में, प्रसुप्त रूप में पड़े **वसु**=वसुओं को **आ**=समन्तात् **आविः करत्**=प्रकट व जागरित करता है। **नः**=हमारे लिये इन **वसु**=वसुओं को **सुवेदा**=सुलभ **करत्**=करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शत्रुओं का विनाश होता है। प्रसुप्त शक्तियाँ जागरित होती हैं। सहस्रशः ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है और प्रभु स्तवन की वृत्ति बनती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥
स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु शंसन व शत्रु संहार

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे। अघा अर्यो अरातयः॥ १६॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **मा आद्रव**=मुझे प्राप्त होइये। **अघाः**=(आहन्तीः) हमारा हनन करनेवाली **अर्यः**=(अभिगन्तीः) आक्रमणकारिणी **अरातयः**=काम-क्रोध आदि शत्रु-सेनाओं को **उपद्रव**=उपद्रुत करिये, बाधित करिये। (२) शत्रुओं के बाधन के उद्देश्य से ही मैं **नु**=अब **ते**=आपके **अपिकर्णे**=(कर्णावपिगते) कानों के समीप **शंसिषम्**=शंसन करनेवाला बनूँ। 'अपिकर्णे' यह शब्द इसी भाव का द्योतक है कि मैं आपकी उपासना में स्थित होऊँ। आपकी उपासना में स्थित हुआ-हुआ आपका शंसन करूँ और आपके गुणों का गायन करूँ। शत्रुओं को बाधित करने का यही तो उपाय है।

भावार्थ—हम प्रभु का शंसन करें। प्रभु हमारे शत्रुओं का बाधन करेंगे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

'काकम्बीर वनस्पति' का अविनाश

मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदर्धते वेः॥ १७॥

(१) **काकम्बीरं (काकानां भर्तारं)**=कौओं के भरण करनेवाले **वनस्पतिम्**=वृक्ष रूप मुझे, अर्थात् परिवार में छोटे-बड़े कितने ही व्यक्तियों को पालनेवाले मुझे **मा उद्वृहः**=मत उखाड़िये, मुझे दीर्घ-जीवन प्रदान करिये। **हि**=निश्चय से **अशस्तीः**=(अशंसनीयाः) अशंसनीय-अशुभ बातों को **विनीनशः**=विशेषरूप से नष्ट करिये। अशुभों के विनाश से हमारा जीवन शुभ

बने। (२) **उत**=और हे प्रभो! **सूरः**=उत्तम प्रेरणा देनेवाले आप (षू प्रेरणे) **मा अहः**=हमारा (मा हर्षित्) मत हरण करिये। हमें सदा उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराइये, इससे आप हमें वञ्चित मत करिये। **एवा चन**=ऐसा होने पर ही उपासक लोग **वेः ग्रीवाः आदधते**=(वि=a horse) इन्द्रियाश्वों की गरदनों को धारण करते हैं, अर्थात् इन इन्द्रियाश्वों को वश में कर पाते हैं। प्रभु प्रेरणा से सशक्त बनने पर इन इन्द्रियों को वश में करने का सम्भव होता है।

भावार्थ—हम परिवार का उत्तम भरण करते हुए दीर्घजीवी बनें। अशुभों का विनाश करते हुए शुभ जीवनवाले बनें। प्रभु से प्रेरणा प्राप्त करते हुए हम सदा इन्द्रियाओं को वश में रखें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥
स्वरः—**ऋषभः** ॥

सख्यम्

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम्। अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥

(१) हे (पूषन्) पोषक प्रभो! **दृतेः इव**=(दृति=a cloud) मेघ के समान जो आप हैं, उन **ते**=आपका **सख्याम्**=सख्य-मित्रभाव **अवृकं अस्तु**=सब बाधकों से रहित हो, अविच्छिन्न हो, सदा समानरूप से हमें प्राप्त हो। (२) उन आपका सख्य हमें प्राप्त हो जो **अच्छिद्रस्य**=सब छिद्रों से, दोषों से शून्य हैं, **दधन्वतः**=धारण कर रहे हैं। **सुपूर्णस्य**=सम्यक् पूर्ण हैं और **दधन्वतः**=धारण कर रहे हैं। मेघ के समान हमारे पर सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु के साथ हमारी मित्रता अविच्छिन्न हो। प्रभु हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाले हों। वे हमें भी अपने समान निर्दोष व पूर्ण बनाएँ।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

मर्त्यैः परः, देवैः समः

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया। अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **मर्त्यैः परः असि**=सब मनुष्यों से परस्तात् स्थित हैं, मुक्त पुरुष भी आपकी समता नहीं कर सकते **उत**=और **श्रिया**=श्री के दृष्टिकोण से **देवैः समः**=सब देवों के समान हैं, सूर्य, चन्द्र, तारे व अन्य सब देवों की दीप्ति आप से ही तो होती है। (२) हे पोषक प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **पृतनासु**=संग्रामों में **अभिख्यः**=अनुग्रह दृष्टि से देखिये, आप से ध्यान किये गये हम संग्रामों में विजयी हों। आप **नूनम्**=अब भी **यथा पुरा**=पहले की तरह **अवा**=हमारा रक्षण करिये। आप ही सदा उपासकों का रक्षण करते आये हैं। हम भी उपासक बनें और आपके रक्षणीय हों।

भावार्थ—मनुष्य पूर्ण उन्नत होकर भी प्रभु से न्यून ही रहता है। सूर्यादि सब देव प्रभु की दीप्ति से दीप्त हैं। प्रभु ही संग्रामों में हमारा रक्षण करते हैं। हम सदा प्रभु द्वारा रक्षित हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥
स्वरः—**गान्धारः** ॥

वामी सूनृता (वाक्)

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता। देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

(१) हे **धूतयः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले, **प्रयज्यवः**=प्रकृष्ट यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले **मरुतः**=प्राणो! **देवस्य**=दिव्य गुणों से युक्त **वा**=व **ईजानस्य मर्त्यस्य**=यज्ञशील मनुष्य की **वामी**=सुन्दर **सूनृता**=प्रिय सत्यात्मिका वाणी **वामस्य**=सुन्दर धनों की **प्रणीतिः अस्तु**=प्रणेत्री हो। (२) प्राणसाधना करने से काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश होता है और यज्ञादि कर्मों की वृत्ति उत्पन्न होती है। यह प्राणसाधक देव बनता है तथा यज्ञशील मनुष्य बनता है। यह प्राणसाधक सदा सुन्दर सूनृत वाणीवाला बनता है। सुन्दर धनों को प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना वासनाओं को विनष्ट करके हमें यज्ञशील बनाती है। इस से हमारी वाणी सूनृत बनती है। प्राणसाधना हमें सुन्दर धनों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**महाबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

ज्ञान-बल

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

(१) **यस्य**=जिस मरुद्गण की, प्राणसमूह की **चर्कृतिः**=क्रिया **सद्यः चित्**=शीघ्र ही **द्याम्**=द्युलोक में **परि एति**=चारों ओर प्राप्त होती है, उसी प्रकार **न**=जैसे कि **देवः सूर्यः**=यह प्रकाशमय सूर्य द्युलोक में प्राप्त होता है। प्राणसाधना से अशुद्धियों का नाश होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है, मस्तिष्क रूप द्युलोक ज्ञानरूप सूर्य से जगमगा उठता है। (२) **मरुतः**=ये प्राण **त्वेषम्**=दीप्त **नाम**=शत्रुओं के नमानेवाले **यज्ञियम्**=संगतिकरण योग्य **शवः**=बल को **दधिरे**=धारण करते हैं। उस **शवः**=बल को धारण करते हैं जो **वृत्रहम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाला है। यह **वृत्रहं शवः**=वासना को विनष्ट करनेवाला बल **ज्येष्ठम्**=प्रशस्यतम है।

भावार्थ—प्राणसाधना से मस्तिष्क रूप द्युलोक ज्ञानसूर्य से चमकता है और शरीर वासनाओं के विनाशक प्रशस्यतम बल से युक्त होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पृश्निर्वा भूमी वाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

पूर्ण मिदम्

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत। पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥

(१) **ह**=निश्चय से **द्यौः**=यह द्युलोक **सकृत्**=एक बार **अजायत**=बनाया गया। प्रभु के ज्ञान व बल से प्रकृति के द्वारा इस द्युलोक का निर्माण हुआ और वैसा ही निर्माण सदा से होता चला आ रहा है। इसके निर्माण में अगली-अगली सृष्टि में कोई उत्कर्ष व सुधार कर दिया जाता हो सो बात नहीं है। प्रथम रचना में कमी के अनुभव होने पर उसके दूर करने के लिये यत्न होते हैं। मानव रचनाओं में ऐसा होता ही है। प्रतिवर्ष मोटर इंजन का नया रूप (New Model) हमारे सामने आता है। मानव ज्ञान की अपूर्णता से ऐसा होता ही है, परन्तु प्रभु तो पूर्ण हैं, सो उनकी रचना भी पूर्ण है 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार **सकृत्**=एक बार ही **भूमिः**=यह पृथिवी **अजायत**=प्रादुर्भूत हो गयी। नित्य नये-नये रूपों में यह आती जाये ऐसा नहीं होता 'यथा पूर्णमकल्पत्'। (२) **पृश्न्याः**=(मरुतां मातुः) प्राणसाधकों के जीवनों का निर्माण करनेवाली यह प्रकाश की स्पर्शक वेदवाणी रूप धेनु का **पयः**=ज्ञानदुग्ध **सकृत्**=एक बार

ही **दुग्धम्**=दोहा गया। वेदज्ञान अजरामर है, इसमें परिवर्तन नहीं होता रहता। **तद् अनु**=उस ज्ञान के बाद **अन्यः न जायते**=अन्य ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता। वेदज्ञान की अपूर्ण करने के लिये नया-नया ज्ञान नहीं दिया जाता रहता। यह ज्ञान स्वयं अपने में पूर्ण है, उसमें किसी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं होती।

भावार्थ—प्रभु की बनायी हुई सृष्टि पूर्ण है, परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखती। प्रभु से दिया गया ज्ञान भी पूर्ण है, वह भी परिवर्तनापेक्षी नहीं।

इस ज्ञान को प्राणसाधना के द्वारा (योग द्वारा) प्राप्त करनेवाला व्यक्ति 'ऋजिश्वा' बनता है, सदा ऋजुमार्ग से गति करता है (ऋजु श्वि गतौ) यह 'ऋजिश्वा' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुक्षत्रासः-'वरुणः मित्रः अग्निः'

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीभिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १ ॥

(१) **नव्यसीभिः गीर्भिः**=अत्यन्त स्तुत्य वाणियों से **सुव्रतं जनम्**=उत्तम कर्मोंवाले लोगों का **स्तुषे**=स्तवन करता हूँ। वस्तुतः इन सुव्रत जनों का आदर हमें भी सुव्रत बनने की प्रेरणा देता है। मैं **सुम्नयन्ता**=हमारे सुखों की कामना करते हुए **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण का स्तवन करता हूँ। वस्तुतः 'स्नेह व निर्द्वेषता' के भाव हमारे जीवनों को सुखी बनानेवाले हैं। (२) **ते**=वे सुव्रत जन तथा मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के देव, **आगमन्तु**=हमें प्राप्त हों। **ते**=वे **इह**=इस जीवन में **श्रुवन्तु**=हमारी आराधना को सुनें। अर्थात् हम भी 'सुव्रत, मित्र व वरुण' बन पायें। **वरुणः**=निर्द्वेषता की देवता, **मित्रः**=स्नेह की देवता तथा **अग्निः**=अग्रगति की देवता ये सब **सुक्षत्रासः**=हमें उत्तम बल को देनेवाली हैं। मित्र, वरुण व अग्नि बनकर हम वास्तविक बल का धारण करते हैं।

भावार्थ—हम सुव्रत लोगों का आदर करते हुए स्वयं सुव्रत बनें। स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को धारण करके सुखी हों। ये 'स्नेह, निर्द्वेषता व अग्रगति' के भाव हमें सबल बनायें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दिवः शिशुं, सहसः सूनुम्

विशोविशं ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

(१) **विशः विशः**=सब प्रजाओं के **अध्वरेषु**=हिंसारहित कर्मों में **ईड्यम्**=प्रभु उपासनीय हैं। **अदृप्त क्रतुम्**=(दृप् माहने) अमूढ प्रज्ञावाले हैं, जिनकी चेतना कभी विलुप्त नहीं होती। **युवत्योः**=इन द्यावापृथिवी में **अरतिम्**=(अभिगन्तारं) गतिवाले हैं। सर्वत्र प्रभु की रचना व रचना का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। (२) **दिवः शिशुम्**=(दिव् स्तुतौ) स्तोता की बुद्धि को तीव्र करनेवाले हैं 'शो तनूकरणे'। **सहसः सूनुम्**=बल के पुत्र (पुतले=पुञ्ज) हैं। **यज्ञस्य केतुम्**=सब यज्ञों के प्रकाशक हैं। **अरुषम्**=आरोचमान हैं। इन **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **यजध्यै**=उपासित करने के लिये मैं यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—सब यज्ञों के प्रकाशन व प्रवर्तक हमारे चेतन सर्वशक्तिमान् प्रभु का हम उपासन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अहोरात्रौ (दिन व रात)

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥

(१) इन दिन और रात में भी प्रभु की अद्भुत महिमा का दर्शन होता है। ये **अरुषस्य दुहितरौ**=आरोचमान सूर्य की दुहिताओं के समान हैं। क्योंकि सूर्योदय ही दिन-रात्रि के विभाग का कारण बनता है। ये दिन-रात **विरूपे**=भिन्न-भिन्न रूपवाले हैं, दिन श्वेत है तो रात्रि कृष्णा। इनमें **अन्या**=एक रात्रि **स्तृभिः**=सितारों से **पिपिशे**=अवयवोंवाली होती है तारों से यह रात्रि संश्लिष्ट होती है। **अन्या**=दूसरी अहरात्मिका (दिनरूप) दुहिता **सूरः**=(सूर्येण) सूर्य से संश्लिष्ट होती है। (२) ये दिन-रात **मिथस्थुरा**=परस्पर एक-दूसरे का हिंसन करनेवाले हैं। सूर्योदय होते ही रात्रि भाग जाती है और सूर्यास्त पर रात्रि के आते ही दिन की वही दशा होती है। **विचरन्ती**=ये निरन्तर गतिवाले हैं। **पावके**=पवित्र करनेवाले हैं। **ऋच्यमाने**=स्तुति किये जाते हुए ये दिन-रात **मन्म**=मननीय **श्रुतम्**=ज्ञान का **नक्षतः**=व्यापन करते हैं। अर्थात् हम दिन-रात में प्रभु का स्तवन करते हैं और स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—सूर्य की दुहिता रूप ये दिन व रात्रि भी हमारे जीवन को पवित्र बनानेवाली हैं। इनमें हम प्रभु का स्तवन करें व स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नियुतः पत्यमानः

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ४ ॥

(१) **बृहती**=हमारे वर्धन की कारणभूत **मनीषा**=स्तुति **वायुम्**=उस गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाले प्रभु की **अच्छा**=ओर (प्र गच्छेत्) जाये। उस प्रभु की ओर जो **बृहद्रयिम्**=महान् ऐश्वर्यवाले हैं, **विश्ववारम्**=सब से वरने के योग्य हैं, **रथप्राम्**=हमारे शरीर-रथों का पूरण करनेवाले हैं। (२) हे **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण द्रष्टव्य प्रभो! आप **द्युतद्यामा**=दीप्त रथवाले हैं। **नियुतः पत्यमानः**=हमारे इन इन्द्रियाश्वों के ऐश्वर्यवाले हैं, इनके स्वामी आप ही हैं। आप ही हमें इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। **कविः**=क्रान्तदर्शी हैं। और **कविम्**=क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुषों को ही **इयक्षसि**=प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करायेंगे। उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'विरुक्मान्' रथ

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥

(१) **अश्विनोः**=प्राणापान का **यः**=जो **रथः**=रथ है, **सः**=वह **मे वपुः**=मेरे शरीर को **छदयत्**=तेज से आवृत करनेवाला हो। अर्थात् मैं इस शरीर रथ में प्राणसाधना द्वारा तेजस्विता का स्थापन करूँ। यह शरीर-रथ ऐसा बने कि **विरुक्मान्**=विशिष्ट दीप्तिवाला हो। **मनसा युजानः**=मन से युक्त हो। मन रूप उत्तम लगामवाला हो। (२) **येन**=जिस रथ से **नरः**=हमें आगे-आगे ले चलनेवाले **ना सत्या**=असत्यों से दूर रहनेवाले प्राणापानो! आप **इषयध्यै**=सब इष्ट कामनाओं को प्राप्त कराने के लिये **वर्तिः याथः**=इस शरीर गृह को प्राप्त होते हो और **तनयाय**=शक्तियों के विस्तार के लिये होते हो **च**=तथा **त्मने**=आत्म प्राप्ति के लिये होते हो।

भावार्थ—हम इस शरीर को प्राणसाधना के द्वारा तेजस्वी व दीप्त बनायें। उत्तम मन से युक्त हुआ-हुआ यह शरीर शक्तियों के विस्तारवाला व अन्ततः प्रभु प्राप्तिवाला हो।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मेघ व वायु

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम्॥ ६॥

(१) **वृषभा**=वृष्टि के करनेवाले **पर्जन्यवाता**=मेघ व वायु **पृथिव्याः**=अन्तरिक्षलोक से **अप्यानि**=आप्तव्य प्राप्त करने योग्य उत्तम **पुरीषाणि**=जलों को **जिन्वतम्**=प्रेरित करते हैं। प्रभु ने यह वृष्टि द्वारा प्राप्त होनेवाले जल की भी क्या ही सुन्दर व्यवस्था की है, यह जल सचमुच देवों के पेय अमृत के समान होता है। (२) **सत्यश्रुतः**=सत्यज्ञान का श्रवण करनेवाले **कवयः**=क्रान्तदर्शी पुरुषो! आप **यस्य गीर्भिः**=जिस प्रभु की वाणियों से **जगतः**=जंगम व **स्थातः**=स्थावर **जगत्**=(जगतः) जगत् का **आकृणुध्वम्**=आभिमुख्येन ज्ञान प्राप्त करते हो, साक्षात् ज्ञान प्राप्त करते हो। इस जगत् का ठीक ज्ञान होने से उसका समुचित उपयोग करते हुए तुम अपने कल्याण को सिद्ध करते हो।

भावार्थ—प्रभु ने मेघ व वायु द्वारा अन्तरिक्ष से जल के वर्षण की व्यवस्था की है। इसी प्रकार प्रभु का यह सारा स्थावरजंगम संसार बड़ा उत्तम है। प्रभु की वाणियों से ही इसका ठीक ज्ञान प्राप्त होता है और हम इस जगत् से कल्याण को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**बार्हस्युष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

वीर पत्नी सरस्वती

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्राभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत्॥ ७॥

(१) **वीरपत्नी**=वीरों का पालन करनेवाली **सरस्वती**=ज्ञान देवता **पावीरवी**=हमारे जीवनों का शोधन करनेवाली है। **कन्या**=हमारे जीवनों को दीप्त करती है (कन दीप्तौ)। **चित्रायुः**=(चित्) ज्ञानयुक्त जीवन को प्राप्त कराती है। यह **धियं धात्**=हमारे में बुद्धि का स्थापन करे। (२) यह सरस्वती **ग्राभिः**=वेदवाणी के छन्दों से **सजोषाः**=प्रीतिवाली होती हुई **गृणते**=स्तोता के लिये **अच्छिद्रं शरणम्**=निर्दोष शरीररूप गृह को तथा **दुराधर्षं शर्म**=शत्रुओं से अधर्षणीय सुख को **यंसत्**=देती है।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमारे जीवन को पवित्र दीप्त व ज्ञानयुक्त करती है। यह हमारे जीवनों में बुद्धि का स्थापन करती है। शरीररूप गृह को निर्दोष बनाती है तथा शत्रुओं से

अधर्षणीय सुख को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शुरुधः चन्द्राग्राः (गाः)

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा॥ ८॥

(१) जीव सामान्यतः प्रभु को भूले रहता है, परन्तु जब कोई कष्ट आता है या समस्या उठ खड़ी होती है, तो प्रभु को याद करता है। बच्चा खेल में मस्त है। भूख लगती है तो माता को याद करता है। इसी प्रकार **कामेन कृतः**=उस-उस कामना से वशीकृत हुआ-हुआ स्तोता **पथः पथः परिपतिम्**=सब मार्गों के स्वामी व रक्षक **अर्कम्**=उपासनीय प्रभु को **वचस्या**=स्तुति के द्वारा **अभ्यानट्**=व्याप्त करता है, स्तुति के द्वारा प्रभु को प्राप्त होता है। (२) **सः**=वह **पूषा**=सबका पोषण करनेवाले प्रभु **नः**=हमारे लिये **शुरुधः**=(शुग्रुधः) शोकों को दूर करनेवाली **चन्द्राग्राः**=आह्लाद है अग्रभाग में जिनके ऐसी ज्ञान की वाणियों को (गाः) **रासत्**=देते हैं और **धियं धियम्**=प्रत्येक ज्ञान को **प्रसीषधाति**=हमारे लिये सिद्ध करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करायेंगे और हमारी बुद्धियों को प्रशस्त करेंगे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

होता-अग्नि-विभावा

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम्।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा॥ ९॥

(१) **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति **ऋभ्वम्**=(उरु भासमानम्) खूब दीप्त **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **यक्षत्**=पूजित करता है, जो प्रभु **प्रथमभाजम्**=प्रथम स्थान का सेवन करनेवाले हैं, सब ज्ञान शक्ति आदि गुणों के दृष्टिकोण से प्रथम स्थान में स्थित हैं। **यशसम्**=यशस्वी हैं। **वयोधाम्**=उपासकों के लिये उत्कृष्ट जीवन का धारण करनेवाले हैं। **सुपाणिम्**=उत्तम हाथों व कर्मोंवाले हैं और **सुगभस्तिम्**=उत्तम ज्ञानरश्मियोंवाले हैं। (२) **अग्निः**=प्रगतिशील, **विभावा**=विशिष्ट दीप्तिवाला पुरुष **पस्त्यानां यजतम्**=सब गृहवासियों के पूज्य, **सुहवम्**=सुगमता से पुकारने योग्य **त्वष्टारम्**=उस निर्माता प्रभु को (यक्षत्) पूजता है।

भावार्थ—हम 'दानपूर्वक अदन करनेवाले, प्रगतिशील व विशिष्ट दीप्तिवाले' बनकर ही प्रभु का उपासन करते हैं। यह उपासना हमें 'अग्रणी-यशस्वी-उत्कृष्ट जीवनवाला-कार्यकुशल-ज्ञानरश्मि सम्पन्न' बनाता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दिन-रात 'भुवन पिता' का स्तवन

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः॥ १०॥

(१) **आभिः गीर्भिः**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों से **भुवनस्य पितरम्**=सारे ब्रह्माण्ड के रक्षक रुद्र रोगों के द्रावक प्रभु को **दिवा वर्धया**=दिन में बढ़ानेवाला हो, उस प्रभु

का स्तवन करनेवाला हो। **रुद्रम्**=इस दुःख द्रावक प्रभु को ही **अक्तौ**=रात्रि में इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति वाणियों से बढ़ा। (२) **कविना**=क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुषों से **इषितासः**=प्रेरित हुए-हुए हम इस **बृहन्तम्**=महान् **ऋष्वम्**=दर्शनीय **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **सुषुम्नम्**=उत्तम आनन्दमय प्रभु को **ऋधग्**=सत्यस्वरूप में (truely) **हुवेम**=पुकारें व पूजें।

भावार्थ—हम दिन-रात सब कार्यों को करते हुए प्रभु का पूजन करें। प्रभु ही ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। सब रोगों के द्रावक हैं। ज्ञानी लोग हमें इस महान् दर्शनीय अजर आनन्दमय प्रभु के उपासन के लिये ही प्रेरित करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'युवा कवि यज्ञिय' मरुत्

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम्।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत्॥ ११॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आप **युवानः**=बुराई को दूर करनेवाले व अच्छाई को मिलानेवाले हो। **कवयः**=क्रान्तप्रज्ञ व बुद्धिमान् हो। **यज्ञियासः**=यज्ञशील हो। **गृणतः**=स्तोता की **वरस्याम्**=वरणीय स्तुति को **आगन्त**=प्राप्त होते हो। प्राणसाधना के द्वारा (क) दुरितों का दूरीकरण होकर भद्रों की प्राप्ति होती है। (ख) बुद्धि की सूक्ष्मता प्राप्त होती है, (ग) यज्ञशीलता की वृद्धि होती है, (घ) प्रभु स्तवन की ओर झुकाव बढ़ता है। (२) **इत्था**=इस प्रकार **अंगिरस्वत्**=गमनशील की तरह **नक्षन्तः**=हमारे अन्दर गति करते हुए **नरः**=उन्नतिपथ पर ले-जानेवाले प्राणो! आप **अचित्रम्**=(अ चित्) अप्रकाशित भी, अचेतनावाले भी हमारे हृदयों को **जिन्वथ**=प्रीणित करते हो। प्राणसाधना से एक-एक अंग में स्फूर्ति का वर्धन होता है। हृदयों में प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना ही सब बुराइयों को दूर करनेवाली व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाली है। यह हमें 'ज्ञानी, यज्ञशील व स्तुतिप्रवण' बनाती है। यही हमारे हृदयों में प्रभु के प्रकाश को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराड्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

स्तृभिर्न नाकम्

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम्।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः॥ १२॥

(१) **वीराय**=शत्रुओं के **कम्पक**=(वि+ईर), **तवसे**=बलवान्, **तुराय**=त्वरित गमनवाले, स्फूर्तिवाले इस प्राणापान के लिये **प्र अजा**=तू प्रकर्षेण गतिवाला हो, शीघ्रता से प्राणसाधना में प्रवृत्त होनेवाला हो, उसी प्रकार **इव**=जैसे कि सायंकाल **पशुरक्षिः**=पशुओं का रक्षक **यूथा**=पशुसमूह को **अस्तम्**=गृह की ओर प्रेरित करता है। (२) **सः**=वह प्राणगण **वचनस्य**=इस स्तुतिवचनों के वक्ता **विपः**=मेधावी पुरुष के मस्तिष्क शरीर में **श्रुतस्य पिस्पृशति**=ज्ञानों का इस प्रकार सम्पर्क करता है, **न**=जैसे कि प्रभु **स्तृभिः**=नक्षत्रों से, सितारों से **नाकम्**=अन्तरिक्ष को (द्युलोक को) सजा (चमका) देते हैं। अर्थात् प्राणसाधना से मस्तिष्क ज्ञान-विज्ञान के नक्षत्रों से चमक उठता है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें 'वीर, बलवान, स्फूर्तिवाला व ज्ञान-विज्ञान से दीप्त' बनाती है।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

राया तन्वा तना च

यो रजांसि विमपे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च॥ १३॥

(१) **यः**=जो प्रभु **बाधिताय**=आसुरभावों से पीड़ित किये जानेवाले **मनवे**=मनुष्य के रक्षण के लिये **पार्थिवानि रजांसि**=इन पार्थिव लोकों को **चित्**=निश्चय से **त्रिः विममे**='इन्द्रियों, मन व बुद्धि' के क्रम से तीन बार **विममे**=विशिष्टरूप से बनाता है। अर्थात् इन्द्रियों, मन व बुद्धि रूप उपकरणों को प्राप्त कराके मनुष्यों का कल्याण करता है। (२) **तस्य**=उस **ते**=तेरे द्वारा **उपदद्यमाने**=दिये जा रहे **शर्यन्**=इस गृह में **राया**=साधनभूत धनों से **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार से युक्त नीरोग शरीर से **च**=तथा **तना**=उत्तम सन्तानों के साथ **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम इन्द्रियों, मन व बुद्धि को प्राप्त कराते हैं। प्रभु से दिये गये इस गृह में हम 'धन, शक्ति विस्तार व उत्तम सन्तानों' के साथ आनन्दयुक्त होकर रहें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अन्न, जल, ओषधि व धन

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात्।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये॥ १४॥

(१) **अहिर्बुध्न्यः**=(बुध्नं अन्तरिक्षं, तत्र एति सा०) सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में गतिवाला वह प्रभु **अर्कैः**=अर्चन साधन मन्त्रों के साथ **नः**=हमारे लिये **तत्**=उस **चनः**=अन्न को **अद्भिः**=जलों के साथ **धात्**=धारण करे। हमारे लिये मन्त्रों के ज्ञान के साथ अन्न व जल को प्रभु प्राप्त करायें। **पर्वतः**=वह पूरयिता सब कमियों को दूर करनेवाले प्रभु **तत्**=उस अन्न-जल को धारण करें। **सविता**=प्रेरक प्रभु **तत्**=उस अन्न-जल को धारण करें। (२) **रातिषाचः**=दान का सेवन करनेवाले, दानशील, सब देव **ओषधीभिः**=ओषधियों के साथ उस अन्न-जल को प्राप्त करायें तथा **भगः**=ऐश्वर्य के पुञ्ज **पुरन्धिः**=अनन्त प्रज्ञा व कर्मोंवाले प्रभु हमें **राये**=ऐश्वर्य के लिये **अभिप्रजिन्वतु**=प्रेरित करें। इस ऐश्वर्य का विनियोग हम पालक व पूरक कर्मों में ही करें।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये ज्ञान के साथ उत्तम अन्न व जल को प्राप्त करायें। ओषधियों के साथ पालक व पूरक कर्मों के साधनभूत ऐश्वर्यों को भी प्राप्त करायें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—अतिजगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

कैसे धन? कैसा गृह?

नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम्।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्य१श्नवाम॥ १५॥

(१) हे सब देवो! **नु**=अब **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=उस धन को **दात**=दीजिये। जो **रथ्यम्**=शरीररूप रथ को उत्तम बनानेवाला हो। **चर्षणिप्राम्**=श्रमशील मनुष्यों को पूरण करनेवाला हो, जिस धन के द्वारा हम श्रमशील बनें और अपनी कमियों को दूर करनेवाले हों। **पुरुवीरम्**=बहुत वीर सन्तानोंवाला हो, जिस धन का प्रभाव हमारे सन्तानों में वीरता को जन्म देनेवाला हो और जो धन **महः ऋतस्य**=महान् यज्ञों का **गोपाम्**=रक्षक हो, जिस धन के द्वारा यज्ञों का प्रवर्तन

होता रहे। (२) सब देव हमारे लिये **क्षयं दात**=उस शरीररूप गृह को दें जो **अजरम्**=जीर्ण शक्तियोंवाला न हो। **च**=और **येन**=जिसके द्वारा **अदेवीः स्पृधः**=अदिव्य-आसुरी-वासनाओंरूप शत्रुओं को **अभि क्रमाम**=अभिक्रान्त करनेवाले हों। और जिस शरीर के द्वारा **आदेवीः**=प्राप्त हुई हैं दिव्य भावनाएँ जिनको उन **विशः**=प्रजाओं को **अभ्यश्नवाम**=प्राप्त करें।

भावार्थ—हमें वह धन प्राप्त हो जो हमें 'उत्तम शरीरवाला, श्रमशील, वीर सन्तानोंवाला व यज्ञरक्षक' बनाये। हमें वह शरीर गृह प्राप्त हो जो कि अजीर्ण शक्तिवाला, आसुरी भावों से अनाक्रान्त व दिव्य भावनाओंवाला हो।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'ऋजिश्वा' है—

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

देवमाता व देवों का आह्वान

हुवे वः॑ दे॒वीमदि॑तिं॒ नमो॑भिर्मृ॒ळी॑काय॒ वरु॑णं मि॒त्रम॒ग्निम्।
अ॒भि॒क्ष॒दाम॑र्य॒मणं॑ सुशेवं॑ त्रा॒तॄन्दे॒वान्त्स॑वि॒तार॑ं भग॑ं च॥ १॥

(१) **वः**=तुम्हारे जीवन को **देवीम्**=प्रकाशमय बनानेवाली **अदितिम्**=अदीना देवमाता को **हुवे**=पुकारता हूँ। वस्तुतः **'अ-दितिम्'**=अखण्डन स्वास्थ्य का अभंग ही सब दिव्य गुणों केविकास का आधार बनता है। इसी अदिति को मैं पुकारता हूँ, प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता हूँ। **मृडीकाय**=सुख की प्राप्ति के लिये **वरुणम्**=द्वेष निवारण की देवता को **मित्रम्**=स्नेह की देवता को तथा **अग्निम्**=प्रगति की देवता को पुकारता हूँ। निर्द्वेष व प्रेमय बनकर मैं निरन्तर आगे बढ़ता हूँ। यही तो सुख प्राप्ति का मार्ग है। (२) मैं सुख प्राप्ति के लिये **अभिक्षदाम्**=शत्रुओं के हिंसक **सुशेवम्**=उत्तम कल्याण को करनेवाले **अर्यमणम्**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध आदि के नियन्ता देव को पुकारता हूँ। अन्य सब **त्रातॄन्**=रक्षा करनेवाले **देवान्**=देवों को, दिव्यभावों को **च**=तथा **सवितारं भगम्**=प्रेरक उपासनीय (भज सेवायाम्) प्रभु को पुकारता हूँ।

भावार्थ—मैं स्वस्थ बनूँ। निर्द्वेषता, स्नेह व प्रगतिशीलतावाला मेरा जीवन हो। शत्रुहिंसक सुखकारी नियमन के भाव को प्रेरणा देनेवाले को, सब दिव्यगुणों को प्राप्त करने के लिये यत्नशील बनूँ। प्रेरक प्रभु की उपासना करूँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

अनागास्त्व

सु॒ज्योति॑षः सू॒र्य॒ दक्ष॑पितृ॒ननागा॒स्त्वे सु॑महो वीहि दे॒वान्।
द्वि॒ज॒न्मा॑नो॒ य ऋ॒त॒सापः॑ स॒त्याः स्व॑र्वन्तो यज॒ता अ॑ग्नि॒जि॒ह्वाः॥ २॥

(१) हे **सुमहः**=शोभन दीप्तिवाले **सूर्य**=(सुवति) सबके प्रेरक प्रभो! आप **अनागास्त्वे**=निरपराधता के निमित्त, हमारे जीवनों को अपराध शून्य बनाने के निमित्त **देवान्**=दिव्य वृत्तिवाले पुरुषों को **वीहि**=(कामयस्व)=हमारे लिये प्राप्त कराइये। उन देवों को जो **सुज्योतिषः**=उत्तम ज्योतिवाले हैं तथा **दक्षपितॄन्**=निपुण पितर हैं, कुशलता से रक्षण करनेवाले हैं। (२) हमें उन पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त कराइये **ये**=जो **द्विजन्मानः**=द्विजन्मा हैं, जिन्होंने पितृकुल के बाद आचार्यकुल से जन्म लिया है। **ऋतसापः**=ऋत का सेवन करनेवाले हैं। **सत्याः**=सत्य जीवनवाले, **स्वर्वन्तः**=प्रशस्त प्रकाशवाले हैं। **यजताः**=यज्ञशील हैं। **अग्निजिह्वाः**=अग्नि के समान तेजस्वी

वाणीवाले हैं। जिनका एक-एक वचन अग्नि की तरह प्रकाश को देनेवाला व बुराइ को भस्म करनेवाला है।

भावार्थ—ज्योतिर्मय यज्ञशील पुरुषों के सम्पर्क में हमारा जीवन भी अपराध शून्य बने।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'क्षत्रं, शरणं, वरिवः, अनेहः'

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः॥ ३॥

(१) **उत**=और **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **उत**=विशाल **क्षत्रम्**=बल को **करथः**=करते हैं। ये **सुषुम्ने**=उत्तम सुखों को प्राप्त करानेवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **शरणम्**=गृह को करते हैं। (२) हे द्यावापृथिवी! ऐसा करो कि **यथा**=जिससे **नः**=हमारे लिये **महः वरिवः**=महनीय धन को करनेवाले होवो। हे **धिषणे**=धारण करनेवाले द्यावापृथिवी! आप **अस्मे क्षयाय**=हमारे उत्तम निवास के लिये **अनेहः**=निष्पापता को करिये।

भावार्थ—द्यावापृथिवी की अनुकूलता से हम 'विशाल बल, वृद्धि के कारणभूत गृह, महनीय धन तथा निष्पापता' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वसवः अधृष्टाः

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान्॥ ४॥

(१) '**रुद्र**'=सब रोगों का द्रावण करनेवाला है। प्राण (मरुत्) इस रुद्र के पुत्र हैं, ये ही वस्तुतः रोगों को दूर भगाते हैं। इनसे प्रार्थना करते हैं कि हे **रुद्रस्य सूनवः**=रुद्र पुत्र प्राणो! **आहूतासः**=पुकारे गये आप **नः**=हमारे लिये **अद्या**=आज **नमन्ताम्**=प्राप्त हों (आगच्छन्तु सा०)। आप **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले हो **अधृष्टाः**=शत्रुओं से आपका धर्षण नहीं किया जाता। (२) **यत्**=चाहे हम **अर्भे**=छोटे **महति वा**=या बड़े **बाधे**=संग्राम में **ईम्**=निश्चय से **हितासः**=हम स्थित होते हैं, तो **देवान्**=इन दिव्य गुणोंवाले, रोगों को जीतने की कामनावाले, **मरुतः**=प्राणों को **अह्वाम**=पुकारते हैं। रोगों के साथ होनेवाले संग्राम 'अर्भ' है, वासनाओं के साथ चलनेवाले संग्राम 'महान्'। इन सब संग्रामों में विजय, इन प्राणों के द्वारा ही होती है।

भावार्थ—हम प्राणों को पुकारते हैं। ये हमें नीरोग बनाकर उत्तम निवासवाला बनाते हैं तथा वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देते।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'समृद्ध दीप्त शुभ' जीवन

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्द याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते॥ ५॥

(१) **येषु**=जिन मरुतों (प्राणों) की साधना के होने पर **नु**=अब **देवी**=दिव्यगुणोंवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर **मिम्यक्ष**=संगत होते हैं तथा जिन प्राणों के होने पर **अभ्यर्धयज्वा**=(अभ्यर्धयन् यजति) समृद्ध बनाता हुआ और समृद्धि के द्वारा यज्ञ प्रवृत्त करता

हुआ **पूषा**=पोषण का देव **सिषक्ति**=हमारा सेवन करता है। अर्थात् प्राणसाधना से (क) मस्तिष्क व शरीर दोनों सुन्दर बनते हैं, (ख) हम समृद्धि को प्राप्त करके यज्ञशील होते हैं। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! **हवं श्रुत्वा**=पुकार को सुनकर **यद् ह**=जब निश्चय से **याथ**=तुम हमारे अन्दर गति करते हो, तो **प्रविक्ते**=(विविक्ते) अच्छी प्रकार से निर्णय किये गये, विवेचन किये गये, **अध्वनि**=मार्ग पर चलते हुए **भूमा**=ये प्राणी **रेजन्ते**=चमकते हैं। प्राणसाधना से विवेक ख्याति प्राप्त होती है, यह विवेक हमें उत्तम मार्ग पर ले चलता हुआ दीप्त जीवनवाला बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाती है। इससे समृद्ध होकर हम यज्ञशील बनते हैं। विवेक को प्राप्त होकर उत्तम मार्ग पर चलते हुए दीप्त जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उपासना से 'ज्ञान व शक्ति' की प्राप्ति

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः॥ ६॥

(१) हे **जरितः**=स्तोतः! **त्यम्**=उस **वीरम्**=शत्रुकम्पक **गिर्वणसम्**=ज्ञान-वाणियों द्वारा संभजनीय **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **नवेन ब्रह्मणा**=स्तुत्य वेदज्ञान द्वारा **अभि अर्च**=प्रातः-सायं पूजनेवाला बन। इन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कर और इनके द्वारा प्रभु का पूजन कर। (२) वे प्रभु **हवं श्रवत् इत्**=हमारी पुकार को सुनते ही हैं। **च**=और **उपस्तवानः**=उपस्तुत होते हुए **वाजान्**=शक्तियों को **रासत्**=देते हैं। **गृणानः**=हृदयस्थरूपेण ज्ञानोपदेश करते हुए वे प्रभु **महः**=तेजस्विता को **उप (रासत्)**=देते हैं। उपासक ज्ञान व शक्ति के मेल से बड़े सुन्दर जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—उपासना से उपासक का जीवन ज्ञान व शक्ति से सम्पन्न होता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मातृतमाः आपः

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः॥ ७॥

(१) हे **मानुषीः**=मानवहितकारी **आपः**=जलो! **अमृक्तम्**=अहिंसित **ओमानम्**=रक्षण को **धात**=हमारे लिये धारण करो तथा **तोकाय तनयाय**=हमारे पुत्र-पौत्रों के लिये **शं योः**=रोगों के शमन तथा भयों के यावन (=पृथक् करण) का कारण बनो। (२) हे जलो! **यूयम्**=आप **हि**=ही **भिषजः स्थ**=औषध हो। **मातृतमाः**=हमारे जीवनों में उत्कृष्ट शक्तियों का निर्माण करनेवाले हो। **विश्वस्य**=सब **स्थातुः जगतः**=स्थावर जंगम के **जनित्रीः**=विकास व प्रादुर्भाव को करनेवाले हो।

भावार्थ—जलों के ठीक प्रयोग से हमारा जीवन सुरक्षित शान्त व अभय बने। ये जल औषध हैं, माता के समान पुत्र-पौत्रों का हित करनेवाले हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सविता

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात्।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि॥ ८॥

(१) **नः**=हमारे लिये **देवः सविता**=यह प्रकाशमय, कर्मों में प्रेरित करनेवाला सूर्य **आजगम्यात्**=प्राप्त हो। जो सूर्य **त्रायमाणः**=हमारा रक्षण करता है। **हिरण्यपाणिः**=हितरमणीय हाथोंवाला है, अपने किरणरूप हाथों में स्वर्ण को लिये हुए है। **यजतः**=संगतिकरण योग्य है। (२) **यः**=जो सूर्य **दत्रवान्**=सब धनोंवाला है। **उषसः न प्रतीकम्**=उषा के मुख के समान है, उषा का प्रारम्भ करनेवाला है। उषा सूर्य का पूर्वाभास ही तो है। यह सूर्य **दाशुषे**=दाश्वान् के लिये, सूर्य के प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये, सूर्य के सम्पर्क में चलनेवाले के लिये **वार्याणि**=सब वरणीय स्वास्थ्य आदि धनों को **व्युर्णुते**=प्रकट करता है।

भावार्थ—सूर्य हमें रोगकृमियों के आक्रमण से बचाता है, इसकी किरणों में स्वर्ण है, यह हमारे लिये स्वास्थ्य आदि धनों को प्रकट करता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

दिव्यगुणों व वीरता की प्राप्ति

उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः।
स्याम॒हं ते॒ सद॒मिद्रा॒तौ तव॑ स्याम॒ग्नेऽव॑सा सु॒वीरः॥ ९॥

(१) **उत**=और हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज **अग्ने**=परमात्मन् **त्वम्**=आप **अद्या**=आज **नः**=हमारे **अस्मिन् अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में **देवान् आववृत्याः**=सब देवों को आवृत्त करिये, प्राप्त कराइये। हमारा जीवन आपके अनुग्रह से दिव्यगुण-सम्पन्न बने। (२) **अहम्**=मैं **सदं इत्**=सदा ही **ते**=आपके **रातौ**=दान में **स्याम्**=होऊँ, आपके दान का मैं सदा पात्र बनूँ। हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तव अवसा**=आपके रक्षण से मैं **सुवरिः**=उत्तम वीरतावाला व वीर सन्तानोंवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु हमारे जीवनयज्ञ को दिव्यगुणमय बनायें। प्रभु के दानों के हम पात्र बनें। प्रभु से रक्षित होते हुए हम सुवीर बनें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

महान् अन्धकार का विनाश

उत त्या मे॒ हव॒मा जग्म्यात॒ं नास॑त्या धी॒भिर्यु॒वमङ्ग॑ वि॒प्रा।
अत्रिं॒ न म॒हस्तम॑सोऽमुमुक्त॒ं तूर्व॑तं नरा दुरि॒ताद॒भीके॑॥ १०॥

(१) **उत्**=और हे **त्या**=वे प्रसिद्ध **नासत्या**=(न+असत्य) असत्यों को हमारे जीवनों से दूर करनेवाले प्राणापानो! **युवम्**=आप **विप्रा**=हमारा पूरण करनेवाले हो। आप **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक किये गये कर्मों के साथ **मे हवम्**=मेरी पुकार को **जग्म्यातम्**=प्राप्त होवो। जब मैं बुद्धिपूर्वक कर्मों को करता हुआ आपका आराधन करूँ, तो आप मेरी प्रार्थना को सुनो। (२) हे प्राणापानो! **अत्रिम् न**=जैसे आप 'काम-क्रोध-लोभ' तीनों से ऊपर उठे हुए व्यक्ति को **महः तमसः**=महान् अन्धकार से **अमुमुक्तम्**=मुक्त करते हो, उसी प्रकार हे **नरा**=हमें आगे ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **अभीके**=प्राप्त संग्राम में **दुरितात्**=पाप से **तूर्वतम्**=(तुर्व् to save) हमें बचाते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा (क) जीवन से अस्तय दूर होता है, (ख) जीवन का विशेषरूप से पूरण होता है, (ग) अन्धकार दूर होता है, (घ) दुरित से हम बच पाते हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युमतः वाजवतः (रायः)

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ११ ॥

(१) हे देवो! **ते**=वे आप **नः**=हमारे लिये **रायः**=धन के **दातारः**=देनेवाले **भूत**=होवो। जो धन **द्युमतः**=ज्ञान की ज्योतिवाला है, अर्थात् ज्ञानवृद्धि का साधन बनता है। **वाजवतः**=शक्तिवाला है, हमारी शक्तियों को बढ़ाता है। **नृवतः**=जो धन प्रशस्त मनुष्योंवाला है, जिस धन के कारण हमारे परिवार के सब व्यक्ति उत्तम जीवनवाले बनते हैं। **पुरुक्षोः**=जो धन बहुतों से कीर्तनीय है, अर्थात् जो धन लोकहित में विनियुक्त होकर हमारे जीवन को यशस्वी बनाता है। (२) हे **दिव्याः**=द्युलोक में होनेवाले, **पार्थिवासः**=(पृथिवी=अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक में होनेवाले, **गोजाताः**=इस पृथिवी पर प्रादुर्भूत हुए-हुए, **च**=और **अप्याः**=जलों में होनेवाले **देवाः**=देवो! आप **दशस्यन्तः**=हमारे लिये वरणीय धनों को देते हुए **मृडत**=हमें सुखी करिये। सब प्राकृतिक शक्तियाँ हमारे अनुकूल होती हुई हमारे लिये वरणीय धनों को प्राप्त करायें।

भावार्थ—हमें सब देव उस प्रशस्त धन को प्राप्त करायें जो 'ज्ञान, बल व यश' का साधन बने। सब देव अरणीय धन को देकर हमें सुखी करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अन्न का वर्धन

ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥ १२ ॥

(१) **ते**=वे सब देव **नः**=हमें **मृडन्तु**=सुखी करें। **रुद्रः**=सब दुःखों का द्रावण करनेवाला प्रभु, **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता, **विष्णुः**=व्यापकता व उदारता की देवता तथा **वायुः**=क्रियाशीलता की देवता (वा गतौ) ये सब **सजोषाः**=समान रूप से प्रीतिवाले होती हुईं **मीढुष्मन्तः**=हमारे लिये सुखों का वर्षण करनेवाले हो। 'प्रभु का उपासन, ज्ञान, उदार हृदयता तथा क्रियाशीलता' हमारे जीवन को सुखी बनायें। (२) **ऋभुक्षः**=ज्ञान दीप्ति में निवास करनेवाला, **वाजः**=शक्तिशाली, **दैव्यः विधाता**=दिव्यगुण-सम्पन्न निर्माण कर्ता पुरुष **नः**=हमारे लिये **इषम्**=प्रेरणा को **पिप्यताम्**=बढ़ायें। अर्थात् इन से प्रेरणा को प्राप्त करके हम भी ज्ञान दीप्त शक्तिशाली व दिव्य गुण सम्पन्न बनें तथा निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों। (३) तथा **पर्जन्यावाता**=मेघ व वायु हमारे लिये **इषम्**=उत्तम अन्न को **पिप्यताम्**=बढ़ानेवाले हों। मेघ व वायु (Monsoon winds) द्वारा उत्पन्न उत्तम अन्नों से हम अपने जीवनों को आप्यायित करनेवाले हों।

भावार्थ—'प्रभु का उपासन, ज्ञान, उदारता व क्रियाशीलता' हमारे जीवन को सुखी करें। हम 'ज्ञानी, शक्तिशाली, दिव्यगुण-सम्पन्न, निर्माण कार्य प्रवृत्त' पुरुषों के सम्पर्क में आएँ। मेघ व वायु से उत्पन्न किये गये अन्नों का सेवन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सम्पूर्ण वातावरण कल्याणमय हो

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥ १३ ॥

(१) **उत**=और **स्यः**=वह **देवः**=प्रकाशमय **सविता**=प्रेरक प्रभु **नः**=हमें **अवतु**=रक्षित करे। **भगः**=ऐश्वर्य का पुञ्ज प्रभु हमारा रक्षण करे। **दानु पप्रिः**=सब धनों का हमारे में पूरण करनेवाला **अपांनपात्**=शक्तियों को (आपः रेतो भूत्वा०) न नष्ट होने देनेवाला प्रभु हमारा रक्षण करे। (२) **जनिभिः**=सब अच्छाइयों को जन्म देनेवाले **देवेभिः**=दिव्यगुणों के साथ **त्वष्टा**=वह निर्माता प्रभु हमारा रक्षण करे। **देवेभिः सजोषाः**=सूर्यादि प्रकाशमय पिण्डों के साथ प्रीतिवाला होता हुआ **द्यौः**=यह द्युलोक हमारा रक्षण करे तथा **समुद्रैः**=सब समुद्रों के साथ **पृथिवी**=यह पृथिवी हमारा रक्षण करे।

भावार्थ—'प्रकाशमय-प्रेरक-शक्ति को न नष्ट होने देनेवाले' प्रभु हमारा रक्षण करें। दिव्यगुणों के विकास को करनेवाले निर्माता प्रभु हमारा कल्याण करें। दीप्त पिण्डों से युक्त द्युलोक हमारा कल्याण करे तथा समुद्र युक्त यह पृथिवी भी हमारा कल्याण करे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

अहिर्बुध्न्यः अज एकपात्

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु॥ १४॥

(१) **उत**=और **अहिर्बुध्न्यः**=अहीन युक्त (=आधार) वाला वह प्रभु **नः शृणोतु**=हमारी पुकार को सुने। **अजः**=गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाला प्रभु हमारी पुकार को सुने। **एकपात्**=अकेला ही गतिवाला, अपने कार्यों में औरों के साहाय्य की अपेक्षा न करनेवाला प्रभु हमारी प्रार्थना को सुने। (२) **पृथिवी**=यह पृथिवी **समुद्रः**=समुद्र **विश्वेदेवाः**=सब देव हमारा **अवन्तु**=रक्षण करें। **ऋतावृधः**=ऋत का वर्धन करनेवाले सब देव **हुवानाः**=पुकारे जाते हुए हमारा रक्षण करें तथा **कविशस्ताः**=उस महान् कवि प्रभु से उच्चारण किये गये **स्तुताः**=स्तुति में हमारे से उच्चारण किये जाते हुए **मंत्राः**=मन्त्र हमारा रक्षण करें।

भावार्थ—प्रभु से प्रेरणा के प्राप्त करके हम अपनी उन्नति के लिये व्यापक आधार वाले व गतिशील बनें। हम अपने में ऋत का वर्धन करें। प्रभु से उच्चरित वेद मन्त्रों को अपनाएँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

सच्चे उपासक

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः॥ १५॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **एवा**=इस प्रकार **तस्य मम**=उस मेरे **नपातः**=सन्तानरूप **भरद्वाजाः**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले ये उपासक **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों से तथा **अर्कैः**=स्तुति साधन मन्त्रों से **अभ्यर्चन्ति**=पूजन करते हैं। प्रभु का पूजन यज्ञादि कर्मों व स्तुतियों से होता है। (२) **विश्वे**=सब **यजत्राः**=यष्टव्य व पूजनीय देवो! आप **स्तुतासः**=स्तुति किये जाकर **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले व **अधृष्टाः**=शत्रुओं से अधर्षणीय **भूत**=होवो। आपके कारण हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं से अभिभूत न हों। **ग्नाः**=ये वेदवाणियाँ **हुतासः**=हमारे द्वारा ज्ञानाग्नि में आहुत की जाएँ। ये वेद वाणियाँ हमारी ज्ञानाग्नि को सुसमिद्ध करनेवाली हों।

भावार्थ—प्रभु के सच्चे पुत्र वे ही हैं जो बुद्धिपूर्वक कर्मों व स्तोत्रों से प्रभु स्तवन करते हैं। ये अपनी ज्ञानाग्नि में ज्ञान की वाणियों की आहुति देते हैं। दिव्य गुणों के द्वारा ये अपने निवास

को उत्तम व शत्रुओं से अधर्षणीय बना पाते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'ऋजिश्वा' है—

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'द्युलोक का भूषण' सूर्य

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम्।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत्॥ १॥

(१) सूर्य के प्रसंग में 'मित्र व वरुण' का भाव दिन व रात्रि से होता है। **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **चक्षुः**=प्रकाशक **महि**=महान्, विस्तृत **मित्रयोः वरुणयोः**=दिन-रात्रि के लिये **प्रियम्**=प्रीतिकर **अदब्धम्**=अहिंसित **शुचि**=शुद्ध **दर्शतम्**=दर्शनीय **ऋतस्य अनीकम्**=(ऋ गतौ) आदित्य का तेज **आ उदेति**=सब के अभिमुख उदित होता है, सूर्य के इस तेज के कारण ही दिन व रात्रि का होना होता है। यह सूर्य का तेज रोगकृमियों का संहार करता हुआ हमें हिंसित नहीं होने देता, सो 'अदब्ध' है। नीरोगता को उत्पन्न करनेवाला यह तेज 'शुचि' है। (२) **उदिता**=उदय होने पर **दिवः रुक्मः न**=द्युलोक के स्वर्ण भूषण के समान यह **व्यद्यौत्**=चमकता है। सूर्य द्युलोक का भूषण ही प्रतीत होता है।

भावार्थ—सूर्य का तेज अत्यन्त प्रीतिकर व हमें न हिंसित होने देनेवाला है। यह उदय हुआ-हुआ सूर्य द्युलोक का भूषण ही प्रतीत होता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

विप्रः

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥ २॥

(१) सूर्य द्युलोक को प्रकाशित करता है। ज्ञानी पुरुष मनुष्यों को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराता है। **यः**=जो **त्रीणि विदथानि**='ज्ञान, कर्म व उपासना' रूप तीनों ज्ञेय वस्तुओं को **वेद**=जानता है। **च**=और **एषां देवानाम्**=इन सूर्य-चन्द्र आदि देवों के **सनुतः**=अन्तर्हित-अप्रज्ञायमान **जन्म**=उत्पत्ति को (वेद) जानता है। यह पुरुष **विप्रः**=ज्ञानी है। ज्ञानी पुरुष प्रकृति से बने इन सूर्य-चन्द्र आदि देवों के जन्म को तो जानता ही है, यह जीव के कर्त्तव्यभूत 'ज्ञान, कर्म व उपासना' को भी जाननेवाला होता है। (२) यह **सूरः**=ज्ञान के प्रकाश से सूर्य के समान चमकनेवाला **अर्यः**=जितेन्द्रिय पुरुष **मर्तेषु**=मनुष्यों में **ऋजु**=सरल कर्मों को **च**=व **वृजिना**=कुटिल कर्मों को **पश्यन्**=देखता हुआ **एवान्**=गन्तव्य मार्गों को **अभिचष्टे**=प्रकाशित करता है। पुण्य-पाप का विवेचन करता हुआ यह ज्ञानी पुरुष गन्तव्य मार्गों का उपदेश करता है।

भावार्थ—विप्र वह है जो (क) जीव के लिये 'ज्ञान, कर्म, उपासना' का ज्ञान प्राप्त करता है, (ख) सूर्य आदि देवों के जन्म को समझता है, (ग) पुण्य-पाप का विवेक कर पाता है, (घ) गन्तव्य मार्गों का उपदेश देता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋतस्य गोपान्-सुजातान्-सधन्यः पावकान्

स्तुष उ॑ वो म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पानदि॑तिं मि॒त्रं वरु॑णं सुजा॒तान्।
अ॒र्य॒मणं॒ भगमद॑ब्धधीती॒नच्छा॑ वोचे सध॒न्यः॑ पाव॒कान्॥ ३॥

(१) हे देवो! **महः ऋतस्य गोपान्**=महान् ऋत के रक्षक **वः**=तुम्हें **स्तुषे उ**=स्तुत करता ही हूँ। वे दिव्य भावनाएँ जो मेरे जीवन में ऋत की जो भी ठीक है उसकी रक्षा करती हैं, उनका मैं स्तवन (=शंसन) करता हूँ। **अदितिम्**=अदीना देवमाता का दिव्य गुणों को जन्म देनेवाले स्वास्थ्य को, **मित्रम्**=स्नेह की देवता को, **वरुणम्**=द्वेष के निवारण-निर्द्वेषता की देवता को स्तुत करता हूँ। इन सब देवों को जो **सुजातान्**=उत्तम विकासवाले हैं, मैं प्रशंसित करता है। इन्हें धारण करने के लिये यत्नशील होता हूँ। (२) **अदब्धधीतीन्**=अहिंसित कर्मोंवाले, **अर्यमणम्**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध आदि का नियमन करनेवाले देवों को तथा **भगम्**=ऐश्वर्य की देवता को **अच्छा**=लक्ष्य करके **वोचे**=स्तुति-वचनों का उच्चारण करता हूँ। **सधन्यः**=धनसहित **पावकान्**=पवित्र करनेवाले सब देवों का मैं स्तवन करता हूँ, इन सब दिव्य भावनाओं को धारण करने के लिये यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—मैं ऋत के रक्षक, उत्तम विकास के कारणभूत, धनसहित, पवित्र करनेवाले सब दिव्यभावों को धारण करने के लिये यत्नशील होता हूँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दुवोयु यामि

रि॒शाद॑सः॒ सत्प॑तीँ॒रद॑ब्धान्म॒हो राज्ञः॑ सुवस॒नस्य॑ दा॒तॄन्।
यू॒नः सु॒क्ष॒त्रान्क्षय॑तो दि॒वो नॄनादि॒त्यान्या॒म्यदि॑तिं दुवो॒यु॥ ४॥

(१) **रिशादसः**=हमारा हिंसन करनेवाले (रिश) शत्रुओं को (काम-क्रोध आदि को) खा जानेवाले, **सत्पतीन्**=सद्गुणों के रक्षक, **अदब्धान्**=अहिंसित, **महः राज्ञः**=महान् दीप्तिवाले, **सुवसनस्य दातॄन्**=उत्तम निवास को देनेवाले देवों की मैं **यामि**=याचना करता हूँ। इन दिव्यभावों को प्राप्त करने के लिये चाहता हूँ। (२) **यूनः**=बुराइयों को दूर करनेवाले व अच्छाइयों को मिलानेवाले, **सुक्षत्रान्**=उत्तम बलवाले, **क्षयतः**=ऐश्वर्यशाली (क्षयतिरैश्वर्यकर्मा), **दिवः नॄन्**=प्रकाश की ओर ले जानेवाले, **आदित्यान्**=सब सद्गुणों का आदान करनेवाले, **अदितिं (अ-अदितिं)**=दिव्यगुणों की आधारभूत स्वास्थ्य की देवता को **दुवोयु**=परिचरण की कामनावाला होता हुआ (यामि) माँगता हूँ, इन सब दिव्यगुणों के धारण के लिये यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—बुराइयों के नाशक व अच्छाइयों के रक्षक सब सद्गुणों को प्राप्त करने के लिये मैं यत्नशील होता हूँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पिता-माता-भ्राता

द्यौ३॒ष्पि॒तः पृ॑थिवि॒ मा॒तर॒ध्रुग॒ग्ने भ्रा॑तर्वसवो मृ॒ळता॑ नः।
विश्व॑ आदित्या अदिते स॒जोषा॑ अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ बहु॒लं वि य॑न्त॥ ५॥

(१) हे **पितः द्यौः**=पितृ स्थानापन्न द्युलोक, **अधुक्**=किसी प्रकार से द्रोह न करनेवाली

मातः पृथिवि=मातृ स्थानापन्न पृथिवि, **भ्रातः अग्ने**=भ्रातृ स्थानीय अग्नि देव! तथा **वसवः**=निवास को उत्तम बनानेवाले वसुओ! आप सब **नः मृडत**=हमारे जीवन को सुखी करें। (२) **विश्वे आदित्याः**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले दिव्ये भावो! तथा **अदिते**=अदीन **देवमातः**=दिव्यगुणों की जननी स्वास्थ्य देवते! आप सब **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **बहुलं शर्म**=अधिक सुख **वियन्त**=प्राप्त कराओ।

भावार्थ—द्युलोक हमारा पिता हो, पृथिवी माता बने तथा अग्नि भ्राता हो। निवास को उत्तम बनानेवाले सब देव हमें सुखी करें। सब दिव्यभावनाएँ व स्वास्थ्य हमें उत्तम सुखयुक्त करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बल व ज्ञान के प्रापक देव

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव॥ ६॥

(१) हे **यजत्रा**=यष्टव्य-पूज्य देवो! आप **नः**=हमें **समस्मो**=सब **वृकाय**=हिंसा की वृत्तिवाले पुरुषों के लिये तथा **वृक्ये**=हिंसा वृत्तिवाली स्त्रियों के लिये **मा रीरधत**=वशीभूत मत करिये। **अघायते**=हमारे लिये **अघ**=अशुभ की कामनावाले के लिये हमें वशीभूत मत करिये। (२) **यूयम्**=आप सब **हि**=ही **नः**=हमारे **तनूनाम्**=शरीरों के **रथ्यः**=नेता, उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **ष्ठा (स्थ)**=हैं। तथा **यूयम्**=आप हमारे लिये **दक्षस्य**=बल के तथा **वचसः**=ज्ञान की वाणियों के (रथ्यः) प्रणेता **बभूव**=होते हो।

भावार्थ—सब देव हमें हिंसक वृत्तिवाले व अशुभ की कामनावाले स्त्री-पुरुषों के वशीभूत होने से बचायें। ये सब देव हमारे शरीरों के सारथि बनें। हमारे लिये बल व ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

(पापी अपने आप से नष्ट हो)

मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट॥ ७॥

(१) हे **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले देवो! **वः**=आपके उपासक हम **अन्यकृतम्**=दूसरे से किये हुए **एनः**=पाप को **मा भुजेम**=मत भोगें। अर्थात् दूसरों से किये जानेवाले पापकर्मों के शिकार न हो जाएँ। **यत्**=जिस पाप कर्म से (येन सा०) **चयध्वे**=आप हिंसित करते हो, **तत्**=उस पाप कर्म को **मा कर्म**=हम मत करें। जिन कर्मों के द्वारा हम हिंसित होते हैं, उनसे हम बचें। (२) हे **विश्वदेवाः**=सब देवो! आप **हि**=ही **विश्वस्य क्षयथ**=सब के स्वामी हो। **रिपुः**=औरों का विदारण करनेवाला शत्रु **स्वयम्**=अपने आप **तन्वम्**=अपने शरीर को **रिरिषीष्ट**=हिंसित करनेवाला हो।

भावार्थ—दूसरों के पाप कर्मों के हम शिकार न हों। जिन कर्मों का परिणाम विनाश है, उनसे हम बचें। पापी स्वयं अपना विनाश करनेवाला है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नमन की महिमा

नम॒ इदु॒ग्रं नम॒ आ वि॑वासे॒ नमो॑ दाधार पृथि॒वीमु॒त द्याम्।
नमो॑ दे॒वेभ्यो॒ नम॑ ईश ए॒षां कृ॒तं चि॒देनो॒ नम॒सा वि॑वासे॥ ८॥

(१) **नम इत्**=नमन ही **उग्रम्**=अत्यन्त तेजस्वी है। प्रभु के प्रति नमन उपासक को तेजस्विता प्रदान करता है **नमः आविवासे**=मैं इस नमन का ही पूजन करता हूँ, इस नमन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। **नमः**=नमन ही **पृथिवीम्**=पृथिवी को **उत**=और **द्याम्**=द्युलोक को **दाधार**=धारण करता है। प्रभु पूजन ही संसार का धारक है, इससे ही हमारे शरीर व मस्तिष्क (पृथिवीलोक व द्युलोक) ठीक बने रहते हैं। (२) **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये **नमः**=मैं नमस्कार करता हूँ। **नमः**=नमन ही **एषाम्**=इन देवों का **ईशे**=ईश है। नमन ही इन सब देवों को हमारे जीवन में लानेवाला है। **नमसा**=नमन के द्वारा **कृतं चित् एनः**=किये हुए पापों को भी **आविवासे**=(परिवर्जयामि) अपने से दूर करता हूँ, विनष्ट करता हूँ। जो पाप आदत के रूप में परिवर्तित हो गये थे उन्हें भी नमन के द्वारा अपने से दूर कर पाता हूँ।

भावार्थ—प्रभु नमन हमें तेजस्वी बनाता है। दिव्यगुणों को यह नमन प्राप्त कराता है और पाप प्रवृत्ति को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋतस्थ रथ्यः-ऋतस्य पस्त्यसदः (यज्ञशील)

ऋ॒तस्य॑ वो र॒थ्यः॑ पूतद॑क्षानृ॒तस्य॑ पस्त्य॒सदो॒ अद॑ब्धान्।
ताँ आ नमो॑भिरुरु॒चक्ष॑सो॒ नृन्वि॒श्वान्व॒ आ न॑मे म॒हो य॑जत्राः॥ ९॥

(१) हे देवो! **ऋतस्य**=यज्ञों के **रथ्यः**=प्रणेता **वः**=आपको **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा **आनमे**=प्रणाम करता हूँ, नमस्कारों के द्वारा आपका पूजन करता हूँ। उन आपका पूजन करता हूँ जो आप **पूतदक्षान्**=पवित्र बलवाले हैं। **ऋतस्य पस्त्यसदः**=यज्ञ के गृहों में निवास करनेवाले हैं, सतत यज्ञशील हैं और **अदब्धान्**=वासनाओं से हिंसित होनेवाले नहीं हैं। (२) **तान्**=उन आपको मैं **आ**=(नमे) नमस्कृत करता हूँ जो **उरुचक्षसः**=विशाल दृष्टिकोणवाले हैं, **नॄन्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं। हे **महः**=महान् **यजत्राः**=पूजनीय देवो! **वः**=आप **विश्वान्**=सबको मैं पूजित करता हूँ। इन देवों का आदर करते हुए हम भी अपने जीवनों को इसी प्रकार का बनाते हैं।

भावार्थ—हम उन देवों का आदर करते हैं जो यज्ञों के प्रणेता हैं, पवित्र बलवाले हैं, वासनाओं से हिंसित नहीं होते। जो देव विशाल दृष्टिकोणवाले, हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले व महनीय-पूजनीय हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरुण-मित्र-अग्नि

ते हि श्रे॒ष्ठव॑र्चस॒स्त उ॑ नस्ति॒रो विश्वा॑नि दुरि॒ता नय॑न्ति।
सु॒क्ष॒त्रासो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निर्ऋ॒तधी॑तयो वक्म॒राज॑सत्याः॥ १०॥

(१) **ते**=वे **हि**=ही देव **श्रेष्ठवर्चसः**=उत्तम वर्चस्वाले हैं। गत मन्त्र के अनुसार 'पूतदक्ष'

हैं। **ते**=वे **उ**=ही **नः**=हमें **विश्वानि दुरिता**=सब दुरितों के **तिरः नयन्ति**=पार ले जाते हैं। (२) जो देव **सुक्षत्रासः**=उत्तम बलवाले हैं। **वरुणः**=पापों व द्वेषों का निवारण करनेवाले, **मित्रः**=सब के साथ स्नेह से चलनेवाले, प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाले, **अग्निः**=आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। **ऋतधीतयः**=सत्यकर्मा हैं तथा **वक्मराजसत्याः**=(वक्त=वचनं) ज्ञान की वाणियों के राजा-ज्ञान की वाणियों से दीप्त तथा सत्यमय हैं।

भावार्थ—श्रेष्ठ वर्चस् देवों का आदर करते हुए हम भी श्रेष्ठ वर्चस् बनें। हम निर्द्वेष सबके साथ स्नेह करनेवाले, प्रगतिशील हों, सत्य कर्मोंवाले, ज्ञानदीप्त व सत्य का पालन करनेवाले हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुत्रात्रासः-सुगोपः

ते नु इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः॥ ११॥

(१) **ते**=वे सब देव **नः**=हमारे **क्षाम**=निवास भूमिभूत इस शरीर को **वर्धन्**=बढ़ानेवाले हों। **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु, **पृथिवी**=यह मातृतुल्य भूमि, **पूषा**=पोषण को करनेवाला सूर्य, **भगः**=ऐश्वर्य की देवता, **अदितिः**=सब दिव्यगुणों को जन्म देनेवाला स्वास्थ्य (अ-'दिति'=खण्डन) तथा **पञ्चजनाः**=समाज के अवयभूत पाँचों प्राणों का विकास करनेवाले मनुष्य हमारे इस निवास-स्थानभूत शरीर का वर्धन करें। (२) **सुशर्माणः**=उत्तम सुख को देनेवाले, **स्ववसः**=उत्तम अन्नोंवाले, **सुनीथाः**=उत्तम मार्गों पर ले चलनेवाले देव **नः**=हमारे लिये **सुत्रात्रासः**=सम्यक् तथा शत्रुओं के आक्रमण से हमें बचानेवाले तथा **सुगोपाः**=रोग-कृमि शत्रुओं की उत्पत्ति के निरोध से हमारा गोपन करनेवाले **भवन्तु**=हों।

भावार्थ—सब देवों व प्रभु की कृपा से हमारा यह निवास-स्थानभूत शरीर रोगों व वासनाओं के आक्रमण से आक्रान्त न हो।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'दिव्य सद्म' तथा 'सुमति'

नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द॥ १२॥

(१) हे **देवाः**='माता, पिता, आचार्य, अतिथि' रूप देवो! **भारद्वाजः**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाला यह उपासक **नु**=निश्चय से शीघ्र ही **दिव्यं सद्मानम्**=दिव्य सद्म को **नंशि**=प्राप्त हो। 'दिव्य सद्म', अर्थात् प्रकाशमय घर को यह प्राप्त करनेवाला हो। हे देवो! **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला यह भारद्वाज **सुमतिं याति**=कल्याणी मति को प्राप्त करता है। (२) **आसानेभिः**=समीप बैठे हुए **मियेधैः**=पवित्र लोगों के साथ **यजमानः**=यज्ञ करता हुआ यह **वसूयुः**=वस्तुओं की प्राप्ति की कामनावाला उपासक **देवानां जन्म**=दिव्यगुणों के जन्म व विकास को **ववन्द**=स्तुत करता है। दिव्यगुणों के विकास की ही प्रशंसा करता है। इस प्रकार इस दिव्यगुणों के विकास को प्रशंसित करता हुआ इन दिव्य गुणों के धारण के लिये ही यत्नशील होता है।

भावार्थ—हम 'उत्तम माता, पिता, आचार्य व अतिथियों' की कृपा से अपने गृह को प्रकाशमय बना पायें। हम सुमति को प्राप्त होनेवाले हों। दिव्यगुणों का अपने में विकास कर पायें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'वृजिन रिपु-दुराध्य स्तेन' से दूर

अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्। दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्॥ १३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **त्यम्**=उस **वृजिनम्**=कुटिल, **रिपुम्**=पापकारी **स्तेनम्**=चोरी की वृत्तिवाले **दुराध्यम्**=दुष्टाभिप्राय पुरुष को **दविष्ठम्**=बहुत ही दूर **अप अस्य**=हमारे से परे फैंकिये। ऐसे व्यक्ति से हमारा किसी प्रकार का सम्पर्क न हो। (२) हे **सत्पते**=सज्जनों के रक्षक प्रभो! आप हमारे लिये **सुगं कृधि**=उत्तमता से जाने योग्य मार्ग को करिये। (शोभनतया गन्तव्यं सुगम्)।

भावार्थ—हम प्रभु के अनुग्रह से कुटिल दुष्टाभिप्राय पुरुषों से बचे रहकर शोभन मार्ग पर चलनेवाले हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

ज्ञानियों के समीप

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः। जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः॥ १४॥

(१) हे **सोम**=शान्त प्रभो! **ग्रावाणः**=ज्ञान की वाणियों का उपदेश करनेवाले ये स्तोता लोग **हि**=ही **नः कम्**=हमारे सुख के लिये हों। ये हमारे लिये **सखित्वनाय**=मित्रभाव के लिये **वावशुः**=कामना करें। इन ज्ञानी प्रभु-भक्तों के साथ ही सदा हमारी मित्रता हो। (२) हे प्रभो! आप **अत्रिणम्**=इस हमें खा जानेवाले वासनारूप शत्रु को **निजहि**=नष्ट कर दीजिये। **पणिम्**=इस केवल सांसारिक व्यवहार की बातों को करनेवाले कृपण व्यक्ति को समाप्त करिये। **सः**=वह **हि**=निश्चय से **वृकः**=अत्यन्त लोभी है, आदान ही आदान की वृत्तिवाला है। इसने देना तो सीखा ही नहीं।

भावार्थ—हमारी मित्रता ज्ञानी स्तोताओं के साथ हो। वासनामय कृपण लुब्ध पुरुषों से हम दूर रहें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

अन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः। कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा॥ १५॥

(१) हे देववृत्ति के पुरुषो! **यूयम्**=आप **हि**=निश्चय से **सुदानवः**=अच्छी प्रकार वासनाओं का लवन (दाप् लवने) करनेवाले **स्थ**=हो। **इन्द्रज्येष्ठाः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु ही आपका ज्येष्ठ है, उसी की आप उपासना करते हैं। **अभिद्यवः**=आप अभिगत दीप्तिवाले हो, ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करनेवाले हो। (२) आप **अमा**=हमारे साथ होते हुए **अध्वन्**=इस जीवनमार्ग में **नः गोपाः**=हमारे रक्षक होते हो और हमारे लिये **सुगं कर्ता**=शोभनतया गन्तव्य मार्ग को करते हैं।

भावार्थ—देव पुरुष प्रभु को ज्येष्ठ माननेवाले व दीप्त जीवनवाले होते हैं। हमारे लिये ये जीवनमार्ग में रक्षक हों, हमें उत्तम मार्ग से ले चलें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

निर्द्वेषता के मार्ग पर

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्। येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥ १६॥

(१) हम **पन्थां अपि अगन्महि**=उस मार्ग को अपिगत (प्राप्त) होते हैं जो **स्वस्तिगाम्**=कल्याण की ओर ले जानेवाला है तथा **अनेहसम्**=पापशून्य है। (२) उस मार्ग से चलते हैं **येन**=जिससे **विश्वाः द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **परिवृणक्ति**=परिवर्जित करता है और **वसु विन्दते**=निवास के लिये आवश्यक धन को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हमारा मार्ग कल्याण की ओर ले जानेवाला, निष्पाप, निर्द्वेष व वसुप्रापक हो।

अगला सूक्त भी 'ऋजिश्वा' ऋषि का है—

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अतियाजस्य यष्टा

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा॥ १॥

(१) प्रभु कहते हैं कि मैं **न अनुमन्ये**=इस बात की स्वीकृति नहीं दे सकता कि **अतियाजस्य यष्टा**=अतिशयेन दानरूप यज्ञ का करनेवाला यह दाता **तद्दिवा निहीयताम्**=उस मस्तिष्करूप द्युलोक से हीन हो। इसका मस्तिष्क तो उत्तम ही होता है। इसी प्रकार मैं यह अनुमति **न**=नहीं दे सकता कि वह **पृथिव्या**=शरीररूप पृथिवी से (निहीयताम्=) हीन हो जाये। इसका शरीर भी बड़ा स्वस्थ रहता है। यह **यज्ञेन न**=(निहीयताम्) यज्ञों से भी हीन न हो। **उत**=और **न**=नांही **आभिः शमीभिः**=इन उत्तम कर्मों से हीन हों। (२) **तम्**=उस अतियाज के यष्टा के प्रति **सुभ्वः**=ये उत्तम भूमियाँ तथा **पर्वतासः**=पर्वत भी **उब्जन्तु**=(be subdued), वशीभूत हुए-हुए हों। उसके प्रति ये सब अनुकूलतावाले हों।

भावार्थ—हम खूब दानशील हों। प्रभु इस दानशील को उत्तम मस्तिष्क व शरीरवाला तथा यज्ञशील व उत्तम कर्म-परायण बनाते हैं। इसके प्रति पर्वत व भूमियाँ सब अनुकूलतावाली होती हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'अतिमान' व 'स्तवन-निन्दा'

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात्।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः॥ २॥

(१) **यः**=जो पुरुष हे **मरुतः**=मनुष्यो! **नः**=हमारे में से **अतिमन्यते**=अतिमान करता है, गर्व करता है। **वा**=या **क्रियमाणम्**=किये जाते हुए **ब्रह्म**=ज्ञानपूर्वक स्तवन को **निनित्सात्**=निन्दित करे। **तस्मै**=उसके लिये **वृजिनानि**=उसके ये पाप ही **तपूंषि सन्तु**=सन्ताप कर हों। 'अतिमान करना व प्रभु स्तवन का उपहास करना' ये ऐसे पाप हैं जो उसके कर्ता के लिये सन्तापजनक होते हैं। (२) **तम्**=उस **ब्रह्मद्विषम्**=ज्ञान के प्रति अप्रीतिवाले पुरुष के लिये **द्यौः**=यह देदीप्मान आदित्य **अभिशोचतु**=सन्ताप का कारण हो। अथवा यह सारा आकाश इसके शोक को पैदा करनेवाले हो।

भावार्थ—न तो हम अतिमान करें, नांही ज्ञानपूर्वक स्तवन की निन्दा करें ये पाप हमारे सन्ताप का कारण बनेंगे।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

ब्रह्मद्विट् का संहार

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥

(१) हे **अंगः**=गतिशील **सोम**=शान्त प्रभो! **किम्**=और क्या, **त्वा**=आपको ही तो **ब्रह्मणः**=ज्ञान के **गोपाम्**=रक्षक **आहुः**=कहते हैं। हे **अंग**=गतिशील प्रभो! **किम्**=और क्या, **त्वा**=आपको ही **नः**=हमारा **अभिशस्तिपाम्**=वासनाओं के आक्रमण से, निन्दनीय कर्मों से बचानेवाला कहते हैं (अभिशस्ति attack)। (२) हे **अंग**=गतिशील प्रभो! **किम्**=क्यों आप **निद्यमानान्**=निन्दनीय होते हुए **नः**=हमें **पश्यसि**=देखते हैं। **ब्रह्मद्विषे**=ज्ञान के विरोधी व्यक्ति के लिये **तपुषिं हेतिम्**=संतापक अस्त्र को **अस्य**=फेंकिये, ज्ञान से अप्रीति करनेवाले को विनष्ट करिये।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान के रक्षक हैं। प्रभु ही हमें निन्दनीय कर्मों को आक्रमण से बचाते हैं।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

यज्ञिय जीवन

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥

(१) **जायमानाः**=प्रादुर्भूत होती हुई **उषसः**=उषाएँ **मा अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। **पिन्वमानाः**=जलों से वृद्धि को प्राप्त करती हुईं **सिन्धवः**=ये नदियाँ **आ अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। ये **ध्रुवासः**=अपने स्थान पर निश्चल **पर्वतासः**=पर्वत **मा अवन्तु**=मुझे रक्षित करें। सदा सब पदार्थ मेरी अनुकूलतावाले हों। (२) इस अनुकूल परिस्थिति में **देवहूतौ**=दिव्यगुणों के आह्वान के स्थानभूत यज्ञों में **पितरः**=पितर **मा अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। माता, पिता, आचार्यों द्वारा ऐसी परिस्थिति पैदा की जाये कि मैं प्रारम्भ से ही यज्ञिय वृत्तिवाला बनूँ। इस वृत्ति के द्वारा मेरे में सद्गुणों का विकास हो।

भावार्थ—उषाएँ, नदियाँ, पर्वत सब हमारा कल्याण करनेवाले हों। माता, पिता, आचार्य हमें यज्ञिय जीवनवाला बनायें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

सुमनसः स्याम

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥ ५ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार पितरों से पवित्र जीवनवाले बनाये जाते हुए हम **विश्वदानीम्**=सदा **सुमनसः**=उत्तम मनवाले **स्याम**=हों। हम सदा **उच्चरन्तम्**=उदय होते हुए **सूर्यम्**=सूर्य को **नु**=निश्चय से **पश्येम**=देखें। इस उदय होते हुए सूर्य की किरणों के सेवन से जहाँ रोगकृमियों के आक्रमण से अपने को बचाएँ, वहाँ इस सूर्य से निरन्तर गतिशीलता की प्रेरणा लेकर दीप्त जीवनवाले बनें। (२) **वसूनां वसुपतिः**=सब वसुओं के (धनों के) पति प्रभु **तथा करद्**=वैसी

कृपा करें कि **देवान्**=दिव्यगुणों को प्राप्त कराते हुए **ओहानः**=विद्या की कामनावाले शिष्यों का पालन करते हुये वे प्रभु **अवसा**=रक्षण के हेतु से **आगमिष्ठः**=हमें अधिक से अधिक समीपता से प्राप्त होनेवाले हों।

भावार्थ—हम सदा प्रसन्न मनवाले हों। उदय होते हुए सूर्य से गतिशीलता व दीप्ति की प्रेरणा लें। प्रभु के अनुग्रह से दिव्यगुणों को प्राप्त करें तथा प्रभु से रक्षणीय हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'इन्द्र, सरस्वती, पर्जन्य व अग्नि'

इन्द्रो॒ नेदि॑ष्ठमव॒सागमि॑ष्ठः सर॑स्वती॒ सिन्धु॑भिः पिन्व॑माना।
प॒र्जन्यो॑ न॒ ओष॑धीभिर्मयो॒भुर॒ग्निः सु॒शंस॑ः पि॒तेव॑॥ ६॥

(१) **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला वह प्रभु **अवसा**=रक्षण के हेतु से **नेदिष्ठम्**=अधिक से अधिक सभी **आगमिष्ठः**=प्राप्त हों। **सिन्धुभिः**=ज्ञान जलधाराओं से **पिन्वमाना**=वृद्धि को प्राप्त होती हुई **सरस्वती**=यह ज्ञान की अधिष्ठातृ देवता हमें रक्षण के हेतु से समीपता से प्राप्त हो। (२) **पर्जन्यः**=यह मेघ **ओषधीभिः**=ओषधि वनस्पतियों के द्वारा **नः**=हमारे लिये **मयोभुः**=कल्याण का भावन करनेवाला हो। **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **पिता इव**=पिता की तरह हमारे लिये **सुशंसः**=उत्तम बातों का शंसन करनेवाला हो और **सुहवः**=सुगमता से आह्वातव्य हो। पिता जिस प्रकार पुत्र से सुगमता से पुकारने योग्य होता है उसी प्रकार हमारे लिये प्रभु सुगमता से आह्वातव्य हों। पिता पुत्र को उत्तम मार्ग का उपदेश देता है, प्रभु हमारे लिये इस उत्तम मार्ग की प्रेरणा देनेवाले हों।

भावार्थ—शत्रुविद्रावक प्रभु तथा ज्ञानजलपूर्ण सरस्वती हमारा रक्षण करें। मेघ हमें ओषधियों को प्राप्त कराये तथा अग्नि हमें उत्तम प्रेरणा दे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

विश्वे देवासः

विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मं ह॒वम्। एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत॥ ७॥

(१) **विश्वे देवासः**=हे सब देवो! आप **आगत**=आवो। सब दिव्यगुण मेरी ओर आनेवाले हों। **मे**=मेरी **इमं हवम्**=इस पुकार को **शृणुत**=सुनो। मेरी यह प्रार्थना अवश्य सुनी जाये कि मुझे दिव्य गुणों की प्राप्ति हो। (२) **इदम्**=इस **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय में **आनिषीदत**=समन्तात् आसीन होइये। मेरा यह वासनाशून्य हृदय दिव्यगुणों का अधिष्ठान बने।

भावार्थ—सब दिव्यगुण मेरे से प्रार्थनीय होकर मेरे वासनाशून्य हृदय में स्थित हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

सात्त्विक भोजन, ज्ञान व दिव्यगुणों की प्राप्ति

यो वो॑ देवा घृतस्नु॒ना ह॒व्येन॑ प्रति॒भूष॑ति। तं विश्व॒ उप॑ गच्छथ॥ ८॥

(१) हे **देवाः**=दिव्य गुणो! **यः**=जो **वः**=आपको **घृतस्नुना**=ज्ञानदीप्ति को जीवन में क्षरित करनेवाले **हव्येन**=हव्य पदार्थों के सेवन से **प्रतिभूषति**=अपने अन्दर अलंकृत करना चाहता है, **तम्**=उसको **विश्वे**=आप सब उपगच्छथ=प्राप्त होते हो। (२) आहार की शुद्धि के होने पर सत्व (अन्तःकरण) की शुद्धि होती है। इस शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। ज्ञान

के प्रकाश में सब दिव्यगुणों की प्राप्ति होती है। इसीलिए यहाँ हव्य को, सात्त्विक यज्ञशेषरूप में सेवित अन्न को घृतस्नु कहा है, ज्ञान को प्राप्त करानेवाला।

भावार्थ—हम हव्य पदार्थों का सेवन करें, उससे ज्ञान दीप्ति प्राप्त होगी और हम सब दिव्य गुणों के अधिष्ठान बन पायेंगे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानरुचि सन्तानें

उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृ॒ण्वन्त्वमृ॑तस्य॒ ये। सु॒मृ॒ळी॒का भ॑वन्तु नः॥ ९॥

(१) **ये नः सूनवः**=जो हमारे सन्तान हैं वे **उप**=आचार्यों के समीप स्थित हुए-हुए **अमृतस्य**=उस अमर प्रभु की **गिरः**=वाणियों को **शृण्वन्तु**=सुनें। इस प्रकार हमारे सन्तान सदा ज्ञान की रुचिवाले हों। (२) ये ज्ञान रुचि सन्तान **नः**=हमारे लिये **सुमृडीकाः**=उत्तम सुख को देनेवाले **भवन्तु**=हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे सन्तान ज्ञान की रुचिवाले हों और हमारे जीवनों को सुखी करें। मूर्ख सन्तान ही तो दुःख का कारण बनती है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

युज्यं पयः

विश्वे॑ दे॒वा ऋ॒ताव॑धं ऋ॒तुभि॑र्हवन॒श्रुतः॑। जु॒ष॒न्ता॒ युज्यं॒ पयः॑॥ १०॥

(१) **विश्वे देवाः**=सब देव वृत्ति के पुरुष **ऋतावृधः**=ऋत का वर्धन करनेवाले होते हैं, ये यज्ञिय जीवनवाले बनते हैं। **ऋतुभिः**=समयानुसार **हवनश्रुतः**=गुरुओं के आह्वान को सुननेवाले होते हैं (उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् अ०)। (२) ये देववृत्ति के पुरुष **युज्यं पयः**=प्रभु के साथ सम्पर्क करानेवाले ज्ञानदुग्ध का **जुषन्ताम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। आचार्यों के समीप बैठकर उस ज्ञान को प्राप्त करें जो प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'स्तवन' तथा 'हव्य पदार्थों का ही सेवन'

स्तो॒त्रमिन्द्रो॑ म॒रुद्ग॑ण॒स्त्वष्टा॒मन्मि॒त्रो अ॑र्य॒मा। इ॒मा ह॒व्या जु॑षन्त नः॥ ११॥

(१) **मरुद्गणः**=प्राणों के गणवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **स्तोत्रम्**=स्तोत्र का सेवन करे। प्राणायाम को करता हुआ जितेन्द्रिय पुरुष प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला हो। (२) प्रभु आदेश देते हैं कि **त्वष्टृमान्**=उस निर्माता प्रभुवाला, अर्थात् प्रभु की उपासना करनेवाला, **मित्रः**=सब के प्रति स्नेहवाला, **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध-लोभरूप शत्रुओं का नियमन करनेवाला **नः**=हमारे **इमा हव्या**=इन हव्य पदार्थों का **जुषन्त**=सेवन करें। सदा सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करें, उनको भी यज्ञशेष के रूप में ग्रहण करें। यज्ञशेष ही तो अमृत है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा जितेन्द्रिय बनकर हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु की उपासना करते हुए, स्नेह से वर्तते हुए, काम आदि को वशीभूत करते हुए हम हव्य पदार्थों का ही सेवन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यज्ञशीलता व देवत्व

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज। चिकित्वान्दैव्यं जनम्॥ १२॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **होतः**=(हुदाने) सब आवश्यक उपकरणों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे **इमं अध्वरम्**=इस यज्ञ को **वयुनशः**=ज्ञान के क्रम से **यज**=हमारे साथ संगत करिये। जितना-जितना ज्ञान अधिक हो, उतना-उतना हमारा जीवन यज्ञमय बनता चले। (२) हे प्रभो! आप इस **दैव्यं जनम्**=(देव एव दैव्यः) देव वृत्तिवाले पुरुष को **चिकित्वान्**=(जानन्) जाननेवाले होइये, अर्थात् इसका पूरा ध्यान करिये। यह आप से रक्षित हुआ-हुआ अपने देवत्व को अधिक विकसित करनेवाला बने।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान देते हुए हमें यज्ञशील बनायें। हमारा रक्षण करते हुए हमें देवत्व के विकास में समर्थ करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राकृतिक देव व सामाजिक देव

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम्॥ १३॥

(१) वे **विश्वेदेवाः**=सब देव, **ये**=जो **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में **ष्ठ**=(स्थ) स्थित हैं, ये **उप**=जो यहाँ समीप भूलोक में हैं और जो **द्यवि**=द्युलोक में हैं, वे सब के सब तेंतीस देव **मे**=मेरी **इमं हवम्**=इस पुकार को **शृणुत**=सुनें। सब देव मेरी अनुकूलतावाले हों। (२) **ये**=जो देव **अग्निजिह्वः**=अग्नि के समान तेजोयुक्त जिह्वावाले हैं, **उत वा**=और जो **यजत्राः**=यज्ञों के द्वारा त्राण करनेवाले हैं वे सब **अस्मिन् बर्हिषि**=हमारे वासनाशून्य हृदयों में **आसद्य**=आसीन होकर **मादयध्वम्**=हमारे जीवनों को आनन्दयुक्त करें। इन देवों के लिये हमारे हृदयों में आदर का भाव हो और उनकी पदपद्धति पर चलते हुए हम आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—सब सूर्य-चन्द्र-अग्नि आदि देव हमारे अनुकूल हो। तेजस्वी ज्ञान-वाणियोंवाले यज्ञशील देव पुरुषों को हम हृदय से आदर दें, उनका अनुगमन करते हुए आनन्दित हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्तोत्रों में आनन्द की अनुभूति

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम॥ १४॥

(१) **यज्ञियाः**=यज्ञमय जीवनवाले **विश्वे देवाः**=सब देव **मम मन्म शृण्वन्तु**=मेरे स्तोत्र को ही सुनें, मैं इनके लिये सदा शुभ वाणियों का उच्चारण करूँ। **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी **अपांनपात् च**=यह जलों को न गिरने देनेवाला, जलों का धारक, अन्तरिक्षलोक भी मेरे स्तोत्र को सुने। मेरी स्तुति-वाणियाँ ही त्रिलोकी में फैलें। (२) मैं **वः**=आपके प्रति **परिचक्षाणि**=वर्जनीय **वचांसि**=वचनों को **मा वोचम्**=मत बोलूँ। अपि तु समीचीन वचनों का ही सदा उच्चारण करूँ। **वः**=आपके **अन्तमाः**=अन्तिकतम (समीपतम) होते हुए हम **सुम्नेषु इत्**=(hymns) प्रभु स्तवनों में ही **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—सब देव मेरे स्तोत्रों को सुनें। त्रिलोकी में स्तोत्र ध्वनि ही फैले। वर्जनीय वचनों को न बोलते हुए हम स्तोत्रों में ही आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दीप्त-दृढ़-स्निग्ध

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षपः उस्त्रा वरिवस्यन्तु देवाः॥ १५॥

(१) **ये के च**=और जो कोई **महिनः**=पूजन की वृत्तिवाले **अहिमायाः**=अहीन प्रज्ञावाले देव **ज्मा**=इस पृथिवी में **जज्ञिरे**=प्रादुर्भूत होते हैं, **दिवः (जज्ञिरे)**=द्युलोक से प्रादुर्भूत होते हैं अथवा **अपां सधस्थे**=जलों के सहस्थान अन्तरिक्ष में प्रादुर्भूत होते हैं, **ते**=वे सब **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **विश्वं आयुः**=सम्पूर्ण जीवन में **इषये**=प्रेरणा देने के लिये हों। इनसे प्रेरणा को प्राप्त करके हम भी मस्तिष्करूप द्युलोक को दीप्त बनायें, शरीररूप पृथिवीलोक को दृढ़ बनायें तथा हृदयान्तरिक्ष को स्नेह जल से स्निग्ध रखें, हमारे हृदयों में सब के प्रति स्नेह हो। (२) **क्षपः उस्त्राः**=रात्रि व दिनों में, दिन-रात **देवाः**=ये सब देव हमारे लिये **वरिवस्यन्तु**=धनों की कामना करें। ये देव हमें 'प्रकाश-दृढ़ता व स्नेह' रूप धनों को प्राप्त करायें।

भावार्थ—सब देव हमें उत्तम प्रेरणा प्राप्त करायें। हम द्युलोक के समान दीप्त, पृथिवीलोक के समान दृढ़, अन्तरिक्ष के समान स्निग्ध बनें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अग्नीपर्जन्यौ

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे॥ १६॥

(१) **अग्नीपर्जन्यौ**=हे अग्नि व मेघ देवो! आप **मे धियं अवतम्**=मेरे यज्ञादि उत्तम कर्मों का आप रक्षण करो। हे **सुहवा**=सुखेन आह्वान के योग्य अग्नि व पर्जन्य देवो! **अस्मिन् हवे**=इस (हुदाने) दानरूप यज्ञात्मक कर्म में **नः**=हमारे से की जानेवाली **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति का आप रक्षण कीजिये। अग्नि व पर्जन्यदेव की कृपा से हम यज्ञों व स्तुतिरूप कर्मों में सदा प्रवृत्त रहें। (२) इन अग्नि व पर्जन्य में **अन्यः**=एक पर्जन्य (मेघ) **इडाम्**=अन्न को **जनयत्**=उत्पन्न करता है। यह वृष्जिजल से उत्पन्न अन्न अत्यन्त सात्त्विक होता है। **अन्यः**=दूसरा अग्नि **गर्भम्**=हमारे अन्तर्भाग को, शरीर के अन्दर के सारे यन्त्र को विकसित करनेवाला होता है। अग्नि से ही सारा यन्त्र ठीक रहता है। इस प्रकार ये अग्नि और पर्जन्य **अस्मे**=हमारे लिये **प्रजावतीः इषः**=प्रकृष्ट सन्तानोंवाले व प्रकृष्ट विकासवाले अन्नों का **आधत्तम्**=धारण करें। इन अन्नों के सेवन से हमारे विचार उत्तम हों। हम यज्ञ व स्तवन को करनेवाले हों। शक्तियों का उत्कृष्ट विकास कर पायें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः**॥ देवता—**विश्वे देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यजत्रा विश्वे देवा हविषि

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम्॥ १७॥

(१) **बर्हिषि स्तीर्णे**=वासनाशून्य हृदयरूप आसन के बिछाने पर, **अग्नौ समिधाने**=ज्ञानाग्नि

के दीप्त होने पर, **सूक्तेन**=स्तुतियों के द्वारा तथा **महा नमसा**=महान् नमन के द्वारा **आविवासे**=मैं प्रभु का पूजन करता हूँ। (२) हे **यजत्राः**=यज्ञों के द्वारा सबका त्राण करनेवाले **विश्वे देवः**=सब देवो! **नः**=हमारे **अद्य**=आज **अस्मिन् विदथे**=इस ज्ञानयज्ञ में **हविषि**=त्यागपूर्वक अदन के होने पर **मादयध्वम्**=हमें आनन्दित करनेवाले होइये।

भावार्थ—हम हृदय को वासनाशून्य बनाएँ, ज्ञानाग्नि को दीप्त करें, स्तवन व नमन के द्वारा प्रभु का पूजन करें, ज्ञानयज्ञों में चलते हुए सदा यज्ञशेष का सेवन करें। इस प्रकार जीवन को आनन्दमय बनायें।

यह ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला व्यक्ति 'बार्हस्पत्य' होता है, अपने में शक्ति को भरने से 'भरद्वाज' बनता है। यह 'पूषा' नाम से प्रभु का स्तवन करता है—

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पोषक प्रभु

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाज़सातये। धिये पूषन्नयुज्महि ॥ १ ॥

(१) हे **पथस्पते**=मार्गों के स्वामिन्! **पूषन्**=हमारा पोषण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **अयुज्महि**=अपने साथ जोड़ते हैं। योग के द्वारा आपके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। प्रभु के साथ मेल होने पर हम मार्गों से भटकते नहीं तथा अपना ठीक पोषण कर पाते हैं। (२) आप **रथं न**=रथ के समान हैं। रथ यात्रापूर्ति में साधन बनता है, प्रभु का आश्रय भी जीवनयात्रा को सफलता से पूर्ण कराता है। हम आपको **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये तथा **धिये**=बुद्धि के लिये अपने साथ युक्त करते हैं। आपका मेल हमें शक्ति व बुद्धि को देनेवाला होगा।

भावार्थ—प्रभु सब मार्गों के स्वामी हैं, हमारा पोषण करनेवाले हैं। प्रभु के साथ सम्पर्क से हम शक्ति व बुद्धि को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'नर्यं' वसु (कौन धन?)

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्। वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **नः**=हमारे लिये **वसु अभिनय**=निवास के लिये आवश्यक उस धन को प्राप्त कराइये जो **नर्यम्**=नरहितकारी हो, **वीरम् (वि ईर)**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर भगानेवाला हो, **प्रयतदक्षिणम्**=पवित्र दानवाला हो। (२) उस धन को प्राप्त कराइये जो **वामम्**=सुन्दर हो, सुन्दर गुणों को जन्म देनेवाला हो अथवा सुन्दर साधनों से कमाया गया हो। तथा **गृहपतिम्**=सब आवश्यकताओं को पूर्ण करके घर का रक्षण करनेवाला हो।

भावार्थ—प्रभु हमें वह धन प्राप्त करायें जो नरहितकारी शत्रु-कम्पक पवित्र दानवाला सुन्दर व गृहरक्षक हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दानप्रवृत्ति का जागरण

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥

(१) हे **आघृणे**=सर्वतो दीप्तिमन्! **पूषन्**=पोषक प्रभो! **अदित्सन्तं चित्**=न देने की कामनावाले को **दानाय**=दान के लिये **चोदय**=प्रेरित करिये। (२) **पणेः चिद्**=धनलुब्ध वणिक् के समान कृपण वृत्तिवाले पुरुष के **मनः**=मन को भी **विम्रदा**=मृदु करिये, वह भी आधार देने योग्य व्यक्तियों की स्थिति को देखकर दान की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—प्रभु ऐसा ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करायें कि अधिक से अधिक कृपण वृत्तिवाला पुरुष भी दयार्द्र मनवाला बने और दानवृत्ति को अपनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम मार्गों से धन प्राप्ति

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि। साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

(१) हे **उग्र**=उद्गूर्ण बल (पूषन्=) पोषक प्रभो! **पथः**=मार्गों को **वाजसातये**=शक्ति व धनों की प्राप्ति के लिये **विचिनुहि**=शोधित करिये। जिन मार्गों से चलकर धनों को प्राप्त करें उन मार्गों को हमारे लिये पृथक् करिये, अलग विस्पष्टरूप में दिखाइये। **मृधः**=बाधक शत्रुओं को **विजहि**=विनष्ट करिये। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारे **धियः**=बुद्धिपूर्वक किये गये कर्म **साधन्ताम्**=सिद्धि को प्राप्त हों। इन ज्ञानपूर्वक किये गये कर्मों से हम उचित धनों का अर्जन करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति के देनेवाले मार्गों को दिखायें। बाधक शत्रुओं को दूर करें। प्रभु कृपा से हमारे बुद्धिपूर्वक किये गये कर्म सफल हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानवाणीरूप आरा से कठोर मन को चोट पहुँचाना

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ विद्वन्! **पणीनाम्**=धनलुब्ध वणिजों के **हृदया**=हृदयों को **आरया परितृन्धि**=(आरा प्रतोदः) आरे से चीर-सा डाल। इन्हें इस प्रकार ज्ञानोपदेश कर कि इन्हें हृदयों में वह ज्ञान की वाणी चुभ-सी जाये। उससे इनके हृदय इस प्रकार जागरित से हो उठें जैसे कि अंकुश से हाथी चेतन हो उठता है। (२) **अथ**=अब **ईम्**=निश्चय से इन्हें **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रन्धय**=वशीभूत करिये, ये अपने मनों को कठोर कर ही न पायें और दें ही।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष ज्ञान की वाणीरूप आरा से पणियों के हृदय को इस प्रकार हिंसित करें कि वह भी दान की ओर झुक ही जायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आरया तुद

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥

(१) गत मन्त्र की भावना को ही इस रूप में कहते हैं कि हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **पणेः**=धनलुब्ध वणिक् के हृदय को **आरया**=ज्ञान वाणी रूप प्रतोद से **वितुद**=खूब ही व्यथितकर। इस पणि को हृदय में **प्रियं इच्छ**=प्रियता को उत्पन्न करिये, 'देना ही चाहिये' ऐसी इच्छा को पैदा करिये। (२) **अथ**=अब **ईम्**=निश्चय से इसके मन को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रन्धय**=वशीभूत करिये। यह पणि भी हमारे लिये देने की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—सर्वपोषक प्रभु अदाता कृपण के हृदय में भी प्रिय वृत्ति को उत्पन्न करें, यह भी 'देना ही चाहिए' ऐसी वृत्तिवाला बने। समाज की स्थिति दान की उत्तम प्रणाली पर ही आश्रित है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

किकिरा कृणु

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ विद्वन्! तू इस प्रकार ज्ञानोपदेश कर कि **पणीनाम्**=इन धनलुब्ध वणिजों के **हृदया**=हृदयों को **आरिख**=अवदारित कर दे। **किकिरा कृणु**=(कीर्णानि प्रशिथिलानि) इनके हृदयों को अवकीर्ण, प्रशिथिल व मृदु कर दे। (२) **अथ**=अब **ईम्**=निश्चय से इनके हृदयों को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रन्धय**=वशीभूत करिये।

भावार्थ—कवि के ज्ञानोपदेश से इन कृपणों के हृदय भी एक बार दहल जाएँ और वे भी दानवृत्ति की ओर झुक जायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ब्रह्मचोदनी आरा

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे। तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥

(१) हे **आघृणे**=समन्तात् दीप्तिवाले **पूषन्**=पोषक प्रभो! **याम्**=जिस **ब्रह्मचोदनीम्**=ज्ञान को प्रेरित करनेवाली **आरा**=चाबुक को **बिभर्षि**=आप धारण करते हैं। **तया**=उस ज्ञान प्रेरिका आरा से **समस्य**=सब कृपणों के **हृदयम्**=हृदयों को **आरिख**=अवदीर्ण करिये, उनकी कठोरता को नष्ट करिये। (२) **किकिरा कृणु**=इस ज्ञान की वाणी से इनके हृदयों को अवकीर्ण व शिथिल कर डालिये। ये न देने के कठोर वृत्ति को नष्ट कर कोमल हृदयोंवाले बनकर दान में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—अदाता कृपण जनों के हृदय भी ज्ञान की वाणियों से प्रेरित होकर दानवृत्तिवाले बन जायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गोओपशा अष्ट्रा

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी। तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥

(१) हे **आघृणे**=समन्तात् दीप्तिमन् प्रभो! **या**=जो **ते**=तेरी **गो ओपशा**=(गावः उपशेरते यस्याः) ज्ञान की वाणियाँ जिसके समीप निवास करती हैं ऐसी **अष्ट्रा**=आरा (प्रतीद) है, जिसे गतमन्त्र में 'ब्रह्मचोदनी आरा' कहा है, जो आरा **पशुसाधनी**=सब पाशवभावों को वशीभूत करनेवाली है, **तस्याः**=उसके द्वारा **ते**=आपसे हम **सुम्नम्**=सुख को **ईमहे**=माँगते हैं। (२) इस अष्ट्रा से प्रेरित हुआ-हुआ कोई भी व्यक्ति हमारे समाज में कृपण न रहे। कृपणता के दूरीकरण से सारा समाज सुखी हो।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे राष्ट्र में इस प्रकार ज्ञान का प्रचार हो कि कोई भी कृपण यहाँ न रहे। इस प्रकार समान उत्कृष्ट स्थिति में हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ-बुद्धि व शक्ति

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत। नृवत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥

(१) हे प्रभो! **नः धियम्**=हमारी बुद्धि को **गोषणिम्**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों का सेवन करनेवाली **उत**=तथा **अश्वसाम्**=उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियों का सेवन करनेवाली **कृणुहि**=करिये। साथ ही हमारी

बुद्धि को **वाजसाम्**=शक्ति का सेवन करनेवाली करिये। हमारी बुद्धि शक्ति से युक्त हो। (२) हे प्रभो! **नृवत्**=एक पथ-प्रदर्शक की तरह (नृ=नेता) हमारे लिये **वीतये**=सब अन्धकारों के विनाश के लिये (असन) **कृणुहि**=व्यवस्था को करिये। आपसे प्रदर्शित मार्ग पर चलते हुए हम लक्ष्य पर पहुँचनेवाले हों।

भावार्थ—हमें प्रभु उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ, उत्तम कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि व शक्ति को प्राप्त करायें।

अगले सूक्त के ऋषि भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' ही हैं। वे 'पूषा' नाम से ही प्रभु की आराधना करते हैं—

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विद्वज्जन सम्पर्क

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति। य एवेदमिति ब्रवत्॥ १॥

(१) हे **पूषन्**=हमारा पोषण करनेवाले प्रभो! हमें आप उस **विदुषा**=ज्ञानी पुरुष के साथ **संनय**=संगत करिये, **यः**=जो कि **अञ्जसा**=(straight on, Truely, Directly, Quickly) सरलता से सत्यता, साक्षात् शीघ्रता से **अनुशासति**=उपदेश करता है। (२) उस विद्वान् से हमें संगत करिये **यः**=जो कि **इदं एव**='यह ही न्याय है' **इति ब्रवत्**=इस प्रकार निश्चय करके कहता है। जिसके उपदेश में संदिग्धता व संशय का स्थान नहीं।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुषों के सम्पर्क से हम ठीक मार्ग का ज्ञान प्राप्त करके उस पर चलनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति। इम एवेति च ब्रवत्॥ २॥

(१) **पूष्णा**=उस पोषक प्रभु के द्वारा प्रभु के अनुग्रह से **उ**=निश्चयपूर्वक **संगमेमहि**=हम उस विद्वान् के साथ संगत हों, **यः**=जो कि **गृहान् अभिशासति**=इन शरीर रूप गृहों का लक्ष्य करके उपदेश देता है अथवा जो **गृहान्**=गृहस्थ के कर्त्तव्यों के विषय में उपदेश देता है। (२) **च**=और उस विद्वान् के साथ हमारा सम्पर्क हो जो **इमे एव**='ये ही तुम्हारे जीवन के नियम हैं' **इति ब्रवत्**=यह उपदेश देता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे साथ उन विद्वानों का सम्पर्क हो जो कि हमें गृहों को सुन्दर बनाने के नियमों का उपदेश करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु से दिये गये 'आयुध'

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽवं पद्यते। नो अस्य व्यथते पविः॥ ३॥

(१) प्रभु ने जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये हमें इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप आयुध प्राप्त कराये हैं। उस **पूष्णः**=पोषक प्रभु का दिया हुआ यह **चक्रम्**=इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप आयुध **न रिष्यति**=हिंसित नहीं होता। यदि हम गत मन्त्र के अनुसार विद्वानों से उपदिष्ट नियमों का पालन करते हुए चलें तो इन्द्रियों, मन व बुद्धि की शक्ति कभी क्षीण नहीं होती। **कोशः**=इन आयुधों

का कोश रूप यह शरीर, अन्नमयकोश, **न अवपद्यते**=अवपन्न, नष्ट नहीं होता। (२) **अस्य**=इस बुद्धि रूप आयुध की **पविः**=धारा **नो व्यथते**=पीड़ित-कुण्ठित नहीं होती। बुद्धि तीव्र ही बनी रहती है प्रभु ने 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप सुन्दर आयुधों को हमारे लिये प्राप्त कराया है। इनके द्वारा ही हम अपने नष्ट धन को, अमृतत्व को पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दिये गये इन्द्रिय आदि आयुध न नष्ट होने वाले हैं, इनका कोशभूत यह शरीर भी अवपन्न (हीन) नहीं होता। बुद्धि की धारा भी तीव्र बनी रहती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु पूजन व अविनाश

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते। प्रथमो विन्दते वसु॥ ४॥

(१) **यः**=जो भी उपासक **अस्मै**=इस पोषक प्रभु के लिये **हविषा अविधत्**=दानपूर्वक अदन के द्वारा पूजन करता है, **तम्**=उसे **पूषा**=ये पोषक प्रभु **अपि**=(ईषद् अर्थे) थोड़ा भी **न मृष्यते**=हिंसित नहीं करते। दानपूर्वक अदन ही यज्ञ शेष का सेवन है। यह यज्ञशेष का सेवन ही मनुष्य को अमृतत्व प्राप्त कराता है। (२) यह यज्ञशेष का सेवन करनेवाला **प्रथमः**=प्रथम स्थान को प्राप्त करता है (प्रथ विस्तारे) खूब ही अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाला होता है। यह **वसु विन्दते**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को यह प्राप्त करता है।

भावार्थ—जब हम दानपूर्वक अदन करते हुए, सदा यज्ञशेष का सेवन करते हुए, प्रभु का पूजन करते हैं, तो हिंसित नहीं होते और सब वसुओं को प्राप्त करते हैं। वसुमान बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गौ-अश्व-वाज

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्ववर्तः। पूषा वाजं सनोतु नः॥ ५॥

(१) **पूषा**=वह पोषक प्रभु **नः**=हमारी **गाः**=ज्ञानेन्द्रियरूप गौओं के **अनु एतु**=पीछे चलनेवाला, उनका रक्षण करनेवाला हो। **पूषा**=यह पोषक प्रभु हमारे **अर्वतः**=कर्मेन्द्रियरूप अश्वों का **रक्षतु**=रक्षण करे। (२) इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को विषयवासनाओं से आक्रान्त न होने देकर **पूषा**=पोषक प्रभु **नः**=हमारे लिये **वाजं सनोतु**=शक्ति को दें। वस्तुतः इन्द्रिय रक्षण ही शक्ति रक्षण का साधन है।

भावार्थ—प्रभु हमारी इन्द्रियों का रक्षण करते हुए हमें शक्ति-सम्पन्न बनायें। प्रभु की उपासना ही इन्द्रियों को वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देती और इस प्रकार उपासक को सशक्त बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुन्वन्-स्तुवन्-यजमान

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः। अस्माकं स्तुवतामुत॥ ६॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **गाः अनु प्र इहि**=इन्द्रियों के पीछे प्रकर्षेण चलनेवाले होइये, अर्थात् इस यज्ञशील पुरुष की इन्द्रियों का अच्छी प्रकार रक्षण करिये। इसी प्रकार **सुन्वतः**=सोम का अभिषव करते हुए पुरुष की इन्द्रियों का भी रक्षण करिये। जो भी व्यक्ति अपने अन्दर सोम (वीर्य) शक्ति का रक्षण करता है, उसकी इन्द्रियों को आप पूर्णतया रक्षित करिये। (२) **उत**=और **स्तुवताम्**=स्तवन करते हैं **अस्माकम्**=हमारी इन्द्रियों का रक्षण

करिये एवं इन्द्रियों को सुरक्षित करने के लिये तीन उपाय हैं—(क) यज्ञों में लगे रहना, (ख) सोम शक्ति को सुरक्षित करना, (ग) प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होना।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील-सोमरक्षक-स्तोता की इन्द्रियों का रक्षण करते हैं। यज्ञशीलता से इन्द्रियाँ कुपथ प्रवृत्त नहीं होती। सुरक्षित सोम इन्हें सशक्त बनाता है। प्रभु स्तवन इन्हें विषयों में नहीं फँसने देता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अरिष्टा गौवें

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे। अथारिष्टाभिरा गहि ॥ ७ ॥

(१) हे पूषन्! आपके अनुग्रह से हमारा यह इन्द्रियरूप गोधन **माकिः नेशत्**=मत नष्ट हो। इन इन्द्रियों की शक्ति बनी रहे। यह गोधन **माकीं रिषत्**=विषयरूप व्याघ्रों से भी हिंसित न किया जाये। हमारी इन्द्रियाँ विषयों का शिकार न हो जायें। यह गोधन **केवटे**=विषय कूप में गिरकर **माकीं**=मत **संशारि**=शीर्ण हो जाए। (२) **अथ**=अब **अरिष्टाभिः**=इन अहिंसित इन्द्रियरूप गौवों के साथ **आगहि**=आप हमें प्राप्त होइये।

भावार्थ—इन्द्रियाँ न नष्ट हों, वासनाओं से हिंसित न हों, विषयकूप में इनका पतन न हो जाए। अहिंसित इन्द्रियों के साथ प्रभु हमें प्राप्त हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'इर्य-अनष्टवेदस्-ईशान' प्रभु

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्। ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥

(१) **वयम्**=हम **शृण्वन्तम्**=हमारी प्रार्थनाओं को सुननेवाले **पूषणम्**=पोषक प्रभु से **रायः ईमहे**=धनों की याचना करते हैं। (२) उस प्रभु से धनों की याचना करते हैं जो **इर्यम्**=दारिद्र्य को दूर प्रेरित करनेवाले (भगानेवाले) हैं। **अनष्टवेदसम्**=अनष्ट धनोंवाले हैं और **ईशानम्**=सब धनों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम प्रभु से धनों की याचना करते हैं। प्रभु दारिद्र्य को दूर करनेवाले, अनष्ट धन व सब धनों के स्वामी हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पूषा के व्रत में

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **तव व्रते**=आपकी प्राप्ति के साधन भूत 'जप-तप-ध्यान' आदि कर्मों में लगे हुए **वयम्**=हम **कदाचन**=कभी भी **न रिष्येम**=वासना व्याघ्रों से हिंसित न किये जायें। इन कर्मों में लगे हुए हम कभी विषयों के शिकार न हों। (२) हे प्रभो! **इह**=इस जीवन में हम **ते**=आपके **स्तोतारः स्मसि**=स्तवन करनेवाले हों। प्रभु स्तवन करते हुए वैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए किये जानेवाले 'जप-तप-ध्यान' आदि कर्मों में हम प्रवृत्त रहें। सदा प्रभु स्तवन करते हुए प्रभु जैसा बनने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्रियों की अन्तर्मुखता

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्। पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥

(१) **पूषा**=पोषक प्रभु **परस्तात्**=सुदूर देश में जाती हुई, विषयों में भटकती हुई इन इन्द्रियरूप गौवों के रक्षण के लिये **दक्षिणं हस्तं परिदधातु**=दाहिने हाथ को निवारक बनाये (परिधानं निवारकम्)। प्रभु हमारी इन इन्द्रियरूप गौवों को विषयों में न जाने दें। (२) प्रभु के अनुग्रह से **नष्टम्**=(णश अदर्शने) सुदूर विषयों में गया हुआ **नः**=हमारा यह गोधन **पुनः**=फिर **आजतु**=हमारे समीप प्राप्त हो (आगच्छतु) विषय विनिवृत्त होकर ये अन्दर ही स्थित हों। ये इन्द्रियाँ बहिर्मुखी न बनी रहें।

भावार्थ—प्रभु दूर भागती हुई इन्द्रियों को दाहिने हाथ से रोकें। ये हमारी इन्द्रियाँ हमें प्राप्त हों, अन्तर्मुखी बनी रहें।

अगले सूक्त के ऋषि देवता वही 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' तथा 'पूषा' ही हैं—

[५५] पञ्चापञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु स्मरण व यज्ञशीलता

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै। रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥

(१) हे **आघृणे**=सर्वतो दीप्त, **विमुचः नपात्**=अपने को विषयों से छुड़ानेवाले को न गिरने देनेवाले, विषय-व्यावृत्ति-प्रवण पुरुष को बचानेवाले प्रभो! मुझ **वाम्**=गतिशील को **एहि**=प्राप्त होइये। **सं सचावहै**=आप और मैं संसक्त हो जायें, मिल जायें, कभी अलग न हों। मैं आपको कभी भूल न जाऊँ। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारे **ऋतस्य**=यज्ञात्मक कर्मों के **रथीः**=नेता **भव**=होइये। आपके अनुग्रह से हमारे यज्ञात्मक कर्म सदा प्रवृत्त रहें। हम इन यज्ञों से आपका पूजन करते रहें।

भावार्थ—मैं कभी प्रभु को भूल न जाऊँ। प्रभु के अनुग्रह से सदा यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त रहूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रथीतम-कपर्दी-ईशान' प्रभु का आराधन

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

(१) उस **रथीतमम्**=हमारे यज्ञों के उत्तम प्रणेता **सखायम्**=मित्रभूत प्रभु से **रायः**=यज्ञ-साधक धनों की **ईमहे**=याचना करते हैं। प्रभु प्रदत्त धनों से यज्ञों को करने में हम समर्थ होते हैं। (२) उन प्रभु से हम धनों की याचना करते हैं, जो **कपर्दिनम्**=(क पर् द) आनन्द की पूर्ति को देनेवाले हैं, तथा **महः**=महान् **राधसः**=कार्यसाधक धनों के **ईशानम्**=स्वामी हैं।

भावार्थ—हम मित्र प्रभु से कार्यसाधक कथनों की याचना करते हैं। प्रभु ही हमारे कार्यों के प्रणेता, सुख को देनेवाले व धनों के स्वामी हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'यज्ञशील स्तोता के मित्र' प्रभु

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व। धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥

(१) हे **अधृणे**=सर्वतो ज्ञानदीप्त प्रभो! आप **रायः धारा असि**=ऐश्वर्य की धारा हैं। अविच्छिन्नरूप से यज्ञशील पुरुषों के लिये धन को प्राप्त करानेवाले हैं। हे **अजाश्व**=गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! (अज गतौ) आप **वसोः राशिः**=धन की राशि ही हैं, सम्पूर्ण धन का निवास आप में ही है। (२) **धीवतः धीवतः**=प्रत्येक बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले के आप **सखा**=मित्र हैं। वस्तुतः प्रभु ही इनके इन सब कार्यों को पूर्ण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सम्पूर्ण धनों के निवास-स्थान हैं। निरन्तर धनों के देनेवाले हैं। वे ही बुद्धिपूर्वक किये जाते हुए कर्मों के साधक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'अजाश्व वाजी पूषा' का स्तवन

पूषणं न्व१॒॑जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥

(१) **नु**=अब **अजाश्वम्**=गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले, **वाजिनम्**=शक्तिशाली, **पूषणम्**=पोषक प्रभु को **उपस्तोषाम**=हम उपस्तुत करते हैं। प्रभु ही स्तोताओं को इन गतिशील इन्द्रियों को व शक्ति को प्राप्त कराके पुष्ट करते हैं। (२)(हम उस पूषा का स्तवन करते हैं **यः**=जो **स्वसुः**=(सु असुः) उत्तम प्राणशक्ति को देनेवाले हैं तथा **जारः**=अज्ञानरूप अन्धकार को विनष्ट करनेवाले **उच्यते**=कहे जाते हैं। पूषा सूर्य को भी कहते हैं। सूर्य भी उत्तम प्राणशक्ति को देता है 'प्राणः प्रजानामुदयन्त्येष सूर्यः'। तथा अन्धकार विनाशक है।

भावार्थ—प्रभु पोषक हैं, गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले हैं, शक्ति को देते हैं। उत्तम प्राणशक्ति को प्रभु प्राप्त कराते हैं तथा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'माता के दिधिषु' प्रभु

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वस्ुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

(१) **मातुः**=निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त प्रमाता (ज्ञानी) पुरुष के **दिधिषुम्**=धारण करनेवाले प्रभु को **अब्रवम्**=मैं प्रार्थना करता हूँ। वह **स्वसुः**=उत्तम प्राणशक्ति को देनेवाला **जारः**=अज्ञानान्धकार को जीर्ण करनेवाला प्रभु **नः शृणोतु**=हमारी प्रार्थना को सुने। (२) ये प्रभु ही **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **भ्राता**=भरण करनेवाले हैं और **मम सखा**=मेरे मित्र है।

भावार्थ—निर्माण कार्य प्रवृत्त पुरुषों के प्रभु ही धारक है, उत्तम प्राणशक्ति के दाता व अज्ञानान्धकार विनाशक हैं, जितेन्द्रिय पुरुष के धारण करनेवाले हैं, हमारे मित्र हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जनश्री पूषा देव

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्। देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥

(१) **अजासः**=ये मेरे गतिशील इन्द्रियाश्व, **रथे**=शरीर-रथ में **निशृम्भाः**=सम्बद्ध होकर हरण करनेवाले, ले चलनेवाले हों। इन्द्रियाँ अविरोध से कार्य करनेवाली हों। ज्ञानेन्द्रियों से दिये गये ज्ञान के अनुसार कर्मेन्द्रियाँ कर्म करनेवाली हों। (२) **ते**=वे इन्द्रियरूप अश्व **बिभ्रतः**=हमारा उचित भरण करते हुए **जनश्रियम्**=मनुष्यों की श्री के कारणभूत **देवम्**=प्रकाशमय **पूषणम्**=पोषक प्रभु को **आवहन्तु**=हमारे लिये प्राप्त करायें। सब श्री प्रभु के कारण ही होती है। जितना-जितना हम प्रभु का धारण करेंगे, उतना-उतना श्री को प्राप्त करनेवाले होंगे।

भावार्थ—इन्द्रियाँ सम्बद्ध होकर कार्य करनेवाली हों। ये हमें प्रभु की ओर ले चलें और श्री सम्पन्न करें।

अगले सूक्त में भी भरद्वाज बार्हस्पत्य पूषा का आराधन करते हैं—

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'करम्भात्' प्रभु

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्। न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥

(१) 'क' शब्द जल वाचक है, शरीर में ये 'रेतः कण' हैं 'आपः रेतो भूत्वा'। इनके साथ जो 'रभते' अपने कार्यों को प्रारम्भ करता है अथवा इनके द्वारा अपने को सबल (रम्भस्यवाला) बनाता है वह 'करम्भ' है। प्रभु इस 'करम्भ' को प्राप्त होते हैं सो 'करम्भात्' हैं। **यः**=जो **एनं पूषणम्**=इस पोषक प्रभु को 'करम्भात्' 'रेतः=कणों के द्वारा अपने को सबल बनानेवाले शक्ति वाला' **इति**=इस प्रकार **आदिदेशति**=निरन्तर कहता है, **तेन**=उससे **देवः**=वे प्रभु **न आदिशे**=अन्य रूप में आदेष्टव्य व स्तोतव्य नहीं होता। (२) 'करम्भात्' यह नाम ही उस महनीय प्रेरणा को प्राप्त करानेवाला होता है कि अन्य बातों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। रेतःकणों के रक्षण का महत्त्व इस 'करम्भात्' शब्द में सुव्यक्त है। इस प्रेरणा को लेनेवाला व्यक्ति सभी अन्य उन्नतियों को करने में समर्थ हो ही जाता है।

भावार्थ—प्रभु उस पुरुष की ओर निरन्तर गतिवाले होते हैं, जो रेतःकणों के रक्षण द्वारा अपने को सबल बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रथीतमः-सत्पतिः-वृत्तहन्ता

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

(१) **उत**=और **घा (घ)**=निश्चय से **सः**=वह गतमन्त्र का 'करम्भ' **रथीतमः**=प्रशस्त रथी-महारथी बनता है। **सख्या**=मित्रभूत पूषा से **युजा**=सहायभूत बने हुए से यह **सत्पतिः**=उत्तम कर्मों का ही स्वामी बनता है। जिस समय हम सोमशक्ति का रक्षण करते हैं तो उत्तम शरीररूप रथवाले होते हैं और प्रभु को साथी पाकर सदा उत्तम (श्रेष्ठ) कर्मों को करनेवाले बनते हैं। (२) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जिघ्नते**=नष्ट करता है। अपने साथी प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न होकर यह वासनाओं को विनष्ट करनेवाला होता है।

भावार्थ—सोम का रक्षक प्रशस्त रथी बनता है, उत्तम कर्मों का रक्षक होता है। प्रभु को मित्र पाकर वासनाओं को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हिरण्यय चक्र

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम्। न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥

(१) **उत**=और यह **रथीतमः सूरः**=प्रशस्त रथी, रथ को प्रेरित करनेवाला होता हुआ (षू प्रेरणे) **परुषे**=इस (पर्ववति भास्वति वा) पूरण करनेवाली अथवा ज्ञानदीप्तिवाली **गवि**=ज्ञान दुग्ध दात्री वेद धेनु के होने पर **अदः**=उस **हिरण्ययम्**=ज्योतिर्मय **चक्रम्**='इन्द्रिय, मन, बुद्धि' रूप

आयुध को **न्यैरयत्**=अपने में प्रेरित करता है। (२) ज्ञान की वाणियों के द्वारा यह शरीरथ ज्योतिर्मय बनता है। इसमें 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' रूप आयुध चमकते हुए होते हैं। ऐसा होने पर ही यह व्यक्ति 'रथीतम' कहलाता है, प्रशस्त रथवाला।

भावार्थ—हम ज्ञान दीप्ति को प्राप्त करानेवाली इन ज्ञान वाणी रूप गौवें के ज्ञानदुग्ध से 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को दीप्त कर लेते हैं। हम रथीतम होते हैं, हिरण्यय चक्र को अपने में प्रेरित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मन्म-साधन

यद॒द्य त्वा॑ पुरुष्टुत॒ ब्रवा॑म दस्र मन्तुमः। तत्सु नो॒ मन्म॑ साधय ॥ ४ ॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुति किये जानेवाले, **दस्र**=दर्शनीय, **मन्तुमः**=ज्ञानवन् प्रभो! **अद्य**=आज **यत्**=जिसका लक्ष्य करके **त्वा ब्रवाम**=आपका स्तवन करते हैं, **तत्**=उस **मन्म**=मननीय ज्ञान को **नः**=हमारे लिये **सुसाधय**=सम्यक् सिद्ध कीजिये। (२) यह ज्ञान ही हमारे जीवन को स्तुत्य (प्रशंसनीय), दर्शनीय व प्रकाशमय बनायेगा। सब कल्याणों का स्रोत यह ज्ञान ही है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं, प्रभु हमें ज्ञान देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गवेषण गण

इ॒मं च॑ नो॒ ग॒वेष॑णं सा॒तये॑ सीषधो ग॒णम्। आ॒रात्पू॑षन्नसि श्रु॒तः ॥ ५ ॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **इमं च**=और इस **नः**=हमारे **गवेषणम्**=(गवां एषयितारं) इन्द्रियों के प्रेरक **गणम्**=प्राणसमूह (मरुत् संघ) को **सातये**=शक्ति व ज्ञान की प्राप्ति के लिये **सीषधः**=(साधय) सिद्ध करिये। प्राणसाधना करते हुए हम सोमरक्षण के द्वारा इन्द्रियों को सशक्त व दीप्त बनायें, कर्मेन्द्रियाँ सशक्त हों और ज्ञानेन्द्रियाँ दीप्त। (२) हे पूषन्! आप **आरात्**=दूर से दूर तथा समीप से समीप **श्रुतः**=सुने जाते हैं। 'तद्दूरे तद्वन्तिके' (दूरात् सुदूरे तदिहन्तिके च)। वे सर्वव्यापक प्रभु इस प्राणसाधना के द्वारा हमें इन्द्रियों को वश में करने की शक्ति प्राप्त करायें।

भावार्थ—प्रभु हमें उस प्राणों के गण को प्राप्त करायें जो इन्द्रियों को अन्दर प्रेरित करता है और इस प्रकार हमें शक्ति व ज्ञान को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'आरे अघा-उपावसु' स्वस्ति

आ ते॑ स्व॒स्तिमी॑महे॒ आरेअ॑घा॒मुपा॑वसुम्। अ॒द्या च॑ स॒र्वता॑तये॒ श्वश्च॑ स॒र्वता॑तये ॥ ६ ॥

(१) हे पूषन्! हम **ते**=आप से **स्वस्तिम्**=कल्याणकारिणी रक्षा को **आ ईमहे**=सर्वथा चाहते हैं, जिसके कारण **आरे-अघाम्**=पाप हमारे से दूर रहते हैं और **उपावसुम्**=धन प्राप्त होता है (उपगतधनम्)। (२) हे प्रभो! हम आप से की जानेवाली कल्याणकारिणी रक्षा को **अद्या च**=आज भी **सर्वतातये**=सब सद्गुणों के विस्तार के लिये चाहते हैं, **श्वः च**=और कल भी **सर्वतातये**=सब शुभों के विस्तार के लिये चाहते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दी जानेवाली कल्याणकारिणी रक्षा, (ख) पापों को दूर करती है, (ख) धनों को प्राप्त कराती है, (ग) आज व कल सदा सद्गुणों का विस्तार करनेवाली होती है।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र व पूषा का स्तवन करता है—

[५७] सप्तञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सख्याय-स्वस्तये-वाजसातये

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥

(१) सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु 'इन्द्र' है। सब आवश्यक धनों को देकर हमारा पोषण करनेवाला प्रभु 'पूषा' है **वयम्**=हम **नु**=अब **इन्द्रापूषणा**=इन्द्र व पूषा को **सख्याय**=मित्रता के लिये **स्वस्तये**=कल्याण के लिये तथा **वाजसातये**=शक्ति व ज्ञान की प्राप्ति के लिये **हुवेम**=पुकारते हैं। (२) इन्द्र की मित्रता हमें सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विद्रावण करके सब के प्रति स्नेहवाला बनाती है। पूषा की मित्रता हमारा उचित पोषण करके कल्याण को देनेवाली होती है। यह इन्द्र व पूषा का आराधन हमें शक्ति सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—हम इन्द्र व पूषा का स्तवन करते हुए 'स्वस्ति व वाज' को प्राप्त करें, कल्याण को प्राप्त करें। शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोमं करम्भम्

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्। करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

(१) **चम्वोः**=द्यावापृथिवी के निमित्त **सुतम्**=उत्पन्न किये गये इस **सोमम्**=सोम को **पातवे**=पीने के लिये **अन्यः**=इन्द्र व पूषा में से एक इन्द्र **उपासदत्**=समीप प्राप्त होता है। इन्द्र वह है जो इन्द्रियों को वश में करने के लिये यत्नशील होता है। यह जितेन्द्रिय बनकर सोम का पान करता है। इस सुरक्षित सोम से मस्तिष्क रूप द्युलोक को यह ज्ञानदीप्त बनाता है तथा शरीर रूप पृथिवी लोक को इस सोम के द्वारा ही सशक्त करता है। (२) **अन्यः**=दूसरा **पूषा**=अपने में शक्तियों का पोषण करनेवाला **करम्भम्**=क-जल व रेतःकणों के द्वारा अपने में शक्ति के भरण को **इच्छति**=चाहता है। पूषा सदा इस कामनावाला होता है कि मेरे कार्य शक्ति से परिपूर्ण हों।

भावार्थ—जितेन्द्रिय बनकर हम सोम का पान करें। रेतःकणों के रक्षण से हमारे कार्य शक्तिशाली हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अजाः, हरी

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता। ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

(१) **अन्यस्य**=इन्द्र और पूषा में से एक पूषा के **वह्नयः**=वहन करनेवाले **अजाः**=गति के द्वारा सब बुराइयों का क्षेपण करनेवाले 'प्राण' हैं। प्राणों का पोषण ही इसे पूषा बनाता है। इन प्राणों से गति के द्वारा शरीर का सब मल परे फेंका जाता है। (२) **अन्यस्य**=दूसरे इन्द्र के **हरी**=कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय रूप अश्व **सम्भृता**=सम्यक् पुष्ट किये जाते हैं अथवा सम्यक् धारित किये जाते हैं। **ताभ्याम्**=इन सम्भृत इन्द्रियों से यह इन्द्र **वृत्राणि जिघ्नते**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करता है।

भावार्थ—प्राणों की साधना हमें पूषा बनाती है। इन्द्रियाश्वों का स्मरण हमें इन्द्र बनाता है और हम वासनाओं को विनष्ट कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्राण-साधना

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः। तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

(१) इन्द्रियों को वश में करनेवाला साधक 'इन्द्र' है। प्राणों की साधना करनेवाला 'पूषा' है। **यत्**=जब **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **रितः**=गतिमय, गति के स्वभाववाले **महीः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **अपः**=इन रेतःकणों को **अनयत्**=शरीर के अन्दर प्राप्त कराता है, तो वह **वृषन्तमः**=अतिशयेन शक्तिशाली बनता है। (२) **तत्र**=वहाँ इन रेतःकणों के शरीर में ही प्राप्त कराने के कार्य में **पूषा**=प्राणसाधना करनेवाला यह देव **सचा**=इन्द्र का साथी **अभवत्**=होता है। प्राणसाधना इन रेतःकणों की ऊर्ध्वगति में अतिशयेन सहायक होती है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रियता व प्राणसाधना द्वारा रेतःकणों का रक्षण करें। यह रक्षण हमें अतिशयेन शक्तिशाली बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुमति का आश्रय

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव। इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥

(१) **वयम्**=हम **पूष्णः**=प्राणसाधना को करनेवाले इस उपासक की **तां सुमतिम्**=उस कल्याणीमति को **आरभामहे**=इस प्रकार आश्रय करते हैं, **इव**=जैसे कि कोई **वृक्षस्य**=वृक्ष की **प्रवयाम्**=दृढ़ शाखा को पकड़ता है। वस्तुतः पूषा की यह सुमति यही है कि हम भी पूषा की तरह प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। (२) इसी प्रकार हम **इन्द्रस्य च**=इन्द्र की भी कल्याणीमति का आश्रय करते हैं। जितेन्द्रिय बनकर हम भी सोम का रक्षण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम इन्द्र व पूषा का अनुगमन करें, जितेन्द्रिय बनें और प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। इस से सोमरक्षण करते हुए हम बुद्धि को बड़ा शुद्ध व तीव्र बना पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

महौ स्वस्तये

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः। महा इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥

(१) **महौ स्वस्तये**=महान् कल्याण के लिये हम **पूषणम्**=पूषा को **इन्द्रम्**=और इन्द्र को **उद्युवामहे**=(उद्याजेयानः-उद्योजनमाकर्षणम्) अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। प्राणसाधना करते हुए हम 'पूषा' बनते हैं, और इन्द्रियों को वश में करते हुए 'इन्द्र' बनते हैं। (२) इन्द्र और पूषा को इस प्रकार हम अपनी ओर आकृष्ट करते हैं **इव**=जैसे कि **सारथिः**=रथ का वाहक **अभीशून्**=लगामों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। लगाम के द्वारा यह घोड़ों को काबू कर पाता है। इसी प्रकार हम इन्द्र बनकर इन्द्रियों को वश में करते हैं और पूषा बनकर प्राणों को। इनका वशीकरण ही महान् कल्याण का साधन है।

भावार्थ—हम इन्द्रियों व प्राणों को वश में करके इन्द्र व पूषा बनते हुए महान् कल्याण को सिद्ध करें।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' पूषा का आराधन करते हैं—

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शुक्रं-यजतम्

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥

(१) गत मन्त्र में प्राणसाधना करनेवाला पुरुष पूषा है। यह पूषा अपने जीवन को निर्मल व ज्ञानदीप्त बनाता है। हे **पूषन्**=प्राणसाधक पुरुष! **ते**=तेरा यह **शुक्रम्**=ज्ञानदीप्त रूप **अन्यत्**=विलक्षण ही है। तथा मन की निर्मलता के होने पर **यजतम्**=सब के साथ संगतिकरणवाला **ते**=तेरा रूप भी **अन्यत्**=विलक्षण है। इन शुक्र और यजत रूपों से तू **विषुरूपे अहनी इव असि**=भिन्न-भिन्न उत्तम रूपवाली दिन-रात्रि के समान है। दिन के समान शुक्र (दीप्त) है। रात्रि के समान यजत है, रात में सब वैरविरोध को भूलकर गाढ़-निद्रा में उस आनन्दमयकोश में पहुँच जाते हैं, जो कि सबका एक है। **द्यौः** इव असि=तू इस द्युलोक के समान है, जो दीप्त है और समानरूप से सबका निवास-स्थान है। (२) हे पूषन्! तू **विश्वाः**=सब **हि**=ही **मायाः**=प्रज्ञानों को **अवसि**=अपने अन्दर सुरक्षित करता है। प्राणसाधना से बुद्धि का दीपन होकर सब प्रज्ञानों की प्राप्ति होती है। हे **स्वधावः**=आत्मधारण-शक्तिवाले पूषन् (स्व-धा-वः) अथवा (स्व-धाव) प्राणसाधना द्वारा आत्मशोधन करनेवाले पूषन्! **इह**=इस जीवन में **रातिः**=दान (दान की वृत्ति) **ते भद्रास्तु**=तेरे लिये कल्याणकारिणी हो। यह दानवृत्ति ही मनुष्य के पापों का खण्डन करनेवाली होती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से मस्तिष्क दीप्त होता है, मन निर्मल होकर सब के प्रति मेल व प्रेमवाला होता है। यह दोनों ही रूप कितने सुन्दर हैं? सब प्रज्ञानोंवाला होता हुआ यह पूषा दान की वृत्तिवाला बनता है। यही उसे पवित्र बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वाजस्पत्यः धियञ्जिन्वः

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजतसंचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥

(१) **अजाश्वः**=गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाला, **पशुपाः**=(कामः पशुः क्रोधः पशुः) काम-क्रोध आदि से हमें बचानेवाला, **वाजपस्त्यः**=शक्ति का घर, शक्ति का निवास-स्थान, **धियञ्जिन्वः**=बुद्धियों को प्रेरित करनेवाला यह प्रभु **विश्वे भुवने**=सम्पूर्ण भुवन में **अर्पितः**=अर्पित है, अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है। (२) **पूषा**=वह पोषक प्रभु **शिथिरां अष्ट्राम्**=शिथिल हुई-हुई अष्ट्रा को **उद् वरीवृजत**=फिर से उद्यत करता है (उच्छथत्)। अष्ट्रा का अर्थ चाबुक और अंकुश है। जैसे अंकुश व चाबुक हाथी व घोड़े की प्रसुप्त शक्ति को जागरित-सा कर देता है, इसी प्रकार शरीर में अष्ट्रा वह शरीर व्यापिनी प्रेरिका शक्ति है जो सब अंगों को ठीक रूप में कार्य कराती है। प्रभु ही इस शक्ति को हमारे में जागरित करते हैं। इस प्रकार **भुवना**=सब प्राणियों का **संचक्षाणः**=ध्यान करते हुए **देवः**=वे सब व्यवहारों के साधक प्रभु **ईयते**=प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमें गतिशील इन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं, काम-क्रोध आदि से बचाते हैं, शक्ति व बुद्धि को देते हैं। वे सर्वव्यापक प्रभु हमारे अन्दर प्रसुप्त शक्तियों को जागरित करते हैं। इस प्रकार सबका ध्यान करते हुए प्रभु सर्वत्र प्राप्त हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

पूषा की नौकाएँ

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥

(१) हे **कामेन कृत**=कामना के द्वारा सारे संसार को उत्पन्न करनेवाले (सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय) **पूषन्**=पोषक प्रभो! **याः**=जो **ते**=आपकी **हिरण्ययीः नावः**=ज्योतिर्मयी नाव तुल्य वेदवाणियाँ हैं, जो **समुद्रे**=(समुद्) आनन्दमय **अन्तरिक्षे अन्तः**=हृदयान्तरिक्ष में **चरन्ति**=गति करती हैं, प्रसन्न मन में जिनका प्रकाश होता है, **ताभिः**=उनके द्वारा **दूत्याम्**=ज्ञान सन्देश प्रापण के कार्य को **यासि**=आप प्राप्त होते हैं। इन वेदवाणियों के द्वारा आप हमें ज्ञान का सन्देश सुनाते हैं। हमारे लिये **सूर्यस्य श्रवः**=सूर्य के यश को, प्रकाश को **इच्छमानः**=चाहते हैं। जैसे सूर्य प्रकाश से देदीप्यमान है, इसी प्रकार आप हमारे हृदयों को भी ज्ञान के प्रकाश से दीप्त करते हैं। (२) प्रभु ने यह सारा संसार कामना से ही उत्पन्न किया है, हमारे लिये जब प्रभु चाहते हैं तो इस ज्ञान के प्रकाश को प्रकट कर देते हैं। हम प्रभु के इस अनुग्रह के पात्र तभी बनते हैं जब कि अपने इस हृदय को निर्मल व प्रसन्न बना पाते हैं। प्रभु से दिया गया यह ज्ञान हमारे लिये नाव का कार्य करता है, इसके द्वारा हम भवसागर को तैरनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दिया गया ज्ञान हमारे लिये भवसागर को तरानेवाली नाव के समान होता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

देवों का सूर्या के लिये पूषा को देना

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥

(१) **पूषा**=यह पोषक प्रभु **दिवः पृथिव्याः**=द्युलोक व पृथिवीलोक का **आ**=समन्तात् **सुबन्धुः**=उत्तम बाँधनेवाला है यह हमारे जीवनों में मस्तिष्क रूप द्युलोक तथा शरीर रूप पृथिवीलोक को सम्यक् बद्ध करता है। ज्ञान व शक्ति को जोड़ देता है। **इडस्पतिः**=वेदवाणी का स्वामी है, **मघवा**=परमैश्वर्यवाला है। प्रभु ज्ञान व धन दोनों के आधार हैं। **दस्मवर्चः**=शत्रुविनाशक शक्तिवाले हैं (दसु उपक्षये) (२) **यम्**=जिस पूषा को **देवासः**=सब देव **सूर्यायै अददुः**=सूर्या के लिये देते हैं। 'देव' यहाँ दिव्यगुण हैं, 'सूर्या' बुद्धि है। दिव्यगुणों के द्वारा प्रभु का बुद्धि में स्थापन होता है। उस प्रभु को ये दिव्य गुण बुद्धि में स्थापित करते हैं, जो कि **कामेन कृतम्**=कामना से ही सम्पूर्ण संसार को बना डालते हैं, **तवसम्**=बलवाले हैं और **स्वञ्चम्**=उत्तम गतिवाले हैं।

भावार्थ—दिव्य गुणों को धारण करते हुए हम प्रभु को बुद्धि के द्वारा ग्रहण कर पायेंगे। ये प्रभु हमारे जीवनों में ज्ञान व शक्ति का समन्वय करेंगे।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' ऋषि हैं और 'इन्द्राग्नी' देवता है, 'इन्द्र' बल का प्रतीक है तो 'अग्नि' प्रकाश का—

[५९] एकोनषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

बल व प्रकाश का मेल

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम्॥ १॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **युवम्**=आप दोनों **सुतेषु**=हमारे जीवन-यज्ञों में **जीवथः**=सदा जीवित रहो। मैं **वाम्**=आपके **वीर्या**=उन शक्तिशाली कर्मों को **नु**=अब **प्रवोचा**=प्रकर्षेण कहता हूँ **यानि चक्रथुः**=जिन्हें आप करते हों। (२) **वाम्**=आपके **पितरः** (पीयति हिंसा कर्मा)=हिंसा करनेवाले **देवशत्रवः**=दिव्य गुणों के विनाशक आसुरभाव **हतासः**=नष्ट किये गये हैं। इन आसुरभावों के विनाश से जीवन दिव्य गुणों के प्रकाश से प्रकाशित हो उठा है।

भावार्थ—बल व प्रकाश के देव मिलकर हमारे जीवनयज्ञ में आसुरभावों का विनाश करते हैं। आसुरभावों को विनष्ट करके ही वस्तुतः 'इन्द्र व अग्नि' जीवित रहते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

मिलित इन्द्राग्नी की अद्भुत महिमा

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा॥ २॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **इत्था**=इस प्रकार **वां महिमा**=आप दोनों की महिमा **बट्**=सत्य है और **आ**=समन्तात् **पनिष्ठः**=स्तुत्यतम है। (२) **वाम्**=आप दोनों का **जनिता**=उत्पन्न करनेवाला **समानः**=समान ही है, एक प्रभु ही आप दोनों को जन्म देते हैं। **युवम्**=आप दोनों **भ्रातरा**=भाइयों के समान हैं, हमारे जीवनों में सब कार्यों का भरण करनेवाले हैं। आप **यमौ**=युगल भाइयों के समान होते हुए **इह इह मातरा**=इस इस स्थान में निर्माण के कार्यों के करनेवाले होते हैं। जीवन का कोई भी कार्य केवल ज्ञान से व केवल बल से नहीं हो पाता। इनका समन्वय ही जीवन के सब कार्यों को सुचारुरूपेण करता है। 'इन्द्र और अग्नि' एक घर में पुरुष और स्त्री के समान हैं, अकेले पुरुष व अकेली स्त्री से घर नहीं बनता। इसी प्रकार अकेले ज्ञान व अकेले बल से जीवन नहीं बनता।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञान व बल का ऐसा मेल हो जैसा कि दो भाइयों का। ये मिलकर हमारे जीवन को अतिसुन्दर बनायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

सचा ओकिवांसा 'वज्रिणा देवा'

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्तीइवादने।
इन्द्रा न्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे॥ ३॥

(१) हे इन्द्राग्नी! आप **सुते**=शरीर में सोम के उत्पन्न होने पर **सचा**=साथ-साथ (सह) **ओकिवांसा**=समवेत्य (मेल) वाले होवो। इस प्रकार मेलवाले होवो **इव**=जैसे **आदने**=खाने के स्थान पर **सप्ती**=सर्पणशील **अश्वा**=दो अश्व मेलवाले होते हैं। प्रकाश बल दोनों का यहाँ शरीर

में यह 'सोम' ही तो भोजन है। सोम ही ज्ञान व बल की उत्पत्ति का साधन बनता है। (२) **नु**=अब **इह**=यहाँ जीवन में **वयम्**=हम **अवसा**=रक्षण के हेतु से **इन्द्रः अग्नी**=इन्द्र और अग्नि को, बल व प्रकाश के देवों को **हवामहे**=पुकारते हैं। ये इन्द्र और अग्नि क्रमशः **वज्रिणा**=वज्रवाले व **देवा**=प्रकाशमय हैं। इन्द्र वज्रहस्त हैं, अग्नि प्रकाश का देव हैं। वस्तुतः दोनों ऐसे मिले हुए हैं कि दोनों दोनों ही हैं। इन्द्र का वज्रहस्त होने का भाव यह है कि वह क्रियाशील है (वन् गतौ)। यह क्रियाशीलता ही उसे सब असुरों का संहार करने में समर्थ करती है।

भावार्थ—सोम के उत्पन्न होने पर हमारे में ज्ञान व बल का साथ-साथ निवास हो। ये हमें क्रियाशील व प्रकाशमय जीवनवाला बनायें। इस प्रकार ये हमारे रक्षक हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

ऋतावृधा पज्रहोषिणा

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन॥ ४॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **यः**=जो **सुतेषु**=सोमकणों के अभिषव (उत्पत्ति) होने पर **वां स्तवत्**=आप दोनों का स्तवन करता है आप **तेषु**=उन लोगों में **ऋतावृधा**=ऋत का, सत्य का जो ठीक है उसका वर्धन करनेवाले होते हो। (२) ये इन्द्र और अग्नि **जोषवाकं वदतः**=प्रीतिपूर्वक उच्चरित वाणी को बोलते हैं। जीवन में बल व प्रकाश से युक्त पुरुष कड़वी वाणी नहीं बोलता। **पज्रहोषिणा**=(प्रार्जितहोषिणा) ये अर्जित धन की लोकहित के कार्यों में, प्राजापत्य यज्ञ में आहुति देनेवाले होते हैं। **देवा**=ये दिव्य वृत्तियों को जन्म देनेवाले 'बल व प्रकाश' **न भसथः चन**=कभी अपशब्द नहीं बोलते (भस्=to abuse) अथवा (भस् to eat) खाते भी तो नहीं। अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करते हुए धन की प्राजापत्य यज्ञ में आहुति ही देते हैं।

भावार्थ—इन्द्राग्नी के आराधन से बल व प्रकाश के जीवन में समन्वय से (क) ऋत का वर्धन होता है, (ख) हम मधुर ही वाणी बोलते हैं, (ग) कम से कम खाते हुए सब धनों को प्राजापत्य यज्ञ में आहुत करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

इन्द्रियाश्वों को एक रथ में जोतना

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे॥ ५॥

(१) हे **देवौ**=प्रकाशमय व सब व्यवहारों के साधक **इन्द्राग्नी**=इन्द्र व अग्नि, बल व प्रकाश के देवो! **वाम्**=आपके **अस्य**=इस बात को **कः मर्तः**=कौन मनुष्य **चिकेतति**=जानता है? अर्थात् कोई विरल ही जानता है। सामान्यतः कोई नहीं जानता। (२) आप दोनों में से **एकः**=एक यह इन्द्र **विषूचः**=विविध दिशाओं में उत्तम गतिवाले इन **अश्वान्**=इन्द्रियाश्वों को **समाने रथे**=एक ही शरीर-रथ में **युयुजानः**=जोड़ता हुआ **आ ईयते**=समन्तात् गति करता है। इन्द्र ही इन इन्द्रियों को उस-उस कार्य में व्यापृत करता है। ये सब इन्द्रियाँ मिलकर शरीर-रथ को लक्ष्य-स्थान की ओर ले जाते हैं। इन्द्र वही है जो जितेन्द्रिय है। ये इन इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने नहीं देता। अग्नि मार्ग दिखाता है, इन्द्र उस मार्ग पर इन इन्द्रियाश्वों को ले चलता है।

भावार्थ—अग्नि के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर, इन्द्र बनकर, हम इन्द्रियाश्वों को ले चलें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

दैनिक कार्यक्रम

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल और प्रकाश के तत्त्वो! हमारे जीवनों में **इयम्**=यह **अपात्**=पादरहित भी उषा **पद्वतीभ्यः**=पाँवोंवाली प्रजाओं से **पूर्वा अगात्**=पहले आती है। अर्थात् हम लोगों के सम्पर्क में आने से पहले प्रतिदिन इस उषा के सम्पर्क में आते हैं। (२) यह उषा **शिरः हित्वी**=(प्रेरयित्री) हमारे मस्तिष्कों को प्रेरित करती हुई हमें स्वाध्याय द्वारा उत्तम मस्तिष्कवाला बनाती हुई, **जिह्वया**=हमारी जिह्वा से **वावदत्**=निरन्तर प्रभु नामों का उच्चारण करती हुई **चरत्**=कार्यों में प्रवृत्त होती है। यह **त्रिंशत् पदा**=तीसों कदम, दिन के अवयवभूत तीसों मुहूर्तों में **न्यक्रमीत्**=हमें गतिवाला बनाती है।

भावार्थ—हम उठकर सबसे प्रथम उषा में प्रभु का ध्यान करते हैं। स्वाध्याय को करते हुए, प्रभु स्मरणपूर्वक कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। हमारा सारा दिन बड़ा क्रियाशील बीतता है। यही आदर्श जीवन का प्रोग्राम है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

महाधने, गविष्टिषु

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु॥ ७॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के तत्त्वो! **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **बाह्वोः**=अपनी भुजाओं में **धन्वानि**=धनुषों को **हि**=निश्चय से **आतन्वते**=विस्तृत करते हैं। अर्थात् इस जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये तथा वासना आदि शत्रुओं को विनष्ट करने के लिये, प्रणव (ओ३म्) रूप धनुष को धारण करते हैं। प्रभु-स्मरण ही प्रणवरूप धनुष का धारण है। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **नः**=हमें **अस्मिन्**=इस **महाधने**=महनीय धन को प्राप्त करानेवाले संग्राम में तथा **गविष्टिषु**=इन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करने के निमित्त इन वाणियों के अन्वेषण में **मा परावर्क्तम्**=मत छोड़ दो। जब हमारे जीवन का ध्येय बल व प्रकाश को प्राप्त करना बना रहता है तो हम वासनाओं का शिकार नहीं होते तथा ज्ञान की वाणियों को अधिकाधिक प्राप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—बल व प्रकाश को प्राप्त करना ही हमारे जीवन का ध्येय हो। ऐसा होने पर हम सदा प्रभु स्मरण में प्रवृत्त होंगे। वासनाओं के आक्रमण से बचे रहेंगे तथा स्वाध्याय प्रवृत्त होंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

द्वेष से दूर

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः। अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि॥ ८॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के तत्त्वो! **अघाः**=(आहनतव्यः) चोट करनेवाली **अर्यः**=हमारे पर आक्रमण करनेवाली **अरातयः**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं की सेनाएँ **मा तपन्ति**=मुझे

पीड़ित करती हैं। आप इन्हें **अपाकृतम्**=मेरे से दूर करिये। ज्ञान व बल की आराधना मुझे इन शत्रुओं के आक्रमण से बचाये। (२) हे **इन्द्राग्नी**=आप **द्वेषांसि**=द्वेष की भावनाओं को हमारे से दूर करो। वस्तुतः इन ईर्ष्या-द्वेष आदि की भावनाओं को तो **सूर्याद् अधि**=सूर्य दर्शन से भी **अप युयुतम्**=पृथक् कर दीजिये। सूर्य का जहाँ भी प्रकाश पहुँचता है, वहाँ द्वेष आदि का निवास न होता है।

भावार्थ—बल व प्रकाश का आराधन मुझे शत्रुओं के आक्रमण से बचाये। इनका आराधन मुझे द्वेष से दूर करे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'विश्वायुपोषस' रियि

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा। आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम्॥ ९॥

(१) **इन्द्राग्नी**=हे बल व प्रकाश के देवो! **दिव्यानि**=मस्तिष्करूप द्युलोक सम्बन्धी तथा **पार्थिवा**=शरीररूप पृथिवी सम्बन्धी सब **वसु**=धन **युवोः अपि** (हितानि)=आप में ही स्थित हैं। (२) आप **इह**=इस जीवन में **नः**=हमारे लिये **रयिं प्रयच्छतम्**=उस ऐश्वर्य को दीजिये जो **विश्वायुपोषसम्**=सब मनुष्यों का पोषण करनेवाला हो। अर्थात् जिस धन को हम सब के साथ बाँधकर उपयुक्त करनेवाले बनें।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि हम मस्तिष्क के ज्ञान-धन को तथा शरीर के शक्तिरूप धन को दें तथा हमें उस सम्पत्ति को प्राप्त करायें जो सभी के हित में विनियुक्त हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

उक्थ-स्तोम-गिर्

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता। विश्वाभिर्गीभिरा गतमस्य सोमस्य पीतये॥ १०॥

(१) **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देव हमारे जीवनों में **उक्थवाहसा**=स्तुति-वचनों के धारण करनेवाले हों। हमें प्रभु स्तवन की ओर झुकाववाला बनायें। **स्तोमेभिः**=स्तुतिसमूहों से ये इन्द्र और अग्नि **हवनश्रुता**=उसी प्रभु की पुकार (प्रेरणा) को सुननेवाले हों। इन्द्र और अग्नि के धारण से हम प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होकर हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **अस्य सोमस्य पीतये**=इस सोम के शरीर में ही पान के लिये **विश्वाभिः गीर्भिः आगतम्**= सब ज्ञान की वाणियों के साथ हमें प्राप्त होवो। हम सदा ज्ञान की वाणियों के अध्ययन में लगे रहें और इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर सकें।

भावार्थ—इन्द्र व अग्नि की आराधना, बल व प्रकाश को प्राप्त करने की प्रवृत्ति हमें प्रभु स्तवन में प्रवृत्त करे। यह हमें प्रभु प्रेरणा के सुनने योग्य बनाये, तथा सदा ज्ञान की वाणियों के अध्ययनवाला करें।

अगले सूक्त में भी इन्द्र और अग्नि का ही आराधन है—

[६०] षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वृत्रसंहार तथा बल की प्राप्ति

शनथद् वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात्।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता॥ १॥

(१) **यः**=जो **सहुरी**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों का **सपर्यात्**=पूजन करता है, वह **वृत्रं शनथत्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करता है, **उत**=और **वाजं सनोति**=बल को प्राप्त करता है। (२) ये इन्द्र और अग्नि **भूरेः**=बहुत अधिक **वसव्यस्य**=वसु समूह के **इरज्यन्ता**=ईशान हैं, स्वामी हैं। ये **सहसा**=बल से **सहस्तमा**=हमारे शत्रुओं को कुचलनेवाले हैं तथा **वाजयन्ता**=हमारे लिये शक्ति की कामनावाले होते हैं, हमें ये शक्ति सम्पन्न बनाते हैं जिससे हम शत्रुओं का शातन कर सकें।

भावार्थ—इन्द्र व अग्नि का आराधन हमें वृत्र विनाश व शक्ति प्राप्ति के योग्य करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'दिशः-स्वः-उषसः-अपः-गाः'

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान्॥ २॥

(१) हे **इन्द्र, अग्ने**=बल व प्रकाश के देवो! **ता**=वे आप **ऊढाः गाः**=वासनाओं से जिनका अपहरण (अपवहन) किया गया है ऐसी इन्द्रियों का **अभि**=लक्ष्य करके **योधिष्टम्**=इन वासनाओं के साथ युद्ध करते हो। इसी प्रकार, हे देवो! आप **नूनम्**=निश्चय से **अपः**=रेतःकणों का, **स्वः**=प्रकाश का, **उषसः**=(उष दाहे) दोषदहन शक्तियों का लक्ष्य करके इन वासनाओं से युद्ध करते हो। (२) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले, **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नियुत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को हमारे लिये प्राप्त करानेवाले आप **दिशः**=प्रभु के निर्देशों को, **स्वः**=प्रकाश को, **उषसः**=दोषदहन शक्तियों को, **चित्राः अपः**=अद्भुत वीर्यकणों को तथा **गाः**=इन्द्रियों को **युवसे**=हमारे साथ जोड़ते हैं। वासनाओं को विनष्ट करके इन सब चीजों को हमें प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन वासनाओं का विनाश करके हमें 'प्रभु निर्देशों, प्रकाश, दोषदहन शक्तियों, वीर्यकणों व प्रशस्त इन्द्रियों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शुष्म-राधस्

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले, **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! आप **वृत्रहणा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले हैं। आप **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा, जब हम आपके प्रति नमनवाले हों, **वृत्रहभिः**=वासना को विनष्ट करनेवाले **शुष्मैः**=बलों से अर्वाक् **आयातम्**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइये। (२) हे **इन्द्राग्ने**=इन्द्र व अग्ने! **युवम्**=आप दोनों **अकवेभिः**=अकुत्सित, **उत्तमेभिः**=अत्यन्त उत्कृष्ट **राधोभिः**=धनों से **अस्मे**=हमारे लिये **भवतम्**=होइये। हमें इन्द्र और अग्नि उन धनों को प्राप्त करायें जो अकुत्सित व उत्तम हैं, जो धन हमारी उन्नति का ही कारण बनते हैं।

भावार्थ—हमें इन्द्र और अग्नि वासना विनाशक बल को तथा उत्तम धन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥ स्वरः—**षड्जः**॥

स्तुति के योग्य 'इन्द्र और अग्नि'

ता हुवे ययोरिदं पप्रे विश्वं पुरा कृतम्। इन्द्राग्नी न मर्धतः॥ ४॥

(१) जीवन के अन्दर सब कुछ बल व प्रकाश के द्वारा ही सम्पन्न होता है। मैं **ता**=उन इन्द्र और अग्नि को, बल व प्रकाश के देवों को **हुवे**=पुकारता हूँ, **ययोः**=जिनका **पुरा कृतम्**=पहले किया हुआ, जिनके द्वारा बनाया गया, **इदं विश्वम्**=यह सब **पप्ने**=स्तुत होता है। बल व प्रकाश की सहस्थिति प्रत्येक चीज को सुन्दर बनाती है, उसी प्रकार जैसे कि 'ब्रह्म-क्षत्र' की सहस्थिति राष्ट्र को उन्नत करती है। (२) **इन्द्राग्नी**=ये बल व प्रकाश के देव **न मर्धतः**=हमारा हिंसन नहीं करते। जब हमारे जीवन में बल व प्रकाश दोनों विद्यमान होते हैं, तो जीवन सुन्दर ही सुन्दर बनता है।

भावार्थ—बल और प्रकाश, ब्रह्म-क्षत्र से हमें परमात्मा प्रदान करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'उग्रा-मृधः विघनिना' इन्द्राग्नी

उग्रा विघनिना मृधं इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृळात ईदृशे॥ ५॥

(१) हम **उग्रा**=तेजस्वी, **मृधः विघनिना**=शत्रुओं को कुचल डाल देनेवाले **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों को **हवामहे**=पुकारते हैं। वस्तुतः **इन्द्र**=हमारे सब रोग रूप शत्रुओं को विनष्ट करता है तथा अग्नि वासनामलों का दहन करनेवाला है। (२) **ता**=वे दोनों इन्द्र और अग्नि **नः**=हमें **ईदृशे**=ऐसे इस जीवन-संग्राम में **मृडातः**=सुखी करते हैं। वस्तुतः जीवन-संग्राम में सफलता को प्राप्त कराके विजय का आनन्द देनेवाले ये इन्द्र और अग्नि ही हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें तेजस्विता प्रदान करता है। शत्रुपराजय द्वारा यह आराधन ही हमें सुखी करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वृत्र दास तथा द्वेष' का विनाश

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अप द्विषः॥ ६॥

(१) ये इन्द्र और अग्नि, बल व प्रकाश के देव **आर्या**=श्रेष्ठ हैं, शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले हैं (ऋ गतौ)। ये **वृत्राणि हतः**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करते हैं। **सत्पती**=ये इन्द्र और अग्नि सत् के (उत्तमता के) रक्षक हैं। ये **दासानि**=(दसु उपक्षये) हमें क्षीण करनेवाली सब वृत्तियों को **हतः**=समाप्त करते हैं। (२) **विश्वाः**=सब हमारे न चाहते हुए भी हमारे में घुस आनेवाली **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **अपहतः**=सुदूर विनष्ट कर देते हैं।

भावार्थ—इन्द्र व अग्नि का आराधन वृत्र (=काम), दास (लोभ) तथा द्वेष (क्रोध) का निवारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'शम्भुवा' इन्द्राग्नी

इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत। पिबतं शंभुवा सुतम्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **इमे स्तोमाः**=ये स्तुतिसमूह **युवाम्**=आप दोनों को **अभि अनूषत**=लक्ष्य करके उच्चरित होते हैं, आपका ही स्तवन करते हैं। इन स्तोमों में इन्द्र और अग्नि की महिमा का प्रतिपादन हुआ है। (२) आप **सुतं पिबतम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम का हमारे शरीरों में पान करते हो और **शम्भुवा**=शान्ति को उत्पन्न करते हैं। इन्द्र और अग्नि ही रोगों व वासनाओं को समाप्त करके शान्ति का कारण बनते हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें शरीर में सोम के रक्षण के योग्य बनाता है, और इस प्रकार शान्ति को उत्पन्न करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम इन्द्रियाश्व

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा। इन्द्राग्नी ताभिरा गतम्॥ ८॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **याः**=जो **वाम्**=आपके **पुरुस्पृहः**=बहुतों से स्पृहणीय **नियुतः**=इन्द्रियरूप अश्व **सन्ति**=हैं, वे **दाशुषे**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये होते हैं। दाश्वान् पुरुष के लिये आप इन्हें प्राप्त कराते हैं। बल व प्रकाश की आराधना करनेवाला पुरुष ही इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करता है। (२) हे **नरा**=इन इन्द्रियाश्वों से हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले इन्द्राग्नी! **ताभिः**=उन इन्द्रियाश्वों से **आगतम्**=आप हमें प्राप्त होवो। उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके ही आप हमें जीवन में आगे ले चलते हो।

भावार्थ—बल व प्रकाश का आराधन हमें उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके उन्नत करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'नरा' इन्द्राग्नी

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ९॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **ताभिः (नियुद्भिः)**=उन इन्द्रियाश्वों के साथ **इदम्**=इस **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए **सवनम्**=(सूयते) सोम को **उप आगच्छतम्**=समीपता से आप प्राप्त होवो। इन्द्र अग्नि हमें उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करायें तथा हमारे जीवन-यज्ञ को सोम सम्पन्न करें। (२) **इन्द्राग्नी**=हे इन्द्र व अग्नि! आप **सोमपीतये**=इस सोम के पान के लिये हों। आपका आराधन मुझे सोम को शरीर में ही व्याप्त करने के योग्य बनाये।

भावार्थ—बल व प्रकाश की आराधना हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाती है। इस सोमरक्षण के द्वारा ये हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कृष्णा कृणोति जिह्वया

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्। कृष्णा कृणोति जिह्वया॥ १०॥

(१) **तम्**=उस प्रभु को **ईडिष्व**=स्तुत कर, **यः**=जो **अर्चिषः**=अपनी ज्ञान दीप्ति से **विश्वा वना**=सब उपासकों को **परिष्वजत्**=आलिंगित करता है। प्रभु अपने उपासकों को ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराते हैं। (२) ये प्रभु अग्नि हैं, अग्रेणी हैं। प्रकाश के द्वारा हमारा मार्ग दर्शन करते हुए हमें आगे ले चलते हैं। **जिह्वया**=ज्ञानोपदेश के द्वारा ये प्रभु **कृष्णा कृणोति**=सब कालिमाओं को, मलिनताओं को नष्ट करते हैं (कृणोति=to kill)।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराती है, हमारी मलिनताओं को ज्ञानोपदेश द्वारा समाप्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युम्नाय

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः। द्युम्नाय सुतरा अपः॥ ११॥

(१) **यः**=जो **मर्त्यः**=मनुष्य **इत् ह**=निश्चय से **इन्द्रस्य**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के **सुम्नं आविवासति**=(सुम्न=protection) रक्षण का पूजन करता है, वह **द्युम्नाय**=ज्ञान-ज्योति के लिये होता है। प्रभु की आराधना करता हुआ जो भी प्रभु के रक्षण को प्राप्त करता है, वह ज्योतिर्मय जीवनवाला होता है। (२) इस ज्योति से वह **अपः**=रेतःकणों को **सुतराः**=सब वासनाओं को तैर जानेवाला करता है। शरीर में सुरक्षित सोम उसके लिये सुतर होते हैं, सब रोगादि से उसे पार उतारनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् प्रभु का आराधन हमें ज्ञान-ज्योति को प्राप्त कराता है और उन सोमकणों को प्राप्त कराता है जो हमें सब रोगों व वासनाओं को तैरने के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाजवती इषः, आशून् अर्वतः

ता नो वाजवतीरिषं आशून्पिपृतमर्वतः। इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे॥ १२॥

(१) **ता**=वे इन्द्र और अग्नि **नः**=हमारे लिये **वाजवतीः इषः**=प्रशस्त शक्तिवाली प्रेरणाओं को **पिपृतम्**=पूरित करें। अर्थात् हमें प्रकाशमय हृदय में प्रभु प्रेरणाओं को प्राप्त करायें और उन प्रेरणाओं को क्रियान्वित करने के लिये शक्ति दें। ये इन्द्र और अग्नि **आशून् अर्वतः**=शीघ्र गतिवाले इन्द्रियाश्वों को भी प्राप्त करायें। हमारी कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ दोनों ही उत्तम हों। (२) ये ज्ञानेन्द्रियाँ **अग्निम्**=प्रकाश की देवता को **वोढवे**=वहन करने के लिये हों, **च**=तथा कर्मेन्द्रियाँ **इन्द्रम्**=बल की देवता का वहन करें। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को देनेवाली हों, तो कर्मेन्द्रियाँ शक्ति का वर्धन करनेवाली बनें।

भावार्थ—हम इन्द्र व अग्नि का आराधन करते हुए प्रशस्त प्रेरणाओं से युक्त बल को तथा शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'इष्-रयि-वाज'

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥ १३॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! मैं **वां उभा**=आप दोनों को **आहुवध्यै**=पुकारने के लिये होता हूँ। मैं बल व प्रकाश दोनों को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता हूँ। आप **उभा सह**=दोनों साथ-साथ **राधसः**=(राध सिद्धौ) सिद्धि के द्वारा **मादयध्यै**=आनन्दित करने के लिये होते हो। (२) **उभा**=आप दोनों मिलकर **इषाम्**=उत्तम प्रेरणाओं के तथा **रयीणाम्**=धनों के **दातारौ**=देनेवाले हो। मैं **उभा वाम्**=आप दोनों को **वाजस्य सातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **हुवे**=पुकारता हूँ।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें 'उत्तम प्रेरणा, धन व बल' प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

गव्य-अश्व्य-वसव्य

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे॥ १४॥

(१) हे इन्द्र और अग्नि! आप **नः**=हमें **गव्येभिः**=ज्ञानेन्द्रिय समूह के साथ **अश्व्येभिः**=कर्मेन्द्रिय समूह के साथ **वसव्यैः**=निवास के लिये आवश्यक वसु समूहों के साथ **आ**=सर्वथा **उपगच्छतम्**=समीपता से प्राप्त होवो। (२) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! आप **सखायौ**=एक दूसरे के सखा हैं, साथ रहनेवाले हैं। आप दोनों **देवौ**=दिव्य हो। हमारी **सख्याय**=मित्रता के लिये होने पर **शम्भुवा**=शान्ति को उत्पन्न करनेवाले हो। **ता**=उन आप दोनों को **हवामहे**=हम पुकारते हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि की आराधना बल व प्रकाश की आराधना हमें उत्तम कर्मेन्द्रियों, उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व उत्तम वसुओं को प्राप्त कराती है। ये बल व प्रकाश हमारे जीवनों में शान्ति स्थापन का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'सुन्वन् यजमान'

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः। वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु॥ १५॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **सुन्वतः**=सोम का संपादन करनेवाले, अपने जीवन में सोमशक्ति को उत्पन्न करनेवाले, **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष को **हवम्**=पुकार को **शृणुतम्**=सुनो। (२) इस सुन्वन् यजमान के **हव्यानि**=हव्य पदार्थों की **वीतम्**=कामना करो। यह हव्य पदार्थों का ही सेवन करनेवाला बने। **आगतम्**=आप आवो, और **सोम्यं मधु**=सोम-सम्बन्धी मधु का **पिबतम्**=पान करो। इन्द्र और अग्नि के आराधन से सोम का शरीर में संरक्षण हो।

भावार्थ—हम यज्ञशील व सोम शक्ति का सम्पादन करनेवाले बनें। हव्य पदार्थों का सेवन करें। सोम का शरीर में संरक्षण करें।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' सरस्वती का आराधन करता है—

[६१] एकषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**निचृज्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

उत्तम सन्तान की प्राप्ति व स्वार्थ-त्याग

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥ १॥

(१) 'सरस्वती' ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता है। इसकी आराधना के होने पर हमारे सन्तान उत्तम होते हैं और स्वार्थ भावना हमारे से दूर होती है। इसी बात को इस प्रकार कहते हैं कि **इयम्**=यह सरस्वती **वध्र्यश्वाय**=इन्द्रियरूप अश्वों को संयम रज्जु (वर्ध्री) से बाँधनेवाले **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये **रभसम्**=वेगवाले कार्यों को स्फूर्ति से करनेवाले शक्तिशाली (robust), **ऋणच्युतम्**='पितृऋण, देवऋण व ऋषिऋण' आदि ऋणों को अदा करनेवाले, **दिवोदासम्**=ज्ञान के उपासक सन्तान को **अददात्**=देती है। (२) हे सरस्वति! **यः**=जो तू **शश्वन्तम्**=धन प्राप्ति के कार्यों में निरन्तर भागदौड़वाले, **अवसम्**=अपने ही तर्पण में प्रवृत्त, **पणिम्**=वणिग् वृत्तिवाले पुरुष को **आचखाद**=खा जाती है, समाप्त कर देती है, अर्थात् तेरी आराधना से धन की इतनी ममता नहीं रह जाती और मनुष्य 'दाश्वान्' बनता है। हे सरस्वति! **ते**=तेरे **ता**=वे **दात्राणि**=दान **तविषा**=महान् हैं।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना 'शक्तिशाली, ऋणों के अदा करनेवाले, ज्ञानरुचि' सन्तान

को देती है तथा हमारी स्वार्थवृत्ति को विनष्ट करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अविद्या विनाश व सुदूर लक्ष्य की प्राप्ति

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः॥ २॥

(१) **इयम्**=यह सरस्वती **शुष्मेभिः**=शत्रुशोषक बलों के द्वारा **बिसखाः इव**=बिसों (भिस) को खोदनेवाले के समान **गिरीणां सानु**=अविद्या पर्वतों के शिखर को **अरुजत्**=भग्न कर देती है। सरस्वती की आराधना से शत्रुशोषक बल प्राप्त होता है और अविद्या का विनाश होता है। (२) **तविषेभिः**=महान् **ऊर्मिभिः**=ज्ञान की तरंगों से **पारावतघ्नी**=(हन् गतौ) सुदूर लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाली इस **सरस्वतीम्**=विद्या की अधिष्ठात्री देवता को **अवसे**=अपने रक्षण के लिये **प्रीतिभिः**=सोमपान रूप उत्तम कर्मों से तथा **सुवृक्तिभिः**=दोषवर्जन की हेतुभूत स्तुतियों से **आविवासेम**=हम पूजित करते हैं। आराधित हुई-हुई यह सरस्वती हमें ब्रह्मलोक रूप लक्ष्य पर पहुँचानेवाली होती है।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमारी अविद्या का विनाश करती है। वह आराधना हमें सुदूर लक्ष्य पर पहुँचानेवाली होती है। सरस्वती की आराधना के लिये आवश्यक है कि हम सोम का पान करें तथा प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हों जिससे वासनाओं का हमारे पर आक्रमण न हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

विष-निराकरण

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति॥ ३॥

(१) हे **सरस्वति**=ज्ञान की अधिष्ठात्रि देवि! तू **देवनिदः**=देवों से निन्दनीय भावों को **निबर्हय**=विनष्ट कर। **विश्वस्य**=सब हमारे अन्दर घुस आनेवाले **मायिनः**=मायावी **बृसयस्य**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के (वस् द०) **प्रजाम्**=प्रादुर्भाव को विनष्ट कर। हमारे सब निन्दनीय वासनामय भाव विनष्ट हो जायें। (२) **उत**=और हे सरस्वति! तू **क्षितिभ्यः**=इन मनुष्यों के लिये **अवनीः अविन्दः**=आसुरभावों से आक्रान्त भूमियों को फिर से प्राप्त कराता है। अन्नमय आदि कोश एक-एक भूमि हैं। सरस्वती इन सब भूमियों को पवित्र बनाकर हमें प्राप्त कराती हैं। हे **वाजिनीवति**=सब बलों को प्राप्त करानेवाली सरस्वति! तू **एभ्यः**=इन मनुष्यों के जीवन से **विषम्**=विष को **अस्रवः**=क्षरित करके दूर करती है। इनके जीवन को सब प्रकार के विषों से दूर करके अमृतमय बनाती हो।

भावार्थ—ज्ञान की आराधना हमारे से निन्दनीय वासनामय विषैले भावों को दूर करके अब अन्नमय आदि कोशों को स्वस्थ करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शक्ति-बुद्धि

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। धीनामवित्र्यवतु॥ ४॥

(१) **देवी**=हमारे जीवनों को दिव्यगुणमय बनानेवाली **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता

नः=हमारा **प्र अवतु**=प्रकर्षेण रक्षण करे। (२) यह सरस्वती **वाजेभिः वाजिनीवती**=बलों के द्वारा प्रशस्त बलोंवाली है। हमें प्रशस्त बलयुक्त करती है। यह **धीनां अवित्री**=हमारी बुद्धियों का रक्षण करनेवाली है।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमें प्रशस्त बलवाला व सुरक्षित बुद्धिवाला करती है। वासना विनाश के द्वारा सरस्वती बल को भी प्रशस्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्वाध्याय-ध्यान

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते। इन्द्रं न वृत्रतूर्ये॥ ५॥

(१) हे **देवि**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाली **सरस्वति**=विद्या की दैवते! **यः**=जो **हिते धने**=हितकर ज्ञान-धन के निमित्त **त्वा उपब्रूते**=तुझे पुकारता है, अर्थात् तेरी आराधना करता हुआ ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वही तेरा आराधक **वृत्रतूर्ये**=वासना-विनाश के संग्राम के निमित्त **न**=अब (न=संप्रति) **इन्द्रम्**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु को पुकारता है। (२) सरस्वती के आराधक के जीवन में प्रभु की आराधना भी चलती है। प्रभु की आराधना से वासनाओं का विनाश करके यह व्यक्ति सरस्वती की आराधना से हितकर ज्ञान धन को प्राप्त करता है।

भावार्थ—उस शत्रुविद्रावक प्रभु की उपासना मेरे वासनारूप शत्रुओं को दूर करे। स्वाध्याय सरस्वती द्वारा प्रभी की आराधना करता हुआ मैं हितकर ज्ञान-धन को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाज-सनि (शक्ति-धन)

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि। रदा पूषेव नः सनिम्॥ ६॥

(१) हे **देवि**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनाने वाली **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठातृ देवि! **त्वं अव**=तू हमारा रक्षण कर। हे **वाजिनि**=प्रकृष्ट बलों से युक्त सरस्वति! तूने ही **वाजेषु**=बल प्राप्ति के निमित्त हमारा रक्षण करना है। (२) **नः**=हमें **पूषा इव**=पोषण करनेवाली देवता के समान **सनिम्**=सम्भजनीय धन को **रदा**=(प्रयच्छ) दे।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना से हम शक्ति व धन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

घोरा हिरण्यवर्तनिः

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः। वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम्॥ ७॥

(१) **उत**=और **स्या**=वह **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठातृदेवता **नः**=हमारा लिये **घोरा**=शत्रुओं को विनष्ट करनेवाली व **हिरण्यवर्तनिः**=ज्योतिमय मार्गवाली हो। विद्या का आराधन करता हुआ मैं काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश कर सकूँ तथा अपने जीवन के मार्ग को ज्योतिर्मय बना पाऊँ। (२) यह **वृत्रघ्नी**=काम-वासना को विनष्ट करनेवाली सरस्वती **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **वष्टि**=(कामयते) चाहती है, अर्थात् सरस्वती का आराधक प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होता है और प्रभु का स्तवन उसे वासनाओं का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—स्वाध्याय के द्वारा हम शत्रु भयंकर बनते हैं, जीवन मार्ग को ज्योतिर्मय बना पाते हैं। कामरूप वासना को विनष्ट करने के लिये प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अनन्त बल

यस्या॑ अन॒न्तो अह्रु॑तस्त्वे॒षश्च॑रि॒ष्णुर्र्ण॒वः। अम॒श्चर॑ति॒ रोरु॑वत्॥ ८॥

(१) हम उस सरस्वती की आराधना करें **यस्याः**=जिसका **अमः**=बल **अनन्तः**=अपरिमित है। **अह्रुतः**=कुटिलता से रहित है, **त्वेषः**=दीप्त है तथा **चरिष्णुः**=गतिशील है। सरस्वती की आराधना से अनन्त बल को प्राप्त करते हुए हम अकुटिल दीप्त व गतिशील जीवनवाले बनते हैं। (२) इस सरस्वती का **अर्णवः**=प्रशस्त ज्ञान जलवाला बल **रोरुवत्**=खूब ही प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **चरति**=गतिवाला होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय हमें 'शक्तिशाली, अकुटिल, दीप्त, गतिशील व प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाला' बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋतावरी

सा नो॒ विश्वा॒ अति॒ द्विषः॒ स्वसृ॑र॒न्या ऋ॒तावरी। अत॒न्नहे॑व॒ सूर्यः॥ ९॥

(१) **सा**=वह गतमन्त्र में वर्णित अनन्त बलवाली सरस्वती **नः**=हमें **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **अति**=पार ले जाये। तथा **अन्याः**=और भी **स्वसृः**=(स्व+सृ) आत्मतत्त्व की ओर सरण करनेवाली वृत्तियाँ हमें **ऋतावरी**=प्रशस्त ज्ञान-जल (ऋतम्=उदकम्) को प्राप्त करानेवाली हों या हमें यज्ञों में प्रवृत्त करनेवाली हों (ऋतम्=यज्ञ)। (२) **अतन्**=गति करता हुआ **सूर्यः**=सूर्य **इव**=जैसे **अहा**=दिनों का निर्माण करता है, इसी प्रकार यह सरस्वती तथा आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली वृत्तियाँ हमारे जीवनों में ऋत का निर्माण करनेवाली हों।

भावार्थ—सरस्वती का आराधन हमें जीवन में द्वेष से ऊपर उठाये। आत्मतत्त्व की ओर चलाने की वृत्ति हमारे में ऋत को उत्पन्न करे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सप्तस्वसा' सरस्वती

उ॒त नः॒ प्रि॒या प्रि॒यासु॑ स॒प्तस्व॑सा सु॒जु॑ष्टा। सर॑स्वती॒ स्तोम्या॑ भूत्॥ १०॥

(१) **उत**=और **सप्तस्वसा**=सात गायत्री आदि छन्दो रूप स्वसाओंवाली यह **सरस्वती**=वेदरूप ज्ञान की वाणी **नः**=हमारे लिये **प्रियासु प्रिया**=प्रिय वस्तुओं में प्रियतम हो। (२) यह **सुजुष्टा**=हमारे से प्रीतिपूर्वक सेवन की जाती हुई **स्तोम्या भूत्**=स्तुति के योग्य हो। हम सरस्वती का आराधन करते हुए प्रभु स्तवन की वृत्तिवाले बनें। सरस्वती हमारे लिये स्तोम्य हो, हमें स्तोम में प्रवृत्त करे।

भावार्थ—सरस्वती वेदवाणी है। यह गायत्री आदि सात छन्दोरूप सात स्वसाओंवाली है। यह सुसेवित होने पर स्तोम्य होती है, हमें प्रभु स्तवन की प्रवृत्तिवाला बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

तेजस्विता की प्राप्ति-निन्दनीय से बचाव

आप्र॒प्रु॒षी पार्थि॑वान्यु॒रु रजो॑ अ॒न्तरि॑क्षम्। सर॑स्वती नि॒दस्पा॑तु॥ ११॥

(१) **सरस्वती**=यह विद्या की अधिष्ठातृदेवता **पार्थिवानि**=पृथिवी सम्बद्ध सब लोकों को, **उरु रजः**=विशाल द्युलोक को तथा **अन्तरिक्षम्**=इनके बीच में स्थित (अन्तराक्षान्तम्) अन्तरिक्षलोक

को **आपप्रुषी**=अपने तेज से आपूरित करनेवाली होती है। सरस्वती की आराधना पृथिवीरूप शरीर के सब अंगों को ठीक कर देती है, मस्तिष्क रूप द्युलोक को तो यह ज्ञानदीप्त बनाती ही है। यह हृदयान्तरिक्ष को भी निर्मल करती है। (२) यह सरस्वती **निदः**=सब निन्दनीय बातों से **पातु**=हमारा रक्षण करे। सरस्वती में स्नान हमारे जीवन को शुद्ध ही शुद्ध कर डाले। यह स्नान शरीर से रोगों को, मन से वासनाओं को तथा मस्तिष्क से कुण्ठता को दूर करनेवाला हो।

भावार्थ—विद्या की आराधना हमें शरीर, मन व मस्तिष्क में तेज से पूर्ण बनाती है। यह हमें सब निन्दनीय वस्तुओं से बचाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'त्रिषधस्था' (सरस्वती)

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती। वाजेवाजे हव्या भूत्॥ १२॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार यह सरस्वती **त्रिषधस्था**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक रूप तीनों लोकों में साथ-साथ स्थित है, तीनों 'शरीर, हृदय, व मस्तिष्क' रूप पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक को यह समानरूप से तेजःपूर्ण करती है। **सप्तधातुः**=सात गायत्री आदि छन्दों से इसका धारण किया गया है। **पञ्च जाता**=यह पाँच उत्पन्न हुए-हुए 'पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश' रूप भूतों को, पाँच प्राणों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों व पाँच अन्तःकरणों (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय) को **वर्धयन्ती**=बढ़ानेवाली होती है। (२) यह सरस्वती **वाजे वाजे**=प्रत्येक संग्राम में **हव्या भूत्**=पुकारने योग्य होती है। सब संग्रामों में इसी के द्वारा विजय की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सरस्वती 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को उत्तम बनाती है। पञ्चभूत व पञ्च प्राण आदि सब पञ्चकों का वर्धन करती है। प्रत्येक संग्राम में पुकारने योग्य है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अपसां अपस्तमा

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा।
रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती॥ १३॥

(१) **य**=जो **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठात्री देवता **महिम्ना**=अपनी महिमा **से महिना**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **प्रचेकिते**=जानी जाती है। जो **आसु**=इन प्रजाओं में **द्युम्नेभिः**=ज्ञान-ज्योतियों से **अन्या**=विलक्षण ही है। **अपसां अपस्तमा**=कर्मशीलों में अत्यधिक कर्मशील है, सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करनेवाली है। (२) यह सरस्वती **रथः इव**=इस जीवनयात्रा में रथ के समान है, **बृहती**=यह वृद्धि की कारणभूत है, **विभ्वने कृता**=उस सर्वव्यापक परमात्मा की प्राप्ति के लिये निर्मित हुई है। इस सरस्वती की आराधना हमें परमात्मा को प्राप्त करानेवाली है। यह सरस्वती **चिकितुषा**=समझदार स्तोता से **उपस्तुत्या**=स्तोतव्य होती है। वस्तुतः सरस्वती की स्तुति यही है कि हम स्वाध्याय को नियमितरूप से अपनाएँ।

भावार्थ—स्वाध्याय की महिमा अद्भुत है, यह हमें ज्योतिर्मय व कर्मनिष्ठ बनाता है। हमारे में गुणों का वर्धन करता हुआ हमें प्रभु प्राप्ति के योग्य करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्वाध्याय

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

(१) हे **सरस्वति**=ज्ञान की अधिष्ठात्रि देवते! **नः**=हमें **वस्यः अभिनेषि**=प्रशस्त वसुओं की ओर ले चल। **मा अप स्फरीः**=(स्फाहो वृद्धिः) हमें अप्रवृद्ध मत कर। हम तेरे द्वारा सब गुणों के दृष्टिकोण से बढ़े हुए ही हों। **पयसा**=अपने ज्ञान-जल के द्वारा **नः**=हमें **मा आधक्**=मत संतप्त होने दे। ज्ञान-जल हमारी वासनाग्नि को बुझानेवाला हो। (२) हे सरस्वति! तू **नः**=हमारे **सख्या**=सखि कर्मों को **च**=तथा **वेश्या**=प्रवेशनों को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कर। हम तेरे सखा व तेरे में प्रवेश करनेवाले बनें। हम **त्वत्**=तेरे से भिन्न **अरणानि**=अरमणीय **क्षेत्राणि**=क्षेत्रों में **मा गन्म**=मत जायें। हमारा जीवन अरमणीय स्थान आदि में न व्यतीत हो। हम सब खाली समय को तेरी आराधना में व्यतीत करें।

भावार्थ—सरस्वती हमें वसुओं को प्राप्त कराये, हमारा अवृद्धि का कारण न हो। हम सदा सरस्वती की मैत्री में विचरने का यत्न करें।

अगले सूक्त में भरद्वाज बार्हस्पत्य 'अश्विनौ' का स्तवन करता है—

अथ पञ्चमोऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

प्रथमोऽनुवाकः

[६२] द्विषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अज्ञान-विनाश व शरीर रक्षण

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥ १ ॥

(१) मैं **अश्विना**=प्राणापान का **स्तुषे**=स्तवन करता हूँ। जो प्राणापान **दिवः नरा**=ज्ञान को हमारे लिये प्राप्त करानेवाले हैं। ये **अस्य**=इस पृथिवीलोक रूप शरीर के **प्रसन्ता**=(श्यवन्तौ) ईश्वर हैं, इसे प्रभावयुक्त बनानेवाले हैं। इन प्राणापान को **अर्कैः**=स्तुति-साधन मन्त्रों से **जरमाणः**=स्तुति करता हुआ **हुवे**=पुकारता हूँ। (२) उन प्राणापान को पुकारता हूँ **या**=जो **उस्रा**=सब दोषों के निवारक होते हुए **सद्यः**=शीघ्र ही **व्युषि**=रात्रि के समाप्त होने पर, अज्ञान रात्रि के दूर होने पर **ज्मः**=इस पृथिवीरूप शरीर के **अन्तान्**=अन्तकों को, इस शरीर को समाप्त कर देनेवाले **उरु वरांसि**=विशाल आच्छादक अन्धकारों को **परियुयूषतः**=पृथक् करते हैं। अज्ञान ही विनाशक है। प्राणसाधना इस अज्ञान के अन्धकार को विनष्ट करती है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर के विनाशक अज्ञान को दूर करके शरीर को प्रभाव (सामर्थ्य) युक्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तेजस्विता व अव्याकुलता से आगे बढ़ना

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान्॥ २॥

(१) **ता**=वे दोनों अश्विनौ (प्राणापान) **यज्ञं आचक्रमाणा**=जीवन-यज्ञ के अन्दर गति करते हुए **शुचिभिः**=पवित्र **रजोभिः**=ज्योतियों से (रजः ज्योतिः नि० ४।१९) **रथस्य**=इस शरीर रथ की **भानुम्**=दीप्ति को **रुरुचुः**=दीप्त करते हैं। प्राणसाधना से शरीर तेजस्वी बनता है, यहाँ ज्ञान-ज्योति चमक उठती है। (२) ये प्राणापान **पुरू**=पालक व पूरक **वरांसि**=तमोनिवारक तेजों का **अमिता**=अपरिमित रूप में **मिमाना**=निर्माण करते हुए **अपः**=जलों को, **धन्वानि**=मरुस्थलों को **अज्रान्**=मैदानों को (खेतों को) **अतियाथः**=लाँघ जाते हैं, जीवन में आनेवाली सब परिस्थितियों को पार कर जाते हैं। 'अपः, धन्वानि, अज्रान्' ये शब्द जीवन के अन्दर समय-समय पर आनेवाले 'ऊँच-नीच' (सुख-दुःख) के प्रतिपादक हैं। प्राणसाधना करनेवाला पुरुष इनमें अव्याकुल रहता हुआ आगे बढ़ता है।

भावार्थ—प्राणापान जीवन में पवित्र ज्योति को जगाते हैं। तेजस्विताओं को उत्पन्न करते हुए सब सुख-दुःखों में अव्याकुल भाव से आगे बढ़ते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शरीरगृह की समृद्धि

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य॥ ३॥

(१) **ता**=वे **उग्रा**=तेजस्वी प्राणापानो! आप **धियः**=स्तोता के अथवा ज्ञानपूर्वक कर्मों को करनेवाले के **त्यत्**=उस **यत्**=जो **अरध्रम्**=असमृद्ध **वर्तिः**=शरीरगृह है, उसको **ह**=निश्चय से **शश्वत्**=सदा **इत्था**=सचमुच **मनोजवेभिः**=मन के समान वेगवान् **इषिरैः**=गतिशील **अश्वैः**=इन्द्रियाश्वों से **ऊहथुः**=उन्नत करते हो, उसे स्वर्ग को प्राप्त कराते हो। जो शरीरगृह असमृद्ध-सा था उसे बड़ा समृद्ध बना देते हो। इस शरीर-रथ में एक-एक इन्द्रियाश्व उत्तम हो, यही इसकी समृद्धि है। ये प्राणसाधना से सब इन्द्रियाँ बड़ी उत्तम बनती हैं। (२) आपकी इस साधना से **दाशुषः**=दाश्वान्-त्यागवृत्तिवाले **मर्त्यस्य**=मनुष्य का **व्यथिः**=संतापक शत्रु **परिशयध्यै**=दीर्घ निद्रा के लिये होता है। काम-क्रोध-लोभ ही सन्तापक शत्रु हैं। प्राणसाधना से इनका विनाश होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीरस्थ सब इन्द्रियों को उत्तम बनाकर शरीरगृह को समृद्ध करती है। दाश्वान् पुरुष के शत्रुओं को समाप्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान व शक्ति की वृद्धि के साथ प्रभु प्राप्ति

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युजुजानसप्ती।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना॥ ४॥

(१) **ता**=वे प्राणापान **नव्यसः**=नवतर, अत्यन्त स्तुतिशील, **जरमाणस्य**=स्तोता के **मन्म**=ज्ञान

को **उपभूषतः**=अलंकृत करते हैं। ये प्राणापान **युयुजानसप्ती**=युज्यमान अश्वोंवाले हैं, इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतते हैं। (२) ये प्राणापान **शुभं पृक्षम्**=शुभ सम्पर्क को, **इषम्**=प्रभु प्रेरणा को, **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **वहन्ता**=धारण करते हैं। इन प्राणापानों के अनुग्रह से ही वह **अधृक्**=किसी का भी द्रोह न करनेवाला **प्रत्नः होता**=सनातन दाता प्रभु **यक्षत्**=उपासक के लिये सब कुछ देनेवाला होता है, उपासक को प्राप्त होता है। ये प्राणापान **युवाना**=सब बुराइयों को दूर करनेवाले व सब अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं।

भावार्थ—प्राणापान की साधना हमारे ज्ञान को बढ़ाती है, इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतती है। प्रभु की प्रेरणा व शक्ति को प्राप्त कराती है। इस साधना से ही प्रभु के साथ मेल होता है और सब बुराइयाँ दूर होकर अच्छाइयाँ प्राप्त होती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति-शान्ति-ज्ञान व प्रभु स्तुति

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे।
या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्ररातीं॥ ५॥

(१) **ता**=उन **वल्गू**=शरीर में निरन्तर गति करनेवाले (वल्गू walk), **दस्रा**=सब रोगों का उपक्षय करनेवाले, **पुरुशाकतमा**=बहुत ही शक्तिशाली, **प्रत्ना**=इन चिरन्तन प्राणापानों को **नव्यसा वचसा**=स्तुत्य-वचनों से **आविवासे**=पूजित करता हूँ। प्रभु ने सब से प्रथम इस प्राण कला को ही जन्म दिया 'स प्राणमसृजत्। प्राणात् श्रद्धां०' सब से प्रथम उत्पन्न होने से ही इसे 'प्रत्न' कहा गया है। (२) **या**=जो प्राणापान **शंसते**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले, **स्तुबते**=प्रभु स्तवन में प्रवृत्त मनुष्य के लिये **शम्भविष्ठा**=अधिक से अधिक शान्ति को देनेवाले हैं तथा **गृणते**=ज्ञान का उपदेश करनेवाले के लिये **चित्ररातीं**=अद्भुत दानोंवाले **बभूवतुः**=होते हैं। वस्तुतः प्राणसाधना ही ज्ञान प्राप्ति व प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला हमें बनाती है। इसे अपनाते हुए हम ज्ञान का प्रसार करनेवाले बनते हैं। इस कार्य में यह प्राणसाधना ही हमें अद्भुत क्षमता प्रदान करती है।

भावार्थ—प्राणसाधाना हमारे अन्दर 'शक्ति, शान्ति, ज्ञान व प्रभु स्तुति' को उत्पन्न करती है। यह हमारे लिये अद्भुत दानोंवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तुग्र का समुद्र से पार होना

ता भुज्युं विभिरूद्रयः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात्॥ ६॥

(१) **ता**=वे प्राणापान **तुग्रस्य सूनुम्**=वासनाओं का संहार करनेवाले के पुत्र, खूब ही वासनाओं का संहार करनेवाले, **भुज्युम्**=अपना पालन करनेवाले को **रजोभिः विभिः**=(ज्योतिः रज उच्यते नि० ४।१९) ज्योतिवाले इन्द्रियाश्वों के द्वारा **समुद्रात् अद्भ्यः**=(कामो हि समुद्रः) वासनाजलों से **निर् ऊहथुः**=बाहर प्राप्त कराते हैं। प्राणसाधना द्वारा इन्द्रियों के मल क्षीण होते हैं और ये इन्द्रियाँ हमें वासना समुद्र के जलों में डूबने नहीं देती। (२) **अरेणुभिः**=रेणु या धूलि से रहित, अमलिन **योजनेभिः**=शरीर-रथ में जुते हुए **पतत्रिभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा **भुजन्ता**=पालन करते हुये प्राणापान **अर्णसः उपस्थात्**=ज्ञान-जल की उपासना के द्वारा **निः**=साधक को विषय

समुद्र से बाहिर करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियाश्व निर्मल बनते हैं और ज्ञान की उपासना करते हुए हम विषय-वासनाओं के समुद्र से बाहिर हो जाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अविद्या विनाश व संयम

वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू॥ ७॥

(१) **रथ्या**=शरीर-रथ को उत्तम बनानेवाले प्राणापानो! आप **जयुषा**=विजयशील रथ के द्वारा **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **वियातम्**=(यातिर्वधकर्मा) विनष्ट करते हो। प्राणसाधना के द्वारा बुद्धि तीव्र बनती है। परिणामतः अविद्या का विनाश होता है। (२) हे **वृषणा**=शक्तिशाली प्राणापानो! आप **वध्रिमत्याः**=इन्द्रियों को संयमरज्जु से बाँधनेवाली की **हवं श्रुतम्**=पुकार को सुनते हो। वस्तुतः प्राणापान ही हमें इन्द्रियों के संयम में समर्थ करके शक्तिशाली बनाते हैं। (३) **दशस्यन्ता**=उत्तम शरीर, मन व बुद्धि को देते हुए आप **शयवे**=(शी=tranquility) इस शान्त स्वभाव पुरुष के लिये **गाम्**=वेदवाणी रूप गौ को **पिप्यथुः**=ज्ञानदुग्ध से आप्यायित करते हो। अर्थात् प्राणसाधना करनेवाला यह पुरुष तीव्र बुद्धि के द्वारा वेदवाणीरूप गौ से उत्कृष्ट ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करता है। (४) **इति**=इस प्रकार इस ज्ञानदुग्ध के द्वारा **सुमतिं च्यवाना**=उत्तम कल्याणी मति को प्राप्त कराते हुए आप (गमयन्तौ) **भुरण्यू**=उत्तम भरण करनेवाले होते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से अविद्या विनष्ट होती है। इन्द्रियों का संयम होकर शक्ति की वृद्धि होती है। बुद्धि तीव्र होकर वेदवाणी रूप गौ के ज्ञानदुग्ध का दोहन करती है। सुमति की प्राप्ति होकर हम अच्छी प्रकार अपना भरण कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राक्षसीभाव व संताप

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात॥ ८॥

(१) हे **रोदसी**=द्यावापृथिवी, **आदित्याः वसवः रुद्रियासः**=द्युलोकस्थ, पृथिवीस्थ व अन्तरिक्षस्थ देवो! **यद्**=जो **देवानाम्**=देवों का **उत**=और **मर्त्यत्रा**=मनुष्यों में होनेवाला **प्रदिवः**=सनातन **भूमा**=महान् **हेडः**=क्रोध **अस्ति**=है, **तद्**=उस **रक्षोयुजे**=राक्षसीभावों से युक्त पुरुष के लिये **तपुः**=संतापक **अघम्**=आहन्तृ शस्त्र के रूप में **दधात**=धारण करो। (२) द्युलोक से लेकर पृथिवीलोक तक सम्पूर्ण संसार, त्रिलोकी के सब पदार्थ राक्षसीभावों से युक्त पुरुष को संतप्त करनेवाले हों। यह संताप उसके राक्षसीभावों के विनाश का कारण बने।

भावार्थ—राक्षसीभावों से युक्त पुरुष को यह संसार संतप्त करनेवाला हो। यह इस संताप से अनुभव लेकर राक्षसीभावों को छोड़नेवाला बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मित्र व वरुण' की साधना

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥ ९ ॥

(१) **यः**=जो मनुष्य **ईम्**=निश्चय से **रजसः**=सब लोकों के **राजानौ**=शासक प्राणापानों को **ऋतुथा**=समयानुसार **विदधत्**=पूजित करता है, अर्थात् जो प्रातः-सायं इन प्राणापानों की साधना को करता है, उसको **मित्रः वरुणः**=मित्र और वरुण **चिकेतत्**=जानते हैं। अर्थात् यह प्राणसाधना करनेवाला पुरुष मित्र और वरुण को आराधित करता है 'मित्र' इसे सबके प्रति स्नेहवाला और 'वरुण' इसे सबके प्रति निर्द्वेषतावाला करता है। (२) हे मनुष्य! तू इस प्राणसाधना के द्वारा **गम्भीराय रक्षसे**=बहुत गम्भीर (deeprooted) राक्षसीभाव के लिये **हेतिं अस्य**=घातक अस्त्र को फेंकनेवाला हो। इन राक्षसीभावों को अपने से दूर कर और **चित्**=निश्चय से **द्रोघाय**=द्रोहात्मक **आनवाय वचसे**=मानव सम्बन्धी वचन के लिये भी घातक अस्त्र को फेंकनेवाला हो। अर्थात् द्रोहात्मक वचनों से सदा दूर रह।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा (क) 'स्नेह भाव' का उदय होता है, (ख) पाप का निवारण होता है, (ग) राक्षसी भाव विनष्ट होते हैं, (घ) हम द्रोहात्मक वचनों को नहीं बोलते।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युमान् रथ-क्रोध विनाश

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥

(१) हे प्राणापानो! आप **अन्तरैः चक्रैः**=अन्तर्हित (छिपे हुए) चक्रों से युक्त **द्युमता**=प्रकाशमय, **नृवता**=प्रशस्त नेतृत्व करनेवाले सारथि (बुद्धि) से युक्त **रथेन**=इस शरीर-रथ से **वर्तिः यातम्**=हमारे घरों में प्राप्त होवो। ताकि **तनयाय**=हमारे घरों में उत्तम ही सन्तान हों। हम प्राणसाधना के द्वारा अपने शरीर-रथों को उत्तम बनायें। इस शरीर में 'मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र' तक आठों चक्र बड़े ठीक हों। इसमें सब ज्ञानेन्द्रियरूप अश्व ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करानेवाले हों। इसका बुद्धि रूप सारथि उत्तम हो। (२) **सनुत्येन**=अन्तर्हितरूप से वर्तमान **त्यजसा**=क्रोध से **मर्त्यस्य वनुष्यताम्**=मानव का संहार करनेवाले राक्षसों के **शीर्षा अपि**=सिरों को भी **ववृक्तम्**=छिन्न करनेवाले होवो। राक्षसीभाव क्रोध के द्वारा हमारा संहार करते हैं, प्राणसाधना इन राक्षसीभावों को विनष्ट करती है। सब राक्षसीभावों में क्रोध छिपे रूप से वर्तमान होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर-रथ को सुन्दर बनाती है, इससे सन्तान भी उत्तम होते हैं। यह प्राणसाधना क्रोध को विनष्ट करती है। क्रोध ही तो मनुष्य का संहार करता है। प्राणसाधना क्रोध का संहार करके हमारा रक्षण करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'परमा मध्यमा व अवमा' नियुत्

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक्।
दृळ्हस्य चिद्रोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्ररातौ ॥ ११ ॥

(१) हे प्राणापानो! आप **परमाभिः नियुद्भिः**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियरूप अश्वों के साथ **अर्वाक् आयातम्**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होवो। **उत**=और **मध्यमाभिः**=हस्त पाद आदि मध्यम कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों के साथ हमें प्राप्त होवो। इसी प्रकार **अवमाभिः**=शरीर के निचले प्रदेश में स्थित मल शोधक इन्द्रियाश्वों के साथ आप हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना के द्वारा हमारी सब इन्द्रियाँ उत्तम बनें। (२) **दृढस्य चित्**=अत्यन्त दृढ़ भी **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **व्रजस्य**=बाड़े के, गोष्ठ के **दुरः**=द्वारों को **विवर्तम्**=आप खोल डालो। ये इन्द्रियाँ विषयों के बाड़े में निरुद्ध न हो जाएँ। हे प्राणापानो! आप ही **गृणते**=स्तुति करनेवाले के लिये **चित्ररातीं**=अद्भुत दानों के देनेवाले हैं। वस्तुतः प्राणसाधना ही सब अशुभों को दूर करती है।

भावार्थ—प्राणसाधना सब इन्द्रियों को निर्मल बनाती है। ये निर्मल इन्द्रियाश्व शरीर-रथ में जुतकर इसे लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं।

अगले सूक्त में भी 'अश्विनौ' का ही आराधन है—

[६३] त्रिषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

नमस्वान् स्तोम

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन्॥ १॥

(१) **त्या**=वे **वल्गू**=अत्यन्त सुन्दर गतिवाले **पुरुहूता**=बहुतों से पुकारे जानेवाले ये प्राणापान **क्व**=कहाँ हैं? **अद्य**=आज यह **नमस्वान्**=नमस् (नम्रता) वाला **स्तोमः**=स्तोत्र **दूतः न अविदत्**=ज्ञान सन्देशवाहक के रूप में प्राप्त होता है। हम नम्रतापूर्वक इन प्राणों का स्तवन करते हैं। साधित प्राण बुद्धि की तीव्रता के द्वारा हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाले होते हैं। (२) हम उस स्तोम को करते हैं, **यः**=जो **नासत्या**=प्राणापानों को **अर्वाङ् आववर्त**=हमारे अभिमुख प्राप्त कराता है। हे प्राणापानो! आप **अस्य**=इस स्तोता के **मन्मन्**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तोत्र के होने पर **हि**=निश्चय से **प्रेष्ठा**=इसके प्रियतम **असथः**=होते हो। प्राणों का स्तवन यही है कि हम प्राणसाधना के लाभों को समझते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—हम नम्रता से युक्त होकर प्राणापान का स्तवन करें। यह स्तवन हमें प्राणसाधना में प्रवृत्त करेगा और हम प्राणों के प्रियतम होंगे। प्राणापान हमारे जीवन में सब सुन्दरताओं को जन्म देंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'न परः न आन्तरः' रिषः (तुतुर्यात्)

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात्॥ २॥

(१) हे अश्विनी देवो, प्राणापानो! **मे**=मेरे **अस्मै**=इस **हवनाय**=पुकार के लिये **अरंगन्तम्**=पर्याप्तरूप से प्राप्त होवो। इस प्रकार प्राप्त होवो, **यथा**=जैसे **गृणाना**=स्तुति किये जाते हुये आप **अन्धः पिबाथः**=सोमरूप अन्न का पान करते हो। हम प्राणसाधना करते हैं, तो शरीर

में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। यही इनका सोमपान है। (२) इस प्रकार सोम-रक्षण करते हुए आप **ह**=निश्चय से **त्यद् वर्तिः**=उस शरीरगृह को **परियाथः**=चारों ओर से प्राप्त होते हो। चारों ओर से आप इसका रक्षण करते हो। इस लिये प्राप्त होते हो **यत्**=कि **न परः रिषः**=न तो बाह्य शत्रु (रिष्+क, रेषति इति) **न आन्तरः**= और नां ही अन्दर का शत्रु **तुतुर्यात्**=इसे हिंसित करे। यह रोगों व वासनाओं का शिकार न हो जाये।

भावार्थ—प्राणसाधना सोमरक्षण के द्वारा रोगों व वासनाओं के आक्रमण से इस शरीर को बचाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणसाधना द्वारा शरीर का अलंकरण

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्।
उत्तानहस्तो युवयुर्वन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन्॥ ३॥

(१) **वाम्**=हे प्राणापानो! आपके द्वारा ही **अन्धसः**=सोम के **वरीमन्**=शरीर में विस्तार के निमित्त **अकारि**=सब कार्य किया जाता है। प्राणसाधना के द्वारा ही शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। प्राणसाधना के द्वारा ही **सुप्रायणतमं (सु प्र अयनतमं)**=सब दिव्य गुणों का शरणभूत **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदयरूप आसन **अस्मारि**=बिछाया जाता है। प्राणसाधना से ही हृदय पवित्र होता है। (२) **उत्तान हस्तः**=ऊर्ध्वीकृत अञ्जलिवाला मैं **युवयुः**=आपकी प्राप्ति की कामनावाला **ववन्द्**=प्रभु का वन्दन करता हूँ। प्रभु वन्दना के द्वारा प्राण शक्ति को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता हूँ। **वाम्**=आपको (प्राणापान को) **नक्षन्तः**=प्राप्त करते हुए **अद्रयः**=उपासक **आञ्जन्**=अपने जीवनों को अच्छाइयों से अलंकृत करते हैं (अञ्ज्=to decorate)।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर में सोम का रक्षण होता है, हृदय सब दिव्य गुणों का आधार बनता है, जीवन उत्तमताओं से अलंकृत हो उठता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

होता, गूर्तमनाः, उराणः

ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन्॥ ४॥

(१) **अग्निः**=प्रगतिशील मनुष्य **वाम्**=आपके द्वारा **अध्वरेषु**=यज्ञों में **ऊर्ध्वः अस्थात्**=ऊपर स्थित होता है, अर्थात् प्राणसाधना करता हुआ यह अधिकाधिक यज्ञशील बनता है। इस अग्नि को **रातिः**=दानशीलता **प्र एति**=प्रकर्षेण प्राप्त होती है। यह दानशीलता **जूर्णिनी**=(प्रगामिनी) प्रकृष्ट गमनवाली तथा **घृताची**=ज्ञानदीप्ति से युक्त होती है। दानशील पुरुष सदा उत्तम कर्मों की ओर झुकाववाला तथा ज्ञान की दीप्तिवाला बनता है। (२) **यः**=जो **हवीमन्**=उस प्रभु को पुकारने में, प्रभु की आराधना में **नासत्या**=अश्विनी देवों को **प्र अयुक्त**=प्रकर्षेण युक्त करता है, अर्थात् प्रभु के आराधन के साथ प्राणायाम को करता है, वह **होता**=सदा यज्ञशील होता है। **गूर्तमनाः**=सदा उद्यत मनवाला, उत्साहयुक्त मनवाला होता है तथा **उराणः**=(उरु कुर्वाणः) हृदय को बड़ा विशाल बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना करनेवाला यज्ञशील होता है। यह दानशील बनता हुआ प्रकृष्ट गतिवाला

व ज्ञानदीप्त बनता है। सदा उत्साहयुक्त मनवाला व विशाल हृदयवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुरुभुजा-नरा-नृतू

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम्।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम्॥ ५॥

(१) हे **पुरुभुजा**=खूब ही पालन करनेवाले प्राणापानो! आपके इस **शतोतिम्**=शतवर्ष तक सुरक्षित रहनेवाले **रथम्**=शरीर-रथ को **सूर्यस्य दुहिता**=सूर्य की पुत्री, ज्ञानसूर्य का हमारे में पूरण करनेवाली यह वेदवाणी **श्रिये**=शोभा के लिये **अधितस्थौ**=अधिष्ठित करती है। प्राणसाधना से शरीर सौ वर्ष तक ठीक चलता है और यह ज्ञान के प्रकाश से युक्त होता है। (२) हे प्राणापानो! आप **अत्र**=इस शरीर-रथ में **मायाभिः**=प्रज्ञाओं से **मायिना**=प्रकृष्ट प्रज्ञानवाले **भूतम्**=होइये। हे **नृतू**=इस जीवन नृत्य को करानेवाले प्राणापानो! आप **यज्ञियानाम्**=सब संगतिकरण योग्य दिव्य भावनाओं के **जनिमन्**=प्रादुर्भाव के निमित्त **नरा**=हमें आगे ले चलनेवाले होवो।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर (क) शरीर सौ वर्ष तक सुरक्षित रहता है, (ख) यह वेदवाणी का अधिष्ठान बनता है, (ग) बुद्धि तीव्र होती है, (घ) दिव्य भावों का विकास होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सूर्या-श्री-सुष्टुता वाणी

युवं श्रीभिर्दर्शताभिरभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम्॥ ६॥

(१) हे प्राणापानो! **युवम्**=आप **आभिः**=इन **दर्शताभिः**=दर्शनीय **श्रीभिः**=श्रियों से, शोभाओं से **शुभे**=शोभा को प्राप्त कराने के लिये **सूर्यायाः**=सूर्या की **पुष्टिम्**=पुष्टि को **ऊहथुः**=प्राप्त कराते हो। 'सूर्या' वेदवाणी है, ज्ञान की वाणी। प्राणसाधना इस सूर्या को तो हमारे में पुष्ट करती ही है, इसी प्रकार यह साधना शरीर को भी तेजस्वी बनाती है। इस साधना के द्वारा शरीर दर्शनीय श्री से सम्पन्न होता है। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपके **वयः**=ये इन्द्रियाश्व **वपुषे**=शोभा के लिये **प्र**=प्रकर्षेण **अनुपप्तन्**=अनुकूल गतिवाले होते हैं। प्राणसाधना के होने पर इन्द्रियाश्व अनुकूल गतिवाले है, होते हैं और इस प्रकार शोभा की वृद्धि के लिये होते हैं। हे **धिष्ण्या**=धारण करने में उत्तम प्राणापानो! **वाम्**=आपको **सुष्टुता**=उत्तम स्तुतिवाली **वाणी**=वाणी **नक्षत्**=प्राप्त होती है प्राणसाधना के होने पर मनुष्य प्रभु स्तवन की ओर झुकता है। यह साधक कभी निन्दात्मक वाणी को नहीं बोलता।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) ज्ञान की वाणी का पोषण प्राप्त होता है, (ख) शरीर दर्शनीय श्री से सम्पन्न होता है, (ग) इन्द्रियाश्व सदा अनुकूल गतिवाले होते हैं, (घ) मुख से स्तुति वाणी ही उच्चरित होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'वहिष्ठ' इन्द्रियाश्व व 'मनोजवा' शरीर-रथ

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः॥ ७॥

(१) हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपके ये **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व **वयः**=गतिशील होते हैं, **वहिष्ठाः**=लक्ष्य की ओर उत्तमता से ले जानेवाले होते हैं। ये इन्द्रियाश्व **प्रयः अभि**=सोम लक्षण अन्न की ओर **आवहन्तु**=प्राप्त कराते हैं। अर्थात् प्राणसाधना से इन्द्रियाश्व क्रियाशील लक्ष्य की ओर ले जानेवाले व शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले होते हैं। (२) **वाम्**=आपका **रथः**=यह शरीर-रथ **मनोजवाः**=मन के समान वेगवाला **प्र असर्जि**=निर्मित होता है। यह शरीर-रथ **इषिधः**=एषणीय (चाहने योग्य) **पृक्षः**=संपर्चनीय **पूर्वीः**=पूरण करनेवाले **इषः अनु**=अन्नों के अनुसार (असर्जि=) सृष्ट होता है। प्राणसाधना करनेवाला उत्तम ही अन्नों का सेवन करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) इन्द्रियाश्व उत्तम क्रियावाले व लक्ष्य की ओर गतिवाले होते हैं। (ख) यह साधना शरीर-रथ को मन के समान वेगवाला बनाती है। (ग) यह साधना उत्तम अन्नों की रुचि को जन्म देती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'स्तुत, स्तुति, रस'

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्॥ ८॥

(१) हे **पुरुभुजा**=खूब ही पालन करनेवाले, प्राणापानो! **वाम्**=आपका **देष्णाम्**=देय धन **हि**=निश्चय से **पुरु**=पालन व पूरण करनेवाला है। आप **नः**=हमारे लिये **इषम्**=एषणीय **धेनुम्**=इस वेदवाणी रूप धेनु को **असक्राम्**=असंक्रमणी को **पिन्वतम्**=(प्रयच्छतम्) प्राप्त कराते हो। 'असंक्रमणी' अर्थात् दूर न जानेवाली। प्राणसाधना के होने पर यह ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदधेनु हमारे से दूर नहीं होती। (२) **वाम्**=आपके द्वारा **स्तुतः च**=स्तुति किया गया वह प्रभु **माध्वी सुष्टुतिः च**=और माधुर्य से पूर्ण उत्तम स्तुति, **च**=और **ये रसाः**=जो आनन्द हैं, वे सब **वाम्**=आपके **रातिं अनु अग्मन्**=दान के अनुसार प्राप्त होते हैं। अर्थात् जितनी-जितनी प्राणसाधना की पूर्णता होती है उतना-उतना हम 'प्रभु, उत्तम स्तुति व आनन्द' को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से पालक धन व ज्ञानदुग्धदात्री वेदधेनु प्राप्त होती है। यह साधना हमें 'प्रभु के, स्तुति के व आनन्द' के समीप ले जाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सुमीढ व पेरुक' की उत्तम इन्द्रियाँ व बुद्धि

उत मे ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्दर्श वशासो अभिषाचं ऋष्वान्॥ ९॥

(१) **उत**=और **पुरयस्य**=(पुर यम्) शरीर पुरी का संयम करनेवाले **मे**=मेरे लिये **ऋज्रे**=ऋजुगमनवाली **रघ्वी**=खूब गतिशील इन्द्रियरूप वडवायें (अश्वा) होती हैं। संयमी पुरुष की

इन्द्रियाँ सरल मार्ग से शीघ्र गतिवाली होती हैं। **सुमीढे**=अच्छी प्रकार शक्ति का सेचन करनेवाले में, सोम को शरीर में ही सिक्त करनेवाले में **शतम्**=सौ वर्ष पर्यन्त ये वडवायें निवास करती हैं। सोमरक्षण के होने पर इन्द्रियों की शक्ति अन्त तक ठीक बनी रहती है। **च**=और **पेरुके**=अपना पालन व पूरण करनेवाले में **पक्वा**=बुद्धि पूर्ण परिपाकवाली होती है। (२) **शाण्डः**=(शं ददाति) शान्ति को देनेवाला का प्रभु **दश**=दस इन्द्रियाश्वों को **दात्**=देता है। जो इन्द्रियाश्व **हिरण्यिनः**=(हिरण्यवतः) ज्योतिवाले हैं, **स्मद् दिष्टीन्**=प्रशस्त दर्शनवाले हैं, **वशासः**=वश में हैं, अनुगुण हैं, **अभिषाचः**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं, **ऋष्वान्**=दर्शनीय व महान् हैं। प्राणसाधना के होने पर इन्द्रियाश्व उत्तम बनते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा संयम के होने पर इन्द्रियाश्व सरल गतिवाले व सौ वर्ष तक चलनेवाले होते हैं। बुद्धि परिपक्व होती है। दसों की दसों इन्द्रियाँ उत्तम बनती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

आसुर वृत्ति विलय

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः॥ १०॥

(१) हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **पुरुपन्थाः**=पालक व पूरक मार्गवाले प्रभु, जिसके मार्ग पर चलने से सबका पालन व पूरण होता है वेद प्रभु, **वां गिरे**=आपके स्तोता के लिये **अश्वानाम्**=इन्द्रियाश्वों के **शता**=शतवर्ष पर्यन्त चलनेवाले **सहस्रा**=आनन्दमय बलों को **दात्**=देते हैं। (२) **वीर**=(वीरौ) हे शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्राणापानो! **नु**=अब **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले **गिरे**=स्तोता के लिये वे प्रभु शक्तिशाली इन्द्रियों को **दात्**=देते हैं। हे **पुरुदंससा**=पालक व पूरक कर्मोंवाले प्राणापानो! आपकी कृपा से **रक्षांसि**=हमारे सब राक्षसीभाव **हता स्युः**=(हतानि) विनष्ट हो जाएँ।

भावार्थ—प्राणसाधना इन्द्रियों को शक्तिशाली बनाती है। इससे हमारी सब आसुर वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

वरिमन् सुम्ने

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम॥ ११॥

(१) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपके **वरिमन् सुम्ने**=विस्तृत सुख को देनेवाले धन में **आ सूरिभिः**=समन्तात् विद्वानों के साथ **स्याम्**=मैं होऊँ। (२) प्राणसाधना करता हुआ मैं विस्तृत ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला बनूँ और उस ऐश्वर्य को विद्वानों के साथ विभक्त करता हुआ मैं भोगूँ और सुखी जीवनवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें विशाल सुख वह ऐश्वर्य को प्राप्त कराती है। इस ऐश्वर्य को प्राणसाधक विद्वानों के साथ विभक्त करता हुआ भोगता है और सुखी जीवनवाला होता है।

यह प्राणसाधना सामान्यतः उषाकाल में होती है। सो अगला सूक्त 'उषा' देवता का है—

[६४] चतुःषष्टीतमं सुक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'रोचमाना-वस्वी-दक्षिणा' उषा

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी॥ १॥

(१) **रोचमानाः**=दीप्त होती हुई, **रुशन्तः**=शुक्लवर्णा **उषसः**=उषाएँ **श्रिये**=संसार की शोभा के लिये **उ**=निश्चय से इस प्रकार **उद् अस्थुः**=उत्थित होती हैं, **न**=जैसे कि **अपां ऊर्मयः**=जलों की तरंगें उठा करती हैं। उषा आती है, सारा संसार दीप्त हो उठता है। (२) यह उषा **विश्वा**=सब स्थानों को, **सुपथा**=उत्तम मार्गों को **सुगानि**=सुखेन (आराम से) गमनीय **कृणोति**=करती है। उषा के प्रकाश में सर्वत्र आना-जाना आसान हो जाता है। **उ**=और यह **मघोनी**=प्रकाश के ऐश्वर्यवाली उषा **वस्वी**=प्रशस्त निवास को देनेवाली व **दक्षिणा**=वृद्धि की कारण **अभूत्**=होती है। इस काल में वायुमण्डल में ओजोन गैस की अधिकता स्वास्थ्य के लिए अतिशयेन हितकर होती है।

भावार्थ—उषा आती है और सारा संसार शोभायमान हो उठता है। सब मार्ग सुगम्य हो जाते हैं। यह उषा उत्तम निवास को देनेवाली व स्वास्थ्य को बढ़ानेवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रोचमाना-महोभिः शुम्भमाना

भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः॥ २॥

(१) हे उषे! तू **भद्रा**=कल्याण करनेवाली **ददृक्षे**=दिखती है। **उर्विया विभासि**=खूब विस्तीर्ण हुई-हुई चमकती है। **ते**=तेरी **शोचिः**=दीप्ति व **भानवः**=दीप्यमान रश्मियाँ **द्यां उद् अपप्तन्**=सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में गतिवाली होती हैं। (२) हे **उषः देवि**=प्रकाशमति उषे! तू **महोभिः रोचमाना**=तेजों से दीप्त होती हुई व **शुम्भमाना**=शोभा को प्राप्त होती हुई **वक्षः**=अपने दीप्त रूप को **आविः कृणुषे**=प्रकट करती है।

भावार्थ—उषा कल्याणमयी विस्तृत दीप्त व शोभमान होती हुई अपने दिव्य रूप को प्रकट करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तमः बाधन

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम्।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा॥ ३॥

(१) **अरुणासः**=अव्यक्त लालिमावाली **रुशन्तः**=चमकती हुई **गावः**=किरणें उषा को **सीम्**=निश्चय से **वहन्ति**=प्राप्त कराती हैं। उस उषा को, जो **सुभागम्**=सौभाग्य सम्पन्न है तथा **उर्विया**=खूब ही **प्रथानाम्**=विस्तृत हो रही है। (२) **शूरः अस्ता**=वीर अस्त्रों को फेंकने में कुशल पुरुष **इव**=जिस प्रकार **शत्रून्**=शत्रुओं को **अप ईजते**=दूर भगाता है और **न**=जिस प्रकार **अजिरः**=गतिशील **वोढा**=अश्व शत्रुओं को दूर भगाता है, इसी प्रकार यह उषा **तमः बाधते**=

अन्धकार को बाधित करती है।

भावार्थ—उषा अपनी अरुण देदीप्यमान किरणों के साथ आती है और अन्धकार को दूर भगा देती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रकाश व ज्ञानैश्वर्य

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै॥ ४॥

(१) हे **स्वभानो**=आत्म-दीप्तिवाली उषे! **पर्वतेषु**=पर्वत आदि दुर्गम स्थानों में **उत**=और **अवाते**=(वा गतौ) गमन साधन रहित, मार्ग रहित प्रदेशों में भी **ते**=तेरे **सुपथा**=उत्तम मार्ग **सुगा**=सुखेन गन्तव्य होते हैं। उषा के होने पर दुर्गम स्थानों में जाना भी आसान हो जाता है। हे उषे! तू मार्गों को सुखेन गन्तव्य करती हुई **अपः तरसि**=सब कर्मों को तैर जाती है, सब कर्मों में सफलता का कारण बनती है। (२) हे **ऋष्वे**=दर्शनीय, **दिवः दुहितः**=प्रकाश का पूरण करनेवाली उषे! **सा**=वह तू **नः**=हमारे लिये **पृथुयामन्**=इस विशाल जीवन मार्ग में **इषयध्यै**=(इष्=प्रेरणा) प्रभु प्रेरणा को सुन सकने के लिये **रयिं आवह**=ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करानेवाली हो। हम ज्ञान के मार्ग पर चलते हुए प्रभु प्रेरणा को सुननेवाले बनें। इस प्रभु प्रेरणा के अनुसार इस विशाल जीवनयात्रा को पूर्ण करनेवाले हों।

भावार्थ—उषा के प्रकाश में दुर्गम मार्ग रहित प्रदेश भी सुखेन गन्तव्य हो जाते हैं। मार्गों से चलते हुए हम अपने कर्मों को सिद्ध कर पाते हैं। यह उषा हमें ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त कराये और प्रभु प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मंहना दर्शता' उषा

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः॥ ५॥

(१) हे **उषः**=उषा देवि! **सा**=वह तू **आवह**=हमें प्राप्त हो, **या**=जो तू **उक्षभिः अवाता**=इन्द्रियाश्वों से गतिवाली न होती हुई, अर्थात् स्थिर इन्द्रियोंवाली होती हुई **जोषं अनु**=प्रीतिपूर्वक प्रभु की उपासना के अनुसार **वरं वहसि**=उत्कृष्ट धन को प्राप्त कराती है। हम प्रातः उठें। उठते ही हमारे ये इन्द्रिय रूप बैल (व अश्व) इधर-उधर भटकने न लगें। स्थिर इन्द्रियोंवाले होकर हम प्रभु उपासना में प्रवृत्त हों। यही उत्कृष्ट ऐश्वर्य को प्राप्त करने का मार्ग है। (२) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का पूरण करनेवाली उषे! **या त्वम्**=जो तू **ह**=निश्चय से **पूर्वहूतौ**=प्रातःकालीन प्रार्थना में **देवी**=प्रकाशमयी होती है, वह तू **मंहना**=उत्कृष्ट ऐश्वर्यों को देनेवाली व **दर्शता**=दर्शनीय **भूः**=होती है। हम प्रातः उठकर प्रभु का पूजन करें। यही जीवन को ऐश्वर्यमय व सुन्दर बनाने का मार्ग है।

भावार्थ—हम प्रातःकाल उठते ही इन्द्रियों को विषय प्रवृत्त होने से रोकें। प्रभु-पूजन करते हुए उत्कृष्ट ऐश्वर्यों को प्राप्त करें व सुन्दर जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीविकोपार्जन, उपासना व यज्ञ

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय॥ ६॥

(१) हे **उषः**=उषे! **ते व्युष्टौ**=तेरे उदित होने पर, तेरे द्वारा अन्धकार के दूर किये जाने पर **वयः चित्**=पक्षी भी **वसतेः**=अपने निवास-स्थानभूत घोंसलों से **उद् अपप्तन्**=उठ खड़े होते हैं। **च**=और **ये नरः**=जो मनुष्य **पितु भाजः**=अन्न का सेवन करनेवाले होते हैं, वे भी जीविकोपार्जन के लिये घरों से निकल पड़ते हैं। (२) हे **देवि**=प्रकाशमयी उषे! तू **अमा सते**=प्रभु के समीप होनेवाले उपासक के लिये तथा **दाशुषे मर्त्याय**=हवि के देनेवाले मनुष्य के लिये **भूरि वामम्**=पालक व पोषक सुन्दर धन को **वहसि**=प्राप्त कराती है। ('भूरि'='भृ' धारण पोषणयोः)। वस्तुतः प्रातःकाल का सर्वप्रथम कार्य 'प्रभु की उपासना व यज्ञ' ही है।

भावार्थ—उषा होते ही पशु, पक्षी व सामान्य मनुष्य जीविकोपार्जन के लिये निकल पड़ते हैं। चाहिए यह कि हम सर्वप्रथम यज्ञ व उपासना में प्रवृत्त हों।

अगले सूक्त में भी उषा का ही वर्णन—

[६५] पञ्चषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रकाश

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून्॥ १॥

(१) **एषा**=यह **स्या**=वह **दिवोजाः**=आकाश में प्रादुर्भूत होनेवाली तथा (दिवः) **दुहिता**=प्रकाश का सर्वत्र पूरण करनेवाली उषा **उच्छन्ती**=अन्धकारों को दूर करती हुई **मानुषीः क्षितीः**=मानव प्रजाओं के प्रति **अजीगः**=(उद् गिरति प्रकाशयति इति यावत्) प्रकाश को करती है। सब मानव प्रजाओं को प्रबुद्ध करके कार्यव्यापृत करती है। (२) **या**=जो उषा **रुशता भानुना**=चमकते हुए प्रकाश से **राम्यासु**=रात्रियों में होनेवाले **अक्तून्**=नक्षत्र प्रकाशों को तथा **तमसः चित्**=सब अन्धकारों को भी **तिरः**=तिरस्कृत करती हुई **अज्ञायि**=जानी जाती है।

भावार्थ—उषा अपने प्रकाश से मानव प्रजाओं को प्रबुद्ध करती है। यह रात्रि के नक्षत्र-प्रकाशों व अन्धकारों को तिरस्कृत करती हुई उदित होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञशीलता

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः॥ २॥

(१) **चन्द्ररथाः**=कान्तियुक्त रथवाली **उषसः**=उषाएँ **अरुणयुग्भिः**=तेजस्विता से युक्त **अश्वैः**=किरणाश्वों के साथ **चित्रं भान्ति**=अद्भुत ही शोभावाली होती हैं। **तत्**=(तदा) उस प्रातःकाल में ये **वियययुः**=विशिष्ट व विस्तृत गतिवाली होती हैं। (२) **बृहतः यज्ञस्य**=वृद्धि के

कारणभूत यज्ञों के **अग्रं नयन्तीः**=अग्रभाग में हमें प्राप्त कराती हुई, अर्थात् यज्ञशीलता में सर्वोपरि करती हुई **ताः**=वे उषायें **ऊर्म्यायाः**=रात्रि के **तमः**=अन्धकार को **विबाधन्ते**=विशेषरूप से बाधित करती है।

भावार्थ—उषाएँ अपने अद्भुत प्रकाश से शोभती हैं, हमें यज्ञों के लिये प्रेरित करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**उषा**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

श्रवः-वाजं-इषं-ऊर्जम्

श्रवो॒ वाज॒मिष॒मूर्जं॑ वह॑न्तीर्नि दा॒शुषे॑ उषसो॒ मर्त्या॑य।
म॒घोनी॑र्वी॒रव॒त्पत्य॑माना॒ अवो॑ धात विध॒ते र॑त्न॒मद्य॥ ३॥

(१) **मघोनीः**=ऐश्वर्यवाली **उषसः**=उषाएँ **दाशुषे मर्त्याय**=दाश्वान्, अग्नि के लिये हवि को देनेवाले मनुष्य के लिये **श्रवः**=ज्ञान को, **वाजम्**=शक्ति को, **इषं ऊर्जम्**=प्रेरणा व प्राणशक्ति को **वहन्तीः**=प्राप्त कराती हुई, **पत्यमानाः**=निरन्तर गति करती हुई, **अद्य**=आज **विधते**=परिचरण करते हुए उपासक के लिये **वीरवत् अवः**=वीरता से युक्त अन्न को तथा **रत्नम्**=रमणीय धन को **निधात**=निश्चय से धारण करो। (२) उषा के आने पर जो यज्ञशील पुरुष होते हैं, उनके लिये ये उषा काल सब रमणीय वस्तुओं को धारित करती हैं। उषा की उपासना यही है कि हम उषा में प्रबुद्ध होकर प्रभु का परिचरण करें।

भावार्थ—उषाएँ जागकर हम प्रभु का उपासन करें तथा यज्ञों में प्रवृत्त हों। ऐसा करने पर हमारा जीवन ज्ञान व शक्ति से सम्पन्न होगा। हमें अन्न-धन की कमी न रहेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**उषा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

विधते, वीराय दाशुषे, विप्राय जरते, मावते

इ॒दा हि वो॑ विध॒ते र॑त्न॒मस्ती॒दा वी॒राय॑ दा॒शुषे॑ उषासः।
इ॒दा विप्रा॑य जर॑ते॒ यदु॒क्था नि ष्म॒ माव॑ते॒ वह॑था पु॒रा चि॑त्॥ ४॥

(१) हे **उषासः**=उषाओ! **इदा**=(इदानीम्) इस समय **विधते**=पूजा करनेवाले के लिये **हि**=निश्चय से **वः**=आपका **रत्नम्**=रमणीय धन **अस्ति**=है। पूजा करनेवाले के लिये आप रमणीय धनों को प्राप्त कराती हो। **इदा**=इस समय **वीराय**=कामादि शत्रुओं को कम्पित करके दूर भगानेवाले **दाशुषे**=दाश्वान्-त्याग वृत्तिवाले पुरुष के लिये, यज्ञशील पुरुष के लिये आपका रमणीय धन है। (२) **इदा**=इस समय यह आपका धन उस **जरते**=स्तुति करनेवाले **विप्राय**=ज्ञानी पुरुष के लिये है, **यद् उक्था**=जिसकी वाणी में स्तोत्रों का निवास है। **मावते**=(मा=लक्ष्मीः) प्रशस्त लक्ष्मी सम्पन्न इस पुरुष के लिये **पुरा चित्**=पहले ही **निवहथ स्म**=रमणीय धनों को प्राप्त कराती ही हो।

भावार्थ—उषा काल प्रभु के उपासक के लिये, वीर यज्ञशील पुरुष के लिये, ज्ञानी स्तोता के लिये तथा प्रशस्त लक्ष्मीवाले के लिये रमणीय धनों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**उषा**॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

उषा जागरण व ज्ञान वाणियों का अध्ययन

इ॒दा हि त॑ उषो अद्रिसानो गो॒त्रा गवा॒मङ्गि॑रसो गृ॒णन्ति॑।
व्य१॒॑र्के॑ण बिभिदु॒र्ब्रह्म॑णा च स॒त्या नृ॒णाम॑भवद्दे॒वहू॑तिः॥ ५॥

(१) हे **अद्रिसानो**=आदृत वस्तुओं में शिखर भूत **उषः**=उषाकाल! **ते**=तेरे अनुग्रह से **हि**=ही **इदा**=अब **अंगिरसः**=ये अंग-प्रत्यंग में रसवाले, लोच लचक से युक्त शरीरवाले, उपासक **गवां गोत्रा**=वेदवाणियों के समूह को **गृणन्ति**=उच्चरित करते हैं जीवन में उत्कर्ष के लिये सब से महत्त्वपूर्ण चीज यही है कि मनुष्य उषाकाल में जाग जायें। (२) **च**=और **अर्केण**=उपासना के साधनभूत **ब्रह्मणा**=इन मन्त्रों से **विबिभिदुः**=सब अन्धकारों का विदारण करते हैं। इन **नृणाम्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों की **देवहूतिः**=देव की पुकार व आराधना **सत्या अभवत्**=सत्य होती है। प्रभु की सच्ची आराधना यही पुरुष करता है, जो उषा में जागकर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता है और इन वाणियों के द्वारा अज्ञान के अन्धकार को दूर करता है।

भावार्थ—'उषा जागरण' उन्नति का प्रथम व सर्वश्रेष्ठ समय है। उषा में जागकर हम ज्ञान की वाणियों का, वेदवाणियों का उच्चारण करें। इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**उषा**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सुवीरं रयिं, उरु गायं श्रवः

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः॥ ६॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का पूरण करनेवाली उषे! **नः**=हमारे लिये **प्रत्नवत्**=सदा की तरह **उच्छा**=अन्धकार को दूर करनेवाली हो। हे **मघोनि**=ऐश्वर्यशालिनि उषे! **भरद्वाजवत्**=शक्ति को भरण करनेवाली की तरह **विधते**=उपासक के लिये उदित हो। अर्थात् हमारे में शक्ति का भरण करनेवाली हो। (२) **गृणते**=स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाले के लिये **सुवीरम्**=उत्तम वीरतावाली **रयिम्**=सम्पत्ति को **रिरीहि**=प्राप्त करा। अथवा उत्तम वीर सन्तानोंवाले धन को प्राप्त करा। **नः**=हमारे लिये **उरुगायम्**=बहुत ही गाने योग्य, अर्थात् यशस्वी **श्रवः**=ज्ञान को **अधिधेहि**=आधिक्येन धारण कर।

भावार्थ—उषा हमारे लिये उदित होकर 'शक्ति, वीरता, ऐश्वर्य व ज्ञान' को देनेवाली हो। हमारी सन्तानें सदा 'सुवीर' हों।

उषा में जागकर हमें प्रभु-पूजन के साथ प्राणसाधना में प्रवृत्त होना चाहिए। सो अगले सूक्त में 'मरुतः' (प्राणों) का ही वर्णन है—

[६६] षट्षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मरुतों के तीन रूप (प्राण, सैनिक, वृष्टि की वायुवें)

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः॥ १॥

(१) शरीर में 'मरुत्' 'प्राण' हैं। आधिदैविक जगत् में ये 'वर्षा को लानेवाली वायुवें' हैं। आधिभौतिक जगत् में ये 'राष्ट्र के रक्षक सैनिक' हैं। हे प्राणो! **नु**=अब **चिकितुषे**=ज्ञानी पुरुष के लिये आपका **तत्**=वह **वपुः**=रूप **चित् अस्तु**=निश्चय से हो। जो **समानम्**=(सं आनयति)

जीवन में प्राणशक्ति का संचार करनेवाला है, **नाम**=शत्रुओं को नमानेवाला है, **धेनु**=शत्रु-विनाश के द्वारा प्रीणित करनेवाला है **पत्यमानम्**=निरन्तर गतिवाला है। इन प्राणों के द्वारा हम क्रियाशील बने रह पाते हैं। (२) आधिभौतिक क्षेत्र में **मर्तेषु**=रणांगण में शरीरों का त्याग करनेवाले पुरुषों में **दोहसे**=इष्ट शक्तियों के पूरण के लिये **अन्यत्**=मरुतों का विलक्षण बल **पीपाय**=वृद्धि को प्राप्त होता है। (३) आधिदैविक क्षेत्र में मरुतों (वर्षा की वायुवों) की कृपा से ही **पृश्निः**=अन्तरिक्ष **सकृत्**=वर्ष में एक बार, अर्थात् वर्षा ऋतु में **शुक्रं ऊधः**=शुक्लवर्ण जल को **दुदुहे**=पृथ्वी पर क्षरित करता है।

भावार्थ—प्राण हमें सबल बनाते हैं। राष्ट्र में मरुत् (=सैनिक) विलक्षण बल को प्रकट करते हैं। आधिदैविक जगत् में वृष्टि की वायुवें शुक्लवर्ण जल का दोहन करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

नृम्ण-पौंस्य

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन्॥ २॥

ये=जो भी साधक **यत्**=जब **द्विः**=दो बार (प्रातः सायं), अथवा **त्रिः**=तीन बार (न्यूनातिन्यून तीन वार) **मरुतः**=प्राणों का **वावृधन्त**=वर्धन करते हैं, अर्थात् प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं तो **इधानाः**=दीप्त की जाती हुई **अग्नयः न**=अग्नियों के समान **शोशुचन्**=दीप्त हो उठते हैं, चमक उठते हैं। (२) **एषाम्**=इन साधकों के ये शरीर-रथ **अरेणवः**=रेणु व धूलि से रहित होते हैं, अर्थात् इनमें रोगों व वासनाओं की मलिनता नहीं होती। **हिरण्ययासः**=ये रथ ज्ञान-ज्योति से स्वर्ण के समान चमकते हैं (हिरण्यं वै ज्योतिः)। ये साधक सदा **नृम्णैः**=धनों **च**=और **पौंस्येभिः**=बलों के **साकम्**=साथ **भूवन्**=होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना करनेवाला अग्नि के समान तेजस्वी प्रतीत होता है। इनकी मलिनताएँ दूर होती हैं और ये ज्ञान-ज्योति से चमक उठते हैं। ये धन व बल से सम्पन्न होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

रुद्रस्य पुत्राः

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात्॥ ३॥

(१) **ये**=जो मरुत्-प्राणसाधना करनेवाले पुरुष, **मीढुषः**=सब सुखों के सेचक **रुद्रस्य**=दुःखों के द्रावक प्रभु के **पुत्राः सन्ति**=पुत्र हैं। **च**=और **यान्**=जिनको **उ**=निश्चय से **नु**=अब **दाधृविः**=यह धारण करनेवाली पृथ्वी **भरध्यै**=धारित व पोषित करती है। अर्थात् जो इस पृथ्वी से उत्पन्न ओषधि वनस्पति आदि का ही सेवन करते हैं। (२) **महः मही**=बड़ों से भी बड़ी **सा**=वह **माता**=वेदमाता **हि**=निश्चय से **विदे**=इन्हें ज्ञान के देनेवाली होती है। अर्थात् ये साधक उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं। **सा**=वह **इत्**=ही **पृश्निः**=सब प्रकाशों का स्पर्श करानेवाली वेदमाता **सुभ्वे**=इन मनुष्यों की उत्तम स्थिति के लिये (सुष्ठु भवनाय) **गर्भं आधात्**=सर्वत्र गर्भरूप से वर्तमान प्रभु को इनमें धारण करती है। अर्थात् ये साधक उस प्रभु को अपने अन्दर देखनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधक पुरुष प्रभु का सच्चा पुत्र है। प्रभु के आदेश के अनुसार चलता हुआ यह दुःखों को दूर भगाता है, अपने में सुखों का सेचन करता है। ओषधि वनस्पति का सेवन करता

हुआ यह वेदज्ञान प्राप्त करता है और हृदयस्थ प्रभु का दर्शन करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

शोधन व श्री सम्पन्नता

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्वन्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद्वुहे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः॥ ४॥

(१) **ये**=जो मरुत् (=प्राण) **अया**=अपने गमन के द्वारा **जनुषः**=प्राणसाधक लोगों को **न ईषन्ते**=(ईष् to kill) हिंसित नहीं होने देते। **नु**=निश्चय से **अन्तः सन्तः**=अन्दर होते हुए **अवद्यानि पुनानाः**=पापों को, अशुभों को दूर करते हैं, पापवृत्तियों को दूर करके इनके जीवनों को पवित्र करते हैं। (२) **शुचयः**=ये पवित्र प्राण **यत्**=जब **जोषं अनु**=प्रीतिपूर्वक सेवन के अनुपात में, अर्थात् जितनी-जितनी इनकी साधना करते हैं, उतना-उतना **निर्दुहे**=बुराइयों का निर्दोहन करते हैं और **तन्वम्**=इस शरीर को **श्रिया**=श्री से, शोभा से **अनु उक्षमाणाः**=अनुकूलता से सिक्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर को पवित्र कर डालती है। सब बुराइयों का निर्दोहन करते हुए ये प्राण शरीर को श्री सम्पन्न बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

मारुतं धृष्णु नाम

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान्॥ ५॥

(१) **न**=(संप्रत्यर्थे) अब **येषु**=जिन मरुतों के होने पर, जिन मरुतों की साधना के प्रवृत्त होने पर, **अया**=इन प्राणों की गति के द्वारा **चित्**=निश्चय से **मक्षु**=शीघ्र ही ये साधक **दोहसे**=अच्छाइयों के पूरण के लिये होते हैं। और **आ**=सब प्रकार से **नाम**=शत्रुओं को झुका देनेवाले **धृष्णु**=सब मलिनताओं के धर्षक इस **मारुतम्**=प्राणसम्बन्धी बल को **दधानाः**=धारण करते हैं। (२) ये प्राण वे हैं **ये**=जो **न स्तौनाः**=शक्तियों को चुरानेवाले नहीं, अपितु शक्तियों के बढ़ानेवाले ही हैं। **अयासः**=निरन्तर गतिशील हैं। **नू चित्**=निश्चय से इन प्राणों की **मह्ना**=महिमा से **सुदानुः**=अच्छी प्रकार बुराइयों को काटनेवाला व्यक्ति **उग्रान्**=इन उग्र (=प्रबल) काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं को **अवयासत्**=अपने से पृथक् करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शत्रुधर्षक बल प्राप्त होता है। इनकी महिमा से हम काम-क्रोध-लोभ रूप प्रबल शत्रुओं को अपने से दूर कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

मरुत्-सैनिक

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः॥ ६॥

(१) **ते**=वे सैनिक **इत्**=निश्चय से **शवसा उग्राः**=बल के द्वारा शत्रुओं के लिये भयंकर होते हैं। **धृष्णुषेणाः**=ये शत्रुधर्षक सेनावाले होते हैं। ये **उभे**=दोनों **सुमेके**=उत्तम निर्माणवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **युजन्त**=अपने साथ जोड़ते हैं। (२) **अध**=अब

एषु=इन मरुतों, सैनिकों में **रोदसी**=द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर **स्वशोचिः**=अपनी दीप्तिवाले होते हैं। इन **अमवत्सु**=बलशालियों में **रोकः**=(A hole) छेद-दोष **न आतस्थौ**=स्थित नहीं होता है। इनका जीवन बड़ा निर्दोष बनता है।

भावार्थ—राष्ट्र के सैनिक सबल, स्वस्थ मस्तिष्क व शरीरवाले तथा निर्दोष जीवनवाले हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

रजस्तूः रथ

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन्॥ ७॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणसाधक पुरुषो! **वः**=तुम्हारा **यामः**=यह शरीर-रथ **अनेनः अस्तु**=निष्पाप हो। **अनश्वः चित्**=इसमें सामान्य रथ की तरह कोई घोड़े जुते नहीं हैं। यहाँ शरीर की अंगभूत इन्द्रियाँ ही घोड़े हैं। **यम्**=जिस शरीर-रथ को **अरथीः**=असारथि ही **अजति**=प्रेरित करता है। इसमें कोई पृथक् सारथि नहीं है, बुद्धि ही सारथि है। (२) **अनवसः**=पथ्यदन (पाथेय) रहित यह रथ है। इसमें मार्ग के भोजन की आवश्यकता नहीं है। **अनभीशूः**=इसी प्रकार यह लगाम रहित है, मन ही इसमें लगाम का काम करता है। यह रथ **रजस्तूः**=रजोगुण रूप धूलि को हिंसित करनेवाला है। दूसरा रथ धूल को उड़ाता है, यह शान्त करता है। यह रथ **साधन्**=इष्ट कामनाओं को सिद्ध करता हुआ **रोदसी**=द्यावापृथिवी में **पथ्याः**=मार्गों को **याति**=आक्रान्त करता है।

भावार्थ—प्रभु ने यह उत्तम शरीर-रथ बनाया है। यह धूल को, राजस-भावों को शान्त करता हुआ मार्ग पर आगे बढ़ता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

न वर्ता, न तरुता

नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः॥ ८॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **वाजसातौ**=संग्राम में **यं अवथ**=जिसको तुम रक्षित करते हो, **अस्य**=इस पुरुष का **वर्त्ता**=रोकनेवाला **न अस्ति**=कोई नहीं है। **नु**=अब **तरुता न अस्ति**=इसका कोई हिंसक नहीं है। (२) **यम्**=जिसको **तोके**=पुत्रों में **वा**=और **गोषु**=इन्द्रियों में **तनये**=पौत्रों में तथा **अप्सु**=कर्मों में रक्षित करते हो, **सः**=वह **अध**=अब **पार्ये**=संग्राम में **द्योः**=दीप्त भी शत्रु के **व्रजं दर्ता**=सैन्यसमूह को विदीर्ण करनेवाला होता है। अर्थात् यदि प्राणसाधना करते हुए हम पुत्र-पौत्रों के रक्षण व इन्द्रियों के सत्कर्मों में व्यापृत रखने का ध्यान करें तो 'काम-क्रोध-लोभ' आदि प्रबल शत्रुओं को भी जीत पाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें विजयी बनाती है। हम शत्रुओं को जीतकर अपने पुत्र-पौत्रों व इन्द्रियों को बड़ा उत्तम बना पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

यज्ञशीलता

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम्।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः॥ ९॥

(१) हे मनुष्यो! आप **गृणते**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले ब्राह्मण के लिये, **तुराय**=शत्रु-संहार करनेवाले क्षत्रिय के लिये तथा **स्व-तवसे**=आत्म पुरुषार्थ से उपार्जित धन (स्व) के बल बली वैश्य के लिये, अर्थात् इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन सकने के लिये **मारुताय**=प्राणों के समूह के लिये **चित्रं अर्कम्**=अद्भुत स्तुति को **प्रभरध्वम्**=प्रकर्षेण धारण करो। प्रभु स्तवन पूर्वक प्राणसाधना से ही हम उत्तम ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बन पाते हैं। (२) उन प्राणों का स्तवन करो **ये**=जो **सहसा**=बल से **सहांसि सहन्ते**=शत्रु बलों का पराभव करते हैं। हे **अग्ने**=प्रगतिशील पुरुष! यह ध्यान रखना कि **पृथिवी**=यह पृथिवी, इस प्राणसाधना के होने पर **मखेभ्यः**=यज्ञों से **रेजते**=चमक उठती है। वासनाओं के विनाश से जीवन यज्ञमय बन जाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य बनाती है। यह साधना हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हमें यज्ञशील बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

दीप्त जीवनवाले सैनिक

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः॥ १०॥

(१) **अध्वरस्य**=यज्ञ की **दिद्युत् इव**=दीप्ति के समान **त्विषीमन्तः**=दीप्तिवाले ये सैनिक हैं। **तृषुच्यवसः**=क्षिप्रगमनवाले, शीघ्र गतिवाले हैं। ये तो **अग्नेः जुह्वः न**=अग्नि की ज्वालाओं के समान हैं। अग्नि ज्वालाओं में जैसे सब कुछ भस्म हो जाता है, उसी प्रकार इन मरुतों के तेज की अग्नि में शत्रु भस्मसात् होते हैं। (२) **अर्चत्रयः**=(अर्च्+त्रि) 'इडा सरस्वती व मही' तीनों देवताओं का आदर करनेवाले, **धुनयः न**=शत्रुओं को कम्पित-सा करनेवाले, **वीराः**=ये वीर सैनिक **भ्राजत् जन्मानः**=दीप्त शरीर (जीवन) वाले, **मरुतः**=रणांगण में प्राणों का त्याग करनेवाले व **अधृष्टाः**=कभी शत्रुओं से धर्षित न होनेवाले होते हैं।

भावार्थ—वीर सैनिक तेजस्विता से दीप्त जीवनवाले होते हैं, ये कभी शत्रुओं से धर्षित नहीं होते। 'इडा सरस्वती मही' के ये उपासक होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दिवः शुचयः मनीषाः

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृधन्॥ ११॥

(१) **तम्**=उस **वृधन्तम्**=वृद्धि को प्राप्त होते हुए, **भ्राजत् ऋष्टिम्**=देदीप्यमान आयुधोंवाले, **रुद्रस्य सूनुम्**=दुःखों का द्रावण करनेवाले के पुत्र, अर्थात् खूब प्रजा कष्टों का निवारण करनेवाले **मारुतम्**=सैनिक समूह को **हवसा विवासे**=स्तोत्रों के द्वारा परिचरित करता हूँ। अर्थात् इन सैनिकों का मैं स्तवन करता हूँ। (२) **दिवः**=प्रकाशमय जीवनवाले **शुचयः**=अधिकाधिक पवित्र, **मनीषाः**=(मनसः ईष्टे) मन के शासक ये सैनिक **शर्धाय**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले होते हैं। ये सैनिक **गिरयः न**=पर्वतों के समान होते हैं, पर्वत जैसे शत्रु को आने से रोकनेवाले होते हैं, इसी प्रकार ये सैनिक राष्ट्र में शत्रुओं को प्रविष्ट नहीं होने देते। ये सैनिक **उग्राः आपः (न)**=बड़े उग्र जलों के समान हैं। तेज जलधाराएँ भी शत्रु को रोकती हैं। इसी प्रकार ये सैनिक

शत्रु को रोकनेवाले होते हैं। ये सैनिक **अस्पृधन्**=परस्पर स्पर्धावाले होते हैं। देश रक्षा में एक दूसरे से बढ़कर भाग लेनेवाले होते हैं।

भावार्थ—उत्तम सैनिक देश रक्षा के लिये परस्पर स्पर्धावाले होते हैं। ये पर्वतों व तीव्र जलधाराओं के समान शत्रु को रोकनेवाले होते हैं। ये सैनिक ज्ञानी, पवित्र व नियन्त्रित मनवाले होते हैं।

अगले सूक्त का विषय 'मित्रावरुण' हैं। 'मित्र' स्नेह की देवता है, 'वरुण' निर्द्वेषता की। भरद्वाज बार्हस्पत्य कहता है—

[६७] सप्तषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ज्येष्ठतमा यमिष्ठा' मित्रावरुणा

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै।
सं या रश्मेव यमतुर्यतमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः॥ १॥

(१) **विश्वेषाम्**=सब **वः**=तुम **सताम्**=श्रेष्ठ दिव्य भावों में **ज्येष्ठतमा**=प्रशस्यतम **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वावृधध्यै**=मैं अपने अन्दर बढ़ानेवाला होता हूँ। स्वाध्याय में प्रवृत्त रहकर मैं अपने हृदय में सबके प्रति स्नेह के भाव को तथा निर्द्वेषता के भाव को उत्पन्न करने का प्रयत्न करता हूँ। (२) **या**=जो मित्र और वरुण **यमिष्ठा**=यन्तृतम हैं, हमें मार्गभ्रष्ट होने से अधिक से अधिक बचानेवाले हैं। ये **द्वा**=दोनों **रश्मा इव**=लगाम से जैसे घोड़ों को, उसी प्रकार **संयमतुः**=हमें संयत करनेवाले हैं। ये मित्र और वरुण **असमा**=अनुपम हैं, इनके समान उत्कृष्ट अन्य भाव नहीं हैं। ये **जनान्**=लोगों को **स्वैः बाहुभिः**=अपनी बाहुवों से संयत करते हैं। मित्र और वरुण का आराधक दुष्टभावों का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—हम स्वाध्याय के द्वारा 'स्नेह व निर्द्वेषता' की वृत्ति का अपने में वर्धन करें। ये मित्र और वरुण हमें संसार यात्रा में मार्गभ्रष्ट होने से बचायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अधृष्ट छादः

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू॥ २॥

(१) हे **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **इयम्**=यह **मत्**=मेरी, मेरे से की जानेवाली **मनीषा**=स्तुति **वाम्**=आप दोनों को **प्रस्तृणीते**=आच्छादित करती है। हे **प्रिया**=प्रीति के जनक मित्र और वरुण यह स्तुति **नमसा**=नमन के साथ आपको **बर्हिः अच्छ**=हृदय के अभिमुख **उप**=समीपता से प्राप्त कराती है। अर्थात् मैं प्रभु के प्रति नमनवाला होता हुआ हृदय में मित्र व वरुण का प्रतिष्ठापन करने का प्रयत्न करता हूँ। (२) हे मित्रावरुणौ! आप **नः**=हमारे लिये **अधृष्टम्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से धर्षित न किये जानेवाले **छर्दिः**=शरीरगृह को **यन्तम्**=प्राप्त कराइये। हे **सुदानू**=शोभन दानोंवाले व बुराइयों को काटनेवाले प्राणापानो! **यद्वाम्**=जो आपका **वरुथ्यम्**=वासनाओं का निवारक धन है उसे हमारे लिये प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम मित्रावरुण का स्तवन करें। प्रभु स्मरण करते हुए स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को अपने अन्दर धारण करें। हमारा शरीरगृह नीरोग व उत्तम बने तथा हमें वासना विनाशक धन प्राप्त हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उत्तम कर्मों में व्यापृति

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना।
सं यावप्रः स्थो अपसेव जनाञ्छुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥ ३ ॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! **सुशस्ति**=शोभन शंसन के हेतु से **उप आयातम्**=हमें समीपता से प्राप्त होवो। मित्र व वरुण की प्राप्ति के होने पर हमारे सब कार्य उत्तम ही होते हैं। वस्तुतः मित्र व वरुण की आराधना ही सच्चा प्रभु स्तवन है। हे **प्रिया**=प्रीति के जनक मित्र व वरुण! आप हमारे से **नमसा हूयमाना**=नमस् के द्वारा पुकारे जाते हो। प्रभु के प्रति नतमस्तक होते हुए हम यही आराधना करते हैं कि हम सबके प्रति स्नेह वाले हों और निर्द्वेषता के भाव को धारण करें। (२) हे मित्र व वरुण! **यौ**=जो आप हैं, **महित्वा**=अपनी महिमा से **श्रुधीयतः चित् जनान्**=(श्रुधि=यश) यश की कामनावाले जनों को **अपसा**=कर्म के द्वारा **संयतथः**=सम्यक् उद्योगवाला करते हो, उसी अकार, **इव**=जैसे कि **अप्नस्थः**=कर्म में अधिकृत पुरुष लोगों को कर्मों में प्रेरित किया करता है।

भावार्थ—मित्र और वरुण का उपासक सदा लोकहित के उत्तम कर्मों में व्यापृत रहता है। इन उत्तम कर्मों के द्वारा इसका जीवन यशस्वी बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शक्ति पवित्रता ऋत'

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्भर्मदितिर्भरध्यै।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥ ४ ॥

(१) **या**=जो मित्र और वरुण **अश्वा न**=अश्वों के समान **वाजिना**=शक्तिशाली हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव ही हमारे जीवनों में शक्ति का वर्धन करते हैं। **पूतबन्धू**=ये मित्र और वरुण पवित्रता को हमारे साथ बाँधनेवाले हैं। **ऋता**=ये ऋत हैं, जो ठीक है, उसे प्राप्त करानेवाले हैं। **यत्**=जिनको **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **गर्भं भरध्यै**=गर्भरूप से धारण करती है। अर्थात् जितना-जितना पुरुष स्वस्थ होता है, उतना-उतना स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को धारण कर पाता है। (२) **या**=जो **प्रजामाना**=प्रादुर्भूत होते हुए **महि महान्ता**=महान् से भी महान् होते हैं, उत्तरोत्तर जीवन की महत्ता को बढ़ानेवाले होते हैं। **रिपवे मर्ताय**=शत्रुभूत मनुष्य के लिये **घोरा**=जो भयङ्कर होते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता शत्रु की शत्रुता को समाप्त करके वस्तुतः शत्रु को नष्ट कर देते हैं। इन मित्र और वरुण को अदिति गर्भरूप से **निदीधः**=धारण करती है, स्वस्थ पुरुष अपने हृदय में धारण करता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें 'शक्ति, पवित्रता व ऋत' को प्राप्त कराते हैं। ये हमें महान् बनाते हैं। शत्रु को विनष्ट करते हैं। स्वस्थ पुरुष ही इन्हें धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्षत्रं-स्पशः

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥ ५ ॥

(१) हे मित्र और वरुण! **विश्वे देवासः**=सब देव **वां मंहना**=आपकी महिमा से **मन्दमानाः**=प्रभु का स्तवन करते हुए, **सजोषाः**=परस्पर प्रीतिवाले होते हुए **यत्**=जब **क्षत्रम्**=बल को **अदधुः**=धारण करते हैं और **यद्**=जब इस प्रकार आप **उर्वी चित् रोदसी**=इन विशाल भी द्यावापृथिवी को **परिभूथः**=परिभूत करते हो तो उस समय आपकी **स्पशः**=ये प्रकाश की किरणें (स्पश् see clearly) **अदब्धासः**=अहिंसित व **अमूराः**=मूढता को दूर करनेवाली होती हैं। स्नेह व निर्द्वेषता का अभाव ही मनुष्य को नाना रोगों से हिंसित व मूढ़ मनवाला बनाता है। (२) देववृत्ति के व्यक्ति अपने में स्नेह व निर्द्वेषता के भावों का धारण करते हुए शक्ति को धारित करते हैं। विजयी बनते हैं और प्रकाश की किरणों को धारण करते हैं।

भावार्थ—हम देव बनें, सब के प्रति स्नेह व निर्द्वेषतावाले हों। यही बल व ज्ञान की वृद्धि का मार्ग है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दृढः विश्वदेवः 'नक्षत्रः'

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

(१) **ता**=वे मित्र और वरुण! **अनुद्यून्**=दिन प्रतिदिन **हि**=निश्चय से **क्षत्रम्**=बल को **धारयेथे**=धारण करते हैं और **द्योः सानुम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक के शिखर को **उपमात् इय**=(उपमीयते) मानो स्तम्भ के द्वारा **दृंहेथे**=दृढ़ करते हैं। (२) इन मित्र और वरुण के उपासक के जीवन में **नक्षत्रः**=ज्ञानसूर्य **दृढः**=दृढ़ व स्थिर होते हैं, **उत**=और **विश्वदेवः**=सब दिव्यभावों को जन्म देनेवाला होता है। यह ज्ञानसूर्य **आयोः धासिना**=मनुष्य के धारण के हेतु से **भूमिम्**=शरीर रूप पृथिवी को तथा **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **आतान्**=विस्तृत करता है। ज्ञान के द्वारा शरीर व मस्तिष्क दोनों ही ठीक बनते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे बल का वर्धन करते हैं, मस्तिष्क का धारण करते हैं। इनके द्वारा उदित हुआ-हुआ ज्ञानसूर्य हृदय में दिव्य भावों को जन्म देता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

न मृष्यन्ते युवतयो अवाताः

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥ ७ ॥

(१) **ता**=वे मित्र और वरुण **विग्रम्**=प्राज्ञ को **धैथे**=धारण करते हैं। **जठरं पृणध्ग**=ये उदर को सोम से पूरित करने के लिये होते हैं। अर्थात् सोम का उदर में ही रक्षण करते हैं, उसे नष्ट नहीं होने देते। **सभृतयः**=समानरूप से मित्रावरुणा का धारण करनेवाले परिवार के व्यक्ति **यत् सद्म**=जो उनका घर है, उसे **आपृणन्ति**=सब प्रकार से पूरित करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव

के होने पर घर में कमी नहीं आती। (२) इस स्नेह व निर्द्वेषता के धारण करने पर **युवतयः**=ये सदा अजरामर रहनेवाली वेदवाणियों (देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति) **न मृष्यन्ते**=रजोगुण से अभिभूत नहीं होती, अर्थात् सात्त्विक भाव के कारण इनका उत्तरोत्तर प्रकाश बढ़ता जाता है। **अवाताः**=ये वेदवाणियाँ शुष्क भी नहीं हो जाती (न शोषयति मारुतः), **यत्**=क्योंकि **विश्वजिन्वा**=सब उत्तम ज्ञानों को प्रेरित करनेवाले ये मित्र और वरुण **पयः विभरन्ते**=आप्यायित करनेवाले ज्ञान को विशेषरूप से हमारे में धारण करते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव से सोम का रक्षण होता है, ज्ञान बढ़ता है। इस मित्र और वरुण के आराधक को अधिकाधिक ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मित्रावरुणौ**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्ञान यज्ञ व सत्य

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत्।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः॥ ८॥

(१) **सुमेधाः**=उत्तम बुद्धिवाला पुरुष **सदम्**=सदा **जिह्वया**=अपनी जिह्वा से **ता**=उन मित्र और वरुण से **इदम्**=इस गत मन्त्र में वर्णित 'पयः' आप्यायित करनेवाले ज्ञानदुग्ध को **आ**=(आयाचते) माँगता है। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे ज्ञान का वर्धन करते ही हैं। **यत्**=क्योंकि **वां अरतिः**=आपका अभिगन्ता, आपको प्राप्त होनेवाला यह उपासक **सत्यः**=सत्य व्यवहारवाला तथा **ऋते**=सदा यज्ञों में चलनेवाला **भूत्**=होता है। (२) हे **घृतान्नौ**=शरीर से मलों का क्षरण करनेवाले तथा ज्ञानदीप्ति को बढ़ानेवाले अन्न का सेवन करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपकी **तत्**=वह **महित्वम्**=महिमा **अस्तु**=सदा हो, सदा आपकी यह महिमा बनी रहे कि **युवम्**=आप **दाशुषे**=इस दाश्वान् पुरुष के लिये **अंहः**=पाप को **विचयिष्टम्**=नष्ट करते हो। जो भी व्यक्ति मित्र और वरुण के लिये अपने को दे डालता है, मित्र और वरुण उसके पाप को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से ज्ञानवृद्धि होती है, सत्य व यज्ञों की रुचि बढ़ती है, पाप विनष्ट होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**मित्रावरुणौ**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

स्नेह व निर्द्वेषता का महत्व

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः॥ ९॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण! **यद्**=जब **वाम्**=आपके **प्रिया धाम**=प्रिय तेजों को व **युवधिता**=आप से किये जानेवाले कर्मों को **स्पूर्धन्**=(defy) निरादृत करते हैं व **प्रमिनन्ति**=हिंसित करते हैं। अर्थात् जब स्नेह व निर्द्वेषता से उत्पन्न होनेवाले तेज को ये महत्त्व नहीं देते और जब स्नेह व निर्द्वेषता से युक्त होकर कर्म नहीं करते तो इनका जीवन ऐसा हो जाता है कि **ये**=जो **न देवासः**=देववृत्ति के नहीं बन पाते। और ये वे **मर्ताः**=मनुष्य होते हैं जो **अयज्ञसाचः**=यज्ञों का सेवन न करते हुए **ओहसा न**=(वहनसाधनेन स्तोत्रेण) लक्ष्य स्थान पर ले जानेवाले स्तोत्र से युक्त नहीं होते। **अप्यः**=कर्मशील होते हुए भी ये **पुत्राः न**=(पुनाति त्रायते) अपने को पवित्र नहीं कर पाते और अपने को रोगों व वासनाओं के आक्रमण से नहीं बचा पाते। (२) स्नेह व निर्द्वेषता के अभाव में हमें वास्तविक तेज की प्राप्ति नहीं होती। हम स्नेह व निर्द्वेषता

से दूर होकर देवत्व से ही दूर हो जाते हैं। हमारा जीवन यज्ञमय व स्तुतिमय नहीं रहता। पवित्रता का विनाश होकर रोगों व वासनाओं की प्रबलता हो जाती है।

भावार्थ—हम स्नेह व निर्द्वेषता के महत्त्व को समझें। इन्हीं से हमें 'तेजस्विता, दिव्यता, स्तुति की वृत्ति, यज्ञशीलता व पवित्रता' प्राप्त होगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्तवन-ज्ञान-दिव्य गुण

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा॥ १०॥

(१) **यद्**=जब **कीस्तासः**=मेधावी उद्गाता **वाचम्**=स्तुति वाणी को **विभरन्ते**=विशेषरूप से धारण करते हैं। और **केचित्**=कई **मनानाः**=मननशील पुरुष **निविदः**=निश्चयात्मक ज्ञान को देनेवाली वेदवाणियों का **शंसन्ति**=शंसन करते हैं। **आत्**=तब हम **वाम्**=हे मित्र और वरुण आपके ही **सत्यानि उक्था**=सत्य स्तोत्रों को **ब्रवाम**=उच्चरित करते हैं। वस्तुतः स्नेह व निर्द्वेषता का धारण ही उन मेधावी उद्गाताओं (कीस्त) को स्तुति में प्रवृत्त करता है और मननशील पुरुषों को इन ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करने के योग्य बनाता है। (२) हे मित्र और वरुण! आप **महित्वा**=अपनी महिमा से **देवेभिः**=अन्य दिव्य गुणों के साथ **नकिः यतथः**=नहीं जाते हो। अर्थात् सब दिव्य गुणों से आपकी महिमा अधिक है। वस्तुतः स्नेह व निर्द्वेषता के भाव ही अन्य दिव्य गुणों को जन्म देते हैं। इनके अभाव में किसी भी दिव्य गुण का सम्भव नहीं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता की ही यह महिमा है कि हम (क) मेधावी उद्गाता बनकर प्रभु का स्तवन करते हैं। (ख) मननशील बनकर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हैं, (ग) अन्य दिव्य गुणों को अपने में उत्पन्न कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अस्कृधोयु छर्दिः (महान् गृह)

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोमित्रावरुणावस्कृधोयु।
अनु यद्वां वः स्फुरान्ॄज्रिष्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन्॥ ११॥

(१) हे **मित्रावरुणौ**=मित्र और वरुण! **अवोः**=(अवतोः) रक्षण करते हुए **वाम्**=आपके **अभिष्टौ**=अभिगमन के होने पर **इत्था**=सचमुच **युवोः**=आपके **छर्दिषः**=इस शरीररूप गृह की **अस्कृधोयु**=(कृधु-ह्रस्व-अल्प) अनल्पता होती है। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव इस शरीरगृह को बड़ा सुन्दर व महान् बनाते हैं। इनके होने पर इस गृह का असमय में ही विच्छेद नहीं हो जाता। (२) **यत्**=क्योंकि मित्र और वरुण के होने पर उस गृह में **गावः**=ज्ञानपूर्वक की स्तुति वाणियाँ **अनु स्फुरान्**=स्फुरित होती हैं, निरन्तर उच्चरित होती हैं और **यत्**=क्योंकि ये मित्र और वरुण के उपासक **ऋजिष्यम्**=ऋजुगामी, सरल मार्ग से गति की प्रेरणा देनेवाले **धृष्णुम्**=रोगरूप शत्रुओं के वर्षक **वृषणम्**=शक्ति का सेचन करनेवाले सोम को, वीर्यशक्ति को **रणे**=जीवन संग्राम में **युनजन्**=युक्त करते हैं। अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता के कारण हम ज्ञानपूर्वक स्तुति करनेवाले बनते हैं और सोम का रक्षण करते हुए जीवन संग्राम में विजयी बनते हैं। बस, ये दो बातें हमारे इस शरीर गृह को असमय में विच्छिन्न नहीं होने देती। जिस भी घर में स्नेह व निर्द्वेषता का वास होता है, वह घर अवश्य महान् बनता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता हमें ज्ञान व सोमरक्षण की ओर ले जाकर दीर्घजीवी व उत्तम महान् गृहवाला बनाते हैं।

अगले सूक्त में 'भारद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र और वरुण का स्तवन करते हैं 'इन्द्र' जितेन्द्रियता व बल का प्रतीक है और 'वरुण' निर्द्वेषता का—

[६८] अष्टषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु प्रेरणा व महान् सुख

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत्॥ १॥

(१) हे **महे**=मंहनीय-पूजनीय **इन्द्रावरुणौ**=इन्द्र और वरुण! बल व निर्द्वेषता के भावो! **श्रीष्टी**=शीघ्र ही अब **वाम्**=आपका **यज्ञः**=पूजन **उद्यतः**=उद्यत हुआ है, प्रवृत्त हुआ है। **सजोषाः**=यह पूजन समान रूप से प्रीतिवाला है। जितना जितेन्द्रियता के द्वारा बल के रक्षण का विचार है, उतना ही निर्द्वेष बनने का निश्चय है। यह **मनुष्वत्**=एक विचारशील पुरुष की तरह **वृक्तबर्हिषः**=जिसने हृदय क्षेत्र में से वासनारूप घास-फूस को उखाड़कर फेंक दिया है उस यजमान के **यजध्यै**=यजन के लिये होता है। अर्थात् 'इन्द्र-वरुण' का पूजन 'वृक्तबर्हिष्' ही कर पाता है। हृदय में वासनाओं के रहते यह पूजन नहीं हो सकता। (२) **यः**=जो यज्ञ **अद्य**=आज **इषे**=हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त कराने के लिये **आववर्तत्**=निरन्तर अवृत्त होता है, वह **महे सुम्नाय**=महान् सुख के लिये होता है। वस्तुतः जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की उपासना हमें सुखी बनाती है, यह हमें हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाती है।

भावार्थ—हम हृदयक्षेत्र से वासनाओं के घास-फूस को उखाड़ फेंकने का यत्न करें। इससे हम जितेन्द्रिय व निर्द्वेष बनकर महान् सुख को प्राप्त करेंगे और हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुन पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'इन्द्र और वरुण' की श्रेष्ठता

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्मा ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना॥ २॥

(१) **ता**=वे इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव **हि**=ही **श्रेष्ठा**=प्रशस्ततम हैं। **देवताता**=यज्ञ में ये **तुजा**=विघ्नकारी शत्रुओं के संहारक हैं। इनके द्वारा जीवनयज्ञ सुचारुरूपेण चलता है। **ता**=वे **हि**=ही **शूराणां शविष्ठा**=शूरों में सर्वाधिक बलवाले **भूतम्**=होते हैं। (२) ये इन्द्र और वरुण **मघोनाम्**=दाताओं में **मंहिष्ठा**=दातृतम हैं। **तुविशुष्मा**=महान् बलवाले हैं। **ऋतेन**=ऋत के द्वारा **वृत्रतुरा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करनेवाले हैं। **सर्वसेना**=ये इन्द्र और वरुण पूर्ण सेनावाले होते हैं। इन्द्रियाँ, प्राण, मन व बुद्धि आदि ही वे सैनिक हैं जिनसे कि इस जीवन संग्राम को हमने लड़ना है। इन्द्र और वरुण के द्वारा ये सैनिक बड़े ठीक बने रहते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता ही हमें श्रेष्ठ जीवनवाला, सबल व शत्रुसंहार समर्थ बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शूष+सुम्न-बल+शुख

ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः॥ ३॥

(१) **नमस्येभिः**=नमस्करणीय-स्तुत्य **शूषैः**=बलों से तथा **सुम्नेभिः**=सुखों से **चकाना**=स्तुत **ता**=उन **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण की **गृणीहि**=स्तुति कर। 'इन्द्र' स्तुत्य बल से युक्त है, तो 'वरुण' प्रशस्त सुखों का कारण बनता है। (२) **अन्यः**=इनमें से एक इन्द्र, **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **हन्ति**=विनष्ट करता है। **अन्यः**=दूसरा **विप्रः**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाला 'वरुण' (निर्द्वेषता का भाव) **वृजनेषु**=(battle, fight) संग्रामों में **शवसा**=बल से **सिषक्ति**=(संगच्छते) संगत होता है। निर्द्वेषता वह बल प्राप्त कराती है जिससे कि हम संग्रामों में सदा विजयी बनते हैं।

भावार्थ—'इन्द्र' स्तुत्य बलों को प्राप्त कराता है तो वरुण सुखों को। जितेन्द्रियता हमें बलयुक्त करती है, निर्द्वेषता जीवन को सुखी बनाती है। ये जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता हमें वासना विनाश के द्वारा संग्राम में विजयी बनाती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वगूर्ताः वावृधन्त

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वग्नूर्ताः।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी॥ ४॥

(१) **नराम्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों में **ग्राः च**=स्त्रियाँ और **यत्**=जो **नरः च**=मनुष्य **स्वगूर्ताः**=स्वयं उद्योगवाले होते हुए **वावृधन्त**=वृद्धि को प्राप्त होते हैं अथवा स्तुति शब्दों से प्रभु का वर्धन करते हैं तो ये **विश्वे**=सब **देवासः**=देव बन जाते हैं। देव का लक्षण यही है कि स्वयं पुरुषार्थी बने और प्रभु का स्मरण करे। (२) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! **एभ्यः**=इन देववृत्तिवाले पुरुषों के लिये **महित्वा**=अपनी महिमा से **प्रभूतम्**=प्रकृष्ट प्रभाव (सामर्थ्य) को पैदा करनेवाले होवो। **द्यौः च**=और द्युलोक तथा **पृथिवि**=हे पृथिवि! आप भी इन देव वृत्तिवाले पुरुषों के लिये **उर्वी**=विशाल (भूतम्=) होवो। इनका मस्तिष्क रूप द्युलोक दीप्त हो, इनका शरीररूप पृथिवीलोक दृढ़ हो।

भावार्थ—स्वयं पुरुषार्थ में प्रवृत्त हुए-हुए प्रभु स्तवन करनेवाले व्यक्ति देव बनते हैं। इनके लिये जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता सामर्थ्य को देनेवाली होती हैं। ये दीप्त मस्तिष्कवाले व दृढ़ शरीरवाले बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुदानुः-स्ववान्-दास्वान्

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन्।
इषा स द्विषस्तरिह्यास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान्॥ ५॥

(१) हे **इन्द्रावरुण**=इन्द्र और वरुण देवो! **यः**=जो **त्मन्**=स्वयं अपने को **वां दाशति**=आपके प्रति दे डालता है, अर्थात् जो जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का उपासक बनता है, **सः**=वह **इत्**=निश्चय

से **सुदानुः**=शोभन दानवाला व अच्छी प्रकार शत्रुओं को काटनेवाला (दाप् लवने) होता है। यह **स्ववान्**=आत्मशक्तिवाला तथा **ऋतावा**=ऋत व यज्ञों का रक्षण करनेवाला होता है। (२) **सः**=यह **इषा**=प्रभु प्रेरणा के द्वारा **द्विषः तरेत्**=द्वेष की भावनाओं को तैर जाता है। **दास्वान्**=दानशील होता है। **रयिं वंसत**=धन को प्राप्त करता है **च**=तथा **रयिवतः**=ऐश्वर्यशाली **जनान्**=पुत्रों को प्राप्त करता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का उपासक शोभनदानशील, उत्तम धनवाला व ऐश्वर्यशाली पुत्रोंवाला होता है। यह प्रभु प्रेरणा को सुनता हुआ वासनारूप शत्रुओं को तैर जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वसुमान्-पुरुक्षु' रयि

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ ६ ॥

(१) हे **इन्द्रावरुणौ**=इन्द्र और वरुण! **युवम्**=आप **दाश्वध्वराय**=दत्तहविष्क पुरुष के लिये, यज्ञशील पुरुष के लिये **यम्**=जिस **वसुमन्तम्**=प्रशस्त वसुओंवाले, उत्तम निवास के तत्त्वों को प्राप्त करानेवाले, **पुरुक्षुम्**=पूर्ण यश को देनेवाले **रयिम्**=धन को **धत्थः**=प्राप्त कराते हो। **स**=वह धन **अस्मे**=हमारे लिये **अपि स्यात्**=भी हो। हम भी जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के द्वारा 'वसुमान् पुरुक्षु' रयि को प्राप्त करें। (२) हम उस धन को प्राप्त करें **यः**=जो कि **वनुषाम्**=हिंसकों की **अशस्तीः**=अशुभ क्रियाओं को **प्रभनक्ति**=नष्ट करता है। जिस धन के द्वारा हम हिंसात्मक अशुभ कर्मों में न प्रवृत्त हों, वही धन हमें मिले।

भावार्थ—हम जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का साधन करते हुए उस धन को प्राप्त करें जो (क) हमारे निवास को उत्तम बनाये, (ख) पूर्ण यश का कारण बने, (ग) हिंसात्मक अशुभ कर्मों से हमें दूर रखे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'सुत्रात्र देवगोपा' रयि

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात्।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥

(१) **उत**=और **नः**=हम **सूरिभ्यः**=ज्ञानी स्तोताओं के लिये, हे **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण! **रयिः स्यात्**=वह धन प्राप्त हो, जो **सुत्रात्रः**=अच्छी प्रकार हमारा रक्षण करनेवाला हो तथा **देवगोपाः**=हमारे जीवनों में देवों का, दिव्य भावों का रक्षक हो। (२) इस धन को पाकर हम ऐसे बनें **येषाम्**=जिनका कि **शुष्मः**=शत्रुशोषक बल **पृतनासु**=संग्रामों में **साह्वान्**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला हो तथा **ततुरिः**=शत्रुओं का संहार करनेवाला होता हुआ **सद्यः**=शीघ्र ही **द्युम्ना**=शत्रुओं के यशों को **प्रतिरते**=तैर जाता है, विनष्ट कर डालता है। जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का आराधन ही इस प्रकार के धन को हमारे लिये प्राप्त कराता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की उपासना हमें वह धन प्राप्त कराती है, (१) जो हमारा रक्षण करता है, (२) हमारे में दिव्य भावों का वर्धन करता है। (३) हमें शत्रुओं को पराभूत करने में समर्थ करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

आपो न नावादुरिता तरेम

नू नं इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम॥ ८॥

(१) **नू**=अब **गृणाना**=स्तुति किये जाते हुए **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन को **पृङ्क्तम्**=देनेवाले हो। **देवौ**=प्रकाशमय इन्द्र और वरुण हमारे **सौश्रवसाय**=उत्कृष्ट ज्ञान के लिये हो। (२) **इत्था**=इस प्रकार **महिनस्य**=उस महान् महिमावाले प्रभु के **शर्धः**=बल का **गृणन्तः**=स्तवन करते हैं हम **दुरिता तरेम**=दुरितों को इस प्रकार तैर जायें, **न**=जैसे कि **नावा आपः**=नौका से जलों को तैर जाते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का आराधन हमारे ऐश्वर्य व ज्ञान का साधक हो। उस महान् प्रभु के सामर्थ्य का स्तवन करते हुए हम पापों से पार हो जायें। निष्पाप जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सम्राट् वरुण का स्तवन

प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्चा देवाय वरुणाय सप्रथः।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा॥ ९॥

(१) **सम्राजे**=सम्यग् देदीप्यमान **बृहते**=वृद्धि को प्राप्त हुए **देवाय**=दिव्यस्वरूप **वरुणाय**=वरुण के लिये **सप्रथः**=(सर्वतः पृथु) सब दृष्टिकोणों से विशाल **प्रियम्**=प्रीतिजनक **मन्म**=स्तोत्र का **नु**=अब **प्र अर्च**=प्रकर्षेण उच्चारण कर। सब संसार को नियम के बन्धन में बाँधनेवाले प्रभु का स्तवन कर। ये प्रभु सब गुणों के दृष्टिकोण से बढ़े हैं, सम्राट् हैं, बृहत् हैं, देव हैं। (२) **अयं यः**=जो वरुण हैं, **महिव्रतः**=महान् व्रतोंवाले हैं, **न (च)**=और **महिना**=अपनी महिमा से **अजरः**=कभी न जीर्ण होनेवाले हैं। ये वरुण **उर्वी**=इन विशाल द्यावापृथिवी को **क्रत्वा**=शक्ति से तथा **शोचिषा**=दीप्ति से **विभाति**=विभासित करते हैं। हमारे मस्तिष्करूप द्युलोकों को दीप्तिमय बनाते हैं और शरीर रूप पृथिवीलोक को शक्ति-सम्पन्न करते हैं।

भावार्थ—हम सम्राट् वरुण का स्तवन करें। हमारे लिये ये दीप्ति मस्तिष्क व शक्ति सम्पन्न शरीर को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

स्व-सरं अध्वरं प्रति

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये॥ १०॥

(१) हे **सुतपौ**=उत्पन्न सोम का रक्षण करनेवाले **धृतव्रता**=व्रतों का धारण करनेवाले **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! आप **इमम्**=इस **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए **मद्यम्**=मद व उल्लास के जनक **सोमम्**=सोम को **पिबतम्**=पीनेवाले होवो, शरीर में ही इसे व्याप्त करनेवाले होवो। वस्तुतः जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव हमें व्रतमय जीवनवाला बनाते हैं। ऐसे जीवन में ही सोम के रक्षण का सम्भव होता है। (२) हे इन्द्र और वरुण! **युवोः रथः**=आपका यह शरीररूप रथ **स्वसरम्**=(स्व+सृ) आत्मतत्त्व की ओर ले जानेवाले **अध्वरं**

प्रति=जीवनयज्ञ की ओर **उपयाति**=प्राप्त होता है और इस प्रकार यह **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होता है और **पीतये**=शरीर में सोम के रक्षण के लिये होता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के धारण करने पर हम आत्मतत्त्व की प्राप्ति के मार्ग पर चलते हैं। दिव्य गुणों को प्राप्त करते हैं और शरीर में सोम को सुरक्षित कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सोमरक्षण व आनन्द प्राप्ति

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम्॥ ११॥

(१) हे **वरुणा**=शक्तिशाली **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! आप **मधुमत्तमस्य**=हमारे जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाले **वृष्णः**=शक्तिशाली **सोमस्य**=सोम का, वीर्यशक्ति का **वृषणा**=सोम शक्ति के द्वारा **आवृषेथाम्**=शरीर में ही चारों ओर सेचन करो। यही आपका सोमभक्षण है। (२) **इदम्**=यह **वाम्**=आपके द्वारा **अस्मे**=हमारे लिये **अन्धः**=आध्यातव्य सोम **परिषिक्तम्**=शरीर में चारों ओर सिक्त हुआ है। **अस्मिन्**=इस **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **आसद्य**=आसीन होकर हे इन्द्र और वरुण! **मादयेथाम्**=आप हमारे जीवनों को आनन्दयुक्त करो।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव हमारे जीवनों में सोमरक्षण के द्वारा आनन्द के जनक होते हैं।

अगले सूक्त के देवता 'इन्द्राविष्णू' हैं। 'इन्द्र' बल का प्रतीक है और 'विष्णु' व्यापकता व धारण का। हम बल को प्राप्त करते उदार वृत्तिवाले बनें और बल के द्वारा सभी का धारण करनेवाले बनें—

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

शक्ति व उदारता

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता॥ १॥

(१) हे **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और विष्णु, जितेन्द्रियता द्वारा शक्ति की प्राप्ति की भावना तथा उदारता द्वारा सब के धारण की भावना! **वाम्**=आप दोनों को मैं **कर्मणा**=कर्म के हेतु से **संहिनोमि**=अपने अन्दर सम्यक् रूप से प्रेरित करता हूँ। **इषा**=प्रभु प्रेरणा की प्राप्ति के हेतु से **सं (हिनोमि)**=अपने अन्दर प्रेरित करता हूँ। इन्द्रत्व व विष्णुत्व को धारण करनेवाला अवश्य हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनता है। आप दोनों हमें **अस्य अपसः**=इस हमारे कर्त्तव्यभूत कर्म के **पारे**=पार प्राप्त कराओ। आपके द्वारा हम कर्त्तव्य कर्म को निर्विघ्नता से पूर्ण कर पायें। (२) हे इन्द्र और विष्णु! आप **यज्ञं जुषेथाम्**=यज्ञात्मक कर्मों का प्रीतिपूर्वक सेचन करिये। **च**=और **द्रविणं धत्तम्**=ऐश्वर्य का हमारे लिये धारण करिये तथा **नः**=हमें **अरिष्टैः**=अहिंसित **पथिभिः**=मार्गों से ले चलते हुए **पारयन्ता**=जीवनयात्रा के पार ले चलनेवाले होइये। आपके अनुग्रह से हमारी जीवनयात्रा निर्विघ्न पूर्ण हो।

भावार्थ—हम शक्ति व उदारता को धारण करते हुए उत्तम कर्मों में लगे रहें, प्रभु प्रेरणा को सुन पायें तथा शुभ मार्गों से चलते हुए जीवनयात्रा को सफलता से पूर्ण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मतीनां जनितारा

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥

(१) **या**=जो **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और विष्णु, शक्ति व उदारता के देव, **विश्वासां मतीनाम्**=सब उत्तम बुद्धियों के **जनितारा**=जन्म देनेवाले हैं, वे सोमधाना **कलशा**=सोम के रक्षण के आधारभूत कलश (=घड़े) ही हैं। इन इन्द्र और विष्णु के द्वारा सोम का शरीर में ही रक्षण होता है। (२) **वाम्**=आपको **शस्यमानाः**=उच्चारण की जाती हुई **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ **प्र अवन्तु**=प्रकर्षेण प्राप्त हों। **अर्कैः**=स्तोताओं से **गीयमानासः**=गाये जाते हुए **स्तोमासः**=स्तुति समूह **प्र** (अवन्तु)=प्राप्त हों। अर्थात् इन्द्र और विष्णु का उपासक ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करनेवाला हो और स्तुति की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—'शक्ति और उदारता' की उपासना (क) हमारी बुद्धियों को विकसित करती है, (ख) यह शरीर में सोमरक्षण का साधन बनती है, (ग) ज्ञान को बढ़ाती है, (घ) स्तुति की वृत्ति को उत्पन्न करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मदपती मदानाम् (इन्द्राविष्णू)

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ३ ॥

(१) **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और **विष्णु**=शक्ति व उदारता के भाव, **मदानां मदपती**=उल्लास के जनक सोमकणों के सर्वोत्तम रक्षक हैं। ये इन्द्र और विष्णु **सोमं आयातम्**=सोम को आभिमुख्येन प्राप्त हों, अर्थात् सोम का हमारे अन्दर रक्षण करें। **उ**=और **द्रविणा दधाना**=सब ऐश्वर्यों का हमारे अन्दर धारण करें। सुरक्षित सोम ही सब ऐश्वर्यों का साधन बनता है। (२) उपासक लोग **मतीनां अक्तुभिः**=बुद्धियों के प्रकाश के हेतु से **वाम्**=आप दोनों को **सं अञ्जन्तु**=सम्यक् प्राप्त हों (अञ्ज् गतौ)। इन्द्र और विष्णु की उपासना बुद्धियों को विकसित करती ही है। **उक्थैः**=स्तोत्रों के साथ **शस्यमानासः**=उच्चारण की जाती हुईं **स्तोमासः**=स्तुतियाँ **सं** (अञ्जन्तु)=आपको प्राप्त हों। अर्थात् आपका उपासक स्तुति की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की उपासना (क) उल्लास को पैदा करती है, (ख) सोम का रक्षण करती है, (ग) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराती है, (घ) हमें ज्ञान की रुचिवाला बनाती है, (ङ) स्तुति की ओर झुकाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अभिमातिषाहः, सधमदः' अश्वासः

आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥

(१) हे इन्द्राविष्णू=इन्द्र और विष्णु, शक्ति व उदारता के दिव्य भावो! **वाम्**=आप **अश्वासः**=हमारे ये इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमारे लिये प्राप्त करायें। जो इन्द्रियाश्व **अभिमातिषाहः**=अभिमान आदि शत्रुओं को कुचलनेवाले हैं तथा **सदमादः**=परस्पर मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्यों को करनेवाले हैं। ज्ञानेन्द्रियों से दिये गये ज्ञान के अनुसार कर्मेन्द्रियों के कर्म चलते हैं तो ये इन्द्रियाश्व हमारे लिये शक्ति व उदारता आदि दिव्य भावों को प्राप्त करानेवाले होते हैं। (२) हे इन्द्र और विष्णु! आप **मतीनाम्**=मननपूर्वक स्तुति करनेवालों के **विश्वा हवना**=सब पुकारों को **जुषेथाम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करो। अर्थात् ये शक्ति व उदारता के उपासक लोग सदा मननपूर्वक प्रभु की प्रार्थना करनेवाले हों और **मे**=मेरी **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को तथा **ब्रह्माणि**=मेरे से उच्चरित इन सत्यवाणियों को (ब्रह्मन्=truth) **उपश्रृणुतम्**=सुनो। इन्द्र और विष्णु का उपासक सदा ज्ञानप्रवण व सत्य वक्ता होता है।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की आराधना, इनका धारण, हमारी इन्द्रियों को शत्रुओं से अनाक्रान्त बनाता है। यह आराधना हमें प्रार्थनामय, ज्ञानप्रणव व सत्य वक्ता बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

'शक्ति व उदारता' की उपासना का लाभ

इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि॥ ५॥

(१) हे **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और विष्णु, शक्ति व उदारता के भावो! **वाम्**=आपका **तत्**=वह कर्म **पनयाय्यम्**=स्तुति के योग्य है कि **सोमस्य मदे**=सोम के मद में, सोमरक्षण से जनित उल्लास में आप **उरु चक्रमाथे**=विशाल पराक्रम को करते हो। आप इन्द्रियों, मन व बुद्धि तीनों को ही बड़ा सुन्दर बनाते हो। (२) आप **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **वरीयः**=विशालतर-खूब विशाल **अकृणुतम्**=करते हो और **नः**=हमारे **जीवसे**=उत्कृष्ट जीवन के लिये **रजांसि**=सब लोकों को **अप्रथतम्**=खूब विस्तृत कर देते हो। अर्थात् सब अंग-प्रत्यंगों को विकसित शक्तिवाला बनाते हो।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की आराधना सोमरक्षण द्वारा विशाल पराक्रम की जनक होती है। इससे हृदय विशाल बनता है, तथा सब अंग-प्रत्यंग विकसित शक्तिवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अग्राद्वाना

इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः॥ ६॥

(१) **इन्द्राविष्णू**=शक्ति व उदारता के दिव्य भावो! **हविषा**=त्यागपूर्वक अदन के द्वारा **वावृधाना**=हमारे अन्दर आप निरन्तर बढ़ते हो। त्यागपूर्वक अदन से 'शक्ति व उदारता' की वृद्धि होती है **अग्राद्वाना**=ये इन्द्र और विष्णु भोजनों से उत्पन्न सर्वाग्रणी (=सर्वश्रेष्ठ) सोम के भक्षण करनेवाले होते हैं, सोम का ये शरीर में ही रक्षण करते हैं। **नमसा रातहव्या**=नमन के साथ ये हवि के देनेवाले हैं। अर्थात् हमें ये नम्रता व यज्ञशीलता को प्राप्त कराते हैं। (२) **घृतासुती**=तेज व दीप्ति को हमारे में ये उत्पन्न करनेवाले हैं। **अस्मे**=हमारे लिये हे इन्द्राविष्णू! **द्रविणं धत्तम्**=धन

को धारण कीजिये। आप **समुद्रः स्थः**=समुद्र की तरह होते हो। आप **सोमधानः कलशः**=सोम के आधारभूत कलश ही हो, अर्थात् आपके द्वारा इस शरीर कलश में सोम का रक्षण होता है।

भावार्थ—शक्ति व उदारता के भावों की उपासना हमें 'त्याग, नम्रता, यज्ञशीलता' को प्राप्त कराती है और हमारे लिये उत्तम धनों का धारण करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'इन्द्राविष्णू' का सोमपान

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे॥ ७॥

(१) **इन्द्राविष्णू**=हे शक्ति व उदारता के भावो! **अस्य**=इस **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमस्य**=सोम का **पिबतम्**=पान करो, शरीर में सोम को सुरक्षित करो। हे **दस्रा**=सोमरक्षण द्वारा सब दुःखों का उपक्षय करनेवाले इन्द्र और विष्णु! आप सोम के द्वारा **जठरम्**=जठर को, उदर को **पृणेथाम्**=पूरित करो। शरीर को सुरक्षित सोम से भरनेवाले होवो। (२) **वाम्**=आपको **मदिराणि**=आनन्द व उल्लास को देनेवाले **अन्धांसि**=आध्यातव्य सोम **आ अग्मन्**=प्राप्त हों। हे इन्द्राविष्णू! आप **मे**=मेरे **ब्रह्माणि**=स्तोत्रों को तथा **हवम्**=पुकार को **उपशृणुतम्**=समीपता से सुननेवाले होइये। अर्थात् मैं स्तवन व प्रार्थना की वृत्तिवाला बनूँ।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की उपासना हमें सोमरक्षण के योग्य बनाये। यह हमारे अन्दर स्तुति व प्रार्थना की वृत्ति को पैदा करे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

(त्रेधा सहस्त्रं) इन्द्र और विष्णु का विजय

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्त्रं वि तदैरयेथाम्॥ ८॥

(१) **उभा**=इन्द्र और विष्णु दोनों, शक्ति व उदारता के भाव दोनों ही **जिग्यथुः**=विजय को प्राप्त होते हैं **न पराजयेथे**=ये पराजित नहीं होते। **एनोः**=इन दोनों में से **कतरः चन**=कोई भी एक **पराजिग्ये**=पराजित नहीं होता। (२) **इन्द्रः च विष्णो**=इन्द्र और हे विष्णो! आप दोनों **यत्**=जब **अपस्पृधेथाम्**=संघर्ष में असुरों का मुकाविला करते हो तो **तत्**=उस **त्रेधा**=तीन प्रकार से स्थित-लोक वेद वाग् आत्मा के रूप से विद्यमान **सहस्त्रम्**=(अमितं) अनन्त ऐश्वर्य को अपने में **वि ऐरयेथाम्**=प्रेरित करते हो। ये इन्द्र और विष्णु-शक्ति व उदारता के भाव हमारे अंगों (लोक) को ठीक रखते हैं, हमारे ज्ञान को बढ़ाते हैं (वेद) हमारी वाणी को परिष्कृत करते हैं (वाग्)।

भावार्थ—जब हम शक्ति व उदारता के भाव का आराधन करते हैं तो विजय ही विजय को प्राप्त करते हैं, कभी पराजित नहीं होते। हमारे 'अंग ज्ञान व वाणी' सब बड़े ठीक विकासवाले होते हैं।

अगले सूक्त में 'द्यावापृथिव्यौ' देवता हैं—

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'घृतवती मधुदुघे' द्यावापृथिवी

घृतवंती भुवंनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥

(१) **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **घृतवती**=दीप्तिवाले हैं। **भुवनानाम्**=सब प्राणियों के **अभिश्रिया**=आश्रयणीय होते हैं। **उर्वी**=ये विशाल हैं, **पृथ्वी**=अपने कार्यों से प्रथित=विस्तृत व फैले हुए हैं। **मधुदुघे**=ये माधुर्य का दोहन (पूरण) करनेवाले हैं। **सुपेशसा**=उत्तम आकृतिवाले हैं। (२) ये द्यावापृथिवी **वरुणस्य**=उस प्रचेता-प्रकृष्ट ज्ञानवाले प्रभु की **धर्मणा**=धारक शक्ति से **विष्कभिते**=थामे गये हैं। **अजरे**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं तथा **भूरिरेतसा**=बहुत शक्तिवाले हैं। द्यावापृथिवी की अनुकूलता से हमारा शरीर व मस्तिष्क सभी शक्ति-सम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी की अनुकूलता हमें दीप्ति व शक्ति प्राप्त कराती है। ये हमारे जीवन में माधुर्य का दोहन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

हितकर शक्ति का संचार

असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

(१) **असश्चन्ती**=परस्पर सक्त न होते हुए (असज्यमाने), एक-दूसरे से दूर विद्यमान, **भूरिधारे**=खूब ही धारण शक्ति से युक्त **पयस्वती**=आप्यायन व वर्धन के तत्त्वोंवाले, **शुचिव्रते**=पवित्र व्रतोंवाले ये द्यावापृथिवी **सुकृते**=शुभ कर्म करनेवाले के लिये **घृतं दुहाते**=मलों के क्षरण व दीप्ति को प्रपूरित करते हैं। (२) **अस्य**=इस **भुवनस्य**=भुवन का **राजन्ती**=शासन करते हुए **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **अस्मे**=हमारे लिये **रेतः**=उस शक्ति का **सिञ्चतम्**=सेचन करें, **यत्**=जो शक्ति **मनुर्हितम्**=विचारशील पुरुष के लिये हितकर है।

भावार्थ—द्यावापृथिवी हमारे जीवन में उस शक्ति का संचार करते हैं, जो हमारे लिये हितकर होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ऋजुक्रमण व सत् सन्तान

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ३ ॥

(१) हे **धिषणे**=धारण करनेवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी **यः**=जो **मर्तः**=मनुष्य **ऋजवे क्रमणाय**=ऋजु (सरल) मार्ग से गति के लिये **वां ददाश**=आपके प्रति अपना अर्पण करता है, **स साधति**=वह अपनी कामनाओं को सिद्ध कर पाता है। द्यावापृथिवी के प्रति अपने को दे डालने का भाव यही है कि मस्तिष्क (द्यावा) व शरीर (पृथिवी) का पूरा ध्यान करना। सरल मार्ग से चलता हुआ पुरुष मस्तिष्क व शरीर दोनों को स्वस्थ रख पाता है। इनका स्वास्थ्य उसकी सब

कामनाओं को पूर्ण करता है। (२) यह व्यक्ति **धर्मणः परि**=धर्मपूर्वक **प्रजाभिः प्रजायते**=पुत्र-पौत्र आदि से फलता-फूलता है। हे द्यावापृथिवी! **युवोः**=तुम्हारे द्वारा **विषुरूपाणि**=विशिष्ट उत्तम रूपवाले **सव्रता**=आपके समान व्रतोंवाले सन्तान **सिक्ता**=सिक्त होते हैं। 'द्यौरहं पृथिवी त्वं' इस वर से उच्चारण किये जानेवाले वाक्य में 'द्यौः' पिता है, 'पृथिवी' माता है। ये विशिष्ट उत्तम रूपवाले, उत्तम व्रती सन्तान को जन्म देते हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी के प्रति अपने को दे डालने का भाव यह है कि हम मस्तिष्क व शरीर का पूरा ध्यान करें। ऐसा होने पर हम सदा ऋजुमार्ग से चलते हैं और पुत्र-पौत्रों से फलते हुए सदा सव्रत सन्तानों को ही प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'घृतश्रिया घृतपृचा' द्यावापृथिवी

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥ ४ ॥

(१) **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **घृतेन**=उदक से व दीप्ति से **अभीवृते**=आवृत हैं। **घृतश्रिया**=उदक व दीप्ति से आश्रयणीय हैं। **घृतपृचः**=उदक व दीप्ति के सम्पर्कवाले हैं। **घृतावृधा**=हमारे जीवनों में भी रेतःकणरूप जलों को व दीप्ति को बढ़ानेवाले हैं। (२) **उर्वी**=विस्तृत हैं, **पृथ्वी**=प्रथित हैं, अपने कर्मों से सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। **होतृवूर्ये**=होताओं का जिनमें वरण होता है, उन यज्ञों में **पुरोहिते**=ये द्यावापृथिवी पुरस्कृत होते हैं, 'द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा' इन शब्दों से ये यज्ञों को प्रारम्भ करते हैं। **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **ते इत्**=इन द्यावापृथिवी से ही **इष्टये**=यज्ञों के लिये **सुम्नम्**=सुख को **ईडते**=याचित करते हैं। वस्तुतः मस्तिष्क (द्यावा) व शरीर (पृथिवी) का सुख होने पर ही यज्ञ प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ—ये द्यावापृथिवी उदक व दीप्ति से आवृत हैं। ये ही हमारे जीवनों में रेतःकण रूप उदक के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाते हैं और ज्ञानदीप्ति से मस्तिष्क को उज्ज्वल करते हैं। ये हमें सुखी करके यज्ञों में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'माधुर्य के सेचक' द्यावापृथिवी

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥ ५ ॥

(१) **द्यावापृथिवी**= ये द्युलोक व पृथिवीलोक **नः**=हमारे लिये **मधु**=माधुर्य को **मिमिक्षताम्**=सिक्त करें। **मधुश्चुता**=ये माधुर्य को क्षरित करनेवाले हैं, **मधुदुघे**=माधुर्य का हमारे में दोहन (पूरण) करनेवाले हैं। **मधुव्रते**=माधुर्ययुक्त कर्मोंवाले हैं। द्युलोक वृष्टि जल के द्वारा माधुर्य का वर्षण करता है तथा पृथिवीलोक उत्तम अन्न के द्वारा माधुर्य को प्राप्त कराता है। (२) ये द्यावापृथिवी हमारे जीवनों में **यज्ञम्**=यज्ञ को, **च**=और **द्रविणम्**=धन को **दधाने**=धारण करते हैं। **देवता**=देवतारूप ये द्यावापृथिवी **अस्मे**=हमारे लिये **महि श्रवः**=महनीय ज्ञान को **वाजम्**=बल को तथा **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्य को धारण करें।

भावार्थ—द्यावापृथिवी माधुर्य को क्षरित करनेवाले हैं। ये हमारे लिये 'यज्ञ, द्रविण, ज्ञान,

बल व वीर्य' का धारण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'ऊर्ज्, सनि, वाज, रयि' के दाता द्यावापृथिवी

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम्॥ ६॥

(१) वृष्टि जल के सेचन के कारण द्युलोक पिता के समान है। उस जल का धारण करने के कारण पृथिवी माता है। **नः**=हमारे लिये **पिता**=पितृ तुल्य **द्यौः च**=यह द्युलोक तथा **माता पृथिवी च**=मातृ तुल्य यह पृथिवीलोक **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को देनेवाले अन्न को **पिन्वताम्**=प्राप्त करायें। ये माता-पिता ही **विश्वविदा**=सब आवश्यक चीजों को प्राप्त करानेवाले हैं (विद् लाभे) तथा **सुदंससा**=उत्तम कर्मोंवाले हैं। (२) **संरराणे**=उपकार्योपकारक भाव से साथ-साथ रममाण होते हुए **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **विश्वशम्भुवा**=सब शान्तियों को देनेवाले हैं, सब त्रिविध दुःखों को दूर करनेवाले हैं। ये **अस्मे**=हमारे लिये **सनिम्**=सम्भजनीय पुत्रादि को, **वाजम्**=बल को और **रयिम्**=ऐश्वर्य को **समिन्वताम्**=प्रेरित करें।

भावार्थ—द्यावापृथिवी हमारे माता-पिता हैं। ये हमें 'ऊर्ज्, वाज, रयि व सनि' को प्राप्त करायें। पौष्टिक अन्न, बल, धन व सम्भजनीय पुत्र को दें।

अगले सूक्त में 'सविता' (सूर्य) देवता है—

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सूर्य की हितरमणीय भुजाएँ

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो राजसो विधर्मणि॥ १॥

(१) **स्यः**=वह **देवः**=प्रकाशमय **सविता**=सर्वत्र प्राणशक्ति को जन्म देनेवाला सूर्य **उ**=निश्चय से **हिरण्यया बाहू**=अपनी हित रमणीय भुजाओं को **उद् अयंस्त**=ऊपर थामता है, उदित करता है। यह **सुक्रतुः**=उत्तम शक्तिवाला सूर्य **सवनाय**=यज्ञों के लिये हमें प्रेरित करता है। (२) यह सूर्य **पाणी**=अपने किरणरूप हाथों को **घृतेन**=उदक से **अभि प्रुष्णुते**=सिक्त करता है। जल को किरणों के द्वारा वाष्परूप में ऊपर सूर्य ही तो ले जाता है और फिर यह सूर्य ही इन जलों को बरसाता है। **मखः**=यह यज्ञशील है, सूर्योदय के होने पर ही सब यज्ञों का उपक्रम होता है। **युवा**=नित्यतरुण है, यह सूर्य अपनी किरणों से मलों का दहन करता हुआ हमारे अन्दर शक्ति का संचार करता है 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' **सुदक्षः**=उत्तम बुद्धि का यह कारण है। **राजसः विधर्मणि**=यह सूर्य उदक के धारण में स्थित है। हमारे शरीरों के अन्दर रेतःकण रूप जलों की ऊर्ध्वगति का ये प्रातः सूर्य की किरणें कारण बनती हैं।

भावार्थ—सूर्य उदय होता है, यज्ञों की प्रेरणा देता है, हमारी वृद्धि का कारण बनता है, शरीर में रेतःकणरूप जलों की ऊर्ध्वगति व धारण का हेतु बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सविता देव की प्रेरणा में 'दानशीलता'

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥ २ ॥

(१) **वयम्**=हम **सवितुः**=उस सर्वोत्पादक व सर्वप्रेरक **देवस्य**=प्रकाशमय सर्वदाता प्रभु की **सवीमनि**=प्रेरणा में **वसुनः**=धन के **श्रेष्ठे दावने**=उत्तम दान में **स्याम**=हों। प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त करके हम सदा धनों का दान करनेवाले हों। (२) उस प्रभु की प्रेरणा में हम दान दें **यः**=जो **विश्वस्य**=सब **द्विपदः**=दो पाँववाले मनुष्यों और **भूमनः**=बहुत प्रकार के **चतुष्पदः**=इन पशुओं के **निवेशने**=स्थापन व धारण में **च**=तथा **प्रसवे**=उत्पादन में **असि**=स्थित हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब दो पाँववालों व चार पाँववालों को उत्पन्न करते हैं व धारण करते हैं। इस प्रभु की उत्तम प्रेरणा में हम सदा दान देनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु का 'अदब्ध शिव' रक्षण

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ३ ॥

(१) हे **सवितः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभो! (प्रकृति के दृष्टिकोण से सर्वोत्पादक, जीव के दृष्टिकोण से सर्वप्रेरक) **त्वम्**=आप **अदब्धेभिः**=अहिंसित **शिवेभिः**=कल्याण करनेवाले **पायुभिः**=रक्षणों से **अद्य**=आज **नः**=हमारे **गयम्**=शरीररूप गृह को **परिपाहि**=सर्वतः सुरक्षित करिये। (२) **हिरण्यजिह्वः**=हितरमणीय जिह्वावाले आप **नव्यसे**=नवतर, अत्यन्त स्तुत्य **सुविताय**=सुवित के लिये, दुरित को दूर करने के लिये **रक्षा**=हमारा रक्षण करिये। **अघशंसः**=बुराई का शंसन करनेवाला **नः**=हमारा **माकिः**=मत **ईशत**=ईश बने। हम अघशंस के वशीभूत न हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभु के अहिंसित शिव रक्षण हमें प्राप्त हों। प्रभु की हितरमणीय प्रेरणा हमें प्राप्त हो। हम बुराइयों का शंसन करनेवालों के दबाव में न आ जाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'हिरण्यपाणि अयोहनु' सूर्य

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वाममम् ॥ ४ ॥

(१) **स्यः**=वह **देवः सविता**=प्रकाशमय सूर्य **प्रतिदोषम्**=प्रत्येक रात्रि की समाप्ति पर **उत् उ अस्थात्**=उदय होता ही है। यह सूर्य **दमूनाः**=दान के मनवाला होता है, हमारे लिये प्रकाश व प्राणशक्ति को देना चाहता है। **हिरण्यपाणिः**=इसके किरण रूप हाथों में स्वर्ण होता है, यह प्रातः का सूर्य अपने किरणरूप हाथों से स्वर्ण का हमारे शरीर में प्रवेश कराता है। (२) यह **अयोहनुः**=लोहे के बने अस्त्रवाला है (हनु=weapon) अपने लोहास्त्र से सब रोगकृमियों का संहार करता है। **यजतः**=इसीलिए संगतिकरण योग्य है, हम सूर्य के सम्पर्क में आयेंगे, तो सूर्य का रोगकृमियों का संहार करेगा। **मन्द्रजिह्वः**=यह मोदमान वाणीवाला है, हमारी जिह्वा को उत्तम बनानेवाला है। **दाशुषे**=यज्ञशील पुरुष के लिये यह **भूरि**=बहुत **वामम्**=सुन्दर धन को

आसुवति=प्रेरित करता है, प्राप्त कराता है। सूर्योदय होने पर सूर्याभिमुख होकर यज्ञ करनेवाले पुरुष को यह सूर्य स्वास्थ्य आदि सुन्दर धनों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सूर्य अपनी किरणों से हमारे शरीर में स्वर्ण का प्रवेश करता है। यह अपने किरणरूप लोहास्त्रों से रोग कृमियों का नाश करता है, हमारी जिह्वा को उत्तम मधुर शब्द बोलनेवाली बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

उपवक्ता इव (एक व्याख्याता की तरह)

उदू॑ अयाँ उपव॒क्तेव॑ बा॒हू हि॑र॒ण्यया॑ सवि॒ता सु॒प्रती॑का।
दि॒वो रोहां॑स्यरुहत्पृथि॒व्या अरी॑रमत्प॒तय॒त्कच्चि॑दभ्व॒म्॥ ५॥

(१) **उपवक्ता इव**=एक अधिवक्ता (व्याख्याता) की तरह **सविता**=यह सूर्य **हिरण्यया**=हितरमणीय **सुप्रतीका**=शोभन अवयवोंवाली **बाहू**=अपनी किरणरूप भुजाओं को **उ**=निश्चय से **उद् अयान्**=उद्यत करता है। (२) यह सूर्य **पृथिव्याः**=इस पृथिवी से **दिवः रोहांसि**=द्युलोक के उच्छ्रित प्रदेशों को **अरुहत्**=आरूढ़ होता है। उदयकाल में पृथिवी पर प्रतीत होता है। अब यह आकाश में ऊपर उठता प्रतीत होता है, आकाश में आरूढ़ हो जाता है। **पतयत्**=गति करता हुआ यह सूर्य **कच्चित्**=जो कुछ **अभ्वम्**=महान् यह जगत् है उसे **अरीरमत्**=यह रमणयुक्त करता है। सूर्य के अस्त हो जाने पर सर्वत्र अन्धकार था। अब सूर्योदय के होने पर यह जगत् विशाल हो उठता है, सर्वत्र आनन्द प्रतीत होता है।

भावार्थ—एक व्याख्याता की तरह सूर्य किरण रूप भुजाओं को ऊपर उठाता है। इन किरणों के द्वारा ही वह उठने व यज्ञादि करने की प्रेरणा देता है। सारे संसार को विशाल व रमणवाला कर देता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वामभाजः स्याम

वा॒मम॒द्य स॑वितर्वा॒ममु॒ श्वो दि॒वेदि॑वे वा॒मम॒स्मभ्यं॑ सावीः।
वा॒मस्य॒ हि क्षय॑स्य देव॒ भूरे॑रया धि॒या वा॑म॒भाजः॑ स्याम॥ ६॥

(१) हे **सवितः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभो! **अद्य**=आज **वामम्**=सुन्दर धन को **अस्मभ्यं सावीः**=हमारे लिये दीजिये। **उ**=और **श्वः**=कल भी, आनेवाले दिन में भी **वामम्**=सुन्दर ही धन को दीजिये। **दिवे दिवे**=प्रतिदिन हमारे लिये **वामम्**=सुन्दर धन को ही हमें दीजिये। (२) हे **देव**=सर्वप्रदातः प्रभो! आप **हि**=ही **क्षयस्य**=निवास के कारणभूत **भूरेः**=बहुत व पर्याप्त **वामस्य**=सुन्दर धन के आप दाता हैं। सो **अया धिया**=इस बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति के द्वारा हम **वामभाजः स्याम**=सुन्दर धनों का सेवन करनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें सदा उत्तम धनों को प्राप्त करायें।

अगले सूक्त के देवता 'इन्द्रासोमौ' है—

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्योदय तथा प्रकाश व सुख की प्राप्ति

इन्द्रासोमा॒ महि तद्वां॑ महि॒त्वं यु॒वं म॒हानि॑ प्रथ॒मानि॑ चक्रथुः।
यु॒वं सूर्यं॑ विविद॒थुर्यु॒वं स्व१॑र्विश्वा॒ तमां॑स्यहतं नि॒दश्च॑॥ १॥

(१) 'इन्द्र' बल का प्रतीक है और 'सोम' सौम्यता का। हम बलवान् बनकर सौम्य बने रहें। हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के दिव्य भावो! **वाम्**=आपका **तत्**=वह **महि महित्वम्**=महान् महत्त्व है कि **युवम्**=आप मनुष्यों को **महानि**=महान् व **प्रथमानि**=मुख्य स्थान में स्थित **चक्रथुः**=करते हो। (२) **युवम्**=आप दोनों **सूर्यं विविदथुः**=ज्ञान सूर्य को प्राप्त कराते हो। **युवम्**=आप **स्वः**=सुख को प्राप्त कराते हो। इस प्रकार ज्ञान के द्वारा जीवन को सुखी बनाते हुए आप **विश्वा**=सब **तमांसि**=अन्धकारों को **निदः च**=और निन्दित पापों को **अहतम्**=विनष्ट करते हो। हमें ये बल व सौम्यता, पाप व अन्धकार से दूर करके ही तो सुखी करते हैं।

भावार्थ—हम सबल बनें, साथ ही सौम्य (विनीत) बनें। इस प्रकार हमारे जीवन में ज्ञान सूर्य का उदय होकर सुख व प्रकाश होगा। हम पापों व अन्धकारों से दूर होकर सुखमय जीवन बितायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्योदय

इन्द्रा॑सोमा वा॒सय॑थ उ॒षास॒मुत्सूर्यं॑ नयथो॒ ज्योति॑षा स॒ह।
उप॒ द्यां स्क॒म्भथुः॒ स्कम्भ॑ने॒नाप्र॑थतं पृथि॒वीं मा॒तर॒ं वि॥ २॥

(१) हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के दिव्य भावो! आप **उषासं वासयथः**=हमारे जीवनों के उषाकाल को उत्तमता से बिताते हो और **ज्योतिषा सह**=ज्योति के साथ **सूर्यम्**=ज्ञान सूर्य को **उत् नयथः**=उन्नत करते हो। (२) आप **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **स्कम्भनेन**=आधारभूत स्काम से **स्कम्भथुः**=थामते हो। शरीर में बल तथा हृदय में सौम्यता ये मिलकर मस्तिष्करूप द्युलोक के स्तम्भ बनते हैं। आप ही **मातरम्**=मातृ तुल्य **पृथिवीम्**=इस पृथिवी का **वि अप्रथतम्**=विशेषरूप से विस्तार करते हो। शरीर ही पृथिवी है। इन्द्र और सोम इस पृथिवी को विस्तृत शक्तिवाला बनाते हैं।

भावार्थ—बल व सौम्यता से जीवन का उषाकाल सुन्दरता से बीतता है। जीवन में ज्ञानसूर्य का उदय होता है। मस्तिष्क व शरीर दोनों का धारण होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समुद्र-प्रथन

इन्द्रा॑सोमा॒वहि॒मप॑: प॒रि॒ष्ठां ह॒थो वृ॒त्रमनु॑ वां॒ द्यौर॑मन्यत।
प्राणी॑स्यैरयतं न॒दीना॑मा स॑मु॒द्राणि॑ पप्रथुः॒ पुरू॑णि॥ ३॥

(१) **अपः परिष्ठाम्**=रेतःकण रूप जलों को घेरकर स्थित होनेवाली **अहिम्**=(आहन्तारं) विनाशक **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को, हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के भावो! आप

हथः=विनष्ट करते हो। **वाम्**=आपके **अनु**=अनुसार **द्यौः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक **अमन्यत**=मनन करनेवाला होता है, ज्ञानदीप्ति से दीप्त होता है। (२) आप ही **नदीनाम्**=ज्ञान की नदियों के **अर्णांसि**=ज्ञान जलों को **प्रऐरयतम्**=प्रकर्षेण प्रेरित करते हो। और हमारे जीवनों में **पुरूणि**=महान् **समुद्राणि**=ज्ञान समुद्रों को आप **प्रथुः**=विस्तृत करते हो 'सरस्वती' के ज्ञानजल के प्रवाह इन्द्र सोम के द्वारा ही प्रवाहित होते हैं और ज्ञान-समुद्र का उद्भव होता है।

भावार्थ—बल व सौम्यता के भावों का आराधन (क) वासना को विनष्ट करता है, (ख) ज्ञान की वृद्धि करता है, (ग) ज्ञान जलों को प्रवाहित कर हमारे जीवनों में ज्ञान समुद्र का उद्भव करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्य व चन्द्र के द्वारा गौवों परिपक्व दुग्ध की स्थापना

इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिदधथुर्वक्षणासु।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥

(१) 'इन्द्र' सूर्य है तो 'सोम' चन्द्रमा। ये **इन्द्रासोमा**=सूर्य और चन्द्र **गवाम्**=गौवों के **आमासु**=अपरिपक्व **वक्षणासु अन्तः**=ऊधस् प्रदेशों में **पक्वम्**=पक्व (गर्म) दुग्ध को **इत्**=निश्चय से **निदधथुः**=धारण करते हैं। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा दुग्ध में प्राणशक्ति की स्थापना करता है और चन्द्रमा इस दुग्ध को रसमय बनाता है। सूर्य और चन्द्र मिलकर दूध का ठीक से परिपाक करते हैं। (२) **आसु**=इन **चित्रासु**=भिन्न-भिन्न वर्णोंवाली **जगतीषु**=गौवों के **अन्तः**=अन्दर **अनपिनद्धम्**=किसी से न बाँधे गये **रुशत्**=देदीप्यमान दूध को **जगृभथुः**=धारण करते हैं। इस प्रकार धारण करते हैं कि वह दूध स्वयं पृथिवी पर टपक नहीं पड़ता। यह सब साधारण-सी बात है। परन्तु इसमें भी प्रभु की रचना का महत्त्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ—प्रभु ने सूर्य व चन्द्र के द्वारा गौवों के अपरिपक्व ऊधस् प्रदेशों में परिपक्व दूध की स्थापना की है। **अनपिनद्ध**=न बँधे हुए इस **ऊधस्**=में वह देदीप्यमान दुग्ध को इस प्रकार स्थापित करता है यह दूध पृथिवी पर नहीं पड़ता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन+बल

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के दिव्य भावो! **युवम्**=आप दोनों **अंग**=शीघ्र ही उस धन को **रराथे**=हमारे लिये देते हो, जो **तरुत्रम्**=आपत्तियों से तरानेवाला है, विषय वासनाओं में न फँसानेवाला है। **अपत्यसाचम्**=उत्तम सन्तान से युक्त है तथा **श्रुत्यम्**=श्रवणीय है, हमें यशस्वी बनानेवाला है। (२) हे **उग्रा**=तेजस्वी इन्द्र और सोम! **युवम्**=आप **चर्षणिभ्यः**=श्रमशील मनुष्यों के लिये **नर्यम्**=नरहितकारी **पृतनाषाहम्**=शत्रु-सैन्यों के अभिभावुक **शुष्मम्**=बल को **संविव्यथुः**=परिवेष्टित करते हो, ऐसे बल से उन्हें आच्छादित करते हो। इस बल से युक्त होकर वे सब शत्रुओं को जीतनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—बल व सौम्यता के दिव्य भाव हमारे लिये उस धन को देते हैं जो आपत्तियों से तरानेवाला, उत्तम सन्तान से युक्त व हमें यशस्वी बनानेवाला है। ये हमें उस बल को देते हैं जो नरहितकारी व शत्रुशैन्य का पराजय करनेवाला है।

अगले सूक्त का देवता 'बृहस्पति' है—

[७३] त्रिसप्तीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अद्रिभित्' बृहस्पति

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति॥ १॥

(१) **यः**=जो प्रभु **अद्रिभित्**=हमारे अविद्या पर्वत का विदारण करनेवाले हैं। **प्रथमजाः**=सृष्टि से पूर्व ही विद्यमान हैं 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'। **ऋतावा**=ऋतवाले हैं, प्रभु के तीव्र तप से ही ऋत की उत्पत्ति होती है 'ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत'। **बृहस्पतिः**=(ब्रह्मणस्पतिः) वेदज्ञान के रक्षक हैं। **आंगिरसः**=उपासकों के अंग-प्रत्यंग में रस का संञ्चार करनेवाले हैं। **हविष्मान्**=प्रशस्त हविवाले हैं, सृष्टियज्ञ के महान् होता है। (२) **द्विबर्हज्मा**=दोनों लोकों में प्रवृद्ध गतिवाले हैं (द्वि-बर्ह-ज्मा) द्युलोक व पृथिवीलोक में सर्वत्र प्रभु की क्रिया विद्यमान है। **प्राघर्मसत्**=प्रकृष्ट तेज में आसीन होनेवाले हैं, तेजःपुञ्ज हैं, तेज ही तेज हैं। **नः पिता**=हम सबके पिता हैं। **वृषभः**=ये सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु हैं **रोदसी**=इन द्यावापृथिवी में **आरोरवीति**=खूब ही गर्जना करते हैं। इन लोकों में स्थित सब मनुष्यों के हृदयों में स्थित होकर उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश करते हैं। अच्छे कर्मों में उत्साह व बुरे कर्मों में भय, शंका व लज्जा प्रभु ही तो प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के स्वामी प्रभु ही हमारे अविद्या पर्वत का विदारण करते हैं। हमें तेजस्वी बनाते हैं। हृदयस्थ रूपेण कर्तव्य की प्रेरणा देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुरः विदर्दरीति

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन्॥ २॥

(१) **यः बृहस्पतिः**=जो ज्ञान के स्वामी प्रभु हैं, वे **ईवते जनाय**=गतिशील-आलस्यशून्य-मनुष्य के लिये **चित् उ**=पूर्ण निश्चय से **देवहूतौ**=यज्ञों में **लोकम्**=स्थान को **चकार**=करते हैं। अर्थात् वे ज्ञानस्वरूप (चित् रूप) प्रभु पुरुषार्थी मनुष्य को यज्ञ की रुचिवाला बनाते हैं। (२) इस प्रकार यज्ञरुचि बनाकर प्रभु **वृत्राणि घ्नन्**=इसकी वासनाओं को नष्ट करते हुए **पुरः विदर्दरीति**=काम-क्रोध-लोभ की नगरियों का विदारण कर देते हैं। इसके **शत्रून्**=इन काम आदि शत्रुओं को **जयन्**=जीतते हुए, **पृत्सु**=संग्रामों में **अमित्रान्**=द्वेष आदि रूप अमित्र भूत भावनाओं को **साहन्**=पराभूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु कर्मशील पुरुष को यज्ञशील बनाते हैं। इसके आसुर भावों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अपः स्वः' सिषासन्

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः॥ ३॥

(१) **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को हमारे लिये **समजयत्**=जीतते हैं। **एषः देवः**=ये हमारे लिये शत्रुओं को पराजित करने की कामनावाले प्रभु (दिव् विजिगीषा) **महः**=महत्त्वपूर्ण **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **व्रजान्**=बाड़ों को (cow-shed) हमारे लिये जीतते हैं। अर्थात् प्रभु सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं और प्रशस्त इन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं। (२) ये **अप्रतीतः**=किसी से भी प्रतिगत न होनेवाले, न रोके जानेवाले, प्रभु **अपः**=रेतःकणरूप जलों को तथा **स्वः**=प्रकाश को **सिषासन्**=हमारे साथ सम्भक्त करने की कामनावाले हैं। **बृहस्पतिः**=ये ज्ञान के स्वामी प्रभु **अर्कैः**=अर्चना के साधनभूत मन्त्रों के द्वारा **अमित्रं हन्ति**=हमारा विनाश करनेवाली द्वेष आदि की भावनाओं को **हन्ति**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के स्वामी प्रभु हमें वसुओं को प्राप्त कराते हैं, प्रशस्त इन्द्रियों को देते हैं। रेतःकणों को व प्रकाश को प्राप्त कराते हुए ये ज्ञान के स्वामी प्रभु मन्त्रों द्वारा द्वेष आदि अमित्रभूत भावनाओं को विनष्ट करते हैं।

अगले सूक्त के देवता 'सोमारुद्रौ' हैं सौम्य, परन्तु शत्रुओं के लिये भयङ्कर अथवा सोमरक्षण के द्वारा रोगों का द्रावण करनेवाले। सोमरक्षण रोगविनाश का हेतु तो है ही—

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सोम और रुद्र' का आराधन

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे॥ १॥

(१) हे **सोमारुद्रा**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के भावो! **असुर्यम्**=बल को हमारे लिये **धारयेथाम्**=धारण करो। **वाम्**=आपके **इष्टयः**=यज्ञ **अरम्**=पर्याप्त **प्र अश्नुवन्तु**=हमें व्याप्त करें। हम सदा सोम और रुद्र के उपासनात्मक यज्ञों को करनेवाले बनें। (२) **दमे दमे**=प्रत्येक शरीरगृह में **सप्त रत्ना**=सात रत्नों को, 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' रूप सात उत्तम चीजों को **दधाना**=धारण करते हुए ये सोम और रुद्र **नः**=हमारे लिये **शं भूतम्**=शान्ति को देनेवाले हों। हमारे **द्विपदे**=दो पाँववाले पुत्र आदि के लिये तथा **चतुष्पदे**=गवादि चतुष्पाद् पशुओं के लिये भी **शम्**=शान्ति को देनेवाले हों।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा रोगद्रावण के पवित्र भाव हमें सबल बनायें। हम सोम व रुद्र का ही आराधन करें। यह आराधना हमारे जीवनों में 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' रूप सात रत्नों का धारण करे तथा हमारे लिये शान्ति को देनेवाली हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'विषूची अमीवा' का उच्छेद

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥ २॥

(१) हे **सोमारुद्रा**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के पवित्र भावो! **या**=जो रोग **नः**=हमारे **गयम्**=शरीररूप गृह में **आविवेश**=घुस आया है, उस **विषूचीम्**=भिन्न-भिन्न रूपों में गति करनेवाले **अमीवा (म्)**=रोग को **विवृहतम्**=जड़ से उखाड़ दो, हमारे से इसे पृथक् कर दो। (२) **निर्ऋतिम्**=इस रोग रूप अलक्ष्मी को **पराचैः**=दूरगमन साधनों से **आरे बाधेथाम्**=हमारे से दूर ही रोक दो। **अस्मे**=हमारे लिये **भद्रा**=कल्याणकर **सौश्रवसानि**=उत्तम यश व ज्ञान **सन्तु**=हों।

भावार्थ—सोम और रुद्र की आराधना से नीरोग बनकर, अलक्ष्मी को दूर करके हम कल्याणकर यशस्वी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सब रोगों का औषध

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत्॥ ३॥

(१) हे **सोमारुद्रा**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के भावो! **युवम्**=आप **अस्मे**=हमारे लिये **तनूषु**=शरीरों में **एतानि**=इन **विश्वा भेषजानि**=सब भेषजों को, औषधों को **धत्तम्**=धारण करो। वस्तुतः सुरक्षित सोम सब रोगों का औषध बनता ही है। (२) **नः**=हमारे **तनूषु**=शरीरों में **बद्धम्**=बंधा हुआ जो भी **एनः अस्मि**=पाप है, उसे **अवस्यतम्**=सुदूर समाप्त करो। **अस्मत्**=हमारे से **कृतं एनः**=किये हुए पाप को भी **मुञ्चतम्**=छुड़ाओ। सोमरक्षण से रोगों का द्रावण होने पर केवल शरीर ही नीरोग नहीं बनता, मन भी पवित्र बन जाता है।

भावार्थ—सोम और रुद्र का आराधन सब औषधों को प्राप्त कराता है। शरीर व मनोगत सब विकारों को दूर करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरुण के पाश से छुटकारा

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना॥ ४॥

(१) हे **सोमारुद्रौ**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के पवित्र भावो! आप **तिग्मायुधौ**=बड़े तीक्ष्ण धनुषवाले हो और **तिग्महेती**=तीक्ष्ण शरों (बाणों) वाले हो। **सुशेवौ**=उत्तम सुख को देनेवाले आप **इह**=इस जीवन में रोगविनाश के द्वारा, **नः**=हमारे लिये **सुमृडतम्**=उत्तम सुख को देनेवाले होइये। (२) ये सोम और **रुद्र नः**=हमें **वरुणस्य पाशात्**=वरुण के पास से **प्रमुञ्चतम्**=मुक्त करें। अनृतवादी को ही वरुण के पाश बाँधते हैं। ये सोम और रुद्र हमें अनृत से छुड़ाकर वरुण के पाशों से भी मुक्त करें। इस प्रकार **सुमनस्यमाना**=हमें शोभन मनवाला बनाते हुए ये सोम और रुद्र **नः**=हमें **गोपायतम्**=सुरक्षित करें।

भावार्थ—सोम और रुद्र का आराधन रोगविनाश द्वारा हमें सुखी बनाये। तथा यह आराधन हमें अनृत से छुड़ाकर सुरक्षित करे।

इस प्रकार सोम और रुद्र के आराधन से अपना रक्षण करनेवाला यह 'पायु' बनता है (पाति इति)। अपने में शक्ति को भरनेवाला 'भारद्वाज' तो यह है ही। यह युद्ध में सदा विजयी बनता है। युद्ध के एक-एक उपकरण का यह चित्रण करता है और कहता है—

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**वर्म**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वर्म=कवच की महिमा

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु॥ १॥

(१) **यत्**=अब **समदाम्**=संग्रामों के **उपस्थे**=उपस्थित होने पर एक योद्धा **वर्मी**=कवचवाला होकर, कवच को धारण करके **याति**=रणांगण में गति करता है तो इसका **प्रतीकम्**=रूप **जीमूतस्य इव**=जलों से परिपूर्ण मेघ के समान **भवति**=होता है। लोहे का बना हुआ कवच उस योद्धा को बिलकुल बादल के रंग का बना देता है। (२) हे सैनिक! **त्वम्**=तू **अनाविद्धया**=शत्रु के बाणों से न विंधे हुए **तन्वा**=शरीर से युक्त हुआ-हुआ **जय**=विजय को प्राप्त कर। **त्वा**=तुझे **सः**=वह **वर्मणः महिमा**=कवच की महिमा **पिपर्तु**=पालित करे। तू कवच के कारण शत्रुशरों से शीर्ण शरीरवाला न हो।

भावार्थ—कवच को धारण करके, मेघ के समानरूपवाला यह योद्धा शत्रुशरों से विद्ध शरीरवाला न हो और सदा विजयी बने।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**धनुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

धनुष द्वारा विजय

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ २॥

(१) **धन्वना**=धनुष के द्वारा, युद्ध के अस्त्रों के द्वारा **गाः**=हम शत्रुओं से चुरायी गयी गौवों को फिर से जीतनेवाले बनें। **धन्वना**=इस धनुष से **आजिम्**=संग्राम को **जयेम**=जीतें। **धन्वना**=इस धनुष से ही **तीव्राः**=बड़े उद्धत स्वभाववाले **समदः**=मदयुक्त शत्रुसैन्यों को **जयेम**=जीतनेवाले हों। (२) **धनुः**=यह हमारा धनुष **शत्रोः**=शत्रु की **अपकामं कृणोति**=विजय की कामना को समाप्त कर देता है। हमारे धनुष को देखकर शत्रु लौट जाता है, आक्रमण की इच्छा नहीं करता। **धन्वना**=इस धनुष के द्वारा **सर्वाः प्रदिशः**=सब विस्तृत दिशाओं को, इनमें स्थित व्यक्तियों को **जयेम**=हम जीतें।

भावार्थ—धनुष (आयुध) ही हमें युद्ध में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**ज्या**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्या (डोरी)

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती॥ ३॥

(१) **प्रियं सखायम्**=अपने मित्र सखा (पति) को **परिषस्वजाना**=आलिंगन करती हुई **योषा इव**=नारी की तरह, इषु का आलिंगन करती हुई **इयं ज्या**=यह डोरी **वक्ष्यन्ती इव**=कुछ कहना-सा चाहती हुई **कर्णं आगनीगन्ति**=कान के समीप आती है। (२) **अधि धन्वन्**=धनुष पर **विततता**=फैली हुई **समने पारयन्ती**=युद्ध में पार को प्राप्त करती हुई यह **ज्या शिक्ते**=अव्यक्त ध्वनि करती है।

भावार्थ—धनुष से तीर चलाते समय धनुष की डोरी इस प्रकार धानुष्क के कान के समीप आती है, जैसे कि प्रिय पति को आलिंगन करती हुई नारी प्रिय कथन के लिये पति के कान के समीप आती है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**आर्त्नी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

आर्त्नी (धनुष्कोटी)

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान्॥ ४॥

(१) **ते**=वे **आर्त्नी**=धनुष्कोटियाँ **समना योषा इव**=समान मनवाली (समनस्का) स्त्री की तरह **आचरन्ती**=आचरण करती हुई, जैसे वह स्त्री पति सान्निध्य को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार धनुष के सान्निध्य को न छोड़ती हुई ये धनुष्कोटियाँ, **माता पुत्रं इव उपस्थे**=माता जैसे गोद में बच्चे का धारण करती है। इसी प्रकार ये धनुष्कोटियाँ **बिभृताम्**=सैनिक (योद्धा) का धारण करती हैं। (२) **इमे**=ये **संविदाने**=परस्पर संज्ञानवाली होती हुईं, विसंवाद रहित होती हुई, धनुष्कोटियाँ **अमित्रान्**=अमित्रों को **विष्फुरन्ती**=हिंसित करती हुई **शत्रून्**=शत्रुओं को **अपविध्यताम्**=विद्ध करके दूर भगा दें।

भावार्थ—धनुष्कोटियाँ योद्धा का धारण करनेवाली हों। परस्पर संज्ञानवाली होकर शत्रुओं को अपविद्ध करनेवाली हों।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**इषुधिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इषुधि (तरकस)

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वीः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः॥ ५॥

(१) इषुधि में बाण रखे जाते हैं, सो इषुधि इन बाणों का रक्षक होने से पिता है। बाण उसके पुत्र के समान हैं। यह **इषुधिः**=तरकस **बह्वीनां पिता**=बहुत से बाणों का पिता है। ये **बहुः**=बहुत से बाण **अस्य**=इस इषुधि के **पुत्रः**=पुत्र हैं यह **समना अवगत्य**=युद्ध में आकर **चिश्चा कृणोति**=बाण को निकालते समय होनेवाली इस अव्यक्त-सी 'चिश्चा' ध्वनि को करता है। (२) **च**=और **पृष्ठे निनद्धः**=सैनिक की पीठ पर बँधा हुआ यह तरकस **प्रसूतः**=अपने में से बाणों को शत्रु की ओर प्रेरित करता हुआ **सर्वाः**=सब **संकाः**=(समं कायन्ति शब्दायन्ते) मिलकर शब्द करनेवाली **पृतनाः**=सेनाओं को **जयति**=विजय करता है। इषुधि में स्थित बाण ही विजय का साधन बनते हैं।

भावार्थ—तरकस बाणों को अपने अन्दर सुरक्षित करता है। बाण मानो इसके पुत्र हैं, यह उनका पिता है। इससे निकले हुए बाण शत्रु-सैन्य को पराजित करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**सारथिः, रश्मयः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सारथि

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥

(१) **रथे तिष्ठन्**=रथ पर स्थित हुआ-हुआ **सुषारथिः**=उत्तम सारथि **यत्र यत्र कामयते**=जहाँ-जहाँ चाहता है, वहाँ-वहाँ **वाजिनः**=घोड़ों को **पुरः नयति**=आगे ले जाता है। सारथि घोड़ों को हाँकता हुआ लक्ष्य स्थान पर रथ को प्राप्त कराता है। (२) वस्तुतः सारथि कितना भी कुशल हो, पर बिना लगाम के तो उसके लिये कुछ भी करने का सम्भव नहीं होता। सो कहते हैं कि **अभीशूनाम्**=रश्मियों की, लगाम की **महिमानम्**=महिमा को **पनायत**=स्तुत करो। ये **रश्मयः**=रश्मियाँ ही, लगामें ही **मनः पश्चात्**=मन के अनुकूल होती हुई, सारथि के मन के अनुसार **अनुयच्छन्ति**=घोड़ों का नियमन करती हैं।

भावार्थ—उत्तम सारथि लगाम के द्वारा घोड़ों को वश में रखता हुआ इन घोड़ों को यथेष्ट स्थान की ओर प्रेरित करता है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**अश्वाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अश्वाः

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥

(१) **वृषपाणयः**=(पां सूनां वर्षकखुराः) धूलियों को बरसानेवाले खुरोंवाले **अश्वाः**=घोड़े **रथेभिः सह**=रथों के साथ **वाजयन्तः**=वेग को करते हुए, वेग से आगे बढ़ते हुए, **तीव्रान् घोषान्**=तीव्र शब्दों को **कृण्वते**=करते हैं। (२) ये घोड़े **अनपव्ययन्तः**=रणांगण से न भागते हुए **प्रपदैः**=पाद के अग्र भागों से **अमित्रान्**=अमित्रों को **अवक्रामन्तः**=आक्रान्त करते हुए **शत्रून्**=शत्रुओं को **क्षिणन्ति**=हिंसित करते हैं।

भावार्थ—उत्तम घोड़े युद्ध में आगे और आगे बढ़ते हैं। तीव्र घोषों को करते हुए ये पादाग्रों से शत्रुओं को आक्रान्त करते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**रथः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रथः

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥

(१) **यत्र**=जहाँ रथ में **अस्य**=इस शूरवीर के **रथवाहनम्**=रथ को संचालित करनेवाले उपकरण, **हविः**=अन्न और **नाम आयुधम्**=शत्रुओं को नमानेवाले अस्त्र **निहितम्**=रखे हैं और **अस्य**=इस योद्धा का **वर्म निहितम्**=कवच रखा है। वस्तुतः रथ का सभी युद्धोपकरणों से युक्त होना आवश्यक ही है। (२) **तत्र**=वहाँ **वयम्**=हम **विश्वाहा**=सदा **सुमनस्यमानाः**=उत्तम मनवाले होते हुए **शग्मं रथम्**=सुखकर रथ में **उपसदेम**=आसीन हों। यह रथ हमारी विजय का साधन बनता हुआ हमारे लिये सदा सुखकर हो।

भावार्थ—रथ सब उपकरणों से युक्त हो, आवश्यक भोजनादि सामग्री, आयुध कवच आदि

सभी उसमें रखे हों। यह रथ युद्ध में सहायक होकर हमारे लिये सुखकर हो। यह हमें विजयी बनाये।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**रथगोपाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

रथगोपाः

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥ ९॥

(१) **पितरः**=राष्ट्र-रक्षक लोग, राष्ट्ररूप रथ के गोपा, **स्वादुषंसदः**=स्वादु, सुख प्रीति विवर्धन, अन्नों में आसीन होते हैं। सदा सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हैं। **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं, **कृच्छ्रेश्रितः**=आपत्ति में प्रजाओं से आश्रयणीय होते हैं। **शक्तीवन्तः**=शक्तिशाली व **गभीराः**=गम्भीर स्वभाववाले होते हैं। (२) ये राष्ट्र-रक्षा के लिये **चित्रसेनाः**=अद्भुत सेनावाले, **इषुबलाः**=बाणों (शस्त्रों) के बलवाले होते हैं। पर्याप्त सेना को रखते हैं और उस सेना को अस्त्रों से सन्नद्ध रखते हैं। इसीलिए **अमृध्राः**=शत्रुओं से हिंसित होने योग्य नहीं होते। **सतः वीराः**=प्राप्त वीर्य, अर्थात् वीरता सम्पन्न होते हैं। **उरवः**=विशाल हृदयवाले होते हैं। **व्रातसाहाः**=शत्रुसमूहों को पराभूत करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र-रक्षक लोग सात्त्विक अन्न का सेवन करनेवाले, कष्टों में प्रजा से आश्रयणीय, शक्तिशाली व गम्भीर होते हैं। ये अस्त्र-सन्नद्ध सैन्यों द्वारा शत्रुसमूह को अभिभूत करके राष्ट्र-रथ के गोपा (रक्षक) होते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥ स्वरः—**निषादः**॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥ १०॥

(१) हमारे राष्ट्र के **ब्राह्मणासः**=ज्ञान को प्रधानता देनेवाले ब्राह्मण लोग तथा **पितरः**=राष्ट्र-रक्षक क्षत्रियवर्ण **सोम्यासः**=सोम का सम्पादन करनेवाले हों। यह सोमरक्षण ही इन्हें 'ब्राह्मण व पिता' बनायेगा। सुरक्षित सोम ब्राह्मणों की ज्ञानाग्नि का ईंधन बनेगा तो क्षत्रियों को शक्ति-सम्पन्न बनायेगा। ऐसा होने पर **अनेहसा**=निष्पाप ये **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **नः शिवे**=हमारे लिये कल्याणकर हों। ब्राह्मणों व क्षत्रियों के ठीक होने पर राष्ट्र में पाप नहीं फैलते। ऐसा राष्ट्र मंगलमय होता है। (२) इस राष्ट्र में **पूषा**=पोषण करनेवाला वैश्य वर्ग **ऋतावृधः नः**=ऋत का, यज्ञ का वर्धन करनेवाले हम लोगों को **दुरितात् पातु**=दुर्गति से बचाये। अन्नाभाव के कारण राष्ट्र में भुखमरी ही न फैल जाये। वैश्यवर्ग 'कृषि, गोरक्षा व वाणिज्य' द्वारा सदा सुकाल बनाये रखे और यज्ञों का वर्धन करे। इस प्रकार प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! आप हमारा **रक्षा**=रक्षण करिये। **अघशंसः**=बुराई का शंसन करनेवाला **नः**=हमारा **माकिः**=मत **ईशत**=ईश बन जाये। हम इसकी बातों में आकर पाप की ओर न बहक जायें।

भावार्थ—हमारे राष्ट्र के ब्राह्मण सोमरक्षण द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करें। क्षत्रिय सोमरक्षण द्वारा शक्ति-सम्पन्न हों। ये दोनों राष्ट्र को निष्पाप बनायें। वैश्य अन्नाभाव को न होने देकर हमें दुर्गति से बचायें। यज्ञों के वर्धन का कारण बनें। हम अघशंस लोगों से बहकाये जाकर पाप में न फँस जाएँ।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**इषवः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

इषवः

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन्॥ ११॥

(१) बाण अग्रभाग में कङ्क-पक्षी के पंख को लगाते हैं, इस से बाण की गति में तीव्रता आ जाती है। यह इषु **सुपर्णम्**=पंख को **वस्ते**=धारण करता है। **अस्याः**=इस इषु का **दन्तः**=दाँत के समान आकारवाला अग्रभाग **मृगः**=शत्रुओं को ढूँढता-सा है (मृगयमाणः) इन्हें विद्ध करने की कामनावाला होता है। **गोभिः सन्नद्धा**=गोविकार स्नायुओं से सम्यग् बद्ध हुआ-हुआ यह इषु, **प्रसूता**=प्रेरित हुआ-हुआ, **पतति**=शत्रुओं पर पड़ता है। (२) **यत्र**=जहाँ युद्ध में **नरः**=मनुष्य **संद्रवन्ति**=मिलकर इधर-उधर गतिवाले होते हैं, **च**=और **विद्रवन्ति च**=विविध दिशाओं में अलग-अलग भाग खड़े होते हैं, **तत्र**=वहाँ रणांगण में **इषवः**=ये बाण **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **शर्म यंसन्**=सुख को देनेवाले हों।

भावार्थ—अग्रभाग में पंख को धारण करनेवाला यह बाण प्रेरित होकर शत्रुओं पर पड़ता है। शत्रुओं में यह भगदड़ मचा देता है। यह बाण रणांगण में हमारे लिये सुखकर हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**इषवः**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सोम-अदितिः

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु॥ १२॥

(१) छोड़ा हुआ बाण सीधे मार्ग से सरल रेखा में गतिवाला होता है। हे **ऋजीते**=(ऋजु गच्छति इति) बाण! **नः परिवृङ्धि**=हमें छोड़नेवाला हो, हमारे पर तू न पड़। **नः तनूः**=हमारा शरीर तो **अश्मा भवतु**=पत्थर के समान हो। पत्थर पर जैसे बाण का प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार हमारे शरीर पर भी इनका प्रभाव न हो। (२) **सोमः**=(सोमो वै ब्राह्मणः तां० २३।१६।५) सोम का सम्पादन करनेवाला, सोमरक्षण द्वारा अपनी ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला ब्राह्मण **नः**=हमारे लिये **अधि ब्रवीतु**=आधिक्येन उपदेश देनेवाला हो। **अदितिः**=(पृथिवी नाम नि० १।१) यह पृथिवी हमारे लिये **शर्म यच्छतु**=सुख को देनेवाली हो। ब्राह्मणों से दिये गये ज्ञानोपदेश के अनुसार हम अपने कार्य करेंगे, तो अवश्य यह राष्ट्र हमारे लिये सुखकर होगा, यह भूमि हमारे लिये कल्याण ही कल्याण को करेगी।

भावार्थ—हमारे शरीर बाणों के लिये अभेद्य हों। कवच आदि से सुरक्षित होकर हम अपना रक्षण कर पायें। ज्ञानियों के द्वारा दिये गये ज्ञान के अनुसार चलने से यह भूमि हमारे लिये सुखकर हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**प्रतोदः**॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

प्रतोदः

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय॥ १३॥

(१) हे **अश्वाजनि**=(अश्व+अज्) अश्वों को गति देनेवाली व अश्वों पर फेंके जानेवाली

कशे (चाबुक) **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले समझदार सारथि तेरे द्वारा **एषाम्**=इन घोड़ों के **सानु**=सविथ प्रदेशों को (thigh) **आजङ्घन्ति**=आहत करते हैं। **जघनान्**=जघन प्रदेशों को (the hip and the coins) **उपजिघ्नते**=आहत करते हैं। (२) इस प्रकार हे कशे! तू **अश्वान्**=इन घोड़ों को **समत्सु**=संग्रामों में **चोदय**=प्रेरित कर। तेरे से आहत हुए-हुए ये घोड़े तीव्रता से आगे बढ़नेवाले हों।

भावार्थ—समझदार सारथि कशा के समुचित प्रयोग से घोड़ों को रणांगण में आगे तीव्रगतिवाला करता है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**हस्तघ्नः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

हस्तघ्नः

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः॥ १४॥

(१) **हस्त**=समीपवर्ती प्रकोष्ठ में स्थित हुआ-हुआ यह डोरी के आघात से आहत होता है, सो इसे 'हस्तघ्न' कहते हैं। यह **हस्तघ्नः**=हस्तघ्न **बाहुं पर्येति**=बाहु को इस प्रकार परिवेष्टित कर लेता है **इव**=जैसे कि **अहिः**=साँप **भोगैः**=अपने शरीरावयवों से किसी की बाहु को घेर लेता है। इस प्रकार यह **ज्यायाः**=धनुष की डोरी के **हेतिम्**=आघात को **परिबाधमानः**=रोकनेवाला होता है। हस्तघ्न हमें डोरी के आघात से बचाता है। (२) इस 'हस्तघ्न' द्वारा ज्या की हेति से अपना बचाव करता हुआ, **विश्वा वयुनानि**=सब प्रज्ञानों को **विद्वान्**=जानता हुआ, युद्ध की सब नीतियों को समझता हुआ, **पुमान्**=वीर पुरुष **पुमांसम्**=वीर सैनिकों का **विश्वतः परिपातु**=सर्वतः रक्षण करे, वीर सेनानी वीर सैनिकों का रक्षण करनेवाला हो, अनीति से उन्हें यों ही रणाग्नि में न झोंक दे।

भावार्थ—हस्तघ्न हमें धनुष की डोरी के आघात से बचाये। हस्तघ्न को धारण करनेवाला वीर सेनानी युद्ध नीति को समझता हुआ वीर सैनिकों की व्यर्थ में हत्या न होने दे।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**इषवः**॥ छन्दः—**निचृद् अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

आलाक्ता इषु

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः॥ १५॥

(१) बाण के अग्रभाग को विष में बुझा लेते हैं सो **या**=जो बाण **आल अक्ता**=विष से सिक्त है। **रुरुशीर्ष्णी**=मृगशृंग से जिसका अग्रभाग बना हुआ है। **अथ उ**=और निश्चय से **यस्याः**=जिसका **मुखम्**=मुख **अयः**=अयोमय, लोहे का बना हुआ है। (२) **पर्जन्यरेतसे**=पर्जन्य की कार्यभूत इस **देव्यै इष्वै**=युद्ध में विजय की कामनावाली (दिव्=विजिगीषा) इषु के लिये **इदम्**=यह **बृहत्**=बहुत **नमः**=आदर करते हैं। जिस शरकाण्ड (सरकण्डे) से इषु बना होता है, वह बादल की वृष्टि से उत्पन्न होता है सो उसे 'पर्जन्यरेतस्' कहा है। इस इषु का हम आदर करते हैं। इसी ने तो हमें युद्ध में विजयी बनाना है।

भावार्थ—बाण विषसिक्त होता है। मृगशृंग का इसका शिरस् है। अयोमय इसका मुख है। बादल से उत्पन्न शरकाण्ड का यह बना है। युद्ध में विजय प्राप्त करानेवाले इस इषु का हम आदर करते हैं। इसके द्वारा शत्रुओं का नतमस्तक करते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**इषवः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

'शरव्या' इषु

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः॥ १६॥

(१) हे **ब्रह्मसंशिते**=(मंत्रेण तीक्ष्णीकृते) विचारपूर्वक प्रयोग से शत्रु के लिये बड़ी तीक्ष्ण बनी हुई **शरव्ये**=शत्रुहिंसन में कुशल इषो! **अवसृष्टा**=छोड़ी हुई तू **परापत**=सुदूर शत्रुओं पर पड़। (२) **गच्छ**=शत्रुओं की ओर जा। **अमित्रान् प्रपद्यस्व**=उन अमित्रों को प्राप्त हो और **अमीषाम्**=उनमें से **कञ्चन**=किसी को भी **मा उच्छिषः**=अवशिष्ट मत कर। सभी को तू समाप्त करनेवाली हो।

भावार्थ—विचारपूर्वक चलाया गया बाण शत्रुओं के लिये बड़ा तीक्ष्ण हो, यह सब शत्रुओं को समाप्त करनेवाला हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च)**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥ स्वरः—**पञ्चमः**॥

युद्धभूमि में रक्षण

यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखाइव।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु॥ १७॥

(१) **यत्र**=जहाँ युद्धभूमि में **बाणाः**=बाण **सम्पतन्ति**=लगातार पड़ते हैं (सम्=मिलकर) और **कुमाराः**=बड़ी बुरी तरह से मारनेवाले होते हैं। **विशिखाः इव**=विशिष्ट ही शिखावाले होते हैं, जिन बाणों के अग्रभाग १५वें मन्त्र के अनुसार 'आलाक्त' होते हैं। इन बाणों का जहाँ निरन्तर पतन हो रहा है, **तत्र**=वहाँ **ब्रह्मणस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी **अदितिः**=(न दितिर्यस्मात्) न खण्डन होने देनेवाला प्रभु **नः**=हमारे लिये **शर्म यच्छतु**=रक्षण को व सुख को **यच्छतु**=दे। युद्ध विद्या से पूर्ण अभिज्ञ होकर हम अपना रक्षण कर सकें। (२) प्रभु **विश्वाहा**=सदा ही **शर्मयच्छतु**=हमारे लिये सुख को दें। वस्तुतः ज्ञान प्राप्ति के होने पर युद्धों का कम ही सम्भव होता है और युद्ध हो भी जाएँ तो हम व्यर्थ में मृत्यु को नहीं प्राप्त होते। ज्ञान हमारा रक्षण करता है।

भावार्थ—विशिष्ट अग्रभागवाले, बुरी तरह से मारनेवाले बाण जहाँ निरन्तर पड़ रहे हैं, उन युद्धभूमियों में भी ज्ञान के स्वामी प्रभु हमें विनष्ट होने से बचायें।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (कवचसोमवरुणाः)**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

वर्म-सोम-वरुण

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥ १८॥

(१) जिन स्थानों पर विद्ध होकर शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है उन्हें 'मर्म' कहते हैं। **ते मर्माणि**=तेरे मर्मस्थलों को **वर्मणा**=कवच के द्वारा **छादयामि**=आच्छादित करता हूँ। कवच से छादित मर्मस्थल शत्रुशरों से विद्ध नहीं होते। यह **राजा**=जीवन को दीप्त करनेवाला **सोमः**=सोम

(वीर्य) **त्वा**=तुझे **अमृतेन**=नीरोगता से **अनुवस्ताम्**=आच्छादित करे। अर्थात् सोम का रक्षण तुझे नीरोग बनाये। (२) **वरुणः**=द्वेष निवारण की देवता **ते**=तेरे लिये **उरोः वरीयः**=विशाल से भी विशालतर सुख को **कृणोतु**=करनेवाली हो। **जयन्तम्**=राग-द्वेष आदि सब शत्रुओं को पराजित करते हुए **त्वा**=तुझे **देवः**=सब देव, सब दिव्य भाव **अनुमदन्तु**=अनुकूलता से हर्षित करनेवाले हों।

भावार्थ—कवच हमारे मर्मों का रक्षण करे। सुरक्षित सोम हमें नीरोगता प्रदान करे। निर्द्वेषता की देवता हमें आनन्दित करनेवाली हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः**॥ देवता—**लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (देवा ब्रह्म च)**॥
छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

ब्रह्म वर्म मम अन्तरम्

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्॥ १९॥

(१) **यः**=जो **स्वः**=अपना, कोई रिश्तेदार, बन्धु-बान्धव अथवा **अरणः**=(अरममाण) हमारे साथ न प्रीतिवाला कोई पराया व्यक्ति **यः च**=और जो **निष्ट्यः**=तिरोभूत-दूरे स्थित पुरुष **नः**=हमें **जिघांसति**=मारना चाहता है। **तम्**=उसको **सर्वे देवाः**=सब देव **धूर्वन्तु**=हिंसित करें। जल, वायु आदि देवों की प्रतिकूलता से वह विनष्ट हो जाये। अथवा हमारे दिव्य भाव उसकी पापवृत्ति को समाप्त करनेवाले हों। (२) **ब्रह्म**=ज्ञान अथवा प्रभु **मम**=मेरे **अन्तरं वर्म**=अन्दर के कवच हों। इस अन्तःकवच से सुरक्षित हुआ मैं हिंसित होऊँ।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु व ज्ञान को ही हम अपना अन्दर का कवच बनायें और हिंसित न हों।

॥ इति षष्ठं मण्डलम्॥